" जियो और जीने दो "

अहिंसा और सत्य के सर्वोत्तम प्रचारक

श्री भगवान् महावीर

के प्रति

श्रद्धांजलियां

जैन मित्र मंडल

धर्मपुरा, देहली

श्री भगवान् महावीर का २५५३ वां जन्म दिवस

चैत्र शुक्ला १३, वीर निर्वाण सम्वत् २४०१

५ अप्रैल, १९५५

जैन मित्रमण्डल-ट्रैक्ट नं० १२८

विश्व शान्ति के अग्रदूत
श्री वर्द्धमान महावीर
दिगम्बर दास जैन

IMPORTANT

Within the words of Shri Mahatma Gandhi—the greatest expounder of Ahinsa and peace of the 20th century. "Lord Mahavira was the greatest Apostle of Ahinsa and Truth." When Lord Wardhamana Mahavira had established peace to more miserable world of His time, His life may certainly be most beneficial to the distressful world of today and when acting at his one doctrine of Ahinsa our India has obtained independence, naturally it becomes essential for the whole world, in order to attain freedom from pain and to enjoy eternal bliss, to examine and test his other principles too, for the acquaintance of which this book is being published.

Its mere reading may not be very profitable until one acts at the noble teachings of the Omniscient Lord Mahavira according to his own power and limits. To cultivate the habit some ordinary vows are given on its page 528 which according to our beloved Speaker Hon'ble Shri G. V. Mavalankar are very essential to raise the moral and spiritual height of our people. If you also find these useful for the betterment and purification of your soul, 'kindly take **a vow today** to observe them at first for **one year** only as an experiment and **return** its copy duly filled to us to mention your name in the next edition with golden letters.

The next totally revised edition of the book is expected very soon. If convenient kindly also favour with a suitable article about Jain Culture, Literature or History in Hindi or English, quoting the names and the pages of the books or journals from which you have been kind to search it out with your passport size PHOTO for it at the most by the end of January 1955. All whose articles will be published, shall get that enlarged and profusely illustrated edition free on publication.

QUZZAT STREET
SAHARANPUR (U. P.) INDIA.

DIGAMBER DAS JAIN,
PUBLISHER.

विश्वशान्ति के अग्रदूत

श्री वर्द्धमान महावीर

३ भाग

१०० से अधिक रङ्गीन व सादे चित्र

सैकड़ों जैन-अजैन प्रामाणिक ग्रंथों के हजारों उदाहरण

न केवल

FOR LIBRARIES.

For the noble cause of Ahinsa, World-pease, Universal brother-hood, kindly recommend if for Colleges, Schools and Village Panchayat Libraries under your kind control The book will be offered to such institutions at HALF PRICE i.e. Rs. 3/4/- instead of Rs. 6/8/-. —*Publisher.*

लेखक व प्रकाशक—

श्री दिगम्बरदास जैन मुख्तार, सहारनपुर

भूमिका लेखक—

प्रो० डॉ० कालीदास नाग, एम. ए., डी. लिट.

प्रथमवार	वीर संवत्	सितम्बर
११११	२४८०	१९५४

मूल्य ६॥)

परन्तु प्रतिज्ञा-पत्र पृष्ठ ५२८ भेजने पर डाकखर्च सहित ३॥)

FOREWORD

DR. KALI DAS NAG

Shri Digamber Das Jain has worked patiently and piously for over 10 years in compiling and inspiring articles on the life and teachings of Lord Mahavira Most of the important articles and books on Jainism have been carefully incorporated into this volume which would prove useful to the Indian Readers using *Rashtra Bhasha* and also to the Foreign Admirers of Mahavira the prophet of Non-violence. If humanity survives the tragic trials of Atomic Warfare it would be only through the application of Non-violence and India of Mahatma Gandhi and Pandit Jawahar Lal Nehru is trying its level best to help the cause of world peace as recently by stopping the cruel Bloodshed in Korea and Indo-China.

So we congratulate the author for compiling this useful volume and wish it a wide publishing in India and abroad.

Calcutta,
August 5, 1954.

(Dr.) Kali Das Nag,
M A., D. Litt. (Paris)

Foreign Scholars.

शुद्धि-पत्रिका

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१६	११, १५	चरित्र बल	चारित्र बल
२०	३	चरित्र बल	चारित्र बल
२४	१७	मुनिधर्म	त्यागधर्म
३५	१३	आर्मी	ऐयर
४८	फुटनोट १	निग्रन्थों	निर्गंथों
८८	अन्तिम	१२-२-१६५१	१५-२-१६५१
८६	१२	दि० जै० पृ० ११	(दि० जैन सङ्घ) भूमिका
६५	४	१२-५-४४	१२-३-१६४४
६६	१३	यह (Law of Gravitation)	यह Newton के Law of Gravity से भी अधिक महान खोज है
१८०	१२	A. Guernot	A. Guirenot.
१८४	११	Eintein	Einstein
२०७	१२	2 ·	2·7
२६१	१२	मुनिधर्म	क्षुल्लक धर्म
३००	२	ॐ नमः सिद्धेभ्य	नमः सिद्धेभ्य
३२६	१४	ntuitation	intuition
३३३	७	नदी	नहीं
३४०	१६, २४, २६	Abid	Ibid
३४६	१७	१५ मत्र	अल्पकाल
३६७	२०	Goancsha	Ghanesha
४००	७	१३	१३००
४०४	फुटनोट	नं० २	२-३
४०४	,,	नं० ३	४-५
४०४	,,	नं० ४-५	६-७
४३७	२०	कर्ता-हर्ता मानना	कर्ता-हर्ता न मानना
४७०	१५	अतिस्तोत्र	अतिथय

शुद्धि-पत्रिका

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१९	११, १५	चारित्र बल	चारित्र बल
२०	३	चारित्र बल	चारित्र बल
२४	१७	मुनिधर्म	त्यागधर्म
३५	१३	आर्मी	ऐमर
४८	फुटनोट १	निग्रन्थों .	निर्ग्रन्थों
८८	अन्तिम	१२—२—१९५१	१५—२—१९५८
८९	१२	दि० जै० पृ० ११	(दि० जैन साहू) भूमिका
९५	४	१२—५—४४	१२—३—१९४४
९९	१३	यह (Law of Gravitation)	यह Newton के Law of Gravity से भी अधिक महान खोज है
१८०	१२	A. Guernot	A. Guirenot.
१८४	११	Eintein	Einstein
२०७	१२	2 ·	2·7
२६१	१२	मुनिधर्म	क्षुल्लक धर्म
३००	२	ॐ नमः सिद्धेभ्य	नमः सिद्धेभ्य
३२९	१४	ntuitation	intuition
३३३	७	नर्दी	नहीं
३४०	१९, २४, २९	Abid	Ibid
३४९	१७	१५ भव	अल्पकाल
३९७	२०	Goanesha	Ghanesha
४००	७	१३	१३००
४०४	फुटनोट	नं० २	२—३
४०४	,,	नं० ३	४—५
४०४	,,	नं० ४—५	६—७
४३७	२०	कर्ता-हर्ता मानना	कर्ता-हर्ता न मानना
४७०	१५	अतिस्तोम	अतिशय

बम्बई हाईकोर्ट का फैसला*

बम्बई हरिजन मन्दिर प्रवेश कानून जैन मन्दिरों पर लागू नहीं

शोलापुर जिले के आकलूज नगर के कुछ जैनियों की दरख्वास्त (Civil Application No. 91 of 1951, presented on January 17, 1951) पर बम्बई हाईकोर्ट के माननीय चीफ जस्टिस श्री सी० जे० छागला और जस्टिस गजेन्द्रगडकर के फैसले तिथी २४ जौलाई १९५१ के सारका हिन्दी अनुवाद :—

"......एडवोकेट जनरल की मंशा यह है कि कानून की उक्त धारा में 'हिन्दू' की जो व्याख्या की गई है, उसे इस धारा में भी शामिल करना चाहिए और उस व्याख्या को इस धारा में करने के बाद हमें उसका यह अर्थ करना चाहिए कि प्रत्येक मन्दिर, चाहे वह हिन्दुओं का हो या जैनियों का हो, वह हिन्दू समाज के हर सदस्य के लिये खोल दिया गया है, जिसका अभिप्राय जैन समाज और हिन्दू समाज के सभी सदस्यों से है। इस मंशा को स्वीकार करना असम्भव है।......"

"......यह सच है कि जहाँ कोई रिवाज या व्यवहार विपरीत नहीं मिलता, वहाँ अदालतों के फैसले के अनुसार जैनियों पर हिन्दू कानून लागू होता है। फिर भी उनके प्रथक् और स्वतन्त्र समाज के अस्तित्व के बारे में, जिस पर कि उनके अपने धार्मिक विचारों और विश्वासों की व्यवस्था लागू होती है, कोई विवाद नहीं किया जा सकता।......"

"......एडवोकेट जनरल का मंशा कि भले ही किसी कानून या रिवाज से किसी हिन्दू को जैन मन्दिर में पूजा करने का अधिकार प्राप्त नहीं है तो भी उसको इस कानून (बम्बई हरिजन मन्दिर प्रवेश ऐक्ट १९४७) से वह अधिकार प्राप्त होजाता है। हम इस मंशा को स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं हैं।......"

"......हमें प्रतीत होता है कि कलक्टर को यह अधिकार नहीं था कि वह जैनियों के मन्दिर का ताला तोड़ने के लिये बाध्य करता अथवा हरिजनों को जैन मन्दिर में जाने के लिये मदद देता।......"

---

* इस अँग्रेजी फैसले की पूरी नकल हिन्दी अनुवाद सहित श्री परसादीलाल पाटनी, महामन्त्री अ० भा० दिगम्बर जैन महासभा, मारवाड़ी कटरा, नई सड़क, देहली से छपी हुई केवल डाक खर्च भेजने पर प्राप्त हो सकती है।

मनुष्य जीवन से अपने पुरुषार्थ द्वारा परमात्मपद प्राप्त करने वाले
सत्य और अहिंसा के अवतार :: विश्व-शान्ति के अग्रदूत

श्री वर्द्धमान महावीर

प्रस्तावना

"If the teachings of MAHAVIRA is necessary at any time. I should only say that it is most, necessary NOW. Not only that but it has to be taught IN ALL PARTS OF THE WORLD so that UNIVERSAL PEACE MAY BE ESTABLISHED."

—Our Loving President Dr. Rajendra Pd, Ji: VOA. VOL. II, P, 201.

सारा संसार इस समय दुःख अनुभव कर रहा है। गरीब को पैसा न होने का एक दुःख है तो अमीर को सम्पत्ति की तृष्णा, कारोबार को बढ़ाने की लालसा और ईर्षादि के चिन्तायुक्त अनेक कष्ट। बड़े से बड़े प्रेजीडेण्ट, प्रधान मन्त्री और राज्य तक देश-रक्षा के भय तथा शत्रुओं की चिन्ता से पीड़ित हैं और अनेक उपाय करने पर भी उन्हें सुख शान्ति प्राप्त नहीं होती। आखिर इस का कारण क्या ?

यह तो सब को स्वीकार करना ही पड़ता है कि राग-द्वेष, क्रोध, लोभ आदि हिंसामयी भावों के कारण ही संसार दुःखी बना हुआ है, परन्तु इन दुर्भावों को मिटाने के उपायों में मतभेद है। कुछ लोगों का विचार है कि युद्ध लड़ने से अशान्ति नष्ट हो जाती है, परन्तु डा० G. Santayana के शब्दों में लड़ाईयों से देश की सम्पत्ति, देश के वीर, देश का व्यापार तथा देश की उन्नति नष्ट हो जाती है और आने वाली सन्तति तक को भी युद्धों के बुरे प्रभाव का फल भोगना पड़ता है। एक युद्ध के बाद दूसरा और उसके बाद तीसरा युद्ध लड़ना पड़ता है और इस

प्रकार युद्धों से छुटकारा नहीं होता। यदि कैसरे जरमनी को हरा दिया तो उससे भी भयङ्कर हिटलर उत्पन्न होजाता है। युद्ध से शत्रु नष्ट हो सकते हैं परन्तु शत्रुता नष्ट नहीं होती[१]।

कुछ लोगों का खयाल है कि ऐटॉमिक बम्बों तथा हैडरोजन बम्बों के भय से शान्ति को स्थापना हो सकती है। एक हैडरोजन बम्ब पर $ 2000000000[२] अर्थात् ($ 21/=£ 7/9/6= Rs. 100/[३]) लगभग १० अरब रुपया खर्च होता है और फिर भी रूस के प्रसिद्ध विचारक C. Tolstoy के शब्दों में "आग से आग को नहीं बुझाया जा सकता[४]"। प्रो० Albert-Einstein भी इस बात की पुष्टि करते हुए कहते हैं "हिंसा को हिंसा से नहीं मिटाया जा सकता"[५]। अमेरिका के वैज्ञानिक Dr. James R Arnold के कथनानुसार—"जो भयानक हथियारों से दूसरों को मिटाना चाहते हैं, वे अपनी कब्र अपने हाथों से खोद रहे हैं[६]।

विश्व के सर्वमान्य राजनीतिज्ञ भारत के प्रधानमन्त्री पं० नेहरु के शब्दों में इस समय सारा संसार बड़ी विषम परिस्थिति से गुजर रहा है और इस से बचाव का केवल एकमात्र उपाय अहिंसा है"[७]।

---

१ "We defeated Kaisar and got Hitler. Following the defeat of Hitler we may get a worse Hitler. No REAL PEACE *unless we destroy the soil & seeds out of which Kaisar and Hitler grow"*

—Empire by Lovis Fischer. p. 11.

२ Dr. James R Arnold: Indian Review. (1950) p. 783

३ Indian Trade Bulletin Govt. of India (15-8-50) p. 75

४ War and Peace by C. Tolstoy.

५ Einstein's Massage to the World Pacifist Meeting.

६ Those who are willing to use weapons for the killing, must be prepared in return to accept suicide in the bargain". —Indian Review (1950) P. 783.

७ The world is passing through a very critical phase. The great powers are poised against one another, armed with the '*most derstructive weapons of all ages*'. AHINSA ALONE can solve the problems.

—Hindustan Times, New Delhi (April 20, 1954.) P.7.

अमेरिका के प्रेजीडेन्ट Eisenhower का भी कहना है, "संसार को नष्ट कर देनेवाले भयानक हथियारों से सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती"[1]। दूसरे देशों के नेता भी यही कहते हैं परन्तु जब U.N.O. की स्थापना, भयानक हथियारों की निन्दा और अहिंसा को सुख-शान्ति का सर्वोच्च उपाय स्वीकार करने पर भी जग की बड़ी-बड़ी शक्तियां भयङ्कर हथियारों से युद्ध करके संसार की शान्ति को भङ्ग करने पर साक्षात् तुली खड़ी हैं, तो कुछ लोगों के कथनानुसार अहिंसा में चमत्कार कहां ?

'अहिंसा वाणी से कहने की वस्तु नहीं', बल्कि स्वयं अपनाने आचरण करने और जीवन में उतारने की चीज है। अहिंसा का पालन वही कर सकता है जो आत्मिक शक्ति तथा चरित्र बल में शक्तिशाली हो। इसी लिये श्रीमती विजयलक्ष्मी पण्डित ने स्पष्ट कहा है—"**हैडरोजन बम्बों का प्रतिकार केवल आत्मिक शक्ति है**"[2]। आत्मिक शक्ति की प्राप्ति के लिये उन्होंने जोर देते हुये बताया, "इस समय भारत को अपना चरित्र-बल दृढ़ करने की बड़ी आवश्यकता है जिसके प्रभाव से भारत हैडरोजन बंबादि भयानक हथियारों के प्रयोग के विरुद्ध प्रभावशाली आवाज उठाकर संसार को नष्ट होने से बचा सके[3]"। रूस के प्रसिद्ध वैज्ञानिक C. Tolstoy के शब्दों में –"मांस भक्षण से गन्दे विचार और शराब तथा पर स्त्री गमन में रुचि उत्पन्न होती है और मांस के त्याग से

१ This book's P. 352 & A. B. Patrika (Nov. 24, 1953) P 5.

२ "*Soul force* is the *only* answer of hydrogen bombs."
—The Tribune, Ambala (April 22, 1954) P. 9

३ Mrs. Vijayalakshmi called upon the people of India to be strong mentally and morally so that they should bring moral pressure on the countries of the world against the use of the most dangerous weapons and save the humanity from catastrophe.
—Tribune, Ambala (April 22, 1954) P. 9.

पोलिटीकल युद्ध तथा वाद-विवाद सरलता से जाते रहते हैं[१]"।
इस लिये अहिंसा की शक्ति का सच्चा प्रभाव देखने और आत्मिक
तथा चरित्र बल दृढ़ करने के अभिलाषियों को आज ही मांस के
त्याग की प्रतिज्ञा लेनी उचित है।

कुछ लोगों का कहना है[२] कि अहिंसा के प्रचारक महात्मा बुद्ध
मांस के त्यागी न थे[३]। उनके कथनानुसार बौद्ध गृहस्थी ही नहीं
बल्कि बौद्ध भिक्षुक (साधु) तक मांस[४] मछली[५] के त्यागी न थे
और उनके बौद्ध शास्त्रों में ऐसे अनेकों उल्लेख मिलते
हैं[६], तो हम मांसाहारी होते हुए अहिंसा का पालन क्यों नहीं
कर सकते ?

जब मांस भक्षण करने से हृदय पवित्र नहीं रहता तो
आत्मिक शक्ति तथा चारित्र्य बल कहां ? और जब चारित्र्य-
बल तथा आत्मिक शक्ति नहीं तो अहिंसा का पालन कहां ? जब

---

१ Meat-eating multiplies gross thoughts. It produces lust and induces drinking & adultery. If all men give up meat-eating, political wars & law suits can easily be avoided —Meat Eating A Study. P. 10-11.

२ म० महावीर की अहिंसा और भारत के राज्यों पर उसका प्रभाव, पृ० ३५-३७।

३ "Newly converted Minister invited Buddha with 1250 Bhikkus and gave meat too.. Samgha with Buddha ate it" —Mahavagga, VI 25-2.

४ "Destroying living beings, killing cutting, binding, stealing, speaking falsehood, fraud, intercourse with another's wife—this is *amagandha* (Sin), BUT NOT THE EATING OF FLESH." —Suttanipata P. 40.

५ I prescribe, O Bhikkus, that *fish is pure* to you in 3 cases: if you do not see, if you have not heard, if you do not suspect (that it has been caught specially to be given to you)."
—Vinaya Texts (S. B E.) Vol XVII, P. 117.

६ अंगुत्तरनिकाय-अट्ठकनिपात सहीसुत १२, पंचकनिपात-उग्गगह पतिसुत्त ४, महावग्ग ६/१३१, महा परिनिब्बानसुत ४/१७/१८

अहिंसा का पालन नहीं तो सुख शान्ति कहां ? इसी लिये तो मांस का त्यागी न होने के कारण महात्मा बुद्ध की अहिंसा का उतना अधिक प्रभाव सर्वसाधारण पर नहीं पड़ सका, जितना कि मांसाहार के त्यागी महात्मा गांधी का पड़ा है।

विश्वशान्ति की प्राप्ति के लिये श्री स्वामी समन्तभद्र ने अपने स्वयम्भू स्तोत्र में एक और उत्तम बात बताई है:—

स्वदोष-शान्त्या विहिताऽऽत्मशान्तिः शान्तेर्विधाता शरणं गतानाम्।
भूयाद्भव क्लेश भयोपशान्त्यै शान्तिर्जिनो मे भगवान् शरण्यः ॥ ८० ॥

भावार्थ - राग-द्वेष करने से क्रोध, मान, माया, लोभ, चिन्ता, भय आदि कषायरूपी अग्नि की उत्पत्ति हो जाती है, जो जीव की स्वाभाविक सुख-शांति को जला देती है। जिन्होंने राग-द्वेष, मन, इंद्रियों को सम्पूर्ण रूप से जीतकर सच्ची सुख-शान्ति को प्राप्त कर लिया है, वे केवल जिनेन्द्र भगवान हैं। जो स्वयं किसी पदार्थ को प्राप्त कर लेते हैं वे ही उसकी प्राप्ति की विधि दूसरों को बता सकते हैं। इस लिये सच्चे सुख और शान्ति के अभिलाषियों को श्री जिनेन्द्र भगवान के अनुभवों से लाभ उठाना उचित है।

इतिहास बताता है कि श्रीवर्द्धमान महावीर राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि १८ दोषों तथा मन और इन्द्रियों को सम्पूर्ण रूप से जीत कर अविनाशिक सुख-शान्ति प्राप्त करने वाले जिनेन्द्र भगवान हैं, जिन्होंने वर्षों के कठोर तप, त्याग, अहिंसा व्रत-संयम द्वारा सत्य की खोज की। स्वयं राज्याधिकारी और उस समय के सारे राजाओं-महाराजाओं पर अत्यधिक प्रभाव होते हुए भी उन्होंने युद्ध का दबाव या राज-दण्ड का भय देकर अपने सिद्धान्तों को जनता पर थोपने का यत्न नहीं किया, बल्कि जब उन्होंने देखा कि जिह्वा के स्वाद के लिये लोग देवी देवताओं और धर्म के नाम पर जीव-हिंसा करने में स्वर्ग की प्राप्ति तथा आनन्द मानते हैं तो उन्होंने जनता से कहा कि तुम जैन धर्म के सिद्धान्तों को इस

लिये मत मानो कि वह मेरी जांच में ठीक उतरे हैं, बल्कि उन्हें स्वयं न्याय की कसौटी पर रगड़ कर परखलो और यदि तुम्हारी जांच में भी वह पूरे उतरे तो अपनाओ वरना नहीं। श्री स्वामी समंतभद्र ने वीर की बात को परख कर कहा "स्वर्ग के देवों का आपकी भक्ति-पूजा करना तथा अतिशय विभूतियों का होना तो इन्द्रजाल में भी पाया जाता है इस के कारण हम आप को महान् नहीं मानते[1]। आपने राग-द्वेष आदि को जीत कर सम्पूर्ण अहिंसा को पहले स्वयं अपनाया और फिर सुख शान्ति की स्थापना के लिये उस का संसार को उपदेश दिया इस लिए आप की शरण ली है। श्री हरिभद्रसूरी ने भी महावीर के सिद्धान्तों को जाँच कर कहा:—

बन्धुर्न नः स भगवान् रिपवोऽपि नान्ये, साक्षान्न दृष्टवर एकतमोऽपि चैषाम्।
श्रुत्वा चः सुचरितं वच पृथग् विशेषं, वीरं गुणातिशयलोलतया श्रिताःस्म.[2] ॥

अर्थात्—महावीर हमारा कोई सगा भाई नहीं है और न दूसरे कपिल गोतमादि हमारे शत्रु हैं। हमने तो इन में से किसी एक को साक्षात् देखा तक भी नहीं है। हां! इनके वचनों और चरित्रों को सुना है। तो उनसे महावीर में गुणातिशय पाया, जिस से मुग्ध होकर अथवा उन गुणों की प्राप्ति की इच्छा से ही हम ने महावीर का आश्रय लिया है।

परीक्षा का सम्पूर्ण अवसर देने का परिणाम यह हुआ कि ईश्वर के नाम पर अन्ध विश्वास का खड़ा किया हुआ किला धीरे २ टूटना शुरू होगया और जब उनके हृदय को भ० महावीर की बात ठीक जंची तो उन्हें विश्वास हो गया कि भ० महावीर के सिद्धान्तों के अलावा सुख-शान्ति प्राप्त करने का और कोई दूसरा उपाय नहीं है। इसी लिये आचार्य श्री काका कालेलकर जी ने डंके की चोट कहा—"मैं दृढ़ता के साथ कह सकता हूँ कि भ० महावीर के अहिंसा सिद्धान्त से ही विश्व-कल्याण

१ This book's p. 73.
२ Anekant (Vir Seva Mandir, Sarsawa) Vol. I .P.49.

तथा शान्ति की स्थापना हो सकती है[१]"। House of People के डिप्टीस्पीकर श्री Ananthasayanam Ayyengar ने भी स्वीकार किया, "जब संसार की दो बड़ी शक्तियां ऐटो तथा हाइड्रोजन बम्बों द्वारा संसार को नष्ट करने पर तुली खड़ी हैं, तो भ० महावीर द्वारा प्रचालित अहिंसा ही संसार में शान्ति स्थिर कर सकता है[२]। भारत यूनियन के मन्त्री श्री गुलजारीलाल नन्दा का भी यही कहना है, "भ० महावीर ने संसार के सामने जो रास्ता रखा है, वह शांति और अमन का रास्ता है। इस लिये उनके सिद्धांत को सफल बनाना चाहिए[३]। डा० सैफुद्दीन कचलू के शब्दों में—'आज संसार में तीसरी लड़ाई के सामान ऐसे तरीके से पैदा किये जा रहे हैं कि लोग इस लड़ाई से अलग नहीं रह सकते। इस समय जरूरत है कि भ० महावीर के उपदेशों को फैला कर आने वाले विश्व युद्ध को रोका जावे[४] "।

भ० महावीर तीनों लोक, तीनों काल के समस्त पदार्थों और उन के गुणों को जानने वाले थे। जिन बातों को आज के प्रसिद्ध वैज्ञानिक भी नहीं जानते वह भ० महावीर के केवल ज्ञान रूपी दर्पण में स्पष्ट झलकती थी। आत्मिक विद्या के वैज्ञानिक Prof. William Mc. Gougall के शब्दों में, "आज के विद्वान् केवल पुद्गल को ही जानते हैं, परन्तु जैन तीर्थंकरों ने जीव (आत्मा) की भी खोज की। जर्मनी के डा० अर्नेस्ट[५] लायमेन के कथनानुसार, "श्री वर्द्धमान महावीर केवल अलौकिक महापुरुष

---

१ This book's P. 82.

२ When the two major power blocks of the world are engaged in experiencing Atom bombs and Hydrogen bombs; the teachings of Ahinsa, preached by MAHAVIRA is of great significance to establish PEACE in the world. —Tribune (April 17, 1954) p.2

३-४ दैनिक उर्दू प्रताप नई देहली (१८ अप्रैल १९५४) पृ० ६।

५ What is Jainism ? P. 48.

ही न थे। बल्कि तपस्वियों में आदर्श, विचारकों में महान्, आत्मिक विकास में अग्रसर दर्शनकार और उस समय की सभी विद्याओं में प्रवीण (Expert) थे[1] "। इसी लिये खोजी विद्वान् पं० माधवाचार्य ने सच कहा है, "जैन फलाफरों ने जैसा पदार्थ के सूक्ष्मतत्व का विचार किया है उसको देखकर आज कल के फलासफर बड़े आश्चर्य में पड़ जाते हैं और कहते हैं— "महावीर स्वामी आजकल की साइंस के सब से पहले जन्मदाता हैं[2] "।

भ० महावीर ने प्रेम उत्पन्न करने के लिये अहिंसा को अपनाया, हर एक वस्तु के समस्त पहलुओं को जानने और सम्पूर्ण सत्य को प्राप्त करने के लिये अनेकान्त अथवा स्याद्वाद का प्रचार किया। लोभी तक को सन्तोषी बनाने के लिये अपरिग्रहवाद का विकास किया। परमादियों को पुरुषार्थी बनाने के लिये कर्मवाद का सुन्दर पाठ पढ़ाया। जात-पात और नीच ऊंच के भेद को मिटाने के लिये साम्यवाद का झण्डा लहराया जाता है स्त्रियों को न केवल पुरुषों के समान आदर प्रदान किया बल्कि गार्हस्थ्य तथा मुनि-धर्म के दरवाजे उनके लिये खोल दिये। पशु-पक्षियों और तिर्यञ्चों तक में मनुष्यों के समान आत्मा सिद्धि करके संसार के हर प्राणी को सुख से "जीओ और दूसरों को शान्ति से जीने दो" का कल्याणकारी गुरुमन्त्र सिखाया। समस्त संसारी सुख-सामग्री प्राप्त होने पर भी २६ साल ३ महीने २० दिन[3] की भरी जवानी में मोह ममता भरे संसार और कुटुम्बियों को त्याग कर स्वार्थ के स्थान पर त्याग

१-३ इसी ग्रन्थ के पृ० ११२, ६३, २६६ ।

भाव की वाणी से ही नहीं बल्कि चरित्र से शिक्षा दी। धर्म के दस लक्षण बता कर देश के चरित्र बल को दृढ़ किया और पापी को भी सुधार का अवसर देकर इतना ऊंचा उठाया कि जिन स्वर्ग के देवी-देवताओं को मनुष्य पूजता था वही देवी-देवता मनुष्य को पूजने लगे। भ० महावीर पृथ्वी पर चलने फिरने वाले हमारे समान ही मनुष्य थे, श्रावक धर्म ग्रहण करने के कारण राज-पद और मुनिधर्म पालने के पुण्य फल से नारायण, चक्रवर्ती इन्द्रादि अनेक महा सुखदायक जन्म धरते हुये अपने पुरुषार्थ से परमात्म पद प्राप्त किया इस लिए उनकी जीवनी पुरुषार्थी मनुष्यों के लिये बड़ी लाभदायक है:—

"I want to interprete MAHAVIRA'S LIFE as rising from MAN-HOOD to GOD-HOOD and not from GOD-HOOD to SUPER GOOD-HOOD. If that were, I would not even touch Mahavira's Life, as we are not Gods but man and man is the greatest subject for man's study." —Prof Dr Charlotta Krause.

प्रोफेसर रक्का ने कहा है—"मुझे तो नहीं मालूम होता कि भ० महावीर स्वामी ने अहिंसा को जितना जीवन में उतारा है, उतना किसी दूसरे ने ऐसा सफल प्रयोग किया हो। लेकिन क्या कारण है कि इन का दूसरे धर्म वाले उल्लेख तक नहीं करते'"? इस का स्वयं ही उत्तर देते हुये उन्होंने कहा, "इसमें उनका दोष नहीं है। अगर उन्हें ऐसा सुगम और सफल साहित्य मिल जाता जिस से वह जैन तत्व, महावीर तथा अहिंसा का परिचय पा सकते तो वे उस ओर आकर्षित हुये बिना न रहते[२]" मुखोपाध्याय सतीश मोहन ने तो वीर जीवनी छपवाने की मांग भारत सरकार से करते हुए कहा, "महावीर की जीवनी से भारत की जनता का परिचय बहुत थोड़ा है, ऐसे अहिंसाव्रती और त्यागी महापुरुष के जीवन के सम्बन्ध में हमें जितना जानना चाहिये उतना हम नहीं जानते। हमारे पास उन की कोई

१-२ जैन भारती, वर्ष ११, पृ० ११६।

अच्छी जीवनी नहीं है, यह काम जल्दी से जल्दी होना चाहिए मैं इस ओर सरकार का ध्यान दिलाता हूँ, और आशा करता हूँ कि वे इस सम्बन्ध में उचित प्रबन्ध करें"[1]। इसी कमी को अनुभव करते हुए अखिल भारतीय दिगम्बर जैन परिषद् ने साहू शान्तिप्रसाद जी के सभापतित्व में अपने २६ वें वार्षिक अधिवेशन में छठे प्रस्ताव द्वारा २४ अप्रैल १६४३ को देश-विदेश के विद्वानों से एक अच्छी वीर जीवनी लिखने की प्रार्थना की और सबसे उत्तम लेखक को ४०००) रु० का पुरस्कार भेंट करने की घोषणा की[2]। हमने भी अनेक विद्वानों का ध्यान इस ओर दिलाया, परन्तु उन की विशेष रुचि इस ओर न देख कर परिचय कराने की योग्यता न होते हुए भी वीर-भक्ति के वश अपने टूटे-फूटे शब्दों में ही वीर जीवनी लिख कर हमने २० दिसम्बर १६४४ को परिषद् के जनरल सेक्रेटरी ला० राजेन्द्रकुमार जी के पास भेज ही दी[3]। जिस पर परिषद् के सभापति महोदय श्री साहू जी का उत्तर आया –"आपकी वीर जीवनी बाबू सूरजभान जी आदि बहुत से विद्वानों ने पढ़ी। वे सब आप की मेहनत और खोज की बहुत ही प्रशंसा करते हैं, परन्तु उनकी राय है कि इस से इतिहास का काम नहीं लिया जा सकता, प्रमाण-पुष्टि के लिये अवश्य लाभदायक है[4]"।

---

१ दैनिक संसार तिथि १६ अप्रैल १६५१।

२ वीर (२० मई १६४३) वर्ष २६, पृ० १७६।

३ Letter of Dec 28, 1944 from L. Rajendra Kumar Jain to Digamber Das:—"I am in due receipt of your letter of the 20 th inst. and also the manuscript of the book that you have written about Lord Mahavira. I am forwarding the same to Mr. S. P. Jain at Dalmia Nagar" to enquire his views.

४ Letter No 10404 of July 25, 1945 of Shri L. C. Jain Secretary, Sahu S. P. Jain to Digamber Das—"Your manuscript has been gone through by B. Surajbhan

जिन के अनुपम ज्ञान की प्रशंसा विरोधी प्रतिद्वन्द्वी नेता होने पर भी महात्मा बुद्ध ने की हो[१], जिनके चरणों में मस्तक झुका कर महाराजा श्रेणिक बिम्बसार अपने जीवन को सफल मानते हों और जिनके गुणों का कथन करने में स्वर्ग के देव भी असमर्थ हों और जिनके सम्बन्ध में विद्वानों का मत हो:—

असितगिरिसमं स्यात्कज्जलं सिन्धुपात्रे, सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं, तदपि तव गुणानाम् वीर पारं न याति॥
—महावीर निर्वाण और दिवाली (ज्ञातपुत्र महावीर जैन संघ) पृ० १२।

समुद्र रूपी दवात में मेरु पर्वत जितनी रोशनाई डाल कर संसार के सारे वृक्षों की कलमों से पृथ्वी रूपी कागज पर शारदा के सदैव लिखते रहने पर भी भ० महावीर के सम्पूर्ण गुणों का वर्णन नहीं हो सकता, तो मेरे जैसे साधारण व्यक्ति के लिये तो उनकी जीवन कथा न केवल छोटा मुंह बड़ी बात है बल्कि—

स्वर्ग के देव भी वीर के कुल गुण कर नहीं सकते बयां।
उनके प्रत्येक गुण में हैं एक हजार आठ खूबियाँ॥
कह नहीं सकता कदाचित मैं उन के जीवन की कथा।
चाहे एक एक बाल तन का बन जाये मेरी सौ सौ जबां॥

यही कारण है कि सारी पुस्तक में हमारी गांठ का एक शब्द भी नहीं है। संसार के जैन अजैन विद्वानों की रचनाओं से श्री वर्द्धमान महावीर और उनकी शिक्षा के सम्बन्ध में जो सामग्री हमें प्राप्त हो सकी वह इस पुस्तक के रूप में आपकी भेंट की जा रही है। इस के तीन भाग हैं। पहले में उर्दू और अङ्गरेजी भी है, क्योंकि भ० वीर और उनकी शिक्षा के सम्बन्ध में हमें जिस भाषा में भी सामिग्री प्राप्त हुई हम ने उस को उसी रूप में

Ji. Several other scholars have also gone through it and they appreciate very much your labour and your keenness but the concensus of opinion is that the present work can not serve the purpose of a history, but can be useful only for general reference."

१ This book's P. 331-71.

देने का यत्न किया। और इस लिये भी कि हिन्दी न जानने वाले भी इससे वंचित न रहें। दूसरे और तीसरे भाग में अंग्रेजी के फुटनोट भी इस लिये अधिक देने पड़े कि पाठकों को उनके हिन्दी अनुवाद में किसी प्रकार का भ्रम न रहे। वीर-निर्वाण से आज तक का भारतवर्ष के इतिहास पर वीर शिक्षा का प्रभाव दिखाये बिना उनकी जीवनी अधूरी रह जाती। इस लिये तीसरे भाग की आवश्यकता हुई।

दिगम्बरीय या श्वेताम्बरीय दृष्टि से जैन-धर्म तथा भ० महावीर का जीवन जानने के अभिलाषी उनके धार्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय करें, जिन के नाम, मूल्य और मिलने के पते आदि हम से या अखिल जैन मिशन, अलीगंज (एटा) से प्राप्त हो सकते हैं, और विद्वानों को जैन-धर्म के सम्बन्ध में कोई भ्रम या सन्देह हो तो वे भी मिल कर या पत्र-व्यवहार द्वारा उनसे दूर किया जा सकता है। यह पुस्तक तो किसी धर्म की बुराई, किसी प्राणी की निन्दा या पक्ष-पात की दृष्टि से नहीं, बल्कि आपस में प्रेम बढ़ाने, एक दूसरे के विचारों को समझने, अनेक धर्मों में अहिंसा का उत्तम स्थान दिखाने, जैन धर्म के विरुद्ध फैली हुई झूठी कल्पनाओं को मेटने, जैन सिद्धान्त और इतिहास का यथार्थ रूप बताने, जैन तीर्थङ्करों, मुनियों, त्यागियों और जैनवीरों की सेवाओं का परिचय देने तथा भ० महावीर का आदर्श जीवन प्रकट करने के लिये निष्पक्ष रूप से ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर लिखी गई है, फिर भी भूल, अज्ञानता या गलतफहमी से कोई बात ऐसी लिखी गई हो कि जिस से किसी के हृदय को किसी भी प्रकार चोट पहुंचती हो तो मैं सच्चे हृदय से उनसे क्षमा चाहता हूँ और आशा करता हूँ कि उसके सम्बन्ध में प्रमाणों सहित हमें सूचित किया जावेगा, जिससे अगले संस्करण में उन पर विशेष ध्यान दिया जा सके।

असली प्राचीन वेद और पुराण तथा कुछ ऐतिहासिक ग्रन्थ हमें प्राप्त नहीं हो सके, इसलिये उनके उद्धरण न्यायतीर्थ पंडित ईश्वरीलाल जी विशारद के 'मांसाहार विचार', पं० मक्खनलाल जी के 'वेद-पुराणादि ग्रन्थों में जैनधर्म का अस्तित्व', प्रो० ऐस० आर० शर्मा के 'Jainism & Karnataka Culture', मुनि चौथमल जी के 'भगवान महावीर का आदर्श जीवन' तथा प्रो० ए० चक्रवर्ती, पं० नाथूराम 'प्रेमी', पं० जुगलकिशोर मुख्तार, श्रीकामताप्रसाद, डायरेक्टर वर्ल्ड जैन मिशन, पं. सुमेरचन्द दिवाकर पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री, पं० अयोध्याप्रसाद गोयलीय आदि खोजी विद्वानों की अनेक रचनाओं और लेखों के आधार पर दिये गये हैं हम उन सब विद्वानों के अत्यन्त आभारी हैं, जिनके लेखों और रचनाओं से इस पुस्तक के लिये सामग्री प्राप्त कीगई है। हम देशके प्रसिद्ध नेता और संसार के महान् विद्वान श्रीमान् भूमिका लेखक महोदय के अहिंसा-प्रेम की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते, जिन्होंने अनेक कार्यों में अधिक व्यस्त रहते हुए भी अपना अमूल्य समय लगा कर इस ग्रन्थ की खोजपूर्ण भूमिका लिखने का कष्ट उठाया है। ला० जिनेन्द्रदास बजाज़, संस्थापक 'भद्राश्रम' ने अपने शास्त्र-भण्डार को हमें सौंपकर, ला० उल्फतराय भक्त व ला० शिवप्रसाद चक्की वालों ने हस्तलिखित अनेक प्रामाणिक ग्रन्थों का स्वाध्याय कराकर, बा० मोतीलाल मुंसरिम व पं० ज्योतिस्वरूप ने समय-समय पर अपने शुभ विचारों से लाभ पहुँचा कर और M/s. Prestonjee P Pocha & Sons ने पाठकों की सहूलियत के लिये Book-marks प्रदान करके हमें अनुगृहीत किया, इसलिये इन सब के भी हम विशेष आभारी हैं।

पं० काशीराम 'प्रफुल्लित', बा० श्यामसुन्दरलाल तथा ला० रघुनाथप्रसाद बंसल ने हमें इस पुस्तक की छपाई में हर प्रकार का पूर्ण सहयोग दिया है, फिर भी छपाई में कोई अशुद्धि रह गई हो

तो विद्वान पाठक क्षमा करते हुए स्वयं सुधार करलें और हमें सूचित करने की अवश्य कृपा करें, जिससे अगले संस्करण में त्रुटियों को दूर करके ग्रन्थ को विशुद्ध रूप में प्रस्तुत कर सकें। जो विद्वान भ० महावीर, जैनधर्म तथा जैन इतिहास के विषय में अपने खोजपूर्ण विचार हिन्दी या अंग्रेजी में ३१ दिसम्बर १९५४ तक हमें भेज देंगे, उन्हें वह संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण भी *बिना मूल्य भेंट किया जायेगा।*

हमने किसी की चापलूसी या सांसारिक स्वार्थ के लिये इस पुस्तक को नहीं लिखा और न इसे बेच कर जीविका प्राप्त करने का विचार है। देश-विदेश तथा जैन-अजैन सब की अहिंसा में रुचि उत्पन्न कराने तथा चारित्र-बल और आत्मिक शक्ति को दृढ़ बनाने के लिये हमने कुछ साधारण प्रतिज्ञाएँ इस पुस्तक के अन्तिम पृष्ठ ५२८ पर दी हैं, जो सभी देश तथा धर्म वालों को अपने जीवन में उतारने के लिये बड़ी उपयोगी हैं। कम-से-कम एक वर्ष के लिये उन्हें अपनाने वालों को यह ग्रन्थ बिना मूल्य भेंट किया जारहा है।

हमें आशा है कि जिस प्रकार देश के पिता श्री महात्मा गाँधी जी ने जैन-सिद्धान्तरूपी सूर्य की केवल एक अहिंसारूपी किरण की झलक दिखा कर भारत के पराधीनतारूपी अन्धकार को नष्ट कर दिया, उसी प्रकार जैनधर्म के दूसरे सिद्धान्तों को भी परख और उन पर आचरण करके विद्वान संसार के भेदभावों को मेट देंगे और जिस प्रकार भगवान महावीर के चारित्र से प्रभावित होकर उनके समय के पीड़ित प्राणियों ने सुख प्राप्त कर लिया था, उसी प्रकार उनके जीवन-चरित्र से आज का दुखी संसार सच्ची शान्ति प्राप्त कर सकेगा।

कुञ्जात स्ट्रीट, सहारनपुर

दिगम्बरदास जैन

श्री दिगम्बरदास जैन, सहारनपुर

परिचय

ला० श्रीमन्दरदास, मैनेजिङ्ग डायरेक्टर सहारनपुर इलैक्ट्रिक सप्लाई कं० लि०
व पार्टनर मनसाराम एण्ड सन्स बैंकर्स एण्ड हाउस प्रोप्राईटर, मसूरी

वीर प्रभु के आदर्श जीवन और सन्देश के पवित्र तथा गूढ़ विषय को सरलता से दर्शाने वाले, इस पुस्तक के लेखक श्री दिगम्बरदास जैन, मुख्तार सहारनपुर हमारे चिरपरिचित प्रेमियों में से हैं। १६३० से हमारा उनका एक दूसरे से घनिष्ठ सम्पर्क रहा है। २५ वर्ष के इस विगत काल में हमें उन्हें देश-सेवक, लेखक, वीर-भक्त, समाज प्रेमी और हितैषी मित्र के रूप में देखने के बहुत से अवसर प्राप्त हुए। अपने इन अनुभवों के प्रकाश में हम उनके सम्बन्ध में निश्चितरूप से कह सकते हैं कि उनके हृदय में अहिंसा धर्म का गाढ़ा प्रेम है। यही नहीं बल्कि वह धर्म प्रभावना तथा अहिंसा प्रचार के लिए साधन भी जुटाते रहे हैं।

गत कई वर्षों से वह वीर प्रभु के अनुपम जीवन और उनकी सर्व कल्याणकारी शिक्षाओं के सम्बन्ध में अत्यावश्यक और उपयोगी सामग्री इकट्ठी करने में लगे हुए थे। यह जो पुस्तक आज पाठकों के हाथों में है, वह आपके उस परिश्रम का ही फल है। इसकी तैयारी के लिये इन्होंने जिस प्रकार तन, मन, धन तीनों को धर्म भक्ति की स्वभावनाओं से प्रेरित होकर लगाया है, वह निःसन्देह प्रशंसा योग्य है।

श्री दिगम्बरदास जैन का जन्म उत्तर प्रदेश के जि० सहारनपुर की सरसावा नगरी में ६ जौलाई १६०६ को हुआ था। उनका विद्यार्थी जीवन बड़ा उत्तम रहा है, स्काउटिङ्ग में पुरस्कार[१] और

---

१ Under the distinguished presidency of the Hon'ble Khan Bahadur Sheikh Abdul Qadir, Minister of Education for Punjab

अपनी जमात में प्रथम रहने के कारण पुरस्कार[१] तथा प्रशंसा पत्र[२] दोनों प्राप्त करते रहे हैं। इनकी योग्यता का अन्दाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि दसवीं जमात के बाद केवल छः महीने में माल और फौजदारी की दर्जनों मोटी-मोटी क़ानूनी पुस्तकों का तैयारी करके इलाहाबाद हाई कोर्ट से मुख्तारकारी[३] और रेवेन्यू एजेण्टी[४] दोनों इम्तहान पास करके सहारनपुर में माल और फौजदारी में प्रेक्टिस आरम्भ कर दी[५] और थोड़े समय में ही कलक्टरेट बार सहारनपुर के प्रसिद्ध मेम्बरों में गिने जाने लगे। अपनी सर्वप्रियता के कारण आप डिस्ट्रिक्ट बोर्ड टीचर्स ऐसोसियेशन के प्रधान, सरसावा टाउन एरिया के उपप्रधान, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड सहारनपुर के मेम्बर व डिस्ट्रिक्ट गजट सहारनपुर के सब एडीटर रहे और मेरठ कॉलेज के लाइफ मेम्बर हैं।

आपके हृदय में देश-सेवा और मुल्क का कितना दर्द है, वह आपके ड्रामा 'हमदर्द ए मुल्क' से भलीभाँति प्रकट है, जो आपने

Govt. prize awarded to Digamber Das Jain for Scout Signalling on Nov. 7, 1925. —Principal B. D. High School Ambala.

१ Prize awarded to Digamber Das for standing FIRST in 9th S.L.C. Class on Nov. 7, 1925.

—Thakurdas Sharma, For Principal B. D. H. School, Ambala.

२ This Certificate of Commendation is granted to Digamber Das Jain S/o L. Hem Chand, a student of X Class of the School for standing FIRST in the S. L. C. First Term Examination in 1925-26. —Chiranji Lal Principal. 15/8/1925.

३ Certificate No. 4170 of Apri 11, 1927 of the Registrar. High Court of Judicature at Allahabad.—"I do hereby certify that Digamber Das Jain has passed the Examination qualifying him for admission as a Mukhtar in 1927.

४ Certificate No. 3694 of April 11, 1927 of the Registrar High Court of Judicature at Allahabad.—"I do hereby certify that Digamber Das Jain has passed the Examination qualifying him for admission as a Revenue Agent in 1927.

५ Enrolment order of May 27,1927 of the Distt Judge,Saharanpur.

विद्यार्थी जीवन में ही लिखा था, जिसको देखकर पञ्जाब के शिक्षा मन्त्री खानबहादुर शेख अब्दुलक़ादिर ने लिखा, "मैंने आज इस ड्रामे को अम्बाले में स्टेज पर देखा है, दिलचस्प है। अशार और गज़लें मुफ़ीद हैं। यह मालूम करके कि इसको एक तालिबइल्म ने लिखा है ज्यादा खुशी हुई। मुसन्निफ़ हौसला अफ़ज़ाई का मुस्तहक़ है[१]"। बी० डी० हाई स्कूल के संस्थापक रायबहादुर ला० बनारसीदास के अनुसार, "इसके गाने देश-भक्ति और समाज सेवा से भरे हुए हैं। पञ्जाब सरकार के शिक्षा मन्त्री तथा अनेक महान् व्यक्तियों के सम्मुख खेलते हुए मैंने इसे स्वयं देखा है। इसकी भाषा प्रभावशाली और सॉट सुन्दर हैं। सबने इसकी प्रशंसा की है[२]"। रायबहादुर ला० आत्माराम इंसपेक्टर ऑफ स्कूल्स अम्बाला डिवीजन ने इसकी प्रशंसा करते हुए डिस्ट्रिक्ट इंसपेक्टरों के नाम इस पुस्तक को मदरसों की लाइब्रेरियों के लिये खरीदने का सरकूलर जारी कर दिया[३]। सी० पी० और बरार के डाइरेक्टर तालीम ने भी इसे मदरसों की लाइब्रेरियों के लिये स्वीकार किया[४]।

---

१ Certificate dated Nov. 7, 1925 of K. B. Sheikh Abdul Qadir, Minister Education Govt. Punjab.

२ Letter of July 24, 1926 from R. B. Late Banarsi Das Prop, B. D. S Roller Flour Mills, Ambala to B. Digamber Dass Jain.—"I have gone through the Drama Hamdard a Mulk written by Digamber Das Jain The plot is very interesting and the songs breathe patriotism and intensity of feeling for Social Service. I saw it staged in the presence of Hon'ble Minister for Education of Punjab Govt. and distinguished gathering. Performance was greatly appreciated and its moral effect in directing young minds towards Scocial Service at the expense of personal comforts was of incalculable value. The language is chaste and refreshingly bright".

३ Letter of March 2, 1926 from R. B Shri Atma Ram Inspector of Schools Ambala Division to L. Chiranji Lal, Principal B D. H. School.—"It is a very praiseworthy effort on the part of the author Digamber Das and I shall write a line to my District Inspectors to bring to their notice the book as being suitable for some Libraries which we are starting."

४ Order No. 7786 of Nov. 1, 1926 of Shri H. S. Staley, Offg. Director of Public Instruction, Central Provinces.—"Hamdard-

पञ्जाब[१], मैसूर[२], सी० पी० और बरार आदि अनेक स्काउट एसोसियेशनों के ओर्गनाइजिङ्ग कमिश्नरों ने इसको स्काउटों के लिये पसन्द किया[३]। भारत की सेवा समिति बॉय स्काउट एसोसियेशन के प्रधान ओर्गनाइजिङ्ग कमिश्नर पं. श्रीराम वाजपेयी जी ने लिखा, "मैं आपके परिश्रम की बड़ी प्रशंसा करता हूँ। जिन भाव और विचारों का इस ड्रामे द्वारा जनता पर प्रभाव डालने का आप ने यत्न किया है वह निश्चितरूप से बड़ा उत्तम है[४]"। देश के अनेक पत्र पत्रिकाओं ने इसकी बड़ी सुन्दर समालोचनाएँ कीं। यहाँ तक कि समस्त संसार के प्रधान स्काउट Sir Robert Baden Powell ने लन्दन हेड क्वार्टर से लिखा, "इस ड्रामे से आपकी शुभ भावनाएँ और देश सेवा के उत्तम विचार झलकते हैं, आपका यह उत्साह बहुत ही प्रशंसा के योग्य है[५]।"

असहयोग आन्दोलन में सहारनपुर में सबसे प्रथम कांग्रेसी कार्यकर्ता श्री त्रिपाठी जी को गिरफ्तार कर लिया गया तो आप ने इस बेवजह गिरफ्तारी पर आवाज उठाई और टाउन

---

i-Mulk by Digamber Das Jain has been sanctioned for use as a Prize and Library book in all Urdu Schools of the Central Provinces and Berar."

१ Letter No 175 of January 30, 1925 from H. W. Hogg, Provincial Secy. Punjab Boy Scout Association to Digamber Das Jain.

२ Letter No. 56 of July 6, 1926 from C. Subba Rau Org. Comr. Mysore Boy Scouts to Digamber Das Jain Esq.—"I have recomended it to all our Scouts."

३ Letter of Feb. 7, 1927 from Jack W. Houghton Org. Secy. Boy Scout Association, Nagpur to Digamber Das Jain.

४ Letter No. 2827/27 of Sept. 28 1925 from Pt. Shri Ram Bajpai Chief Org. Comr. S. S. Boy Scouts Association India to Syt. Digamber Das Jain. "I greatly appriciate your labour. The idea & ideals which you have tried to impress are really praiseworthy."

५ Letter of Nov. 28, 1927 from I. C. Legge Asstt. Coms Oversear Scouts 25 Buckingham Palace Road, London. S. W. I. to D. D. Jain. "The Chief Scout (Sir Robert Baden Powell) has received with much interest the Drama written by you. It shows great zeal and public spirit on your part and your effort are most commendable."

एरिया कमेटी सरसावा में भी उन्हें बिना किसी शर्त के तुरन्त छोड़ देने के लिये हुक्काम जिला से सिफ़ारिश करने का प्रस्ताव रखा, लेकिन चेयरमैन ने जिला कर्मचारियों की नाराजगी के भय से इस प्रस्ताव को कमेटी में पेश ही न होने दिया तो जिम्मेदार अफ़सरान तक आवाज पहुँचाने के लिये यही कारण लिखकर इन्होंने वाइस चेयरमैनी से त्याग पत्र दे दिया और टाउन मजिस्ट्रेट के कहने पर भी उसे वापिस न लेकर स्पष्ट कह दिया, "जब यहाँ मुझे जनता की माँग को अफसरों तक पहुँचाने का भी अवसर नहीं दिया जाता तो इस की कुर्सी से चिपटे रहने से क्या लाभ" ?

सहारनपुर जैसे बड़े शहर में जैन लायब्रेरी की भारी कमी को अनुभव करते हुए श्री दिगम्बरदास ने ला० मोतीलाल गर्ग, ला० मनसुमरतदास बज़ाज और बा० सुखमालचन्द (हाल सुपरिंटेण्डेण्ट आर्मी हेड कार्टर, नई देहली) के सहयोग से १० मई १९३१ को पब्लिक जैन लाइब्रेरी की नींव डाली और अपने प्रभाव से चन्दे तथा मासिक म्युनिसिपल इमदाद मंजूर कराकर उसे अपने पाँव पर इतनी मजबूती से खड़ा कर दिया कि वह आज तक जनता की सेवा भले प्रकार कर रही है।

वीर-जयन्ती का उत्सव श्री मङ्गलकिरण मालिक मल्हीपुर प्रेस, श्री नेमचन्द वकील, श्री रूपचन्द, प्रिंसिपल जैन कॉलेज तथा ला० जम्बूप्रसाद मुख्तार के उत्साह से और श्री ऋषभ-निर्वाण-दिवस दयासिन्धु ला० जयचन्द भक्त तथा इनकी बाल-बोधिनी सभा द्वारा बड़े समारोह से मनाये जाते रहे हैं, परन्तु वीर-निर्वाण दिवस मनाने का कोई प्रबन्ध न था, जिसके कारण इन्होंने ला० उलफत-राय भक्त, बा० मोतीलाल मुन्सरिम जजी तथा ला० शिवप्रसाद चक्की वाले आदि अनेक सज्जनों के सहयोग से जैन प्रेम वर्द्धिनी सभा स्थापित की। हमें स्वयं कई बार इनके वीर निर्वाण उत्सव में शामिल होने तथा इसके मेम्बरान से मिलने

के अवसर प्राप्त हुए। हमने इनमें जो प्रेम और सङ्गठन पाया है, उसकी मिसाल ढूँढने पर मुश्किल से मिल सकेगी।

उर्दू भाषा में धार्मिक ग्रन्थों की कमी अनुभव करते हुए श्री दिगम्बरदास जी ने बड़ी मेहनत के बाद रत्नकरण्ड श्रावकाचार का सार सरल उर्दू में "जैन-गृहस्थ" नाम से किया और इस ६० पृष्ठों की पुस्तक को हजारों की संख्या में बिना मूल्य बाँट कर उर्दू भाषियों को धर्म लाभ का शुभ अवसर दिया। काँधला जिला मुजफ्फरनगर के रईस लाला मूलचन्द मुरारीलाल तो इससे इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने इन्हें एक ऐसी पुस्तक लिखने की प्रेरणा की, जिससे उनका संसारी मोह-ममता मिट कर संतोषरूपी लक्ष्मी प्राप्त हो सके, तो इन्होंने अनेक कार्यों में व्यस्त रहने के बावजूद भी "दुखी संसार" नाम की पुस्तक लिखकर उन्हें भेंट की, जिसको उन्होंने इतना अधिक पसन्द किया कि जनता के लाभार्थ उसे अपनी ओर से छपवाकर मुफ्त बाँटा।

आपको तीर्थ स्थानों से भी बड़ा प्रेम है। २४ दिसम्बर १९३६ को आप श्री सम्मेदशिखर जी की यात्रा को गये थे और १४ जनवरी १९३७ को वापिस सहारनपुर लौटे। इस २२ दिन के थोड़े से समय में आपने आरा, धनपुरा, पटना, श्री सम्मेदशिखर जी, पालगंज, कलकत्ता, भागलपुर, चम्पापुरी, नाथनगर, मन्दारगिर, गुणावाँ, पावाँपुर, कुण्डलपुर, नालिन्दा, राजगिरि, निवादा, बिहार, काशीजी, चन्द्रवटी, सारनाथ, अयोध्या जी तथा लखनऊ २२ स्थानों की यात्रा की। तीर्थ स्थानों के सुधार और यात्रियों को हर मुमकिन सहूलियत दिलाने के लिये आप वहाँ के प्रबन्धकों से मिले। इनकी यात्रा के हालात दूसरे यात्रियों की जानकारी के लिये ८ फरवरी १९३७ के जैन संसार, देहली में छप चुके हैं।

श्री शिखर जी की यात्रा के अवसर पर श्री पार्श्वनाथ जी के

स्टेशन पर ऊँचा प्लेटफार्म न होने के कारण रात्रि के समय अधिक सामान और स्त्री बच्चों सहित यात्रियों की गाड़ी से उतरने-चढ़ने की कठिनाइयों को देख कर आप का हृदय पसीज उठा और प्रेम वर्द्धिनी सभा से प्रस्ताव पास कराकर[१] १६ जनवरी १९३८ को ई० आई० आर० के एजेण्ट को लिखा और श्री निर्मलकुमार जी रईस आरा से इस में सहयोग के लिये प्रार्थना की। उन्होंने इनके प्रस्ताव की नकल E I Railway Advisory Board के मेम्बर श्री नलिनीरञ्जन सिनहा के पास भेजकर इस मामले को रेलवे बोर्ड में उठवाया[२], जिसका परिणाम यह हुआ कि रेलवे ने हमारी इस माँग को स्वीकार करते हुए ऊँचा प्लेटफार्म बनवाने का विश्वास दिलाया[३]। यह स्वीकार करना पड़ेगा कि श्री पार्श्वनाथ जी के रेलवे स्टेशन पर जो ऊँचा और विशाल प्लेटफार्म हम आज देख रहे हैं, वह श्री दिगम्बरदास के उद्योग का ही फल है।

१९३९ के आरम्भ में रियासत हैदराबाद में जैन नग्न मुनियों के विहार को रोक दिया गया तो श्री दिगम्बरदास जैन ने प्रेम वर्द्धिनी सभा की ओर से १७ फर्वरी १९३९ को रियासत के प्रधान मन्त्री को प्रमाण पूर्वक लिखा कि "समस्त परिग्रह के त्यागी, वस्त्र तक की परिग्रह नहीं रखते, वह मुस्लिम राज्य में भी हमेशा नग्न

---

१ Resolution No 2 of Jan. 16 1938 of 'J. Prem Wardhany Sabha'.

२ Letter No. H/1689 of January 28. 1938 from Shri Nirmal Kumar Jain to B Digamber Dass Jain, Mukhtar and Secretary Jain Prem Wardhany Sabha Saharanpur —' I have forwarded the copy of the resolution No. 2, dated 16th current passed by the Mg. Committee of the Jain Prem Wardhany Sabha of Saharanpur, to a member (Syt. Nalini Ranjan) of the E I. Rly. Advisory Board for taking up the matter with all the seriousness of the position and I am sure he will do his best to remove the grievances stated therin "

३ Letter No. OMW 243 of March 26, 1938 from the Chief Operating Supdt. E. I. R. Calcutta to Digamber Das Jain Esq. Secy Jain Prem Wardhany Sabha, Saharanpur.—"In acknowledging your letter of 15th Mach 1938, I beg to inform you that necessity for raising the platform at Parasnath has been recognised and the work will be carried out in its turn along with other Stations.

इस लिये उन पर पाबन्दी लगाना उचित नहीं
.रयासत ने २ मार्च १९३९ को इन्हें लिखा, "हमने
..धुओं को उस हुक्म से मुस्तसना कर दिया है[१]" ।

दुओं और बौद्धों के तीर्थ स्थानों की यात्रा में रुचि दिलाने
.लये रेलवे बोर्ड ने सचित्र हालात छपवाये। जैनतीर्थों की
एसी कोई पुस्तक न देखकर श्री दिगम्बरदास ने मन्त्री के नाते से
प्रेम वर्द्धिनी सभा की ओर से जोरदार शब्दों में १८ मई १९३९
को रेलवे बोर्ड को जैनतीर्थों के सचित्र हालात छपवाने की प्रेरणा
की तो उनका उत्तर आया, "हम इसके लिये तैयार हैं आप तस्वीरें
और हालात भेज दें[२] ।

दूसरे महायुद्ध के समय ला० रूड़ामल शामियाने वालों का
दामाद बा० श्रीपालचन्द लन्दन में थे। पत्रों में जर्मनी की इङ्गलैण्ड
पर अन्धाधुन्ध गोले बरसाने के समाचार पढ़कर वह घबरा गये।
बहुत दिनों से उनका पत्र न आने के कारण वह बहुत दुखी थे।
उन्होंने अनेक पत्र और टेलीग्राम भी भेजे परन्तु वहाँ से कोई
उत्तर न आया तो ला० रूड़ामल ने जैन प्रेम वर्द्धिनी सभा के
सभापति लाला उलफतराय भक्त से इस दुख को दूर करने के लिये
कहा। उन्होंने श्री दिगम्बरदास को लन्दन से उनके दामाद के

---

१ Letter No.1017 of March 2. 1939 from Molvi Mohd Azhar Hassan Munsarim Hyderabad State to the Secretary Jain Prem Wardhany Sabha, Saharanpur.

२ Letter No. C. P. O. 110/G of May 30, 1939 from the Central Publicity Officer Railway Board of Govt. of India to the Secretary Jain Prem Wardhany Sabha, Saharanpur —"I thank you for your letter of 18th inst. This Bureau is prepared to consider the production of a pamphlet for *Jain religious places of interest* and thank you very much for your offer of assistance in this connexion. I have sent you one copy of our ' Indian places of pilgrimage" and "Buddhist places of pilgrimage". The Jain pamphlet would follow similar lines and if you can supply descriptions of Jain religious placces in India somewhat in the same manner, I shall be very pleased to have them. Any photographs that you may be able to supply would also be most useful."

समाचार मँगवाने को कहा तो इन्होंने उनकी पुत्री की आ॰ वायसराय महोदय को ऐसा दर्द भरा पत्र लिखा कि उन्होंने भारत के हाई कमिश्नर लन्दन को उनके समाचार मालूम करने को लिखा, जिस पर हाई कमिश्नर का लन्दन से उत्तर आया, "हमने श्रीपालचन्द को अपने दफ्तर में बुलाया था वह बिल्कुल राजी खुशी है। हमने उन्हें आपके पास पत्र भेजने को भी कह दिया"। कुछ ही दिनों बाद लन्दन से उन्होंने केवल अपनी राजी खुशी का पत्र ही नहीं बल्कि २००० के लगभग रुपये भी भेजे।

मामचन्द जी की माता ने जैन प्रेम वर्द्धिनी सभा से अपने पुत्र की शिक्षा तथा खान-पान और देखभाल का उचित प्रबन्ध करने को कहा तो इसके मन्त्री श्री दिगम्बरदास ने उन्हें जैन अनाथाश्रम दरिया गञ्ज देहली में भेज दिया, जिस पर वहाँ के जनरल मैनेजर श्री अजितप्रसाद जैन ने लिखा, "आपके द्वारा भेजा हुआ मामचन्द नाम का बालक आया और आपकी चिट्ठी और इक़रारनामा लाया। इसको आश्रम में भर्ती कर लिया गया है। आप बालक की ओर से किसी प्रकार की चिन्ता न करें[१]"।

भ० महावीर के लिये तो आपके हृदय में अटूट भक्ति है। हर साल ही आप चन्दनपुर की यात्रा को जाते रहे हैं। एक बार आप वहाँ से वापिस आने को थे कि बा० गिरधरलाल एडवोकेट सहारनपुर और बा० मेहरचन्द ठेकेदार यमुनानगर भी वहाँ पहुँच गये और उन्होंने श्री दिगम्बरदास को एक दिन अधिक ठहरने पर रजामन्द कर लिया। वह अपना बँधा बिस्तर खोल कर लेटे ही थे कि कानों में यह ध्वनि पड़ी, "यहाँ भाव की क़दर है, ज्यादा ठहरने की नहीं। जब जाने का इरादा कर लिया तो अधिक ठहरने से क्या लाभ"? इस पर आपने अधिक ठहरना उचित न

१ Letter of July 21, 1944 from Shri Ajit Pershad, G. Manager, Jain Society for the Protection of Orphans, Darya Ganj, Delhi to B. Digamber Das Jain.

समझा और दोनों बन्धुओं से आज्ञा लेकर सहारनपुर लौट आये। रात्रि में घर पहुँचे तो घर के ताले टूटे पाये, अन्दर जाकर देखा तो चोर घुसे हुए थे जो उनके पहुँचने पर छतोंछत भाग गये। सामान पर दृष्टि डाली तो सब ठीक पाया। मित्र और सम्बन्धियों ने चान्दनपुर की घटना सुनी तो सब कहने लगे, "बाबू जी! यह सब भ० महावीर का ही चमत्कार है"।

वीर भक्तिवश ही २८ अक्तूबर १९४० को वीर निर्वाण के उपलक्ष मे श्री दिगम्बरदास ने दैनिक उर्दू मिलाप का सचित्र विशेष महावीर अङ्क निकलवाया, जिसे जैन-अजैन सब ने बहुत ही पसन्द किया। अखिल भारतीय जैन महासभा के सभापति सेठ हुकमचन्द जी ने मिलाप के सम्पादक को विदाई दी[१] और अखिल भारतीय दिगम्बर जैन परिषद् के पत्र 'वीर' ने मिलाप के इस सर्व धर्म समभावों का बड़े सुन्दर शब्दों में स्वागत किया[२]। इससे पहले किसी प्रसिद्ध दैनिक पत्र ने भ० महावीर के आदर्श जीवन तथा सन्देश पर कोई विशेष अङ्क नहीं निकाला था। भ० महावीर और उनकी शिक्षा पर जो सामग्री आज भिन्न-भिन्न पत्रों में दिखाई देती है, वह मिलाप की उदारता और बा० दिगम्बरदास के कथित परिचय का ही फल है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि इतिहासकारों, अहिंसा प्रेमियों, सुख-शान्ति के अभिलाषियो और भारत की प्राचीन संस्कृति तथा जैन इतिहास के जानने के शैदाओं के लिये प्रमाण सहित ऐतिहासिक यह पुस्तक बड़ी लाभदायक और उपयोगी है।

---

१ Letter of Oct 21 1940 from Rajyabhushan, Rao Raja Rajya Ratan Sir Seth Sarup Chand Hukam Chand Kt to the Editor Milap —The idea of your proposed Shreemad Bhagwan Mahavira's Nirwan Ank is the novel idea to carry at each one's door the most highly beneficial and **Peace-Giving** doctrine of Ahimsa. I wish every success to your attemp and the **renowned** popularity of Milap edited under your able guidance".

२ वीर, देहली (१६ नवम्बर, १९४०) पृ० ६।

The greatest Apostle of Ahinsa, Truth & World Peace
LORD WARDHAMANA MAHAVIRA
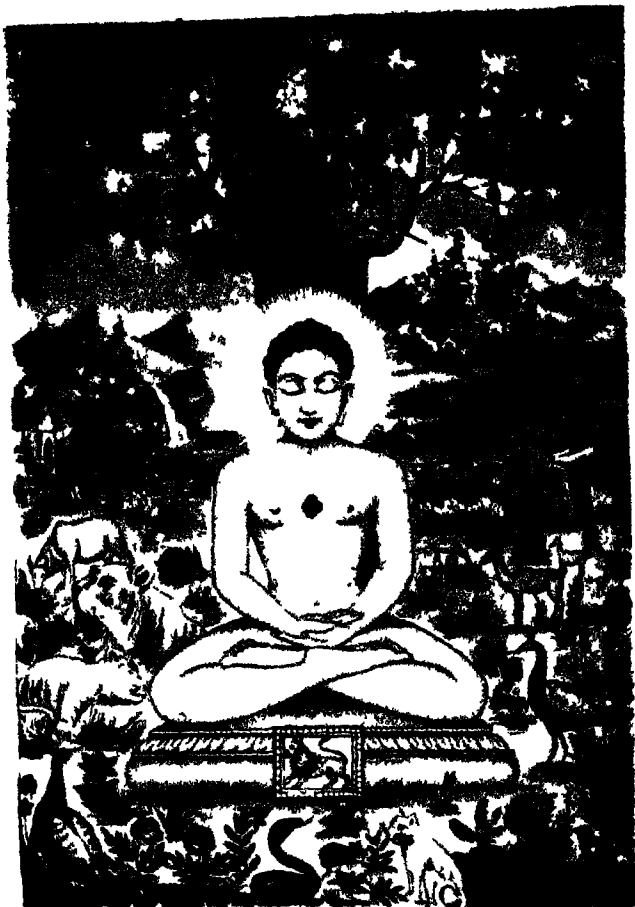
* ॐ अर्हम् *

लोक-दृष्टि में श्री वर्धमान महावीर

और

उनकी शिक्षा

ऋग्वेद में श्री वर्धमान-भक्ति

देव बर्हिर्वर्धमानं सुवीरं स्तीर्णं राये सुभरं वेद्यस्याम् ।

घृतेनाक्तं वसवः सीदतेदं विश्वेदेवा आदित्यायज्ञियासः ॥ ४ ॥

—ऋग्वेद[1] मंडल २, अ. १, सूक्त ३.

अर्थात्—हे देवों के देव, वर्धमान[2] ! आप सुवीर (महावीर) हैं, व्यापक हैं। हम संपदाओं की प्राप्ति के लिये इस वेदी पर घृत से आपका आह्वान करते हैं, इसलिये सब देवता इस यज्ञ में आवें और प्रसन्न होवें।

---

१. ऋग्वेद, अथर्ववेद, यजुर्वेद और सामवेद में अर्हन्तों तथा दूसरे जैन तीर्थंकरों की भक्ति और स्तुति के अनेक श्लोक "अर्हन्त-भक्ति" खण्ड २ व "जैन धर्म और वैदिक धर्म" खण्ड ३ में देखिये।

२. Vedas and Hindu Purans contain the names of Jain Tirthankaras frequently.

—Veda Tirth Prof. Virupuksha Beriyar: Jain Sudhark.

यजुर्वेद में भगवान् महावीर की उपासना

आतिथ्यं रूपं मासरं महावीरस्य नग्नहुः ।
रूपमुपसदामेतत्तिस्रो रात्रीः सुरासुता ॥ १४ ॥

—यजुर्वेद[१] अ० १९ । मन्त्र १४

अर्थात्—अतिथि स्वरूप पूज्य मासोपवासी नग्न स्वरूप महावीर[२] की उपासना करो जिससे संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय रूप तीन अज्ञान और धन मद, शरीर मद, विद्या मद की उत्पत्ति नहीं होती[३] ।

---

१. वेदों में भी कुछ जैन धर्म के तीर्थंकरादि का नाम आता है या नहीं इस विचार से हमने देखा तो हमें बहुत से मंत्र मिले जिनमें जैन तीर्थंकर तथा साक्षात् अर्हन्त का नामोल्लेख है तथा अन्य देवताओं की तरह जैन तीर्थंकरों का भी आह्वान तथा स्तुति है।
—पं० मक्खनलाल : "वेद पुराणादि ग्रन्थों में जैन धर्म का अस्तित्व" पृ० ५२.

२. इस श्लोक में महावीर शब्द से किसी अन्य महापुरुष का भ्रम न हो जाए इस लिए वेद निर्माताओं ने 'नग्न स्वरूप' शब्द लिखकर इस बात को स्पष्ट कर दिया है कि महावीर जैनियों के तीर्थंकर हैं । यदि आप ऋग्वेद, अथर्ववेद, यजुर्वेद और सामवेद में जैन अर्हन्तों तथा तीर्थंकरों की भक्ति के विशेष श्लोक जानना चाहे तो "अर्हन्त-भक्ति" खण्ड २ व "जैन धर्म और वैदिक धर्म" खण्ड ३ देखिए।

३. i. Yajar Veda contains the names of Jain Tirthankaras.
—Dr. Radhakrishnan: Indian Philosophy, Vol. II P. 287.

ii. Jain Tirthankaras are well- Known in the Vedic Literature. —Dr. B. C. Law Historical Gleanings.

श्रीमद्भागवत पुराण में जैन तीर्थंकर को नमस्कार

नाभेरसा वृषभ आससु देव सूनुर्योवैचचार समदृग् जड़ योगचर्याम् ।
यत्पारमहंस्य मृषयः पदमामनंति स्वस्थः प्रशांतकरणः परिमुक्तसंगः ।१०।

—भागवत, स्कंध २, अ. ७ ।

अर्थात्—ऋषभ अवतार कहे हैं कि ईश्वर अग्नीन्ध्र के पुत्र नाभि से सुदेवी पुत्र ऋषभदेव जी हुये समान दृष्टा जड़ की तरह योगाभ्यास करते रहे, जिनके पारमहंस्य पद को ऋषियों ने नमस्कार किया, स्वस्थ शांत इन्द्रिय सब संग त्याग कर 'ऋषभदेव जी हुए जिनसे जैन धर्म प्रगट हुआ'' [१] ।

श्रीऋषभदेव[२] से किसी और महापुरुष का भ्रम न हो सके इसी लिये इसी ग्रंथ[३] के स्कन्ध ५ के अध्याय ५ में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि श्री ऋषभदेव जी राज पाट को त्याग कर 'नग्नदिगम्बर' हो गये थे और वे अर्हन्त देव होकर परम अहिंसा धर्म का उपदेश देकर मोक्ष गये[४] ।

---

१. Bhagwat Puran endorses the view that Rishahha Deva (Ist Tirthankara of Jains) was founder of Jainism.
—Dr. Radhakrishnan: Indian Philosophy Vol II P. 287.

२ प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव का वर्णन हिंदू पुराणों में भी मिलता है जहां उन्हें प्राचीन काल का बताया है—Hon'ble Shri P.S Kumar Raja Swamy, Vir. Delhi.

३. The Brahmanas havs myths in their Purans about Rishabha Son of King Nabhi and Queen Meru. These particulars are also related by the Jains—Dr, B.C. Law : VOA Vol II P 7.

४. For details see "Lord Rishabhadeva" in Vol III.

उपनिषद् में नग्न दिगम्बर त्यागियों के गुण

"यथाजात रूप धरो निर्ग्रन्थो निष्परिग्रहस्तत् ब्रह्म मार्गे सम्यक् सम्पन्नः शुद्धमानसः प्राणसंधारणार्थं यथोक्त काले विमुक्तो भैक्षमाचरन्नुदरपात्रेण लाभालाभयोः समो भूत्वा शून्यागार देवगृह तृणकूट वल्मीक वृक्षमूल कुलालशालाग्निहोत्र गृह नदी पुलिन गिरि कुहर कंदर कोटर निर्झर स्थंडिलेषु तेष्वनिकेत वास्य प्रयत्नो निर्ममः शुक्ल ध्यान परायणोऽध्यात्म-निष्ठोऽशुभकर्म निर्मूलन परः संन्यासेन देह त्यागं करोति स परमहंसो नाम परमहंसो नामेति" ॥

—अष्टा त्रिशद्योपनिषद (जाबालोपनिषद) पृ: २६०-२६१

अर्थात्—जो 'नग्नरूप'[१] धारण रखने वाले, अन्तरंग[३] और वहिरंग[४] परिग्रहों के त्यागी, शुद्ध मन वाले, विशुद्धात्मीय मार्ग में ठहरे हुये, लाभ[५] और अलाभ[६] में समान बुद्धि रखने वाले, हर प्राणी की रक्षा करने वाले[७], मन्दिर पर्वत की गुफा दरियाओं के किनारे और एकान्त स्थान[८] पर शुक्ल ध्यान[९] में तत्पर रहने वाले, आत्मा में लीन होकर अशुभ कर्मों[१०] का नाश करके संन्यास सहित शरीर का त्याग[११] करने वाले हैं वे परमहंस कहलाते हैं।

---

१. "यथा नाम तथा गुण" खण्ड २।

२. "बाइस परीषह" खण्ड २ में नग्नता नाम की छटी परीषह।

३-४. अंतरंग और वहिरंग परीग्रहों के भेद जानने के लिए देखिए "भ० महावीर का त्याग" खण्ड २।

५-६. "बाइस परीषह" खण्ड २ में अलभ नाम की पन्द्रवीं परीषह।

७. "जैन धर्म वीरों का धर्म है" खण्ड ३।

८. "बारह तप" विविक्त शय्यासन नाम का पांचवां तप खण्ड २।

९. "बारह तप" में शुक्ल ध्यान नाम का बारहवां तप खण्ड २।

१०. "कर्मवाद" खण्ड २।

११. विशेषता के लिए "रत्नकरण्ड श्रावकाचार" देखिए।

विष्णु पुराण में जैन धर्म की प्रशंसा

कुरुध्वं मम वाक्यानि यदि मुक्तिमभीप्सथ ।
अर्हध्वं धर्ममेतंच मुक्ति द्वारमसंवृतम् ॥ ५

धर्मोविमुक्तो रर्होय वै तस्मादपरोवरः ।
अत्रैवावस्थिताः स्वर्गं विमुक्तिवामिष्यथ ॥ ६ ॥

अर्हध्वं धर्ममे तंच सर्वे यूय महाबला ।
एवं प्रकारैर्बहुभि युंक्तिदर्शनवर्जितैः ॥ ७ ॥

—विष्णुपुराण[1], तृतीयांश, अध्याय १७.

अर्थात्—यदि आप मोक्ष-सुख के अभिलाषी हैं तो 'अर्हत मत[2] (जैन धर्म) को धारण कीजिये, यही मुक्ति का खुला दरवाजा है। इस जैन धर्म से बढ़ कर स्वर्ग और मोक्ष का देने वाला और कोई दूसरा धर्म नहीं है।

---

१. विष्णु पुराण में जैन धर्म की अधिक प्रशंसा जानने के लिए देखिये—"जैन धर्म और हिन्दु धर्म" खंड ३।

२ अर्हन्त = अरी [शत्रु] हंत [नाश करने वाला] कर्म रूपी शत्रु को नाश करने वाले अर्हन्त कहलाते हैं।

[क] हिंदी विश्व कोश [कलकत्ता] अर्हन्त = सर्वज्ञ, जिनेन्द्र, जिन, जैनियों के उपास्य देवता।

[ख] हिंदी शब्द सागर कोश [काशी] अर्हन्त = जैनियों के पूज्य देवजिन।

[ग] भास्कर ग्रन्थमाला संस्कृत हिंदी कोश [मेरठ] अर्हन्त = जैन तीर्थङ्कर, जिन, जिनेन्द्र।

[घ] शब्द कल्पद्रुम कोश, अर्हन्त = जिन।

[ङ] शब्दार्थ चिंतामणि कोश, अर्हन्त = जिन, जिनेन्द्र।

[च] श्रीधर भाषा कोश, अर्हन्त = जैन मुनि।

[छ] "अर्हन्त भक्ति" खंड २ भी देखिये।

स्कन्धपुराण में श्री जिनेन्द्र-भक्ति

अरिहंतप्रसादेन सर्वत्र कुशलं मम ।
सा जिह्वा या जिनस्तौति तौ करौ यौ जिनार्चनौ ॥ ७ ॥

सादृष्टिर्या जिने लीना तन्मनो यज्जिनेरतम् ।
दया सर्वत्र कर्तव्या जीवात्मा पूज्यते सदा ॥ ८ ॥

—स्कन्ध पुराण[1], तीसरा खण्ड, (धर्म खण्ड) अ० ३८.

श्री 'अर्हन्त देव'[2] के प्रसाद से मेरे हर समय कुशल है। वह ही जबान है जिससे जिनेन्द्रदेव[3] का स्तोत्र पढ़ा जाय और वह ही हाथ है जिन से जिनेन्द्रदेव की पूजा की जाय, वह ही दृष्टि है जो जिनेन्द्र के दर्शनों में तल्लीन हो और वही मन है जो जिनेन्द्र में रत हो।

---

१. स्कन्ध पुराण में अहिंसा धर्म की प्रशंसा, जैन तीर्थंकरों का वर्णन और जैन व्रतादि पालने की शिक्षा के अनेक श्लोक जानने के लिए देखिए "जैन धर्म और हिन्दू धर्म" खण्ड ३।

२. See foot-note No 1. P 45.

३. i जिनेन्द्र = जिन (जीतने वाला) इन्द्र (राजा) कर्म रूपी शत्रुओं तथा मन को जीतने वालों का सम्राट।

ii जिन, जिनेन्द्र, जिनेश्वर, सर्वज्ञ, सब का अर्थ अर्हन्त अथवा जैनियों के पूज्य देव जानने के लिए फुटनोट पृष्ठ ४५ पर देखिये।

iii जिन तथा जिनेन्द्र का अर्थ अधिक विशेषता से जानने के लिए देखिए "श्री रामचन्द्र जी की जिनेन्द्र भक्ति" पृ० ५०।

मुद्राराक्षस नाटक में अर्हन्त-वन्दना

प्राकृत—सासण मलिहंताणं पडिवज्जह मोहवाहि वेज्जाणं ।
जे मुत्तमत्तकडुअं पच्छापत्थं उवदिसन्ति ॥ १८ ॥

संस्कृत—शासनमर्हतां प्रतिपद्यध्वं मोहव्याधि वैद्यानां ।
ये मुहूर्तमात्रं कटुकं पश्चात्पथ्यमुपदिशन्ति ॥ १८ ॥

—मुद्राराक्षस नाटक चतुर्थोऽङ्क पृ० २१२

अर्थात्—मोहरूपी रोगके इलाज करनेवाले अर्हन्तों के शासन को स्वीकार करो जो मुहुर्तमात्र के लिये कड़ुवे हैं किन्तु पीछे से पथ्य का उपदेश देते हैं।

प्राकृत—धम्म सिद्धि होदु सावगाणाम् ।

संस्कृत—धर्म सिद्धि भवतु श्रावकानाम् ।

—मुद्राराक्षस नाटक चतुर्थोऽङ्क पृ० २१२

अर्थात्—श्रावकों को धर्म की सिद्धि हो।

प्राकृत—अलहंताणं पणमामि जे दे गंभीरदाए बुद्धीए ।
लोउत्त लेहिं लोए सिद्धि मग्गेहि गच्छन्ति ॥ २ ॥

संस्कृत—अर्हतानां प्रणमामि येते गम्भीरतया बुद्धेः ।
लोकोत्तरैर्लोके सिद्धि मार्गैर्गच्छन्ति ॥ २ ॥

—मुद्राराक्षस नाटक पंचमोऽङ्क पृ० २२१

अर्थात्—संसार में बुद्धि की गंभीरता से लोकातीत (अलौकिक) मार्ग से मुक्ति को प्राप्त होते हैं उन अर्हन्तों[१] को मैं प्रणाम करता हूँ।

---

१. For Various athourities that Jin or Jinendra is Called 'Arhant', see, Page 45.

२. The householder Jains are called 'Shravaga'

—Jain Gharist P. 3.

बौद्ध ग्रन्थों में वीर-प्रशंसा

'मज्झिम निकाय' में निर्ग्रन्थ* ज्ञातपुत्र* भगवान महावीर को सर्वज्ञ, समदर्शी तथा सम्पूर्ण ज्ञान और दर्शन का ज्ञाता स्वीकार किया है[१]।

'न्यायबिन्दु' में भ० महावीर को श्री ऋषभदेव के समान सर्वज्ञ तथा उपदेशदाता बताया है[२]।

'अंगुत्तर निकाय' में कथन है कि निगंठ* नातपुत्त* भ० महावीर सर्वदृष्टा थे, उनका ज्ञान अनन्त था और वे प्रत्येक क्षण, पूर्ण सजग, सर्वज्ञरूप में ही स्थित रहते थे[३]।

'संयुक्त निकाय' में उल्लेख है कि सर्वप्रसिद्ध भ० नातपुत्र महावीर यह बता सकते थे कि उनके शिष्य मृत्यु के उपरान्त कहाँ जन्म लेंगे ? विशेष-विशेष मृत व्यक्तियों के सम्बन्ध में जिज्ञासा करने पर उन्होंने बता दिया कि अमुक व्यक्ति ने अमुक स्थान में अथवा रूप में नव जन्म धारण किया है[४]।

'सामगाम सुत्त' में पांवापुरी से भ० महावीर के निर्वाण प्राप्त करने तथा उनके श्रमण* संघ के महात्माओं को जनसाधारण की श्रद्धा और आदर के पात्र होने का वर्णन है[५]।

---

१ निग्रन्थों-आवुसो नाथपुत्तो सव्व दरस्सी।
अपरिसेसे णाण दंस्सणं परिजानाति ॥
—मज्झिमनिकाय भाग १ पृष्ट ९२-९३।

अर्थात्—निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र महावीर सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं वे सम्पूर्ण ज्ञान और दर्शन के ज्ञाता हैं।

२. सर्वज्ञ आप्तो वा सज्योतिर्ज्ञानादिकमुपदिष्टवान्। यथा ऋषभ वर्धमानादि रिति ॥
—न्यायबिन्दु अध्याय ३।

अर्थात्—सर्वज्ञ आप्त ही उपदेशदाता हो सकता है। यथा ऋषभ और वर्धमान।

३. 'बौद्ध ग्रन्थों में भगवान महावीर' : जैन भारती, वर्ष ११ पृष्ट ३१४।
४. P. T. S., II P 214.
५ 'महात्मा बुद्ध पर वीर प्रभाव' खंड २।
* 'यथा नाम तथा गुण' खंड २।

महाराजा दशरथ की जिन शासन-प्रशंसा

मैंने आज मुनि सर्वभूतहित स्वामी के मुख से जिन शासन का व्याख्यान सुना। कैसा है जिन शासन? सकल पापों का वर्जन हारा है। तीन लोक में जिसका चरित्र सूक्ष्म अति निर्मल तथा उपमा रहित है। सर्व वस्तुओं में सम्यक्त परम वस्तु है और सम्यक्त का मूल जिन शासन है।

शरीर, स्त्री, धन, माता-पिता, भाई सब को तज कर यह जीव अकेला ही परलोक को जाता है। चिरकाल देव लोक के सुख भोगे। जब उनसे तृप्ति नहीं हुई तो मनुष्य लोक के भोगों से तृप्ति कैसे हो सकती है? मैं संसार का त्याग कर के निश्चित रूप संयम धारूंगा। कैसा है संयम? संसार के दुःखों से निकाल कर सुख करणहारा है। मैं तो निःसंदेह मुनिव्रत धारूंगा[1]। महाराजा दशरथ जिन दीक्षा लेकर जैन साधु होगये[2]।

गृहस्थ तथा राज्यकाल में श्री महाराजा दशरथ जैनी थे[3] और जैन धर्म को पालते थे[4]। इनके सुपुत्र श्री रामचन्द्र जी भी जैन-धर्मी[5] थे। जैन मुनि हो, तप करके वे मोक्ष गये[6] और सीता जी ने पृथिवीमती नाम की आर्यिका से जिन दीक्षा ले जैन साधुका हो गई[7]। महाराजा दशरथ के श्रमण अर्थात् जैन मुनियों को नित्य आहार कराने को महर्षि स्वामी वाल्मीकि जी ने भी स्वीकार किया है:—

तापसा भुंजते चापि श्रमणाश्चैव भुंजते ॥ १२ ॥

—वाल्मीकि रामायण बाल० स० १४ श्लोक १२.

---

१. पद्मपुराण; पर्व ३१ पृ० २६३—३०३

२. Dasaratha did not die of sorrow but retired into forest to lead the life of ascetic "—Prof. S. R. Sharma. Jainism And Karnataka Culture, P. 76.

३-४ फुटनोट नं० १।

५-६. 'श्री रामचंद्र जी की जिनेन्द्र भक्ति', खण्ड १ पृ० ५०.

७. पद्मपुराण, पर्व १०५ पृ० ६१०।

श्री रामचन्द्र जी की जिनेन्द्र भक्ति

दशांगनगर (वर्तमान मन्दसौर) के राजा वज्रकर्ण ने प्रतिज्ञा ले रखी थी कि सिवाय जिनेन्द्र भगवान् के किसी को मस्तक न झुकाऊँगा'[1]। यह बात उज्जैन के महाराजा सिंहोदर को अनुचित लगी कि उसके आधीन होने पर भी वज्रकर्ण उसको वन्दना नहीं करता। इसी कारण उसने वज्रकर्ण पर आक्रमण कर दिया। श्री रामचन्द्र जी को पता चला तो तुरन्त श्री लक्ष्मण जी से कहा, "वज्रकर्ण अणुव्रतोंका धारी श्रावक है, वह जिनेन्द्रदेव, जैनमुनि और

---

१. रा० रा० वासुदेव गोविंद आपटे : जैन धर्म महत्व (सूरत) भा० १ पृ० ३०

जिनसूत्र के सिवाय दूसरे को नमस्कार नहीं करता है। यदि जिनेन्द्र भगवान् के भक्त की सहायता न की गई तो सिंहोदर बड़ा बलवान् है वह वज्रकर्ण को हरा कर उसका राज्य छीन लेगा। इस लिये उसकी सहायता करो।" श्री लक्ष्मण जी स्वयं तीर-कमान लेकर रण भूमि में पहुँचे, सिंहोदर से लड़कर वज्रकर्ण की विजय कराई[1]। जब श्री रामचन्द्र जी के हृदय में एक जिनेन्द्र भक्त के लिए इतनी श्रद्धा थी कि बिना उसके कहे अपने प्राणों से प्यारे श्री लक्ष्मण जी की जान जोखम में डालकर उसकी सहायता की तो पाठक स्वयं विचार कर सकते हैं कि जिनेन्द्र भगवान् के सम्बंध में उनकी कितनी अधिक भक्ति होगी ?

जान २ की बाजी लड़ी जा रही हो, रावण श्री रामचन्द्र जी की परम प्यारी पत्नी को चुरा कर ले जाये[1] और युद्ध में उनके प्यारे भ्राता को मूर्छित करदे, वही रावण श्री रामचन्द्र जी के विरुद्ध प्रयोग करने के लिए मंत्र-विद्या की सिद्धि के हेतु सोलहवें जैन तीर्थंकर श्री शान्तनाथ भगवान् के मन्दिर में जाता है[2] और अपने राज-मंत्रियों को आज्ञा देता है "जब तक मैं जिनेन्द्र भगवान् की पूजा में मग्न रहूँ मेरे राज्य में किसी प्रकार की भी जीव हत्या न की जाये। मेरे योद्धा लड़ाई तक बन्द रखें और मेरी प्रजा भी जिनेन्द्र भगवान् की पूजा करे[3]"। जासूसों द्वारा जब इस बात

---

१. पद्मपुराण पर्व ३३ पृ० ३१८।

२ ३. For acquiring of magic power, Ravana issued orders that through out his territories no animal life should on no account be taken, that his warriors should for a time desist from fighting and *All his subject should be diligent in performing the rites of* JAINA-PUJA and then he entered the JINA-TEMPLE.

—Prof S.R. Sharma, Jainism And Karnataka Culture, P.78.

का पता विभीषण को लगा तो उसने श्री रामचन्द्र जी से कहा, "रावण इस समय जिनेन्द्र भगवान् की पूजा में लीन है और उसने अपने योद्धाओं को शत्रुओं पर भी शस्त्र उठाने से बन्द कर रक्खा है। इस लिए रावण पर आक्रमण करने का यह बड़ा उचित अवसर है[1]"। श्री रामचन्द्र जी ने कहा, "विभीषण यह सत्य है कि रावण हमारा शत्रु है, उसने हमारी सीता को चुराया और हमारे भ्राता लक्ष्मण को मूर्छित किया। उसका वश करना हमारा कर्तव्य है, परन्तु इस समय वह जिनेन्द्र भगवान् की भक्ति में मग्न है, मैं कदाचित् उस के जिनेन्द्र भक्ति जैसे महान् उत्तम और पवित्र कार्य में बाधा न डालूँगा[2]।

कुलभूषण और देशभूषण नाम के दो दिगम्बर मुनियों के तप में उनके पिछले जन्म के बैरी राक्षस बाधा डाल रहे थे, श्री रामचंद्र जी को पता चला तो वे धनुष उठा कर श्री लक्ष्मण सहित स्वयं वहां गये और दोनों जैन साधुओं का उपसर्ग दूर किया, उपसर्ग दूर होते ही उनको केवल ज्ञान प्राप्त होगया और वे जिनेन्द्र होगये।

श्री रामचन्द्र जी की जिनेन्द्र-भक्ति न केवल जैन ग्रन्थों में पाई जाती है बल्कि स्वयं हिन्दू ग्रन्थ भी स्वीकार करते हैं कि

१-२ When Bhibhiksana learned through spies what Ravanna was doing, he hastened to Rama and urged him to attack and Slay Ravana before he could fortify himself with his new and formidable power. But Rama replied:—

"Ravana has sought *Jinendra's* aid
In true religious form.
It is not meet that we should fight
With one engaged in holy rite."

—Prof. S.R. Sharma: Jainism & Karnataka Culture. P.78.

श्री रामचन्द्र जी की अभिलाषा जिन[1] (जिनेन्द्र) के समान वीतराग होने की थी।

नाहं रामो न मे वाञ्छा भावेषु न च मे मनः ।
शांतमासितुमिच्छामि स्वात्मनीव जिनो यथा ॥ ८ ॥

— योगवासिष्ठ वैराग्य प्रकरण सर्ग १५ पृष्ठ ३३

मैं न राम हूँ और न मेरी वाञ्छा संसारी पदार्थों में है। मैं तो जिनेन्द्र भगवान् के समान अपनी आत्मा में वीतरागता और शान्ति की प्राप्ति का अभिलाषी हूँ।

श्री रामचन्द्र जी[2] की यह उत्तम भावना उनके हृदय की सच्ची आवाज थी, राज पाट को लात मार कर चारण ऋद्धि के धारक स्वामी सुव्रत नाम के जैन मुनि से जिन दीक्षा धारण कर वे जैन साधु हो गये[3] और केवल-ज्ञान प्राप्त करके[4] जिन (जिनेन्द्र) हुये[5] और संसार को जैन धर्म का उपदेश देकर तुंगी गिरि पर्वत से मोक्ष प्राप्त किया[6]। इसी कारण जैन भगवान् महावीर के समान श्री रामचन्द्र जी की भी भक्ति और वन्दना करते हैं[7]।

---

१. (क) हिन्दी विश्व कोश (कलकत्ता) जिन = जिनेश्वर, जिनेन्द्र, जैनियों के उपासक देवता।
(ख) हिन्दी शब्द सागर कोश (काशी) जिन = जैनियों के पूज्य देव।
(ग) भास्कर ग्र० नं० १ संस्कृत हिन्दी कोश (मेरठ) जिन = जैन तीर्थंकर।
(घ) शब्द कल्पद्रुम कोश. जिन = अर्हन्त।
(ङ) शब्दार्थ चिन्तामणि कोश. जिन = जैनियों का देवता।

२. श्री रामचंद्र जी लक्ष्मण जी तथा सीता जी का जीवन और उनके भव आदि जानने के लिए देखिये 'पद्मपुराण पर्व १०६ पृष्ठ ६२२।

३. पद्मपुराण भाषा, पर्व ११९।

४-५, पद्मपुराण पर्व १२३ पृष्ठ ६८१।

६. पद्मपुराण पर्व १२३ पृष्ठ ६८६।

७. पद्मपुराण पर्व १०६ पृष्ठ ६२२।

उनके पिता महाराजा दशरथ भी जब तक गृहस्थ में रहे, श्रमणों (जैन साधुओं) को अहार[1] देते थे और जब जैन साधु हुये[2] तो घोर तप करने लगे[3]। और सती सीता जी भी जैन साधुका होगई थी[4]।

यही कारण है कि भगवान महावीर की दृष्टि में श्री रामचन्द्र जी का जीवन-चरित्र पाप-रूपी अन्धेरे को दूर करने के लिये कभी मन्द न पड़ने वाले सूर्य के समान बताया:—

श्रीमद्रामचरित्रमुत्तममिदं नानाकथापूरितम् ।
पापध्वान्तविनाशनैकतरणिं कारुण्यवल्लीवनम् ॥
भव्यश्रेणिमनःप्रमोदसदनं भक्त्यानघं कीर्तितम् ।
नानासत्पुरुषालिवेष्ठितयुतं पुण्यं शुभं पावनम् ॥ १८० ॥
श्रीवर्धमानेन जिनेश्वरेण त्रैलोक्यवन्द्येन यदुक्तमादौ ।
ततः परं गौतमसंज्ञकेन गणेश्वरेण प्रथितं जनानां ॥ १८१ ॥

श्री जिनसेनाचार्यः रामचरित्र

अर्थात्—श्री गौतम गन्धर्व के शब्दों में तीन लोक के पूज्य श्री महावीर की दृष्टि में श्री रामचन्द्र जी का चरित्र परम सुन्दर, अति मनोहर, महा कल्याणकारी और पाप-रूपी अन्धेरे को दूर करने के लिये कभी मन्द न पड़ने वाला चमकता हुआ सूर्य है। अहिंसा रूपी जहाज को चलाने के लिये बल्ली के समान है। इसमें सीता सुग्रीव, हनुमान और वाली आदि अनेक महापुरुषों के कथन शामिल होने के कारण महापुण्यरूप है और सज्जन पुरुषों के हृदय को शुद्ध व पवित्र करने वाला है[5]।

---

१ से ४ 'महाराजा दशरथ की जिन-शासन प्रशंसा' पृ० ४६।

५. For details see "Jainism and Karnataka Culture". (Karnataka Historical Research Society, Dharwar) PP. 76-80.

श्री हनुमान जी की जैन धर्म प्रभावना

श्री हनुमान जी आदिपुर के राजा पवनंजय के सुपुत्र थे। इनकी माता का नाम अंजना सुन्दरी था, जो महेन्द्रपुर के राजा श्री महेन्द्रकुमार की राजकुमारी थी।

हनुमान जी के जन्मते ही उनको उनकी माता सहित उनके मामा श्री अतिसूर्य विमान में बैठा कर अपने हुए देश में ले जा रहे थे कि वे खेलते हुये माता की गोद से उछल कर विमान से गिर पड़े। आकाश से एक जन्मते बालक का नीचे पृथ्वी पर गिरना उसकी माता के लिये कितना दुःखदाई हो सकता है? परन्तु अंजना सुन्दरी को गर्भ के समय ही एक जैन मुनि ने बता दिया था कि तुम्हारे चमशरीरी महापुरुष उत्पन्न होगा जो इसी भव से मोक्ष जायेगा। इस लिए उसको विश्वास था कि दिगम्बर जैन साधु के वचन कदाचित् झूठे नहीं हो सकते। उसका पुत्र

जीवित है, विमान से पृथ्वी पर उतरे तो उन्हों ने देखा कि श्री हनुमान जी बड़े आनन्द के साथ अपने पांव का अंगूठा चूस रहे हैं, और जिस सुदृढ़ तथा विशाल पर्वत पर गिरे थे वह खंड २ हो गया है। माता अंजना सुन्दरी ने प्रेम से हनुमान जी को छाती से लगाया और उनकी इतनी प्रभावशाली शक्ति को देख कर उन का नाम महावीर रक्खा, परन्तु जब हुरू देश की राजधानी में उनका पहला जन्मोत्सव मनाया गया तो हुरू देश के नाम पर इन का नाम श्री हनुमान जी प्रसिद्ध हो गया।

हनुमान जी वानरवंशी नरेश थे, वानर चिन्ह उनके झन्डे की पहिचान थी। कुछ लोग उनको सचमुच बानर जाति का समझते हैं, परन्तु वास्तव में वे महा सुन्दर कामदेव और मानव जाति के ही महापुरुष थे[१]।

श्री हनुमान जी जैनधर्मी थे[२]। जब तक वे गृहस्थ में रहे अहिंसा धर्म का पालन करते हुये रावण जैसे शक्तिशाली बहिरंग शत्रुओं पर विजय प्राप्त की और जब ७५० विद्याधर राजाओं के साथ श्री धर्मरत्न नाम के जैन मुनि से दीक्षा लेकर जैन साधु[३] हुये तो कर्मरूपी अन्तरंग शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर तुङ्गी-गिरि से मोक्ष प्राप्त किया और उनकी रानी ने भी बंधुमती नाम की आर्यिका से साधुका के व्रत धारे[४]।

---

1 .Valmikiji though called Hanuman monkey, speaks him highly learned, which is obviously a self contradictory statement. The Jain writers offer an explaination as to how they were mistaken for monkeys. Their National Flag had the figure of a monkey. Their army was called the Vanara Sena. This popular phrase was misinterpreted by the later writers who transformed the Vidyadharas into monkeys.

—Prof. A. Chakarvarti, M.A. I.E.S. VOV. II P. 5.

२ से ४. पद्मपुराण पर्व ११२-११३, पृ० ६५२-६५८।
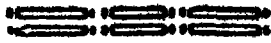
श्री कृष्ण जी की भावना

श्री कृष्ण जी के पिता श्री वासुदेव जी और बाईसवें जैन तीर्थंकर श्री अरिष्टनेमि जी के पिता श्री विजयभद्र आपस में सगे भाई थे[1]। श्री अरिष्टनेमि ऐतिहासिक महापुरुष हुये हैं[2]। वेदों और पुराणों तक में इनके गुणों का भक्तिपूर्वक वर्णन है[3]। ये बालब्रह्मचारी[4] और महाबलवान्[5] थे। जब तक गृहस्थ में रहे, जैन धर्म का पालन करते हुये भी जरासिन्ध जैसे अनेक महा योद्धाओं पर विजय प्राप्त करते रहे[6]। और जब जिन-दीक्षा लेकर जैन साधु हुये तो कर्म रूपी शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके केवल ज्ञान (सर्वज्ञता) प्राप्त किया[7]। जब श्री कृष्ण जी ने इनके केवल ज्ञान के समाचार सुने तो उसी समय चक्र की प्राप्ति और

---

१. Dr Fehrer: Apigraphica Indica, Vol. II, P. 206-207.

२-३. "वीर समय से पहले जैन सम्राट" खण्ड ३ मे २२ वें तीर्थंकर श्री नेमिनाथ जी के फुट नोट।

४-७. (क) हरिवंश पुराण, (ख) पाण्डव पुराण, (ग) नेमिपुराण।

पुत्र के उत्पन्न होने की सूचना भी मिली। श्री कृष्ण जी तीनों सुखद समाचारों को एक साथ सुन कर विचार करने लगे कि किस का उत्सव प्रथम मनाया जाये, वे धर्मात्मा थे, वे धार्मिक कार्य को विशेषता देते हुए अपने परिवार, चतुरंगी सेना और प्रजा सहित सबसे प्रथम श्री अरिष्टनेमि के केवल ज्ञान की वन्दना करने गये और उनकी तीन परिक्रमाएँ देकर भक्तिपूर्वक नमस्कार[१] कर इस प्रकार स्तुति करने लगे[२] :—

"हे नाथ ! आप धर्मचक्र चलाने में चक्री के समान हो, केवलज्ञान रूपी सूर्य से लोकालोक को प्रकाशित कर रहे हो, समस्त संसार को रत्नत्रयरूपी मोक्ष मार्ग दिखाने वाले हो, आप देवों के देव और जगद्गुरु हो, आप देवतागण द्वारा पूज्य हो, भला हमारी क्या शक्ति जो आपकी भली प्रकार स्तुति कर सकें[३] ।"

द्वारकानगर में भगवान् नेमिनाथ जी का उपदेश होरहा था—"कल्पवृक्ष मांगने पर और चिन्तामणि विचार करने पर ही इच्छित वस्तु प्रदान करते हैं परन्तु धर्म बिना मांगे और बिना इच्छा करे सुख प्रदान करता है। धर्म का साधन युवावस्था में ही हो सकता है। इसलिये सच्चे सुख के अभिलाषियों को भरी जवानी में जिन-दीक्षा लेना उचित है।" भगवान् के उपदेश को

१. When the Shamosarn of Lord Nemi was reported to have come near Diwarka Ji, Lord Krishna went to see Him with Yadovas, his mother, the Princes and the princesses of his family. Lord Krishna in respect of Lord Nemi Nath, leaving aside his royal robe etc entered the Shamosarn, and bowed down to Lord Arisht Nemi.
—Prof. Dr. H. S. Bhattacharya' Lord Arisht Nemi. P.58.

२-३. श्री नेमिपुराण पृ० ३०६-३०७।

सुन कर थावच्चाकुमार नाम के एक बालक को भी वैराग्य उत्पन्न हो गया उसने जैन साधु बनने का दृढ़ निश्चय कर लिया। उस के माता पिता ने बहुत मना किया, परन्तु जब वह न माना तो माता पिता ने श्री कृष्ण जी के दरबार में दुहाई मचाई। श्री कृष्ण जी बालक को खुद समझाने उसके मकान पर आये और उससे पूछा कि तुम्हें क्या दुःख है, जिस के कारण तुम दीक्षा ले रहे हो ? मैं अवश्य तुम्हारे दुःख को मेटूँगा"। बालक ने उत्तर दिया, "मुझे कर्मरोग लगा हुआ है जिस के कारण आवागमन के चक्कर में फंसकर अनादि काल से जन्म मरण के दुःख भोग रहा हूं, मेरा यह दुख मेट दो"। ऐसा सुन्दर उत्तर पाकर श्रीकृष्णजी बड़े प्रसन्न हुये और उन्हों ने बालक को आशीर्वाद देकर उसके माता-पिता को सराहा कि धन्य हो ऐसे माता-पिता को जिनके बच्चे ऐसे शुभ विचारों और उत्तम भावनाओं वाले होते हैं। माता पिता ने कहा कि यही तो कमा कर हमारा पेट भरता था, अब हम बूढ़ों का गुजर कैसे होगा ? श्री कृष्ण जी ने कहा—"इसकी चिन्ता मत करो, जब तक तुम लोग जीवित रहोगे, सरकारी खजाने से तुमको यथेष्ट सहायता मिलती रहेगी"। और श्री कृष्ण जी ने समस्त राज्य में मुनादी करादी कि 'जो जिन-दीक्षा धारेगा, उसके कुटुम्ब वालों को सारी उम्र तक राज्य की ओर से खर्च मिला करेगा' और उस बालक को अपनी चतुरंग सेना, गाजे-बाजों और ठाठ-बाट के साथ स्वयं श्री नेमिनाथ जी के समोशरण में ले जाकर जिन-दीक्षा दिलवाई[२]।

श्री कृष्ण जी अगले युग में 'मम' नाम के बारहवें तीर्थंकर इसी भारतवर्ष में होंगे, इसीलिये भावी तीर्थंकर होने के कारण जैनधर्म वाले श्री कृष्ण जी को परम पूज्य स्वीकार करते हैं[३]।

१-२. जैनग्रन्थ माला (रामस्वरूप पब्लिक हाईस्कूल नाभा) भा० १ पृ० ७२।

३. हरिवंशपराण।

लार्ड क्राइस्ट की अहिंसा-भक्ति
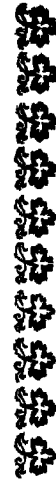
श्रमण (जैन साधु) बहुत बड़ी संख्या में फिलिस्तीन के अन्दर अपने मठों में रहते थे[1]। हजरत ईसा ने जैन साधुओं से अध्यात्म विद्या का रहस्य पाया था[2] और इनके ही आदर्श पर चलकर अपने जीवन की शुद्धि के लिये आत्म-विश्वास[3] (Self-reliance) विश्व प्रेम[4] (Universal love) तथा जीव-

---

१ i. Sir William James: Asiatic Researches. Vol. III.
ii. Megasthenes: Ancient India. P. 104
iii Dr. B. C. Law. Historical Gleanings P. 42.

२. Anekant Vol. VII. P. 173.

३. "Know Thyself."—Lord Christ.

४. "Peace on Earth, Good will unto all." Says Christ.

दया[१] (Ahinsa) समता[२], अपरिग्रह[३] आदि धर्मों की साधना की थी[४]।

यह निश्चय हो रहा है कि हजरत ईसा जब १३ वर्ष के हुये और उनके घर वालों ने उनके विवाह के लिये मजबूर किया तो वह घर छोड़कर कुछ सौदागरों के साथ सिन्ध के रास्ते भारत में चले आये थे[५]। वह जन्म से ही बड़े विचारक, सत्य के खोजी और सांसारिक भोग-विलासों से उदासीन थे[६]। भारत में आकर वह बहुत दिनों तक जैन साधुओं के साथ रहे,[७] प्रभु ईसा ने अपने आचार-विचार की मूल शिक्षा जैन साधुओं से प्राप्त की थी[८]।

महात्मा ईसा ने जिस पैलस्टाइन में जाकर ४० दिन के उपवास द्वारा आत्मज्ञान प्राप्त किया था। वह प्रसिद्ध यहूदी मि०

---

१. a.—"What ever you do not wish your neighbour to do unto you, don't unto him.

b—"Thou shalt not build thy happiness on the misery of another'—Christ.

२. "Towards your fellow creature be not hostile. All beinge hate pain, therefore don't kill them."—Christ.

३. प्रभु ईसा मसीह का कहना है कि सूई के नाके से ऊँट का निकल जाना मुमकिन है परन्तु अधिक परिग्रह की इच्छा रखने वालों का आत्मिक कल्याण होना मुमकिन नहीं।

४. "*इतिहास में भगवान् महावीर का स्थान*" पृ० १६।

५. पं० सुन्दरलाल जी : हजरत ईसा और ईसाई धर्म, पृ० २२।

६. पं० बलभद्र जी सम्पादक जैन संदेश' आगरा।

७. पं० सुन्दरलाल जी : हजरत ईसा और ईसाई धर्म, पृ० १६२।

८. इतिहास में भगवान् महावीर का स्थान, पृ० १६।

आजकल के अनुसार जैनियों का प्रसिद्ध तीर्थ पालिताना है[१]। जहाँ हजरत ईसा मसीह ने तपस्या की थी और जैन शिक्षा ग्रहण की थी उसी पालिताना के नाम पर पैलिस्टाइन बस गया था[२]। बहुत दिनों तक जैन साधुओं की संगति में रह कर वह फिर नैपाल और हिमालय होते हुए ईरान चले गये और वहां से अपने देश में जाकर उन्होंने अहिंसा और विश्व प्रेम का प्रचार चालू कर दिया[३]। उन्होंने जिन तीन विशेष सिद्धान्तों (१) आत्मा और परमात्मा की एकता (२) आत्मा का अमरत्व (३) आत्मा के दिव्य स्वरूप का उपदेश दिया था, ये यहूदी संस्कृति से संबन्ध नहीं रखते, बल्कि जैन संस्कृति के मूलाधार हैं[४]।

"जिसने दया नहीं की, क़यामत के दिन उस पर भी दया नहीं होगी[५]। जो दूसरों के गले पर छुरियाँ चलाते हैं, उन को अधिकार नहीं कि पाक अञ्जील को अपने नापाक हाथों में लें[६] धिक्कार है उन पर जो खुदा के नाम पर कुर्बानी करते हैं[७]। तू किसी का खून मत कर[८]। यदि जीव की हत्या करने के कारण तुम्हारे हाथ खून से भरे हुये हैं तो मैं तुम्हारी तरफ से अपनी आँखें बन्द कर लूंगा और प्रार्थना करने पर भी ध्यान न दूँगा[९]।" ये शिक्षायें जैन धर्म के सिद्धान्तों से मिलती-जुलती हैं।

---

१ से ४. Anekant. Vol. VII. P 173.

५. St. John. 11. 13.
Mr. F. H. Begrie.

६ से ७. मिति की अन्जील अ० १ आयत ११—१५।

८. "Thou shalt not kill." Christ's First Ordinance.

९. And when ye spread forth your hands. I will hide my eyes from you. Yes, when ye make many prayers. I will not hear. if your hands are full of blood."
—Hosia. 8. 15.

महात्मा श्री जरदोस्त की अहिंसामयी शिक्षा

बेजबान पशुओं की हत्या करना पारसी धर्म में बहुत बड़ा गुनाह है[1]। पूज्य गुरू श्री जरदोस्त मांस त्यागी थे[2]। और उन्हों ने दूसरों को भी मांस त्याग की शिक्षा दी[3]। सेठ रुस्तम ने तो अंडा तक खाना भी पाप बताया है[4]। उनका विश्वास है कि मांस भक्षण से मनुष्य के स्वाभाविक गुण तथा प्रेम भावना नष्ट हो जाती है[5]। जो दूसरों से अधिक बोझ उठवाते हैं वे ऊंट, घोड़ा, बैल आदि अधिक बोझ के कष्ट को सहन करने वाले पशु होते[6]

१. विद्याभूषण पं० ईश्वरलाल : मांसाहार विशारद. भाग २ पृ० ८५—९० ।

२से३. प्रसिद्ध पारसी ग्रन्थ 'शायस्तलाशायस्त' ।

४से५. सन् १८९७ में सेठ रुस्तम जी का थियोसोफीकल सोसायटी के ब्लेवेटस्की लाज में दिया हुआ भाषण ।

६. 'खशूरान खशूर' आयत १-२ ।

हैं। जो अपने स्वार्थ या दिल्लगी के कारण भी किसी को सताते हैं, दोज़ख की आग में बुरी तरह तड़फते हैं[1]। ईरानी कवि 'फिरदोसी' के शब्दों में पशु हत्या न करना, शिकार न खेलना, मांस भक्षण न करना ही पारसी धर्म के गुण हैं[2]। महात्मा जरदोस्त का तो फरमान है कि बच्चा जवान या बूढ़ा किसी भी प्रकार की जीव-हिंसा उचित नहीं है[3]।

❀❀❀

हजरत मोहम्मद साहब का अहिंसा से प्रेम

अरब में जैनियों द्वारा अहिंसा का प्रचार अवश्य किया गया था[4]। हजरत मोहम्मद अहिंसा धर्म के प्रभाव से अछूते नहीं थे[5]। उनका अन्तिम जीवन महा अहिंसक था[6]। वे केवल एक लबादा रखते थे[7]। खुरमा रोटी और दूध उनका भोजन था[8]। उन्होंने अपने अनुयायियों को अहिंसामय व्यवहार का उपदेश दिया था[9]। आज भी जो मुसलमान मक्का शरीफ की यात्रा को जाते हैं, जब तक वहां रहते हैं, वे मांस नहीं खाते[10] नंगे पाँव जयारत करते हैं[11]। जूं भी कपडो में हो जाय तो उसे मारना तो बड़ी बात है, कपड़ों तक से नीचे नहीं गिराते[12]।

---

१. पारसी प्रसिद्ध ग्रन्थ 'जिन्दा वस्ता'।

२. 'फिरदोसी : शाहनामा'।

३. जरदोस्तनामा।

४-१०. आचार्य श्री नरेन्द्रदेवः—ज्ञानोदय, वर्ष १, अङ्क ७, पृष्ठ २३।

११-१२. जैन संसार (नवम्बर सन् १९४२) पृष्ठ १७।

अपने कलामे-हदीस में हजरत मोहम्मद साहब ने फरमाया कि यदि तुम जग के प्राणियों पर दया (अहिंसा) करोगे तो खुदा तुम पर दया करेगा[1]। थोड़ी सी दया (अहिंसा) बहुत सी इबादत (भक्ति) से अच्छी है[2]। कुर्बानी का मांस और खून खुदा को नहीं पहुँचता[3], बल्कि तुम्हारी परेजगारी (पवित्रता) पहुचती है[4]।

एक शिकारी एक हिरणी को पकड़ कर ले जा रहा था। रास्ते में हजरत मोहम्मद साहब मिल गये। हिरणी ने उनसे कहा कि मेरे बच्चे भूखे हैं, थोड़ी देर के लिये मुझे छुड़वादो, बच्चों को दूध पिलाकर मैं तुरन्त वापिस आ जाऊंगी। हिरणी के दर्द भरे शब्दों से हजरत मोहम्मद साहब का हृदय पसीज गया, हिरणी की बेबसीको देख कर उनकी आंखों में आंसू आ गये और उन्होंने शिकारी से कहा :—

"हैवान है पर अन्देशाये वहशत जरा न कर।
आती है वह बच्चों को अभी दूध पिला कर॥"

शिकारी हँसा और कहने लगा कि पशुओं का क्या विश्वास?

---

१. 'इरहमु मनफिल अर्ज़ यरहम कुमर्रहमानु'।

—पैगम्बर मोहम्मद साहब : 'कलाम हदीस'

२. 'अलमुशफक्त खेर मन कसरते इबादत'।

३. कुरानशरीफ, पारा १७, सुरा हज, रुक ५, आयत ३८।

४. मौलवी कादरबख्श : इस्लाम की दूसरी किताब।

इस पर हजरत साहब ने फरमाया कि अच्छा हम जामिन हैं। शिकारी ने कहा कि यदि यह वापिस न आई तो तुम्हें इसकी जगह शिकारे अजल बनना पड़ेगा। इस पर आप मुस्कराये और फरमाया :—

"इस वक्त यही शर्त सही, जिसको खुदा दे।
हम जान लगाते हैं, तू ईमान लगादे॥"

शिकारी ने हजरत मोहम्मद साहब की जमानत पर हिरणी को छोड़ दिया, वह भागती हुई अपने बच्चों के पास गई और उन्हें दूध पिलाकर कहा—'यह हमारी तुम्हारी आखरी मुलाकात है, एक शिकारी ने मुझे पकड़ लिया था, एक महापुरुष ने अपने जीवन की जमानत पर छुड़वाया है"। बच्चों ने कहा"—माता हम पर जैसे बीतेगी, देख लेंगे, तू बचनहारी न हो"। हिरणी ने वापिस आकर हजरत मोहम्मद साहब को धन्यवाद दिया और शिकारी से कहा कि अब मैं जिबे होने को तैयार हूँ। शिकारी पर उसके शब्दों का इतना प्रभाव पड़ा कि उसने सदा के लिये हिरणी को छोड़ दिया[१]। वास्तव में हजरत मोहम्मद साहब बड़े दयालु थे उन्होंने अहिंसा धर्म का प्रचार किया[२]।

यह तो उनके जीवन का केवल एक ही दृष्टान्त है। यदि उनके जीवन की खोज की जाये तो किसी को भी उनके 'अहिंसा-प्रेमी' होने में सन्देह न रहे[३]।

---

१. आईनाये हमदर्दी।

२. "जैन धर्म और इस्लाम" खण्ड ३।

३. 'Ahinsa in Islam' Vol. I.

श्री गुरु नानकदेव का अहिंसा-प्रचार
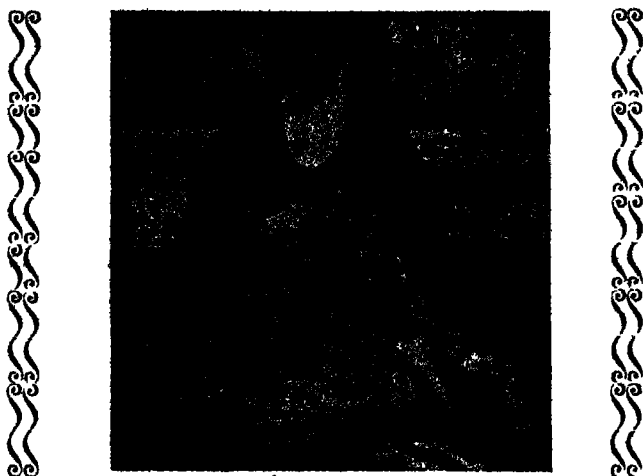
जब कपड़ों पर खून की छींट लग जाने से वे नापाक हो जाते हैं तो जो मनुष्य खून से लिप्त मांस खाते हैं, उनका हृदय कैसे शुद्ध और पवित्र रह सकता है[1]। ६८ तीर्थों की यात्रा से भी इतना फल प्राप्त नहीं होता जितना अहिंसा और दया से होता है[2]। जिस के हृदय में दया नहीं वह महा विद्वान् होने पर भी मनुष्य

१. जे रत लगे कपड़े, जामा होवे पलीत ।
जे रत पीवें मानुषा, तिन क्यों निर्मल चित ॥
—बाबा नानक बार मास मांझ, महल्ला १ पृ० १४० ।

२. अड़सठ तीरथ सकल पुन जीवन दया प्रधान ।
जिसनूं देवे दया कर सोई पुरुष सुजान ॥
—माझ महल्ला ५ बारा माह (माघ माह)

कहलाने का अधिकारी नहीं है[1]। जब मरे हुये बकरे की खाल से लोहा भस्म हो जाता है, तो जो जीवित बकरे को मार कर खाते हैं उनकी दशा क्या होगी[2] ? जहां मांस भक्षण होता है वहां दया धर्म नहीं रह सकता[3]। यह झूठी कल्पना है कि थोड़े से पाप कर लेने में क्या हर्ज है, क्योंकि अधिक पुण्य करके उस थोड़े से पाप को धोया जा सकता है[4]। पवित्र ग्रंथ साहब में तो यहां तक उल्लेख है कि यदि जीवों की हत्या करना धर्म है तो अधर्म क्या है[5]।

गुरु नानकदेव मांस-भक्षण के विरोधी थे। वे एक दिन घूमते हुये एक जंगल में जा निकले। वहां के लोगों ने उनसे भोजन के लिये कहा तो गुरु जी ने फरमाया :—

"यों नहीं तुमरो खायें कदापि, हो सब जीवन के सन्तापी।
प्रथम तजो आमिष का खाना, करो जास हित जीवन हाना ॥"

—नानक प्रकाश पूर्वार्ध अध्याय ५५

अर्थात्—हम तुम्हारे यहां कदाचित् भोजन नहीं कर सकते, क्योंकि तुम जीव हिंसा करते हो। जब तक तुम माँस भक्षण का त्याग न करोगे, तुम्हारे जीवन का कल्याण न हो सकेगा।

---

१. दयाभाव हृदय नहीं, ज्ञान कथा बेहद।
ते नर नरके जायेंगे, कहे कबीर यह शब्द ॥

२. बुरा गरीब का मारना, बुरी गरीब की आह।
मुये बकरे की खाल से, लोहा भस्म हो जाय ॥

३ सुचम करके चौका पाया, जीव मारके मांस चढ़ाया।
जिस रसोई चढाया मास, दया धर्म का होया नास ॥

४. तिल भर मछली खायके, करोड़ गऊ दे दान।
काशी करवत ले मरो, तो भी नरक निदान ॥

५. जीव बधहु सुधरम कर, थापहु अधरम कहकत भाई।
आपस कउ मुनवर कर थापउ, का कउ कह कसाई ॥

—ग्रन्थ साहब कबीर रागमारू पृ० ११०३।

महर्षि दयानन्द जी का वीर सिद्धान्त से प्रेम
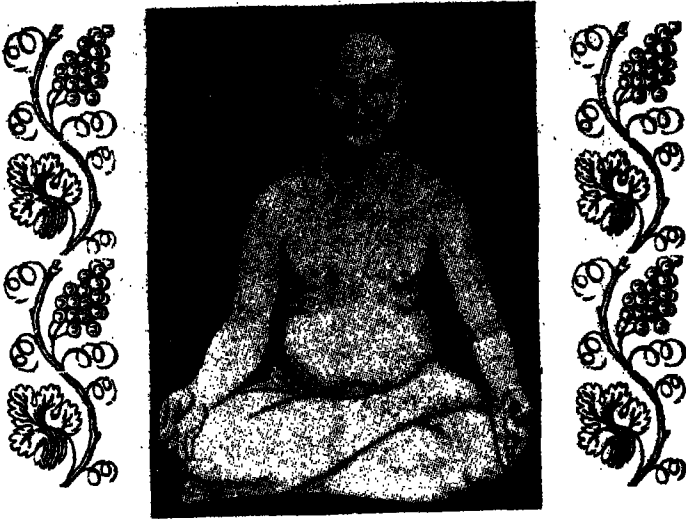
स्वामी दयानन्द जी ने मांस, मदिरा तथा मधु के त्याग की शिक्षा दी[1]। और वस्त्र से पानी छान कर पीने का उपदेश दिया[2]। वेदतीर्थ आचार्य श्री नरदेव जी शास्त्री के शब्दों में स्वामी दयानन्द जी यह स्वीकार करते थे कि श्री महावीर स्वामी ने अहिंसा आदि जिन उच्च कोटि के अनेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है, वे सब वेदों में विद्यमान हैं[3]। और बताया है कि भगवान् महावीर की अहिंसा दुर्बल अहिंसा नहीं थी, किन्तु संसार के प्रबल से प्रबल महापुरुष की अहिंसा थी[4]। वैदिक शब्दों में कहा जाये तो "मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे" है।

---

१. सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ३—१०।

२. 'बिन छने जल का त्याग' खण्ड २।

३-४. वेदतीर्थ आचार्य श्री नरदेव : जैन संदेश आगरा (२६ जून १९४५) पृ० २४।

महाराजा भर्तृहरि की दिगम्बर होने की भावना

एको रागिषु राजते प्रियतमा देहार्धधारी हरो,
नीरागेषु जिनो विमुक्तललना संगो न यस्मात्परः।
दुर्वारस्मरबाणपन्नगविषव्यासक्तमुग्धो जनः,
शेषोमोह विजृम्भितो हि विषयान् भोक्तुं न मोक्तु क्षमः॥ ७१ ॥[1]

—श्रीमत् भर्तृहरिकृत शतकत्रय।

अर्थात्—प्रेमियों में एक शिवजी मुख्य हैं, जो अपनी प्यारी पार्वतीजी को सर्वदा अर्द्धांग में लिये रहते हैं और त्यागियों में जैनियों के देव जिन भगवान् ही मुख्य हैं, स्त्रियों का संग छोड़ने वाला उनसे अधिक कोई दूसरा नहीं है और शेष मनुष्य तो मोह से ऐसे जड़ हो गये हैं कि न तो विषयों को भोग ही सकते हैं और न छोड़ ही सकते हैं।

महाराजा भर्तृहरि जी की इच्छा थी कि मैं नग्न दिगम्बर होकर कब कर्मों का नाश करूंगा :—

एकाकी निस्पृहः शान्त पाणिपात्रो दिगम्बरः।
कदा शम्भो भविष्यामि कर्मनिर्मूलनक्षमः॥ ५८ ॥

—वैराग्य शतक, पृ० १०७

अर्थात्—हे शम्भो, मैं अकेला इच्छारहित, शांत, पाणिपात्र और दिगम्बर होकर कर्मों का नाश कब कर सकूंगा ?

---

१. लक्ष्मीनारायण प्रेस मुरादाबाद की सं. १९८२ की छपी हुई पं० गङ्गाप्रसादकृत भाषा टीका के शृङ्गार शतक का ७१ वां श्लोक।

महाराजा श्रेणिक बिम्बसार की वीर-भक्ति

"जै जै केवल ज्ञान प्रकाश, लोकालोक करण प्रतिभास । ४५ ।
जय भव कुमुद विकासन चन्द, जय २ सेवत मुनिवर वृन्द । ४६ ।
आज ही सीस सुफल मो भयो, जब जिन तुम चरणन को नयो । ४७ ।
नेत्र युगल आनन्दे भये, तुम पद कमल निहारे तबे । ५० ।
कानन सुफल सुनि धुन धरि, रसना सुफल भावे धुन भरी । ५१ ।
ध्यान धरत हिरदै अति भयो, कर जुग सुफल पूजते भयो । ५२ ।
जन्म धन्य अब ही मो भयो, पाप कलंक सकल भजी गयो । ५३ ।
मो करुणा कर जिनवर देव, भव भव में पाऊँ तुम सेव" ॥ ५४ ॥

—तरेपन क्रिया, अध्याय १, पृ० ४-५

हे भगवान् महावीर ! आपकी जय हो। आप केवल ज्ञान रूपी लक्ष्मी से शोभित हैं, जिस के कारण लोक-परलोक के समस्त पदार्थों को हाथ की रेखा के समान दर्शाने वाले हो। भव्य जीवों के हृदयरूपी कमल को खिलाने के लिये आप सूर्य के समान हैं। मुनीश्वर तक भी आप की सेवा करते हैं। आप के चरणों में झुक जाने के कारण आज मेरा मस्तक भी सफल हो गया। आपके दर्शन करने से मेरी दोनों आंखें आनन्दमयी हो गईं। आप का उपदेश सुनने से मेरे दोनों कान शुद्ध हो गये और आप की स्तुति करने से मेरी जबान पवित्र हो गई। आपका ध्यान करने से मेरा हृदय निर्मल हो गया, आप की पूजा करने से मेरे दोनों हाथ सफल हो गये। आपके दर्शनों से मेरे पापों का नाश होकर आज धन्य है कि मेरा नर-जन्म सफल हो गया। दया के सागर श्री जिनेन्द्र भगवान् अब तो केवल मेरी यही अभिलाषा है कि हर भव और हर जन्म में आप को पाऊँ और आप की सेवा करूँ[1]।

---

१. विशेषता के लिए देखिए "महाराजा श्रेणिक और जैनधर्म" तथा "महाराजा अशोक पर वीर प्रभाव"।

श्रीमत् कुन्दकुन्दाचार्य की वर्धमान-वन्दना

एस सुरासुरमणु सिवव विदं, धोदघाइ कम्ममलं ।
पणमामि वड्ढमाणं तित्थं धम्मस्स कत्तारं ।। १ ।।

श्रीमत् कुन्दकुन्दाचार्यः प्रवचनसार पृ० १

भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और कल्पवासी चारों प्रकार के देवों के इन्द्र तथा चक्रवर्ती जिन को भक्ति पूर्वक वन्दना करते हैं और जो ज्ञानावर्णी, दर्शनावर्णी, मोहनी और अन्तराय चारों घातिया कर्मों को काट कर अनन्तानन्त ज्ञान, अनन्तान्त दर्शन, अनन्तानन्त सुख और अनन्तानन्त शक्ति को प्राप्त किये हुये हैं और धर्म तीर्थ के प्रवर्तक तीर्थंकर भगवान् श्री वर्धमान हैं, मैं उनको नमस्कार करता हूँ।

श्री समन्तभद्र आचार्य की वीर-श्रद्धांजलि

देवागम नभोयान चामरादिविभूतयः ।
मायाविष्वपि दृश्यन्ते नातस्त्वमसि नो महान् ॥ १ ॥

—आप्त मीमांसा

अर्थात्—देवों का आगमन, आकाश में गमन और चामरादिक (दिव्य चमर, छत्र, सिंहासन, चामरछत्रादिक) विभूतियों का अस्तित्व तो मायावियों में—इन्द्रजालियों में भी पाया जाता है, इनके कारण हम आपको महान् नहीं मानते और न इस कारण से आप की कोई खास महत्ता या बड़ाई ही है।

'भगवान् महावीर' की महत्ता और बड़ाई तो उनके मोहनीय, ज्ञानावरण, दर्शनावरण अन्तराय नामक कर्मों का नाश करके परम शान्ति को लिए हुये शुद्धि तथा शक्ति की पराकाष्ठा को पहुँचने और ब्रह्म-पथ का—अहिंसात्मक मोक्षमार्ग का, नेतृत्व ग्रहण करने में है। अथवा यों कहिये कि आत्मोद्धार के साथ-साथ लोक की सच्ची सेवा बजाने में है।

त्वं शुद्धिशक्त्योरुदयस्य काष्ठां तुला व्यतीतां जिनशांति रूपाम् ।
अवापिथ ब्रह्मपथस्य नेता महानीतियत् प्रतिवक्तुमीशाः ॥ ४ ॥

—श्रीसमन्तभद्राचार्यः युक्त्यनुशासन ।

★

श्री मानतुङ्गाचार्य की जिनेन्द्र-स्तुति

★
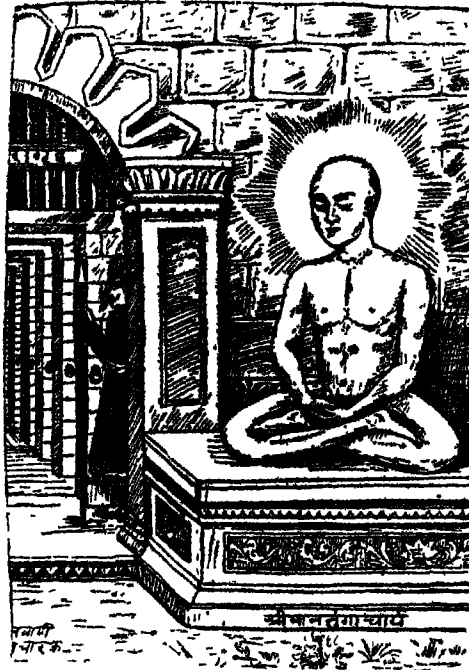
त्वामव्ययं विभुमचिन्त्यमसंख्यमाद्यं ब्रह्माणमीश्वरमनन्तमनङ्गकेतुम् ।
योगीश्वरं विदितयोगमनेकमेकं, ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्तः ॥२४॥

—मानतुङ्गाचार्यः भक्तामर स्तोत्र ।

अर्थात्—हे श्री जिनेन्द्र भगवान् ! आप अक्षय, परम ऐश्वर्य-संयुक्त, सर्वज्ञ, योगेश्वर, सर्वव्यापक, देवों के देव महादेव, अनन्तानन्त गुणों की खान, कर्मरूपी मल से पवित्र, शुद्धचित्त रूप, कामदेव का नाश करने वाले, अर्हन्त तथा तीनों लोक और तीनों काल के समस्त पदार्थों को एक साथ देखने और जानने वाले केवल ज्ञानी हो । मैं आपकी बार बार वन्दना करता हूँ ।

ब्राह्मण धर्म पर जैन धर्म की छाप

लोकमान्य श्री बालगङ्गाधर तिलक

जैनधर्म अनादि है। गौतम बुद्ध महावीर स्वामी के शिष्य थे। चौबीस तीर्थंकरों में महावीर अन्तिम तीर्थंकर थे। यह जैन धर्म को पुनः प्रकाश में लाये, अहिंसा धर्म व्यापक हुआ। इनसे भी जैन धर्म की प्राचीनता मानी जाती है। पूर्वकाल में यज्ञ के लिये असंख्य पशु-हिंसा होती थी, इसके प्रमाण मेघदूत काव्य[1] तथा और ग्रन्थों से मिलते हैं। रन्तिदेव नामक राजा ने यज्ञ किया था,

१. महाकवि कालिदासकृत मेघदूत श्लोक ४५।

उसमें इतना प्रचुर पशुवध हुआ था कि नदी का जल खून से रक्त वर्ण हो गया था। उसी समय से उस नदी का नाम चर्मवती प्रसिद्ध है। पशुवध से स्वर्ग मिलता है इस विषय में उक्त कथा साची है, परन्तु इस घोर हिंसा का ब्राह्मण-धर्म से विदाई ले जाने का श्रेय जैनधर्म को है। इस रीति से ब्राह्मणधर्म अथवा हिन्दू-धर्म को जैन धर्म[1] ने अहिंसा धर्म बनाया है। यज्ञ-यागादि कर्म केवल ब्राह्मण ही करते थे चत्री और वैश्यों को यह अधिकार नहीं था और शूद्र बेचारे तो ऐसे बहुत विषयों में अभागे बनते थे। इस प्रकार मुक्ति प्राप्त करने की चारों वर्णों में एक सी छूट न थी। जैन-धर्म ने इस त्रुटि को भी पूर्ण किया है।

मुसलमानों का शक, इसाईयों का शक, विक्रम शक, इसी प्रकार जैन धर्म में महावीर स्वामी का शक (सन्) चलता है। शक चलाने की कल्पना जैनी भाईयों ने ही उठाई थी।

आजकल यज्ञों में पशुहिंसा नहीं होती। ब्राह्मण और हिन्दु-धर्म मे मांस-भक्षण, और मदिरा-पान बन्द हो गया सो यह भी जैनधर्म का ही प्रताप है। जैन-धर्म की छाप ब्राह्मण- धर्मपर पड़ी।

---

१. जैन-धर्म का महत्व (सूरत) भाग १ पृ ८१-६२।

अहिंसा के अवतार भगवान् महावीर

अहिंसा के आराधक श्री महात्मा गांधी

"मेरा विश्वास है कि बिना धर्म का जीवन बिना सिद्धान्त का जीवन है और बिना सिद्धान्त का जीवन वैसा ही है जैसा कि बिना पतवार का जहाज[1]।

जहां धर्म नहीं वहां विद्या नहीं, लक्ष्मी नहीं, और नीरोगता भी नहीं। सत्य से बढ़कर कोई धम नहीं और अहिंसा परमोधर्मः से बढ़ कर कोई आचार नहीं है। जिस धर्म में जितनी ही कम हिंसा है, समझना चाहिये कि उस धर्म में उतना ही अधिक सत्य है[2]।

भगवान् महावीर अहिंसा के अवतार थे उनकी पवित्रता ने संसार को जीत लिया था। महावीर स्वामी का नाम इस समय यदि किसी भी सिद्धान्त के लिए पूजा जाता है तो वह अहिंसा है। प्रत्येक धर्म की उच्चता इसी बात में है कि उस धर्म में अहिंसा तत्व की प्रधानता हो। अहिंसा तत्त्व को यदि किसी ने अधिक से अधिक विकसित किया है तो वे महावीर स्वामी थे[3]।

१-२. अनेकान्त वर्ष ४, पृ० ११२।

३. महावीर स्मृति ग्रन्थ (आगरा) भाग १ पृ० २।

जैनधर्म की विशेष सम्पत्ति

डा० श्री राजेन्द्रप्रसाद जी

मैं अपने को धन्य मानता हूँ कि मुझे महावीर स्वामी के प्रदेश में रहने का सौभाग्य मिला है। अहिंसा जैनों की विशेष सम्पत्ति है। जगत के अन्य किसी भी धर्म में अहिंसा सिद्धान्त का प्रतिपादन इतनी सफलता से नहीं मिलता।

—अनेकान्त वर्ष ६, पृ० ३६।

भ० महावीर का कल्याण-मार्ग

डा० श्री राधाकृष्णन् जी

यदि मानवता को विनाश से बचाना है और कल्याण के मार्ग पर चलना है तो भगवान् महावीर के सन्देश को और उनके बताये हुए मार्ग को ग्रहण किये बिना और कोई रास्ता नहीं।

—शान्तिदूत महावीर, पृ० ३०

श्री पंडित जवाहरलाल नेहरु

भगवान् महावीर का त्याग

आशा है कि भगवान् महावीर द्वारा प्रणीत सेवा और त्याग की भावना का प्रचार करने से सफलता होगी।

—वीर देहली (१५ १,५१) पृ० ४।

★

अहिंसा वीर पुरुषों का धर्म है

जैन धर्म पीले कपड़े पहनने से नहीं आता। जो इन्द्रियों को जीत सकता है, वही सच्चा जैन हो सकता है। अहिंसा वीर पुरुषों का धर्म है। कायरों का नहीं। जैनों को अभिमान होना चाहिए कि कांग्रेस उनके मुख्य सिद्धान्त का अमल समस्त भारत वासियों को करा रही है। जैनों को निर्भय होकर त्याग का अभ्यास करना चाहिए।
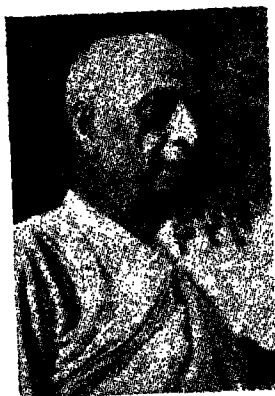
—अनेकान्त, वर्ष ६, पृ० ३९।

सरदार श्री वल्लभ भाई पटेल

संसार के पूज्य भगवान् महावीर
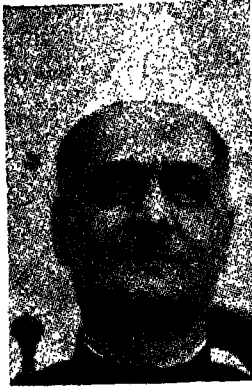
भगवान् महावीर एक महान् आत्मा हैं जो केवल जैनियों के लिये ही नहीं बल्कि समस्त संसार के लिये पूज्य हैं। आज कल के भयानक समय में भगवान् महावीर की शिक्षाओं की बड़ी जरूरत है। हमारा कर्त्तव्य है कि हम उनकी याद को ताजा रखने के लिये उन के बताये हुये मार्ग पर चलें[1]।

श्री जी बी. मावलंकार स्पीकर भारत पा०

★

भगवान् महावीर का उपदेश शान्ति का सच्चा मार्ग है

श्री राजगोपालाचार्य

महावीर भगवान् का संदेश किसी खास कौम या फिरके के लिये नहीं है बल्कि समस्त संसार के लिये है। अगर जनता महावीर स्वामी के उपदेश के अनुसार चले तो वह अपने जीवन को आदर्श बनाले। संसार में सच्चा सुख और शांति उसी सूरत में प्राप्त हो सकती है जब कि हम उनके बतताये हुये मार्ग पर चलें।

—जैन संसार देहली मार्च १९४७ पृ० ५।

---

१. (१४-४-४६ को जैन कालिज सहारनपुर में दिए हुए भाषण का सार)

तलवार से अधिक अहिंसा

देशभक्त डा० श्री सतपाल जी, स्पीकर पंजाब असेम्बली

प्रेम और अहिंसा का व्रत पालना ही आत्मा का सच्चा स्वरूप है। लोग कहते हैं कि तलवार में शक्ति है परन्तु महात्मा गांधी ने अपने जीवन से यह सिद्ध करके दिखा दिया कि अहिंसा की शक्ति तलवार से अधिक तेज़ है।

—देशभक्त मेरठ, (जून सन् ३४) पृ० ५।

जैन–धर्म का प्रभाव

श्री प्रकाश जी मंत्री भारत सरकार

जैनधर्म और संस्कृति प्राचीन है। भारतवासी जैनधर्म के नेताओं तीर्थंकरों को मुनासिब धन्यवाद नहीं दे सकते। जैनधर्म का हमारे किसी न किसी विभाग में राष्ट्रीय जीवन पर बहुत बड़ा प्रभाव है। जैनधर्म के साहित्यिक ग्रन्थों की स्वच्छ और सुन्दर भाषा है। साहित्य के साथ २ विशेषरूप से जैनधर्म ने आकर्षण किया है जो मानव को अपनी ओर खींचता है। जैनधर्म कला की आर्ट के नमूने देखकर आश्चर्य होता है। जैनधर्म ने सिद्ध कर दिया है कि लोक और परलोक के सुख की प्राप्ति अहिंसा व्रत से हो सकती है।

—वीर देहली (१५-१-५१) पृष्ठ ५

महान् तपस्वी भगवान् महावीर

राजर्षि श्री पुरुषोत्तमदास जी टण्डन

भगवान् महावीर एक महान् तपस्वी थे। जिन्होंने सदा सत्य और अहिंसा का प्रचार किया। इनकी जयन्ती का उद्देश्य मैं यह समझता हूँ कि इनके आदर्श पर चलने और उसे मजबूत बनाने का यत्न किया जावे।

—वर्द्धमान देहली, अप्रैल १६५३ पृ० ८।

विश्व शान्ति के संस्थापक

आचार्य श्री काका कालेलकर जी

मैं भगवान् महावीर को परम आस्तिक मानता हूँ। श्री भगवान् महावीर ने केवल मानव जाति के लिये ही नहीं पर समस्त प्राणियों के विकास के लिये अहिंसा का प्रचार किया। उनके हृदय में प्राणीमात्र के कल्याण की भावना सदैव ज्वलंत थी। इसी लिये वह विश्व-कल्याण का प्रशस्त मार्ग स्वीकार कर सके। मैं दृढ़ता के साथ कह सकता हूँ कि उनके अहिंसा सिद्धान्त से ही विश्व-कल्याण तथा शान्ति की स्थापना हो सकती है।

—ज्ञानोदय वर्ष १, पृ० ६६।

महान् विजेता

आचार्य श्री नरेन्द्रदेव जी

महावीर स्वामी ने जन्म-मरण की परम्परा पर विजय प्राप्त की थी। उनकी शिक्षा विश्व मानव के कल्याण के लिये थी। अगर आपकी शिक्षा संकीर्ण रहती तो जैनधर्म अरब आदि देशों तक न पहुँच पाता।

—ज्ञानोदय वर्ष १, पृ० ८२३।
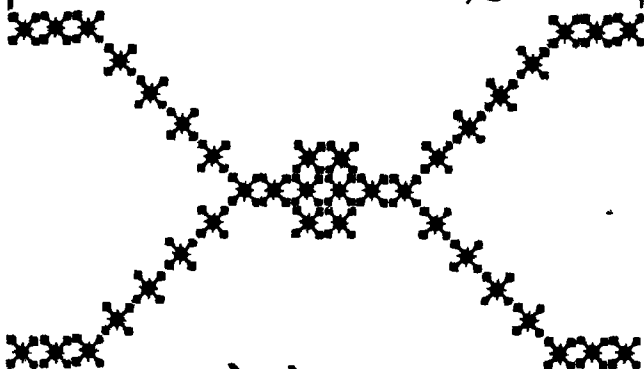
प्रेम के उत्पादक

आचार्य श्री विनोबा भावे जी

लोग कहते हैं कि अहिंसा देवी निःशस्त्र है मैं कहता हूँ यह गलत ख्याल है। अहिंसा देवी के हाथ में अत्यन्त शक्ति शाली शस्त्र है। अहिंसा रूप शस्त्र प्रेम के उत्पादक होते हैं, संहारक नहीं।

—ज्ञानोदय भाग १, पृ० ५६४।

वीर उपदेश से भारत सुदृढ़

श्री के. एम. मुन्शी गवर्नर उ. प्र.

कामना है कि भगवान् महावीर का उपदेश भारत को सुदृढ़ करे।

–वीर देहली १५-१-५१ पृ. ४

जैन समाज का राजनैतिक भाग

जैन समाज ने देश के राजनैतिक तथा आत्मिक जीवन में विशेष भाग लिया है।

–वीर देहली १५-१-५१ पृ. ४

श्री एस. पी. मोदी भूतपूर्व गवर्नर उ.प्र.

विश्व कल्याण के नेता

गभवान् महावीर समस्त प्राणियों का कल्याण करने वाले महापुरुष हुए हैं ।

जैनसंसार मार्च सन् ४७ पृ.५

शेरे पंजाब लाला लाजपतराय जी

★

महा उपकारी और त्यागी

श्री राजा महाराजसिंह गवर्नर बम्बई

आशा है भगवान् महावीर की सेवा और त्याग की भावना का प्रसार होगा।
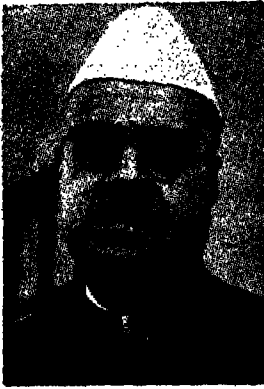
वीर देहली १५-१-५ पृ० ४३

वीर उपदेश की आवश्यकता

जिन सिद्धान्तों के लिये भगवान् महावीर ने उपदेश दिया उनकी आज के मानव समाज के लिये परम आवश्यकता है।

—वीर देहली १५-१-५१ पृ० ४

श्री जयरामदास दौलतराम जी गवर्नर आसाम

मानव जाति का सच्चा सुख

इस समय सारे संसार को अहिंसा धर्म के प्रचार की बड़ी आवश्यकता है जो राष्ट्रीय संहार के शस्त्रों से सुसज्जित है। यदि आज सत्य और अहिंसा को अपना ले, तो मानव जाति सच्चा सुख प्राप्त कर सकती है।

—भगवान् महावीर स्मृति ग्रन्थ आगरा पृ०, २८१।
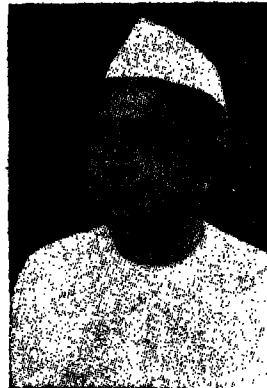
श्री मंगलदास जी गवर्नर उड़ीसा

भगवान् महावीर का प्रभाव

श्री लालबहादुर शास्त्री, मंत्री भारत सरकार

★

रिश्वत, बेईमानी, अत्याचार अवश्य नष्ट हो जावें यदि हम भगवान महावीर की सुन्दर और प्रभावशाली शिक्षाओं का पालन करें। बजाय इसके कि हम दूसरों को बुरा कहें और उन में दोष निकालें। अगर भगवान् महावीर के समान हम सब अपने दोषों और कमजोरियों को दूर करलें तो सारा संसार खुद-ब-खुद सुधर जाये।

—वर्द्धमान देहली, अप्रैल १९५३, पृ० ५९।

मुक्ति का सबसे महान् ध्येय

हिज हाइनेस, महाराज साहब
सिंधिया राज-प्रमुख मध्य भारत

जैन धर्म में जीवन की सार्थकता का सब से महान् ध्येय निर्वाण तथा मुक्ति को ही मानते हैं। जिनके प्राप्त करने से सांसारिक बन्धनों, लौकिक भावनाओं तथा जीवन के आवागमन से मोक्ष मिल जाता है।

—जैन गजट देहली,
२४-५-५१

जैनधर्म व्यवहारिक, आस्तिक तथा स्वतंत्र है

श्रीयुत लक्ष्मण रघुनाथ भिडे

अन्य धर्मों के विद्वानों ने अज्ञानता और ईर्ष्या होने के कारण टीकाओं द्वारा भारतवर्ष में जैनधर्म के अनुसार अज्ञानता फैला दी है हालांकि जैनधर्म पूर्णरूपसे व्यवहारिक और आस्तिक तथा स्वतंत्र धर्म है।

—भ० महावीर का आदर्श
जीवन पृ० ३९

संसार के कल्याण का मार्ग जैन धर्म

माननीय श्री गोविन्दवल्लभ पन्त

जैनियों ने लोक सेवा की भावना से भारत में अपना एक अच्छा स्थान बना लिया है। उनके द्वारा देश में कला और उद्योग की काफी उन्नति हुई है। उनके धर्म और समाज सेवा के कार्य सार्वजनिक हित की भावना से ही होते रहे हैं और उनके कार्यों से जनता के सभी वर्गों ने लाभ उठाया है।
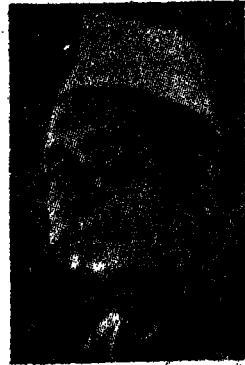
जैन धर्म देश का बहुत प्राचीन धर्म है। इसके सिद्धान्त महान् हैं, और उन सिद्धान्तों का मूल्य उद्धार, अहिंसा और सत्य है। गांधी जी ने अहिंसा और सत्य के जिन सिद्धान्तों को लेकर जीवन भर कार्य किया वही सिद्धान्त जैन धर्म की प्रमुख वस्तु है। जैन धर्म के प्रतिष्ठापकों तथा महावीर स्वामी ने अहिंसा के कारण ही सबको प्रेरणा दी थी।

जैनियों की ओर से कितनी ही संस्थायें खुली हुई हैं उनकी विशेषता यह है कि सब ही बिना किसी भेद भाव के उनसे लाभ उठाते हैं, यह उनकी सार्वजनिक सेवाओं का ही फल है।

जैनधर्म के आदर्श बहुत ऊँचे हैं। उनसे ही संसार का कल्याण हो सकता है। जैनधर्म तो करुणा-प्रधान धर्म है। इसलिये जैन चींटी तक की भी रक्षा करने में प्रयत्नशील है। दया के लिये हर प्रकार का कष्ट सहन करते हैं। उनमें मनुष्यों के प्रति असमानता के भाव नहीं हो सकते।

मैं आशा करता हूँ कि देश और व्यापार में जैनियों का जो महत्त्वपूर्ण भाग है वह सदा रहेगा।

—जैन सन्देश आगरा १२-२-१६५१ पृ० २

जैन विचारों की छाप

डा० सम्पूर्णानन्द जी मंत्री उ. प्र.

भारतीय संस्कृति के संवर्द्धन से उन लोगों ने उल्लेखनीय भाग लिया है जिनको जैन-शास्त्रों से स्फूर्ति प्राप्त हुई थी। वास्तु कला, मूर्ति कला, वाङ्मई सब पर ही जैन विचारों की गहरी छाप है। जैन विद्वानों और श्रावकों ने जिस प्राण-पण से, अपने शास्त्रों की रक्षा की थी वह हमारे इतिहास की अमर कहानी है। हमें जैनविचार धारा का परिचय करना ही चाहिये।

—जैनधर्म दि०जै० पृ०११

जैनधर्म का रूप गाँधीवाद

जैन धर्म ने संसार को अहिंसा का संदेश दिया राष्ट्रपिता श्री महात्मा गांधी के हाथों में यह सद्गुण शक्तिशाली शस्त्र बन गया, जिसके द्वारा उन्होंने ऐसी आश्चर्य सफलतायें प्राप्त कीं जिन्हें आज तक विश्व ने देखा ही न था। क्या यह कहना उचित न होगा कि गांधीवाद जैन धर्म का ही दूसरा रूप है। जिस हद तक जैनधर्म में अहिंसा और संन्यास का पालन किया गया है वह त्याग की एक महान् शिक्षा है।

श्री पी. एम. कुमार स्वामी राजा
प्रधान मन्त्री मद्रास

—वीर देहली

भगवान् महावीर की शिक्षाओं से विश्व का कल्याण

★

भगवान् महावीर स्वामी ने अपने जीवन में पाँच महाव्रतों पर ध्यान दिया था। ये पांच महाव्रत अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह हैं। जैन धर्म के साधुओं का इस समय में भी जो गौरव प्रकट होता रहता है उनके अपरिग्रह और कठिन तपस्या का प्रभाव है। श्री महावीर स्वामी ने शील अथवा अपरिग्रह पर विशेष जोर दिया हम इन पांचों व्रतों को अपने जीवन में उतार सकते हैं। मन, बचन कार्य से किसी की अहिंसा न करना आचार विचार और सत्य पर दृढ़ रहना इससे आपका स्वयं अपना ही नहीं बल्कि विश्व का कल्याण साधा जा सकता है।

महाराजा भावनगर, गवर्नर मद्रास

जहरीले जानवरों को जीने का हक़

भगवान् देव आत्मा जी महाराज

किसी जहरीले जानवर सांप, बिच्छु वगैरह को देख कर फौरन उसको मारने के लिए तैयार हो जाना कभी ठीक नहीं है जब कोई जहरीला जानवर तुम पर हमला करे और जान की हिफाजत किसी और तरीके से न हो सकती हो तो जान की हिफाजत की खातिर उसे मारना मुनासिब हो सकता है वरना नहीं। यह जमीन केवल तुम्हारी नहीं है सांप, बिच्छू आदि भी कभी २ इसपर से गुजर सकते हैं। इस लिये उन को शान्ति से गुजर जाने दो या डरा कर अपनी जगह से भगा दो। याद रक्खो साँप आदि को भी तब तक जीने का हक हासिल है जब तक वह स्वयं खुद दूसरे की जान पर हमला करे।

—भ० देवआत्मा की जीवन कथा भाग २ पृ० ६७

जैन इतिहास की आवश्यकता

प्रो० श्री सत्यकेतु विद्यालंकार, गुरुकुल कांगड़ी

प्राचीन भारतीय इतिहास का जो पता आज-कल चल रहा है, उसमें जैन राजाओं राजमन्त्रियों और सैनापतियों आदि के जबरदस्त कारनामे मिलते जा रहे हैं अब ऐतिहासिक विद्वानों के लिये जैन इतिहास की जरूरत पहिले से बहुत बढ़ गई है।

—अहिंसा और कायरता पृ० २८

महावीर की शिक्षा से शान्ति

हैदराबाद सत्याग्रह के प्रथम डिक्टेटर
श्री महात्मा नारायण स्वामी

भगवान् महावीर ने दुनिया को सच्चा सुख और शान्ति देने वाली अहिंसा-धर्म की शिक्षा दी। पश्चिमी देश के लोग अहिंसा पर विश्वास नहीं रखते यही कारण है कि वहां लड़ाई के बादल उठते रहते है।

अहिंसाप्रचारक भ. महावीर

ला० दुनीचन्द प्रधान महर्षि स्वामी
दयानन्द सालोपण मिशन होशियारपुर

भगवान् महावीर उन सबसे बड़े पूज्य महापुरुषों में से हैं जिन्होंने अहिंसा का जबरदस्त प्रचार किया। मेरा तो यह विश्वास है कि संसार में सच्चे सुख की प्राप्ति बगैर अहिंसा के असम्भव है।

वर्द्धमान् महावीर के सम्बन्ध में जो भी लिखा जाय कम है

महात्मा भगवान दीन जी

भरी जवानी में भरे घर और भरपूर भण्डार को छोड़ चल देने वाले यथानाम तथागुण वर्द्धमान् के बारे में जो लिखा मिलता है वह सुनने में बढ़ा कर लिखा गया सा जान पड़ता है; परन्तु असल में उनके भीतर जलती ज्वाला के सामने वह बढ़कर लिखा हुआ भी कम रह जाता है। —वीर देहली १७-४-१९४८ पृ० ७।

जैन धर्म का अपरिग्रहवाद

त्यागमूर्ति गोस्वामी श्री गणेशदत्त जी प्रधान मंत्री सनातन धर्म सभा

इस सचाई से कौन इन्कार कर सकता है कि अपरिग्रह से जीवन
की उन्नति होती है। ब्राह्मण और संन्यासी का दर्जा
समाज की दृष्टि में इसी लिये सबसे ऊँचा
है। जैन धर्म में इस अपरिग्रह
को बहुत ऊँची पदवी
मिल सकी है।

साइंस के सबसे पहले जन्मदाता भ० महावीर

रिसर्च स्कॉलर पं० माधवाचार्य

जैन फ्लॉसफरों ने जैसा पदार्थ के सूक्ष्मतत्व का विचार किया है उसको देख कर आजकल फ्लॉसफर बड़े आश्चर्य में पड़ जाते हैं, वे कहते हैं कि महावीर स्वामी आजकल की साइन्स के सब से पहले जन्मदाता हैं।

—अनेकान्त सम्वत् १९८६ पृ० १७२।

अहिंसा के महान् प्रचारक भगवान् महावीर

बौद्धभिक्षु प्रो० श्री धर्मानन्द जी, कौशंबी

भगवान् महावीर
ने पूरे १२ वर्ष के
तप और त्याग के बाद
अहिंसा का संदेश दिया। उस समय
हिंसा का अधिक जोर था। हर घर में यज्ञ होता था।
यदि उन्होंने अहिंसा का संदेश न दिया होता तो आज भारत में
अहिंसा का नाम न लिया जाता। —भ. म. का आदर्श जीवन पृ. १२

मांस और लहू खुदा को नहीं पहुँचता

हिज हाइनेस राइट ऑनरेबल सर आगा खां

जानवरों का मांस या लहू खुदा को नहीं पहुंचता तो उस के नाम पर बेगुनाह जीवों की हत्या क्यों की जावे ?

—मांसाहार भाग २ पृ० ६२।

केवल अहिंसा से शान्ति

डा० खां साहब

मुझे दृढ़ विश्वास है कि केवल अहिंसा से ही मनुष्य को सुख और शान्ति प्राप्त हो सकती है।

—वीर भारत १७-७-४१ पृ० ८।

अहिंसा से सुख और शान्ति

सरहदी गांधी श्री अब्दुल गफ्फार खां

यदि जनता सच्चे हृदय से अहिंसा का व्यवहार करने लग जाय तो संसार को अवश्य सुख और शान्ति प्राप्त हो जाय।

—जैन संसार, मार्च १९४७ पृ० ६।

जैन समाज को सहयोग

श्रीमान् भाई परमानन्द जी

क़ौमी राष्ट्रीय मजबूत और सङ्गठित बनाने में जैन समाज की मदद करके अपने आप को मजबूत और सङ्गठित समझना चाहिये।

—वीर १२-५-४४ पृ० ५

जैन धर्म की आवश्यकता

सरदार जोगेन्द्रसिंह भूतपूर्व शिक्षामन्त्री भारत सरकार

जैन धर्म प्रेम, अहिंसा और सङ्गठन सिखाता है। जिस की आज के संसार को बड़ी आवश्यकता है।

—वीर देहली २०-५-४२ पृ० १५८।

जैन धर्म प्रशंसा योग्य है

ख्वाजा हसन नजामी

जैन धर्म प्राचीन धर्म है। मेरी अन्तर आत्मा कहती है कि जैन धर्म के नियम प्रशंसा तथा स्वीकार करने योग्य हैं।

—मांसाहार भाग २ पृ० ६२।

कर्मों को जीतने वाले भगवान् महावीर

डा. ताराचंदजी शिक्षामंत्री भारतसरकार

महावीर स्वामी ३० वर्ष की भरी जवानी में घर बार त्याग कर साधु बन गये थे। उन्होंने आत्मध्यान से इन्द्रियों को वश कर के घोर तपस्या की और ४२ वर्ष की आयु में राग द्वेष के बन्धनों से मुक्त होकर मार्फत इलाही (केवल ज्ञान) प्राप्त किया और कर्मरूपी शत्रुओं को जीत कर अर्हन्त तथा जिनेन्द्र की उत्तम पदवी प्राप्त की।

—अहले हिन्द की मुख्तसर तारीख़

पापों को दूर करने का उपाय

डा. अमरनाथ झा प्रधान यू. पी. सर्विस कमीशन

अहिंसा धर्म का पालना दुनिया के पापों को दूर करके सब से बड़ा पुण्य प्राप्त करना है।

—जैनसंसार देहली, मार्च सन् ४७ पृ० ६

वीर का तप त्याग और अहिंसा

श्रीयुत् महात्मा आनन्द सरस्वती

मुझे भगवान् महावीर के जीवन में तीन बातें बहुत सुन्दर नजर आती हैं —

त्याग तप अहिंसा

भगवान् महावीर के बाद लोग इतने प्रमादवश हो गये कि त्याग-तप अहिंसा उनको कायरता नजर आने लगी। मैंने जैन ग्रन्थों का स्वाध्याय किया है। श्री रत्न-करण्ड श्रावकाचार में मुझे तीन श्लोक नजर पड़े जिन में गृहस्थी के लिये स्पष्ट तौर पर केवल एक प्रकार की संकल्पी हिंसा का त्याग बताया गया है जो राग द्वेष के भावों से जान बूझकर की जावे। उद्यमी हिंसा जो व्यापार में होती है, आरम्भी हिंसा जो घरेलु कार्यों पर होती है तथा विरोधी हिंसा जो अपने या दूसरे के बचाव माल, धन, इज्जत की रक्षा या देश सेवा में होती है। इन तीनों प्रकार की हिंसा का गृहस्थ को त्याग नहीं बताया। वेद भगवान् का उपदेश भी यही है कि किसी के साथ राग-द्वेष से बात न करो। महर्षि दयानंद के जीवन में यही तीन बातें रोशन हैं:—त्याग, तप, परोपकार।

भ० महावीर के जीवन के भी यही तीन गुण बहुत प्यारे लगते हैं। आज के संसार को इनकी बहुत जरूरत है, लेकिन

दुनिया के सामने इस वक्त ये तीन चीजें हैं:—

भोग तन आसानी खुदगर्जी

यह ठीक त्याग अहिंसा के या परोपकार के उलटे हैं। जब दुनिया उलटो जा रही हो तो इसका दुखी होना कुदरती बात है। सुख तभी प्राप्त होगा जब संसार फिर उसी त्याग तप और अहिंसा का पालन करे।

卐

देश की रक्षा करने वाले जैनवीर

महामहोपाध्याय रायबहादुर पं० गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा

जैन धर्म में दया प्रधान होते हुये भी यह लोग वीरता में दूसरी जातियों से पीछे नहीं रहे। राजस्थान में मन्त्री आदि अनेक ऊंची पदवियों पर सैंकड़ों वर्षों तक अधिक जैनी ही रहे हैं, और उन्होंने अहिंसा धर्म को निभाते हुये वीरता के ऐसे अनेक कार्य किये हैं जिनसे इस देश की प्राचीन उदार कला की उत्तमता की रक्षा हुई। उन्होंने देश की आपत्ति के समय महान् सेवायें कीं और उसका गौरव बढ़ाया।

—भूमिका राजपूताने के जैन वीर पृ० १४

राष्ट्रीय, सार्वभौमिक तथा लोकप्रिय जैनधर्म

डा० श्री कालीदास नाग वाइस चाँसलर कलकत्ता यूनिवर्सिटी

•

जैनधर्म किसी खास जाति या सम्प्रदाय का धर्म नहीं है बल्कि यह अन्तर्राष्ट्रीय, सार्वभौमिक तथा लोकप्रिय धर्म है।

जैन तीर्थंकरों की महान् आत्माओं ने संसार के राज्यों के जीतने की चिन्ता नहीं की थी, राज्यों को जीतना कुछ ज्यादा कठिन नहीं है, जैन तीर्थंकरों का ध्येय राज्य जीतने का नहीं है बल्कि स्वयं पर विजय प्राप्त करने का है। यही एक महान् ध्येय है, और मनुष्य जीवन की सार्थकता इसी में है। लड़ाइयों से कुछ देर के लिये शत्रु दब जाता है, दुश्मनी का नाश नहीं होता। हिंसक युद्धों से संसार का कल्याण नहीं होता। यदि आज किसी ने महान् परिवर्तन करके दिखाया है तो वह अहिंसा सिद्धान्त ही है। अहिंसा सिद्धान्त की खोज और प्राप्ति संसार के समस्त खोजों और प्राप्तियों से महान् है।

यह (Law of Gravitation) मनुष्य का स्वभाव है नीचे की ओर जाना। परन्तु जैन तीर्थंकरों ने सर्वप्रथम यह बताया कि अहिंसा का सिद्धान्त मनुष्य को ऊपर उठाना है।

आज के संसार में सब का यही मत है कि अहिंसा सिद्धान्त का महात्मा बुद्ध ने आज से २५०० वर्ष पहले प्रचार किया। किसी इतिहास के जानने वाले को इस बात का बिल्कुल ज्ञान नहीं है कि महात्मा बुद्ध से करोड़ों वर्ष पहले एक नहीं बल्कि अनेक जैन तीर्थंकरों ने इस अहिंसा सिद्धान्त का प्रचार किया है। जैन धर्म बुद्ध धर्म से करोड़ों वर्ष पहिले का है। मैंने प्राचीन जैन क्षेत्रों

और शिला लेखों के सलाइड्ज तैयार करके इस बात को प्रमाणित करने का यत्न किया है जैन धर्म प्राचीन धर्म है जिसने भारत संस्कृति को बहुत कुछ दिया परन्तु अभी तक संसार की दृष्टि में जैन धर्म को महत्त्व नहीं दिया गया। उनके विचारों में यह केवल बीस लाख आदमियों का एक छोटा सा धर्म है। हालांकि जैन धर्म एक विशाल धर्म है और अहिंसा पर तो जैनियों को पूर्ण अधिकार प्राप्त है।

—अनेकान्त वर्ष १० पृ० २२४

जैन धर्म की आवश्यकता

डा. राईस डेविस एम० ए०, डी० लिट०

यह बात अब निश्चित है कि जैन धर्म बौद्ध धर्म से
निःसन्देह बहुत पुराना है और बुद्ध के समकालीन
महावीर द्वारा उस का पुनः संजीवन हुआ है
और यह बात भी भली प्रकार निश्चित
है जैन मत के मन्तव्य बहुत ही
जरूरी और बौद्ध मत के
मन्तव्यों से बिल्कुल
विरुद्ध हैं।

—इन्साइ क्लोपेडिया ब्रिटेनि का० व्हाल्यूम २६

जैन धर्म की विशेषता

महामहोपाध्याय सत्य संप्रदायाचार्य
श्री स्वामी राममिश्र जी शास्त्री,
प्रोफेसर संस्कृत कॉलिज बनारस

जैन मत तब से प्रचलित हुआ है जब से संसार में सृष्टि का आरम्भ हुआ। जैन दर्शन वेदान्त आदि दर्शनों से पूर्व का है। जैन धर्म का स्याद्वादी किला है. जिस के अन्दर वादी-प्रतिवादियों के मायामयी गोले नहीं प्रवेश कर सकते। बड़े-बड़े नामी आचार्यों ने जो जैन मत का खण्डन किया है वह ऐसा है जिसे सुन, देखकर हँसी आती है।

—सम्पूर्ण लेख जैनधर्म महत्व भाग १, पृ० १५३–१६५।

महामहो० डा. श्री सतीशचन्द्र भूषण
प्रिंसिपल गवर्नमेण्ट संस्कृत
कालिज, कलकत्ता

भगवान् वर्द्धमान महावीर ने भारतवर्ष में आत्म-संयम के सिद्धान्त का प्रचार किया। प्राकृत भाषा अपने संपूर्ण मधुमय सौंदर्य को लिये हुये जैनियों की रचना में ही प्रकट हुई है।

जैन साधु एक प्रशंसनीय जीवन व्यतीत करने के द्वारा पूर्ण रीति से व्रत नियम और इन्द्रिय संयम का पालन करता हुआ जगत के सन्मुख आत्म-संयम का एक बड़ा ही उत्तम आदर्श प्रस्तुत करता है।

—जैनधर्म पर लोक० तिलक और प्रसिद्ध विद्वानों का अभिमत पृ० १२।
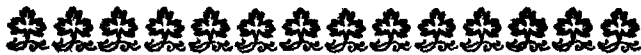
वैदिक काल में जैन धर्म

श्री स्वामी विरुपाक्ष वडियर धर्मभूषण, पंडित, वेदतीर्थ, विद्यानिधि, एम० ए०,
प्रो० संस्कृत कालिज, इन्दौर

★

ईर्षा, द्वेष के कारण धर्म प्रचार को रोकने वाली विपत्ति के रहते हुये जैन शासन कभी पराजित न होकर सर्वत्र विजयी ही होता रहा है। इस प्रकार जिस का वर्णन है वह 'अर्हन्त देव' साक्षात् परमेश्वर (विष्णु) स्वरूप हैं। इस के प्रमाण भी आर्यग्रन्थों में पाये जाते हैं। उपरोक्त अर्हन्त परमेश्वर का वर्णन वेदों में भी पाया जाता है। हिन्दुओं के पूज्य वेद और पुराण आदि ग्रन्थों में स्थान-स्थान पर तीर्थंकरों का उल्लेख पाया जाता है, तो कोई कारण नहीं कि हम वैदिक काल में जैन धर्म का अस्तित्व न मानें।

पीछे से जब ब्राह्मण लोगों ने यज्ञादि में बलिदान कर "मा हिंस्यात् सर्वभूतानि" वाले वेद-वाक्य पर हरताल फेर दी उस समय जैनियों ने हिंसामय यज्ञ, यागादि का उच्छेद करना आरम्भ किया था बस, तभी से ब्राह्मणों के चित्त में जैनों के प्रति द्वेष बढ़ने लगा, परन्तु फिर भी भागवतादि महापुराणों में ऋषभदेव के विषय में गौरव युक्त उल्लेख मिल रहा है।

—जैन धर्म पर लो० तिलक और प्रसिद्ध विद्वानों का अभिमत
पृ० १७।

परमहंस श्री वर्द्धमान महावीर

महात्मा श्री शिवव्रतलालजी वर्मन, एम. ए.

हिन्दुओं! जैनी हम से जुदा नहीं हैं हमारे ही गोस्त पोस्त हैं। उन नादानों की बातों को न सुनो जो गलती से नावाकफियत से, या तास्सुब से कहते हैं "हाथी के पाँव तले दब जाओ मगर जैन मन्दिर के अन्दर अपनी हिफाजत न करो" इस तास्सुब और तंगदिली का कोई ठिकाना है ? हिन्दू धर्म तास्सुब का हामी नहीं है तो फिर इनसे ईर्ष्या भाव क्यों ? अगर इनके किसी ख्याल से तुम्हें माफकत नहीं है तो सही, कौन सब बातों में किसी से मिलता है ? तुम उनके गुणों को देखो, किसी के कहे-सुने पर न जाओ। जैन धर्म तो एक अपार समुद्र है जिस में इन्सानी हमदर्दी की लहरें जोर शोर से उठती हैं। वेदों की श्रुति 'अहिंसा परमोधर्म' यहां ही अमली सूरत अख्तयार करती हुई नजर आती है।

श्री महावीर स्वामी दुनिया के जबरदस्त रिफार्मर और ऊँचे दर्जे के प्रचारक हुये हैं। यह हमारी कौमी तारीख के कीमती रत्न हैं। तुम कहां ? और किन में धर्मात्मा प्राणियों की तलाश करते हो ? इनको देखो इनसे बेहतर साहिबेकमाल तुम को कहां मिलेगा ? इनमें त्याग था, वैराग था, धर्म का कमाल था। यह इन्सानी कमजोरियों से बहुत ऊँचे थे। इनका स्थान 'जिन' है जिन्होंने मोह माया, मन और काया को जीत लिया था। ये तीर्थंकर हैं।

परमहंस हैं। इनमें बनावट नहीं थी, कमजोरियों और ऐबों को छुपाने के लिये इनको किसी पोशाक की जरूरत नहीं हुई। इन्होंने तप, जप और योग का साधन करके अपने आप को मुकम्मल बना लिया था। तुम कहते हो ये नंगे रहते थे, इसमें ऐब क्या[1] ? परमअन्तर्निष्ठ, परमज्ञानी और कुदरत के सच्चे पुत्र को पोशाक की जरूरत कब थी ? 'सरमद' नाम का एक मुसलमान फकीर देहली की गलियों में घूम रहा था, औरंगजेब बादशाह ने देखा तो उसको पहनने के लिये कपड़े भेजे। फकीर वली था कहकहा मार कर हँसा और बादशाह की भेजी हुई पोशाक को वापिस कर दिया और कहला भेजा :—

> आँकस कि तुरा कुलाह सुल्तानी दाद।
> मारा हम ओ अस्बाब परेशानी दाद॥
> पोशानीद लबास हरकरा ऐबे दीद।
> बे ऐबा रा लबवास अयानी दाद[2]॥

यह लाख रुपये का कलाम है, फकीरों की नग्नता को देख कर तुम क्यों नाक भौं सुकेड़ते हो ? इनके भाव को नहीं देखते। इस में ऐब की क्या बात है ? तुम्हारे लिये ऐब हो इन के लिये तो तारीफ की बात है[3]।

---

१. नग्नता की शिक्षा केवल जैन धर्म में ही नहीं बल्कि हिन्दुओं, सिक्खों, मुसलमानों आदि के साधुओं, दरवेशों में भी है। तफसील '२२ परीषह जय' खंड २ में देखिये।

२. जिसने तुमको बादशाही ताज दिया, उसी ने हमको परेशानी का सामान दिया। जिस किसी में कोई ऐब पाया, उसको लिबास पहिनाया और जिन में ऐब न पाये उनको नंगेपन का लिबास दिया।

३. लेखक के पूरे लेख को जानने के लिए जैन धर्म का महत्त्व (सूरत) भाग १ पृ॰१-१४।

जार्ज बर्नार्डशा की जैनी होने की इच्छा

विश्व के अप्रतिम विद्वान् जार्ज बर्नार्डशा

जैन धर्म के सिद्धान्त मुझे अत्यन्त प्रिय हैं। मेरी आकांक्षा है कि मृत्यु के पश्चात् मैं जैन परिवार में जन्म धारण करूं[1]।

---

१. जैन शासन, पृ० ४२० ।

जैन धर्म से विरोध उचित नहीं

मुख्योपाध्याय श्री वरदाकान्त एम० ए०

हमारे देश में जैन धर्म के सम्बन्ध में बहुत से भ्रम फैले हुये हैं। साधारण लोग जैन धर्म को सामान्य जानते हैं कुछ इसको नास्तिक समझते हैं, अनेकों की धारणा में जैन धर्म अत्यन्त अशुचि तथा नग्न परमात्मा पूजक है। कुछ शङ्कराचार्य के समय जैन धर्म का आरम्भ होना स्वीकार करते हैं, कुछ महावीर स्वामी अथवा पार्श्वनाथ को जैन धर्म का प्रवर्तक बताते हैं, कुछ जैनधर्म की अहिंसा पर कायरता का इलजाम लगाते हैं, कुछ इसको हिन्दू अथवा बौद्ध धर्म की शाखा समझते हैं कुछ कहते हैं, कि यदि मस्त हाथी भी तुम पर आक्रमण करे तो भी प्राण रक्षा के लिये जैन मन्दिरों में प्रवेश मत करो[1]। कुछ वेदों और पुराणों को स्वीकार न करने तथा ईश्वर को कर्ता धर्ता और कर्मों का फल देने वाला न मानने के कारण जैनियों से विरोध करते रहते हैं।

Prof:- Weber ने History of Indian Literature में स्वीकार किया है "जैनधर्म सम्बंधी जो कुछ हमारा ज्ञान है वह सब ब्राह्मण शास्त्रों से ज्ञात हुआ है।" सब पश्चिमी विद्वान् सरल स्वभाव से अपनी अज्ञानता प्रकाशित करते रहे हैं। इस लिये उनके मत की परीक्षा की कुछ आवश्यकता नहीं है।

शंकराचार्य के समय जैन धर्म का चालू होना इस लिए सत्य

---

१. न पठेद्यावनी भाषां प्राणैः कण्ठ गतैरपि।
दस्तिना पीड्यमानोऽपि न गच्छेज्जिनमंदिरम्॥
अर्थात्—प्राण भी जाते हों तो भी म्लेच्छों की भाषा न पढ़ो और हाथी से पीड़ित होने पर भी जैन मन्दिर में न जाओ।

नहीं, क्योंकि यह स्वयं जैन धर्म को अति प्राचीन काल से प्रचलित होना स्वीकार करते हैं[1]।

ऐतिहासिक विद्वान् Lethbridge and Mounstrust Elphinstone का कथन कि छठी शताब्दी से प्रचलित है, इस लिए सत्य नहीं कि छठी शताब्दी में होने वाले भगवान् महावीर जैन धर्म के प्रथम प्रचारक[2] नहीं थे, चौबीसवें तीर्थंकर थे। जैन-धर्म उनसे बहुत पहले दिगम्बर ऋषि ऋषभदेव ने स्थापित किया था[3]।

Wilson Lesson, Bärth and Weber आदि विद्वानों का कहना कि जैन धर्म बौद्ध धर्म की शाखा है, इस लिए सत्य नहीं कि कोई भी हिन्दू ग्रन्थ ऐसा नहीं कहता। हनुमान नाटक में तो जैन धर्म बौद्ध धर्म को भिन्न भिन्न सम्प्रदाय बताये हैं[4]। श्री मद्‌भागवत् में बुद्ध को बौद्ध धर्म का तथा ऋषभदेव को जैन-धर्म का प्रथम प्रचारक कहा है। महर्षि व्यास जी ने महाभारत[5] में जैन और बौद्ध धर्म को दो स्वतंत्र समुदाय बताया है। जब महात्मा बुद्ध स्वयं महावीर स्वामी को जैन धर्म का चौबीसवां

---

१. वेदान्त सूत्र ३३।

२. जैन धर्म की प्राचीनता खण्ड नं० ३।

३. जैन धर्म के संस्थापक श्री ऋषभदेव खण्ड ३।

४. यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो।
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्तेति नैयायिकाः।
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरताः कर्मेति मीमांसकाः।
सोऽयं वो विदधातु वांछितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः॥ ३॥
—हनुमान नाटक र लक्ष्मी वैंक्टेश्वर प्रेस अ० १

५. महाभारत, अश्वमेधपर्व, अनुगीति ४६, अध्याय २, १२ श्लोक।

तीर्थंकर स्वीकार करते हैं, तो जैन धर्म बौद्ध धर्म से अवश्य ही बहुत प्राचीन है और बौद्ध धर्म की शाखा का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता[1]।

जैन धर्म हिन्दू धर्म से बिल्कुल स्वतंत्र है, उसकी शाखा या रूपान्तर नहीं है[2], नास्तिक नहीं है[3] नग्नता तो वीरताका चिन्ह है[4], अहिंसा वीरों का धर्म है[5]। जैन धर्म के पालने वाले बड़े बड़े सम्राट और योद्धा हुये हैं[6]।

हम कौन हैं? कहाँ से आये? कहां जायेंगे? जगत क्या है? इन प्रश्नों के उत्तर में जैन धर्म कहता है कि आत्मा, कर्म और जगत अनन्त है[7]। इनका कोई बनाने वाला नहीं[8]। आत्मा अपने कर्मफल का भोग करता है, हमारी उन्नति, हमारे कार्यों पर ही निर्भर है। इस लिए जैन धर्म ईश्वर को कर्मानुयायी, पुरस्कार और शान्तिदाता स्वीकार नहीं करता[9]।

---

१. महात्मा बुद्ध पर वीर प्रभाव, खंड २।

२ जैन धर्म और हिन्दु धर्म, खंड ३।

३. जैन धर्म नास्तिक नहीं, खण्ड १।

४. वाइस परिषयजय. खण्ड २।

५. जैन धर्म वीरों का धर्म है, खंड ३।

६ जैन सम्राट, खण्ड ३।

७-८. म० महावीर का धर्मोपदेश खण्ड २।

९. लेखक का पूरा लेख, "जैन धर्म माहात्म्य" (सूरत) भाग १ पृ. १११ से १२५।

जैन धर्म इतिहास का खजाना

डा. जे. जी. बुल्हर, सी. आई. ई., एल-एल डी.

जैन धर्म के प्राचीन स्मारकों से भारतवर्ष के
प्राचीन इतिहास की बहुत जरूरी और
उत्तम सामग्री प्राप्त होती है।
जैन धर्म प्राचीन सामग्री का
भरपूर खजाना है।

—भारतवर्ष के प्राचीन जमाने के हालात, पृ० ३०७।

जैनधर्म गुणों का भण्डार

प्रो० डा० मैक्समूलर एम० ए०, पी० एच० डी०

जैन धर्म अनन्तानन्त गुणों का भण्डार है जिस में
बहुत ही उच्चकोटि का तत्व-फिलॉस्फी भरा हुआ
है। ऐतिहासिक, धार्मिक और साहित्यिक
तथा भारत के प्राचीन कथन जानने
की इच्छा रखने वाले विद्वानों
के लिये जैन-धर्म का
स्वाध्याय बहुत
लाभदायक
है।

—इन्साइक्लो पीडिया

जैन इतिहास स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है

रेवरेन्ज जे० स्टीवेन्सन महोदय

भारतवर्ष का अधःपतन जैन धर्म के अहिंसा सिद्धान्त के कारण नहीं हुआ था, बल्कि जब तक भारतवर्ष में जैन धर्म की प्रधानता रही थी, तब तक उसका इतिहास स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य है।

—जैन धर्म पर लो० तिलक और प्रसिद्ध विद्वानों का अभिमत, पृ० २७।

जैनधर्म से पृथ्वी स्वर्ग हो सकती है

डा० चारो लोटा क्रौज संस्कृत प्रोफैसर बर्लिन यूनिवर्सिटी

जैन धर्म के सिद्धान्तों पर मुझे दृढ़ विश्वास है कि यदि सब जगह उनका पालन किया जाये तो वह इस पृथ्वी को स्वर्ग बना देंगे। जहां तहां शान्ति और आनन्द ही आनन्द होगा।

—जैन वीरों का इतिहास और हमारा पतन अन्तिम पृष्ठ।

यूरपियन फ्लॉसफर जैनधर्म की सचाई पर नतमस्तक हैं

Prof:- Dr. Von Helmuth Von Glasenapp, Univercity Berlin.

मैंने जैनधर्म को क्यों पसन्द किया? जैन धर्म हमें यह सिखाता है कि अपनी आत्मा को संसार के झंझटों से निकाल कर हमेशा की नजात किस प्रकार हासिल की जावे। जैन असूलों ने मेरे हृदय को जीत लिया और मैंने जैन फलॉस्फी का स्वाध्याय शुरू कर दिया है। आजकल यूरपियन फलासर जैन फलास्फी के क़ायल हो रहे हैं, और जैनधर्म की सचाई के आगे मस्तक झुका रहे हैं।

—रोजाना तेज देहली २०-१-१९२८।

जैन धर्म की प्राचीनता

डा० फुहरर

जैनियो के २२वें तीर्थंकर नेमिनाथ ऐतिहासिक पुरुष माने गये हैं। भगवद्गीता के परिशिष्ट में श्रीयुत् वरवे इसे स्वीकार करते हैं कि नेमिनाथ श्री कृष्ण के भाई थे। जब कि जैनियों के २२वें तीर्थंकर श्रीकृष्ण के समकालीन थे तो शेष इक्कीस तीर्थंकर श्रीकृष्ण के कितने वर्ष पहले होने चाहियें ? यह पाठक अनुमान कर सकते हैं।

एर्पीग्रेफिका इंडिका व्हाल्यूम २ पृष्ठ २०६–२०७।

डा० ऐन ए० बी० संट

यूरपियन ऐतिहासिक विद्वानों ने जैन धर्म का भली प्रकार स्वाध्याय नहीं किया इस लिये उन्होंने महावीर स्वामी को जैन धर्म का स्थापक कहा है। हालाँकि यह बात स्पष्ट रूप से सिद्ध हो चुकी है कि वे अन्तिम चौबीसवें तीर्थंकर थे। इनसे पहले अन्य तेईस तीर्थंकर हुये जिन्होंने अपने-अपने समय में जैन धर्म का प्रचार किया।

—जैन गजट भा० १० पृ ४

जैन धर्म ही सच्चा और आदि धर्म है

मि० आवे जे० ए० डवाई मिशनरी

निःसन्देह जैन धर्म ही पृथ्वी पर एक सच्चा धर्म है और यही मनुष्य मात्र का आदि धर्म है।

—डिस्क्रिप्सन ऑफ दी करैक्टर मैनर्ज एण्ड कस्टम्ज ऑफ दी पीपिल ऑफ इण्डिया।

अलौकिक महापुरुष भगवान महावीर

डा० अनेस्ट लायमैन जर्मनी

भगवान् महावीर अलौकिक महापुरुष थे। वे तपस्वियों में आदर्श, विचारकों में महान्, आत्म-विकास में अग्रसर दर्शनकार और उस समय की प्रचलित सभी विद्याओं में पारङ्गत थे। उन्होंने अपनी तपस्या के बल से उन विद्याओं को रचनात्मक रूप देकर जन समूह के समक्ष उपस्थित किया था। छः द्रव्य धर्मास्तिकाय (Fulcrum of Motion) अधर्मास्तिकाय (Fulcrum of Stationariness) काल (Time) आकाश (Space) पुद्गल (Matter) और जीव (Jiva) और उनका स्वरूप तत्व विद्या (Ontology) विश्वविद्या (Kosomology) दृश्य और अदृश्य जीवों का स्वरूप जीवविद्या (Biology) बताया। चैतन्य रूप आत्मा का उत्तरोत्तर आध्यात्मिक विकासस्वरूप मानस शास्त्र (Psychology) आदि विद्याओं को उन्होंने रचनात्मक रूप देकर जनता के सम्मुख उपस्थित किया। इस प्रकार वीर केवल साधु अथवा तपस्वी ही नहीं थे बल्कि वे प्रकृति के अभ्यासक थे और उन्होंने विद्वत्तापूर्ण निर्णय दिया।

—भगवान महावीर का आदर्श जीवन पृष्ठ १३-१४।

जैन धर्म की विशेषता

जर्मनी के महान् विद्वान् डा० जोन्ह सहर्टेल एम० ए०, पी. एच.डी.

मैं अपने देशवासियों को दिखलाऊँगा कि कैसे उत्तम तत्व और विचार जैनधर्म में हैं। जैन साहित्य बौद्धों की अपेक्षा बहुत ही बढ़िया है। मैं जितना २ अधिक जैनधर्म व जैन साहित्य का ज्ञान प्राप्त करता जाता हूँ, उतना उतना ही मैं उनको अधिक प्यार करता हूँ। —जैनधर्म प्रकाश (सूरत) पृ० ब।

भगवान् महावीर के समय का भारत

प्रज्ञाचक्षु पं० गोविन्दराय जी काव्यतीर्थ

भगवान् महावीर के समय में भारतवर्ष कई स्वतन्त्र राज्यों में बँटा हुआ था जिनमें कुछ गणतन्त्र राज्य थे तो कुछ राजतन्त्र। एक भी ऐसा प्रबल सम्राट न था जिसकी छत्र छाया में समस्त भारत रहा हो[1]। उस समय दक्षिण भारत का शासन वीर चूड़ामणि जीवन्धर करते थे, जो अपने विद्यार्थी जीवन से ही जैन धर्म के अनुयायी और प्रचारक थे[2]। इनके गुरु आर्यानन्दी भी जैनधर्मानुयायी थे[3]। जीवन्धर का समस्त जीवन-वृत्तान्त जैन साहित्य में वर्णित है[4]।

मगध देश का शासन महाराजा श्रेणिक बिम्बसार के हाथों में था, जो कुमारावस्था में बौद्ध थे, परन्तु अपनी पटरानी चेलना के प्रभाव से जैनधर्मानुयायी हो गये थे[5]। इनके दोनों पुत्र अभयकुमार[6] और वारीशयन[7] जैन मुनि होगये थे।

सिन्धुदेश अर्थात् गङ्गापार में दो राज्य थे। एक राज्य की राजधानी विशाली थी। जहां के स्वामी महाराजा चेटक थे, जो तेईसवें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ के तीर्थ के जैन साधुओं के प्रभाव से बड़े पक्के जैनी थे। उन्होंने यहां तक की प्रतिज्ञा कर रखी थी कि अपनी पुत्रियों का विवाह जैनधर्मावलम्बियों से ही करूंगा।

---

१. वीर देहली, १७ अप्रैल सन् १९४८ पृ० ८।
२. 'महाराजा जीवन्धर पर वीर प्रभाव' खण्ड २।
३-४. ऊपर का फुटनोट नं० १।
५ 'महाराजा श्रेणिक और जैन धर्म' खण्ड २।
६. 'राजकुमार अभयकुमार पर वीर प्रभाव' खण्ड २।
७. 'राजकुमार वारीशयन पर वीर प्रभाव' खण्ड २।

विदेह की दूसरी राजधानी का नाम वरणतिलका था। जिसके नरेश सम्राट जीवन्धर के नाना गोविन्दराज थे[1]।

उत्तर कौशल अर्थात् अवध के राजा प्रसेनजित थे। जिनकी राजधानी श्रावस्ती थी। जिन्होंने बौद्ध धर्म को छोड़ कर जैनधर्म अंगीकार कर लिया था[2]।

प्रयाग के आसपास की भूमि वत्सदेश कहलाती थी। इसका राजा शतानीक[3] था, इसकी राजधानी कौशुम्बी थी। यह राजा महावीर स्वामी से भी पहले जैनी था। इसकी रानी मृगावती विशाली के जैन सम्राट महाराजा चेटक की पुत्री थी। इस लिये महाराजा शतानीक भगवान महावीर के मावसा थे और उनके धर्मोपदेश के प्रभाव से यह राजपाट त्याग कर जैन साधु हो गये थे[4]।

कुण्डग्राम के स्वामी राजा सिद्धार्थ थे, जो भगवान् महावीर के पिता थे। ये भी वीर, महाप्रतापी और जैनी थे। इसी लिये महाराजा चेटक ने अपनी राजकुमारी त्रिशलादेवी का विवाह इनके साथ किया था।

अवन्ति देश अर्थात् मालवा राज्य की राजधानी उज्जैन थी। इसका राजा प्रद्योत था, जो जैनी था। इसकी वीरता का कालिदास ने भी अपने मेघदूत में उल्लेख किया है[5]:—

"प्रद्योतस्य प्रियदुहितरं वत्सराजोऽत्र जन्हे"।

दशार्ण देश अर्थात् पूर्वी मालवा का राजा दशरथ था। इसका वंश सूर्य और धर्म जैन था[6], इसकी राजधानी हेरकच्छ थी, जैनधर्मी

१-२ वीर, देहली, १७ अप्रैल १९४८, पृ० ८।

३ महाराजा शतानीक और उदयन चंद्रवंशी थे। इनके अस्तित्व का समर्थन वैष्णव धर्म का भागवत भी करता है। जिसके अनुसार इनकी वंशावली वीर देहली (१७-४-'४८) के पृष्ठ ८ पर देखिये।

४-६ ऊपर का फुटनोट नं० १-२।

होने के कारण महाराजा चेटक ने अपनी तीसरी राजकुमारी सुप्रभा का विवाह इनके साथ किया था[1]।

कच्छ अर्थात् पश्चिमी काठियावाड़ का राजा उद्दयन[2] था। इस की राजधानी रोरूकनगर थी। राजा चेटक की चौथी पुत्री प्रभावती इनके साथ ब्याही थी। महाराजा उद्दयन भी जैनी था[3]।

गाँधार अर्थात् कन्धार का राजा सात्यक था। यह भी जैन-धर्मानुयायी था। महाराजा चेटक की पांचवीं राजकन्या ज्येष्ठा की सगाई इनके साथ हुई थी, परन्तु विवाह न हो सका, क्योंकि सात्यक राजपाट को त्याग कर जैन साधु हो गया था[4]।

दक्षिणी केरल का राजा उस समय मृगाङ्क था और हंसद्वीप का राजा रत्नचूल था। कालिंग देश (उड़ीसा) का राजा धर्मघोष था। ये तीनों सम्राट जैनधर्मी थे[5]। धर्मघोष पर तो जैनधर्म का इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि राजपाट त्याग कर वह जैन मुनि हो गया था[6]।

अङ्गदेश अर्थात् भागलपुर का राजा अजातशत्रु तथा पश्चिमी भारत सिन्ध का राजा मिलिन्द व मध्य भारत का राजा दृढ़मित्र था जो जैनसम्राट श्री जीवन्धर का ससुर था[7]।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भगवान् महावीर के अनुशासन के प्रभाव से उस समय जैन धर्म अतिशय उन्नत रूप में था[8]।

१-२ फुटनोट नं० ३ पृष्ठ ११४।

३. 'महाराजा उद्दयन पर वीर प्रभाव' खण्ड २।

४-८. वीर, देहली, १७-४-४८, पृ० ८।

जैनधर्म नास्तिक नहीं है

रा० रा० श्री वासुदेव गोविंद आपटे बी० ए०

शंकराचार्य[1] ने जैनधर्म को नास्तिक कहा है कुछ और लेखक भी इसे नास्तिक समझते हैं लेकिन यह आत्मा, कर्म और सृष्टि को नित्य मानता है[2]। ईश्वर की मौजूदगी को स्वीकार करता है और कहता है कि ईश्वर तो सर्वज्ञ, नित्य और मङ्गलस्वरूप है। आत्माकर्म या सृष्टि के उत्पन्न करने या नाश करने वाला नहीं है[3]। और न ही हमारी पूजा, भक्ति और स्तुति से प्रसन्न होकर हम पर विशेष कृपा करेगा[4]। हमें कर्म अनुसार स्वयं फल मिलता है[5]। ईश्वर को कर्ता, या कर्मों का फल देने वाला न मानने के कारण यदि हम जैनियों को नास्तिक कहेंगे तो—

---

१. (क) जब से मैंने शंकराचार्य द्वारा जैन-सिद्धान्त का खण्डन पढ़ा है तब से मुझे विश्वास हुआ कि जैन सिद्धान्त में बहुत कुछ है, जिसे वेदान्त के आचार्यों ने नहीं समझा। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि यदि वे जैनधर्म को उसके असली ग्रन्थों से जानने का कष्ट उठाते तो उन्हें जैनधर्म से विरोध करने की कोई बात न मिलती।

—डा० गङ्गानाथ झाः जैनदर्शन तिथि १६ दिसम्बर १६३५ पृ० १८१।

(ख) बड़े बड़े नामी आचार्यों ने अपने ग्रन्थों में जो जैन मत खंडन किया है, वह ऐसा किया है जिसे सुन, देखकर हंसी आती है। महामहोपाध्याय स्वामी राममिश्र, जैनधर्म महत्त्व [सूरत] भा० १, पृ० १५३।

२-३. भ० महावीर का धर्मोपदेश, खंड २।

४. 'अर्हन्त भक्ति' खंड २।

५. 'कर्मवाद' खंड २।

"न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः ।
न कर्म फलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ।।
नादत्ते कस्यचित्पापं न कस्य सुकृतं विभुः ।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः[1] ।।"

—श्रीकृष्ण जीः श्रीमद्भगवद्गीता ।

ऐसा कहने वाले श्री कृष्ण जी को भी नास्तिकों में गिनना पड़ेगा । आस्तिक और नास्तिक यह शब्द ईश्वर के अस्तित्व-सम्बन्ध में व कर्तृत्वसम्बन्ध में न जोड़कर पाणिनीय ऋषि के सूत्रानुसार—

"परलोकोऽस्तीति मतिर्यस्यास्तीति आस्तिकः परलोको नास्तिती मतिर्यस्यास्तीति नास्तिकः[2] ।"

श्रद्धा करें तो भी जैनी नास्तिक नहीं हैं। जैनी परलोक स्वर्ग, नर्क और मृत्यु को मानते हैं इस लिये भी जैनियों को नास्तिक कहना उचित नहीं है[3] । यदि वेदों को प्रमाण न मानने के कारण जैनियों को नास्तिक कहो तो क्रिश्चन, मुसलमान, बुद्ध आदि भी 'नास्तिक' की कोटि में आ जायेंगे । चाहे आस्तिक व नास्तिक का

---

१. परमेश्वर जगत का कर्ता या कर्मों का उत्पन्न करने वाला नहीं है । कर्मों के फल की योजना भी नहीं करता । स्वभाव से सब होते हैं । परमेश्वर किसी का पाप या पुण्य भी नहीं लेता । अज्ञान के द्वारा ज्ञान पर पर्दा पड़ जाने से प्राणी मात्र मोह में पड़ जाता है ।

२. परलोक है ऐसी जिसकी मान्यता है वह आस्तिक है । परलोक नहीं है. ऐसी जिसकी मति है वह नास्तिक है ।

३. (i) 'दैष्टिकास्तिक नास्तिकः'—शाकटायनः वैयाकरण ३-२-६१
(ii) 'अस्ति परलोकादि मतिरस्य आस्तिकः तद्विपरीतो नास्तिकः'
—अभयचन्द्र सूरि
(iii) 'अस्ति नास्तिदिष्टं मतिः' —पाणिनीय व्याकरण ४-४-६०.

कैसा भी अर्थ[1] ग्रहण करें, जैनियों को नास्तिक सिद्ध नहीं किया जा सकता[2]।

---

१. निम्नलिखित प्रसिद्ध ग्रन्थों से सिद्ध है कि नास्तिक व आस्तिक का चाहे जो अर्थ लें जैनी नास्तिक नहीं हैं:—

(क) शाकटायन व्याकरण, ६-२-६१.

(ख) आचार्य पाणिनीयः व्याकरण, ४-४-६०.

(ग) हेमचन्द्राचार्य शब्दानुशासन, ६-४-६६.

(घ) शब्दस्तोममहानिधि कोष (Dictionary) पृ० १८५.

(ङ) अभिधान चिन्तामणि, कांड ३, श्लोक ५२६।

(च) प्रोफेसर हीरालाल कौशलः जैन प्रचारक, वर्ष ३२ अङ्क ६, पृ० २-४.

२. (i) Jainism is accused of being atheistic, but this is not so, because Jainism believe in Godhead and innumerable Gods.

—Prof. Dr M. Hafiz Syed: V O.A, Vol. III P. 9.

(ii) "Those who believe in a creator some times look upon Jainism as an atheistic religion but Jainism can not be so called as it does not deny the existence of God."—Mr. Herbert Warren:

—Digamber Jain, (Surat) Vol. IX P. 48-58

(iii) For further details see:—

(a) Jainism is not atheism, priced -/4/- published by Digamber Jain Parishad. Dariba Kalan Delhi.

(b) जैन धर्म महत्व (सूरत) भा० १ पृ० ५८-६१.

(c) Jain Parchark (Jain Orphanage, Darya Gang. Delhi) Vol. XXXII. Part: IX P. 3-4.

जैन धर्म और विज्ञान

Thirthankaras were professors of the Spiritual Science, which enables men to become God.

—What is Jainism ? P, 48.

श्री पं० सुमेरचन्द्र दिवाकर, न्यायतीर्थ

'आज कल दुनिया में विज्ञान (Science) का नाम बहुत सुना जाता है इसने ही धर्म के नाम पर प्रचलित बहुत से ढांगों की कलई खोली है, इसी कारण अनेक धर्म यह घोषणा करते हैं कि धर्म और विज्ञान में जबरदस्त विरोध है। जैनधम तो सर्वज्ञ, वीतराग, हितापदेशी जिनेन्द्र भगवान् का बताया हुआ वस्तुस्वभाव रूप है। इस लिये यह वैज्ञानिकों की खोजों का स्वागत करता है'[1]।

भारत के बहुत से दार्शनिक शब्द (Sound) को आकाश का गुण बताते थे और उसे अमूर्तिक बता कर अनेक युक्तियों का जाल फैलाया करते थे, किन्तु जेनधर्माचार्यों ने शब्द को जड़ तथा मूर्तिमान बताया था, आज विज्ञान ने ग्रामोफोन (Gramophone) रेडियो (Radi) आदि ध्वनि सम्बन्धी यन्त्रों के आधार पर

---

१. 'भ० महावीर का धर्म उपदेश,' खण्ड २।

शब्द को जैनधर्म के समान प्रत्यक्ष सिद्ध कर दिया[१]।

न्याय और वैशेषिक सिद्धान्तकार पृथ्वी, जल, वायु आदि को स्वतन्त्र मानते हैं किन्तु जैनाचार्यों ने एक पुद्गल नामक तत्व बताकर इनको उसकी अवस्था विशेष बताया है। विज्ञान ने हाइड्रोजिन आक्सीजन (Hydrogen Oxygen) नामक वायुओं का उचित मात्रा में मेल कर जल बनाया और जल का पृथक्करण करके उपर्युक्त हवाओं को स्पष्ट कर दिया। इसी प्रकार पृथ्वी अवस्थाधारी अनेक पदार्थों को जल और वायु रूप अवस्था में पहुँचाकर यह बताया है कि वास्तव में स्वतन्त्र तत्व नहीं है किन्तु पुद्गल (Matter) की विशेष अवस्थाएँ हैं[२]।

आज हजारों मील दूरी से शब्दों को हमारे पास तक पहुंचाने में माध्यम (Medium) रूप से 'ईथर' नाम के अदृश्य तत्वों की वैज्ञानिकों को कल्पना करनी पड़ी; किन्तु जैनाचार्यों ने हजारों वर्ष पहले ही लोकव्यापी 'महास्कन्ध' नामक एक पदार्थ के अस्तित्व को बताया है। इसकी सहायता से भगवान् जिनेन्द्र के जन्मादि की वार्ता क्षण भर में समस्त जगत में फैल जाती थी। प्रतीत तो ऐसा भी होता है कि नेत्रकम्प, बाहुस्पंदन आदि के द्वारा इष्ट-अनिष्ट घटनाओं के संदेश स्वतः पहुँचाने में यही महास्कन्ध सहायता प्रदान करता है। यह व्यापक होते हुए भी सूक्ष्म बताया गया है[३]।

---

१. The Jaina account of sound is a physical concept. All other Indian systems of thoughts spoke of sound as a quality of Space, but Jainism explains sound in relation with material Particles as a result of concussion of atmospheric molecules. To prove this scientific thesis the Jain Thinkers employed arrguments which are now generally found in the text books of physics.

—Prof. A Chakaivarti: Jaina Antiquary. Vol. IX P.5-15.

२-३. 'भ० महावीर का धर्म उपदेश' खण्ड २ के फुटनोट।

जैन धर्म में पानी छान कर पीने की आज्ञा है, क्योंकि इस से जल के जीवों की प्राण-विराधना (हिंसा) नहीं होने पाती। आज के अणुवीक्षण यन्त्र (Microscope) ने यह प्रत्यक्ष दिखा दिया कि जल में चलते फिरते छोटे-छोटे बहुत से जीव पाये जाते हैं। कितनी विचित्र बात है कि जिन जीवों का पता हम अनेक यन्त्रों की सहायता से कठिनता पूर्वक प्राप्त करते हैं, उनको हमारे आचार्य अपने अतीन्द्रिय ज्ञान के द्वारा बिना अवलम्बन के जानते थे[१]।

अहिंसा व्रत की रक्षा के लिये जैन धर्म में रात्रिभोजन त्याग की शिक्षा दी गई है। वर्तमान विज्ञान भी यह बताता है कि सूर्यास्त होने के बाद बहुत से सूक्ष्म जीव उत्पन्न होकर विचरण करने लगते हैं, अतः दिन का भोजन करना उचित है। इस विषय का समर्थन वैद्यक ग्रन्थ भी करते हैं[२]।

जैन धर्म में बताया गया है कि वनस्पति में प्राण हैं। इस के विषय में जैनाचार्यों ने बहुत बारीकी के साथ विवेचन किया है। स्व० विज्ञानाचार्य जगदीशचन्द्र वसु महाशय ने अपने यन्त्रों द्वारा यह प्रत्यक्ष सिद्ध कर दिखाया, कि हमारे समान वृक्षों में चेतना है

---

१. (a) It is interesting to note that the existence of microscopic organisms were also known to Jain Thinkers, who technically call them 'Sukshma Ekendriya Jivas' or minute organisms with the sense of touch alone. —Prof. A. Chakarvarti: Jaina Antiquary. Vol. IX. P. 5-15.

(b) 'बिन छाने जल का त्याग', खंड २।

२. 'रात्रि भोजन का त्याग', खंड २।

और वे सुख दुःख का अनुभव करते हैं[१]।

जैन धर्म ने बताया कि वस्तु का विनाश नहीं होता[२], उसकी अवस्थाओं में परिवर्तन अवश्य हुआ करता है। आज विज्ञान भी इस बात को प्रमाणित करता है कि मूल रूप से किसी वस्तु का विनाश नहीं होता, किन्तु उसके पर्यायों में फेरफार होता रहता है[३]।

जैनाचार्यों ने कहा है कि प्रत्येक पदार्थ में अनन्त शक्तियां मौजूद हैं, क्या आज के वैज्ञानिक एक जड़ तत्व को लेकर ही अनेक चमत्कारपूर्ण चीज नहीं दिखाते ? लोगों को वे अवश्य आश्चर्य में डालने वाली होती हैं, किन्तु जैनाचार्य तो यही कहेंगे कि—"अभी क्या देखा है, इस प्रकार की शक्तियों का समुद्र छिपा

---

१. Turning to Biology, the Jain Thinkers were well acquainted with many important truths that the plant—world is also a living kingdom, which was denied by the scientists prior to the researches of Dr.J.C.Bose. Prof. —A Chakarvarti: Jaina Antiquary Vol. IX P. 5-15.

२. (i) उप्पत्तीवविणासो दव्वस्स यं णत्थि अत्थि सब्भावो।
विगमुप्पादधुवत्तं करेंति तस्सेव पज्जाया ॥ ११ ॥
—श्री कुन्दकुन्दाचार्यः प्रवचनसार।

अर्थ—द्रव्य की न तो उत्पत्ति होती है और न उसका नाश होता है। यह तो सत्य स्वरूप है। लेकिन इसकी पर्यायें इसके उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य को करती हैं।

(ii) Nothing is created & nothing is destroyed.

३. 'भगवान् महावीर का धर्म उपदेश' खण्ड २ के फुटनोट।

पड़ा है[१] ।”

जैन दार्शनिकों ने बताया कि सत्य एक रूप न होकर विविध धर्मों का पुञ्ज रूप है । इसी जैन धर्म की महान् विभूति को ही अनेकान्तवाद के नाम से स्मरण करते हैं । बड़े बड़े इतरधर्मीय इसके वैभव और सौन्दर्य को समझने में असमर्थ रहे, किन्तु आज के विख्यात वैज्ञानिक ऑस्टाइन के अपेक्षावाद के सिद्धान्त (Theory of Relativity) ने जैन सिद्धान्त को महा विज्ञजनों के अंतस्तल पर अंकित कर दी[२] ।

जैन आचार शास्त्रज्ञों ने भोज्य पदार्थों में शुद्धता एवं अशुद्धता का विस्तृत विवेचन किया है । यदि वर्तमान विज्ञान द्वारा इस विषय की बारीकी के साथ जांच की जाये तो अनेक अपूर्व बातें प्रकाश में आवेंगी और जैनाचार्यों के गम्भीर ज्ञान का पता

---

१. The Jain works have dealt with matter, its qualities and functions on an elaborate scale. A student of Science, if reads the Jaina treatment of matter, will be surprised to find many corresponding ideas. The indestructibility of matter, the conception of atoms and molecules and the view that heat, light and shade sound etc. are modifications of matter, are some of the notions that are common to the Jainism and Science.

—C. S. Mallinathan: Sarvartha Siddhi (Intro)

P. XVII.

२. 'Sayadavada or Anekantvada', Vol. II.

यथार्थ रूप में चलेगा[1] ।

जैन धर्म ने बताया है कि मनुष्य अपने पैरों पर खड़ा होकर आत्मविकाश कर सकता है[2] । संसार में प्राकृतिक शक्तियाँ ही संयोग-वियोग के द्वारा विचित्र जगत का प्रदर्शन करती हैं[3] । यह

---

१. We can ward off diseases by a judicious choice of food. Sun light is another effective weapon. Like vitamins, light helps metabolism. Carbohydrates are not burnt without the action of ligh . In a tropical country like ours the quality of food taken by an average individual is poor. but the abundance of sunlight undoubtly compensate for this dietary dificiency

—Dr. N.R. Dhar,D.Sc I.E.S: J.H.M. (Nov.1928) P 31.

२. The method of approach to truth in Jainism is fairly scientific in the sense that it treats with the problem of life and soul with the well knwon system of classification, analysis and right and accurate understanding

—Dr. M. Hafiz Syed. V.O.A Vol. III. P. 8.

३. The theory of the infinite numbers. as it is dealt with the Loka Prakasa (लोकप्रकाश) and which corresponds with the most modern mathematical theories and the theory of identity of time & space. is one of the problems. which are now most discussed by the scientists owing to Einstein's theory and which are already solved or prepared for solution in Jaina metaphysics,"

—Dr. O. Pertold. Sramana Bhagvan Mahavira. Vol. I. Part. I. Page 81-88

जगत् किसी व्यक्तिविशेष की न तो रचना है और न इसके निरीक्षण एवं व्यवस्थापन में किसी सर्वज्ञ आनन्दमय एवं वीतराग आत्मा का कोई हाथ है। आधुनिक विज्ञान ने यह बताया है कि यह जगत् पदार्थों के मेल या बिछुड़ने का काम है। इसमें अन्य शक्ति का हस्तक्षेप मानने की कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती[1]।

जैन धर्म का विज्ञान से इतना अधिक सम्बन्ध है कि जैन-कथा ग्रन्थों में अवैज्ञानिक बात नहीं मिलती[2]।

वर्तमान विज्ञान अभी प्रगतिशील (Progressive) अवस्था में है। यूरोपियन विद्वानों ने बहुत ठीक कहा है कि आधुनिक विज्ञान जैसे जैसे आगे बढ़ता जायेगा, वैसे वैसे जैन-तत्वों की समीचीनता प्रकाश में आती जायेगी[3]।

---

१. (i) The entire universe consists of six substances Soul, Matter, Dharma, Adharma, Space and Time. These are all permanent, uncreated and eternal, but their mode (Prayaya) is changable. So the universe which is comosed of these six Dravyas is also permanent, uncreated and eternal, under going only modifications. —C. S. Mallinathan: Sarvartha Siddhi (Intro) P. XV-XVI.

(ii) 'भ० महावीर का धर्म उपदेश' खण्ड २।

२. The Jains have always exhibited the highest sense of respect for nature and almost a sort of mystic rapture. The doctrine of karma is common in all the religions in India, but a distinct stamp of scientific and analytical classification is to be found in the Jain interpretation. —T.K.Tukol' Lord Mahavira Commemoration Vol.I P.218

३. 'सरल जैन धर्म' (वीर सेवा-मन्दिर सरसावा) पृ० ११७-१२१।

जैन धर्म में स्त्रियों का स्थान

"Good mothers are the gems of the Society and real builders of the Nation."-Rev. Brahamchari Sital Pd. Ji [1]

श्रीमती अंगूरमाला जैन

आज का बच्चा कल का बाप है[2], हर देश और समाज की उन्नति और अवनति का दारोमदार उसके होनहार बच्चों पर होता है। बालकों की उत्पत्ति और उनके आचरण की नींव बचपन से ही माता द्वारा पड़ती है, इसलिये एक अच्छी माता के लिये नीरोग, वीर, सरलस्वभाव, ज्ञानवती और ऊँचे आदर्शवाली होना जरूरी है, ताकि उसके उत्तम गुणों का सुन्दर प्रभाव उसके बालकों पर पड़ सके। हिन्दु धर्म में तो स्त्री की महिमा इतनी बढ़ी चढ़ी है, कि महापुरुषों और अवतारों से पहले उनकी स्त्रियों के नाम भजे जाते हैं। जैसे—राधा-कृष्ण, राधे-श्याम, गौरी-शङ्कर, सीता-राम।

जैन संस्कृति में तो नारी का स्थान बहुत ही ऊँचा[3] है, जिस

---

१. Jainism-A key of True Happiness (Published by Mahavira Atisha Comittee) P. 120.

२. "Child of today is father of tomarrow."

३. (a) Prof Satkasi Muker ji, Status of Women in Jain Religion.

(b) Dr. Saletar's Mediaeval Jainism, Chapter. V.

नारी से नर पैदा हो, जिसने तीर्थंकरों 'चक्रवर्तियों' नारायणों आदि महापुरुषों को जन्म देकर संसार का उद्धार किया हो, जिनका धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्र पुरुषों के समान प्रभावशाली रहा हो[२], जिन्होंने शिक्षा, दीक्षा, त्याग, वीरता विविध कला आदि गुणों के द्वारा देश का जीवन बहुत ही ऊँचा उठा दिया हो[३] जो नारी शीलव्रत पालने के कारण दुनियावालों का माथा अपने चरणों में झुकवाती रही हो[४], जो नारी अपने उत्कृष्ट चारित्र्य द्वारा स्वर्ग के देवताओं को भी चकित करती रही हो[५], जो नारी समाज की भलाई के लिये अपना जीवन बलिदान करती रही हो[६], जो नारी अपने शील रूपी डण्डों से गुण्डों के दाँत खट्टे करती रही हो[७], जो नारी माता-पिता की इतनी आज्ञाकारिणी हो कि दरिद्री और कुष्ठी तक से विवाही जाने पर भी उफ न करे[८], जो नारी राजकुमारी होने पर भी दरिद्री और कुष्ठी पति की सेवा करने वाली हो[९], जो नारी दस्तकारी में उच्चकोटि का स्थान रखती हो[१०], जो

---

१. Dr. B. C. Law: Distinguished Men And Women in Jainism In Indian Culture. Vol. 2 & 3

२. (a) Prof. Tiribani Pd: जैन महिलाओं की धर्म सेवायें।
   (b) जैन सिद्धान्त भास्कर, वर्ष, ८ पृ० ६१।

३. 'सीताजी', जिन के चरित्र के लिये 'पद्म पुराण' देखिये।

४. 'सती सुलोचना' जिनकी तफसील 'सुलोचना चरित्र' में देखिये।

५. 'जैन धर्म वीरों का धर्म है' खण्ड १।

६. रावण की पटरानी मन्दोदरी, तफसील 'पद्म पुराण' में देखिये।

७-८ मैना सुन्दरी, विस्तार के लिये श्रीपाल-चरित्र।

९. Women have played an important part in the development of Cottage Industries—Indian Review. Vol. 52. P. 333.

नारी ऐसे दुर्गन्ध पति की सेवा में भी इन्कार न करती हो, जिसे दुर्गन्धा होने से उसके माता-पिता तकने निकाल दिया हो[1], जो नारी केवल अपने पति में ही सन्तुष्ट रहने का उच्च आदर्श रखती हो[2], जो नारी विषय भोगों पर विजय प्राप्त कर के जीवन भर ब्रह्मचारिणी रही हो[3], जो नारी रणभूमि तक में भी अपने पति की सहायता तलवार से करती रही हो[4], जो नारी युद्धभूमि में भी अपने पति का रथ बड़ी वीरता से चलाती रही हो[5], जो नारी पति के रणभूमि में पकड़े जाने पर शत्रुओं से उसे छुड़ाने की वीरता रखती हो[6], जो नारी छापाखाना न होने पर भी तीर्थंकरों के चारित्र्य हाथ से लिखवा कर हजारों की संख्या में मुफ्त बांटती हो[7], जो नारी अर्हन्त भगवान् की सोने और रत्नमयी डेढ़हजार मूर्तियां मन्दिरों में विराजमान कराती रही हो[8], जो नारी मन्दिर बनवाती रही हो[9], मन्दिरा की प्रतिष्ठा और उत्सव कराती रही हो[10], जो नारी धर्म-प्रभावना में मनुष्य के समान हो[11], जो

१-२ मैना सुन्दरी, विस्तार के लिये श्रीपाल चरित्र।

३. श्री ऋषभदेव जी की पुत्री 'सुन्दरी'।

४. जैन महिला दर्शन भा० २६ पृ० ३६२।

५. महाराजा दशरथ की रानी केकई, विस्तार के लिये 'जैन धर्म वीरों का धर्म है' खण्ड ३।

६. 'जैन धर्म वीरों का धर्म है' खण्ड ३।

७-८. 'दक्षिणी भारत के राजा तैलप (९७३-९९७) के सेनापति मल्लप की पुत्री अतिमब्बे ने सोलहवें तीर्थंकर शान्तिनाथ जी के जीवन चरित्र की एक हजार कापियां हाथ से लिखवाकर बांटी और डेढ़ हजार रत्नमयी, अर्हन्त भगवान् की मूर्तियां बनवाई' विस्तार के लिए 'ज्ञानोदय' भा० २ पृ० ७०६ देखिये।

९. 'नागदेव की पत्नी 'अत्तिमब्बे' ने जैन मन्दिर बनवाये' विस्तार के लिये जैन महिलादर्श भा० २६ पृ० ३६२।

१०-११ प्रो० बेनीप्रसाद. जैन सिद्धान्त भास्कर भा० ८ पृ० ६१।

नारी प्रभावशाली लेख लिखने में प्रसिद्ध हो[1], जो नारी उत्तम २ ग्रन्थ और अखबारों की सम्पादिका रही हो[2], जो नारी न केवल गृहस्थ धर्म बल्कि साधुका होकर तप शूर हुई हो[3] जो नारी बिला वजह घर से निकाल देने पर भी उफ न करे[4], जो नारी राज-महलों से निकलना अच्छा समझे, परन्तु अर्हन्त दर्शन की प्रतिज्ञा भङ्ग न करे[5], जो नारी राजसुखों को त्याग दे परन्तु रात्रि भोजन न करे[6], जो नारी मनुष्य से भी पहले लौकिक और धार्मिक शिक्षा की अधिकारी स्वीकार की जाती रही हो[7], जो नारी सम्यग्दर्शन के अमूढ़ गुण में समस्त संसार के प्राणियों में सबसे श्रेष्ठ हो[8], जो नारी अपने स्वामी की रक्षा के लिये अपने इकलौते बालक को बलिदान कर सकती हो[9], जो नारी अपने बालकों को देश भक्ति के लिये उभारती रही हो[10], जो नारी देश रक्षा के लिये खुद तलवार लेकर रणभूमि में लड़ती रही हो[11], जिस नारी ने लोक-परलोक, देश-विदेश हर क्षेत्र में महाप्रभावशाली आदर्श की स्थापना की हो[12], जिस नारी का जीवन, ठण्डे खून में जोश पैदा कर सकता हो[13], तो क्या उस जैन नारी के सुन्दर और उत्तम जीवन को भुलाया जा सकता है[14] ?

१-२ जैन महिला दर्शन (सूरत) भा० २६ पृ० ३६२।

३. 'श्री चन्दना जी' विस्तार के लिए 'वीर सङ्घ', खण्ड २।

४. श्री हनुमान जी की माता 'अञ्जना जी'।

५. दर्शन कथा।

६. रात्रि भोजन कथा।

७. ऋषभदेव ने अपने पुत्र भरत से पहले अपनी कन्याओं को शिक्षा दी थी। वीराङ्गनायें पृ० ३५।

८. 'अनन्तमति' विस्तार के लिये 'आराधना कथा कोष'।

९. 'पन्ना धाया' विस्तार के लिए 'टाड साहब का राजिस्थान'।

१०-११. जैन धर्म वीरों का धर्म है, खण्ड ३।

१२-१४. Prof: Satkari Muker Ji: Status of Women in Jainism.

अनन्तमति एक नारी ही तो थी, जिसके साथ विद्या, सम्पत्ति, और राज-सुख का लालच देकर विद्याधर विवाह करना चाहता था, परन्तु वह संसारी सुखों की लालसा में न आई[1]। चन्दना जी भी एक नारी थी, जिनको आकाश से उड़ते हुए विमान से नीचे लटका दिया और धमकी दी कि नीचे गिरा कर मार दी जावेगी, वरना मेरी इच्छाओं को पूर्ण करो। परन्तु उसने धर्म के सम्मुख जान की परवाह न की। विजयकुमारी एक नारी ही थी, जिसके माता पिता ने एक अजैन से उसका विवाह करना चाहा क्योंकि वह बहुत मालदार था, परन्तु कन्या ने संसारी सुखों के लिये धर्मको त्यागना उचित न जाना और अपने माता-पितासे स्पष्ट कह दिया:—

"सीमो ज़र तो चीज क्या है धर्म के बदले मुझे।
मैं न लूं गर सल्तनत भी, सारे आलम की मिले॥"

—रोशन, पानीपती

माता-पिता न माने, उसकी सगाई अजैन धनवान् से कर दी तो व संसार त्याग कर, साधुका होगई[2]।

मुनि हो या श्रावक, दोनों प्रकार के धर्म पालने में स्त्री समाज मनुष्यों से आगे रहा है। भगवान् महावीर के समवशरण में जहां मुनि और साधु १४ हजार थे, वहां अर्जिकाएँ और साधुकाएँ ३६ हजार थीं, और जहाँ श्रावक एक लाख थे, वहां श्राविकाएं ३ लाख थीं[3]।

स्त्री के गुण एक स्त्री के मुख से क्या अच्छे लगें? परन्तु इतिहास बताता है कि सामाजिक, राजनैतिक, लौकिक तथा धार्मिक हर क्षेत्र, हर स्थान पर स्त्री का स्थान मनुष्य से बढ़-चढ़ कर रहा है[4]।

---

१. आराधनाकथा कोश (दि० जैन पुस्तकालय, सूरत) पृ० ७०-७४।

२. जैन वीराङ्गनाएँ, (दि० जैन पुस्तकालय, सूरत) पृ० ७३।

३. आत्मधर्म (सोनगढ़, सौराष्ट्र) भा० १ पृ० १७४।

४. जैन-सिद्धान्त-भास्कर (आरा, बिहार) भा० ८ पृ० ६१।

कवियों की वीर-श्रद्धाञ्जलि

श्री वीर का समवशरण गिरि विपुला पर आयो है!

महाराज श्रेणिक को यह माली ने सुनाया है।
"श्री वीर का समवशरण गिरि विपुला पर आयो है" ॥
तन के वस्त्र और आभूषण सब माली को दिये[१]।
वीर का विहार सुन इतना श्रेणिक हरसायो है ॥
श्रेणिक उतर सिंहासन से वीर प्रभु की ओर।
सात पैड़ चल शीस सात वार नवायो है[२] ॥
घोषणा कराई सारे देश में श्रेणिक ने[३]।
"चले जनता पूजन को, भगवान् वीर आयो है" ॥
ले चौरङ्गी फौज चले दर्शनों को ठाठ से[४]।
आज तिहुँ लोक में वीर यश छायो है ॥

—श्री ज्योतिप्रसाद 'प्रेमी'

ज्ञान अवतार इन्द्र आयो परिवारयुक्त[५]।
करके हजार नेत्र रूप पे लुभायो है[६] ॥
मेरु पै न्हवन कियो पुण्य कोष भर लिये।
फिर शीस महावीर को भक्ति से नवायो है।
साधुओं की शंकायें वीर-दर्शनों से दूर हों[७]।
विष भरे उरग के मान को नसायो है[८] ॥
विषयों के भोग को रोग के समान जान।
रहे बाल ब्रह्मचारी, ब्याह नहीं रचायो है[९] ॥

—ब्रह्मचारी श्री प्रेमसागर जी

१-४ महाराजा श्रेणिक पर वीर-प्रभाव, खण्ड २।
५-६ वीर-जन्म, खण्ड २।
७-९ विस्तार के लिये इसी ग्रंथ का खण्ड २।

आज तिहुँ लोक में वीर यश छायो है

★

कुण्डलपुर बिहार में चैत सुदी तेरस को।
त्रिशला ने तीर्थंकर वीर को पायो है॥

जान जनम वीर का दर्शनों को उनके।
नर सुर लोक[1] सारा उमड़ कै आयो है॥

सुधर्म के इन्द्र ने पाण्डुक बन में।
मेरु गिरि क्षीर जल से न्हवन करायो[2] है॥

यज्ञ की हिंसा को हिंसा न बताते मूढ़[3]।
स्वार्थ वश होय के दयाभाव त्यागो है[4]॥

ऐसी भयानक अवस्था में देश का अन्धकार।
मिटा के वीर ने ज्ञान सूर्य चमकायो है॥

—श्री रवीन्द्रनाथ, न्यायतीर्थ

त्रिशला के गर्भ में वीर प्रभु आयो है।
देव इन्द्र और मनुष्य सब आनन्द मनायो है॥

अहिंसा तप त्याग का पढ़ा कर सुन्दर पाठ।
शान्ति सुधा जिन्होंने मेघ समान बरसायो है॥

उन्हीं वीर अतिवीर, श्री महावीर का।
आज तिहुं लोक में विमल यश छायो है॥

—श्री विष्णुकान्त, मुरादाबाद

१-२ वीर-जन्म, खण्ड २।

३-४ वीर के जन्म-समय भारत की अवस्था, खण्ड २।

मानव को राह दिखाई वीर ने निर्वाण की!

लीग आफ "नेशन" का विश्व व्यापी शान्तिवाद ।
बौद्धिक विशेषतायें चीन व जापान की ॥

'हर हिटलर', 'रोज वेल्ट' का सुधारवाद ।
'गांधी' की विशाल, आत्मशक्ति वर्तमान की ॥

गर्जना 'डि वेलर', 'मुसोलिनी का क्रान्तिवाद' ।
जागृति ईरान व तूरान अफगान की ॥

विश्व का विराट रूप देखा चाहते हो यदि ।
'शशि' सुनियेगा वाणी 'वीर' भगवान् की ॥

—श्री कल्याण कुमार, 'शशि'

पच्चीस कषाय, बारह अव्रत, मिथ्यात पांच ।
मेट दो है यदि इच्छा तुम्हें निर्वाण की ॥
अहिंसा, तप, त्याग, व्रत, संयम, रत्नत्रय ।
परम उत्तम विधि है यह, मनुष्य के कल्याण की ॥

—ब्रजवाला, प्रभाकर

सात तत्त्व, नौ पदार्थ, रत्नत्रय, आत्मज्ञान ।
प्रभावशाली कुञ्जी हैं, निज-पर के पहिचान की ॥

अहिंसावाद, कर्मवाद, स्याद्वाद, साम्यवाद ।
महा अनुपम फ्लासफी है वर्द्धमान् भगवान् की ॥

—निर्मला कुमारी

चण्डाल और पापियों तक का सुधार किया ।
मानव को राह दिखाई वीर ने निर्वाण की ॥

पशुवों तक से प्रेम का पढ़ा कर सुन्दर पाठ ।
खोल दी महावीर ने आंखें सारे जहान की ॥

—श्री श्यामलाल 'शुक्ल'

प्राणी वीर नाम नित बोल !

मतलब की है दुनिया सारी, मतलब के हैं सब संसारी ।
भोगी मन की आंखें खोल, प्राणी वीर नाम नित बोल ॥
—श्रीमती शीलवती

तुमने ज्ञान भानु प्रगटाया, मिथ्यातम को दूर भगाया ।
दिया धर्म उपदेश अनमोल, प्राणी वीर नाम नित बोल ॥
—श्री राजकुमारी

जो तू चाहे आत्म शुद्धि, राग द्वेष की तजदे बुद्धि ।
जैन धर्म रतन, अनमोल, प्राणी वीर नाम नित बोल ॥
—पुष्पलता

जिसने आतमध्यान लगाया, उसने निश्चय सम्यक् पाया ।
ज्ञान चक्षु तू खोल, प्राणी वीर नाम नित बोल ॥
—कुमारी कुसुम

मोहने ऐसा जाल बिछाया, ममता ने चेतन भरमाया ।
जग में वीर नाम अनमोल, प्राणी वीर नाम नित बोल ॥
—कान्तिदेवी

मूरख अपनी गठरी टटोल, पुण्य अधिक या पाप अधिक है ?
ज्ञान तुला पर तोल, प्राणी वीर नाम नित बोल ॥
—श्री रज्जीबाई

पल-पल में आयु घट जावे, वक्त गया फिर हाथ न आवे ।
है मनुष्य जीवन अनमोल, प्राणी वीर नाम नित बोल ॥
—सूरजबाई

वीर प्रभु से ध्यान लगाले, माल धन यहीं पड़ा रह जावे ।
मन का फाटक खोल, प्राणी वीर नाम नित बोल ॥
—विजयलता

श्री महावीर चालीसा

शीश नवा अरहन्त[1] को, सिद्धन[2] करूं प्रणाम।
उपाध्याय[3] आचार्य[4] का, ले सुखकारी नाम ॥१॥
सर्व साधु[5] और सरस्वती, जिन मन्दिर सुखकार।
महावीर भगवान को, मन मन्दिर में धार ॥२॥

जय महावीर दयालु स्वामी, वीर प्रभु तुम जगमें नामी ॥३॥
वर्द्धमान है नाम तुम्हारा, लगे हृदय को प्यारा प्यारा ॥४॥
शान्त छवि और मोहनी मूरत, शान हँसीली सोहनी सूरत ॥५॥
तुमने वेष दिगम्बर धारा, कर्म शत्रु भी तुमसे हारा ॥६॥
क्रोध मान और लोभ भगाया, माया ने तुम से डर खाया ॥७॥
तू सर्वज्ञ[6] सर्व का ज्ञाता, तुझको दुनियासे क्या नाता ॥८॥
तुझ में नहीं राग और द्वेष, वीतराग तू हितोपदेश[7] ॥९॥
तेरा नाम जगत में सच्चा, जिस को जाने बच्चा बच्चा ॥१०॥
भूत प्रेत तुम से भय खावें, व्यन्तर राक्षस सब भग जावें ॥११॥
महाव्याधि मारी न सतावे, महाविकराल काल डर खावे ॥१२॥
काला नाग होवे फन धारी, या हो शेर भयङ्कर भारी ॥१३॥
ना हो कोई बचाने वाला, स्वामी तुम्हीं करो प्रतिपाला ॥१४॥
अग्नि दवानल सुलग रही हो, तेज हवा से भड़क रही हो ॥१५॥
नाम तुम्हारा सब दुख खोवे, आग एक दम ठण्डी होवे ॥१६॥
हिंसामय था भारत सारा, तब तुमने कीना निस्तारा ॥१७॥
जन्म लिया कुण्डलपुर नगरी, हुई खुशी तब प्रजा सगरी ॥१८॥

१-५ यह पांच परमेष्ठी हैं जिन के गुण के लिये 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार' देखिये।
६ भ० महावीर की सर्वज्ञता, खण्ड २।
७ भ० महावीर का धर्मोपदेश, खण्ड २।

सिद्धारथ जी पिता तुम्हारे, त्रिशला की आंखों के तारे ॥१९॥
छोड़े सब झंझट संसारी, स्वामी हुये बाल ब्रह्मचारी[1] ॥२०॥
पंचमकाल महादुखदाई, चान्दनपुर महिमा दिखलाई ॥२१॥
टीले में अतिशय दिखलाया,[2] एक गाय का दूध गिराया[3] ॥२२॥
सोच हुआ मन में ग्वाले के, पहुंचा एक फावड़ा ले के[4] ॥२३॥
सारा टीला खोद बगाया, तब तुमने दर्शन दिखलाया ॥२४॥
योधराज को दुख ने घेरा, उसने नाम जपा तब तेरा ॥२५॥
ठण्डा हुवा तोप का गोला[5], तब सब ने जयकारा बोला ॥२६॥
मंत्री ने मन्दिर बनवाया, राजा ने भी द्रव्य लगाया ॥२७॥
बड़ी धर्मशाला बनवाई, तुम को लाने की ठहराई ॥२८॥
तुमने तोड़ी सैंकड़ों गाड़ी,[6] पहिया मसका नहीं अगाड़ी ॥२९॥
ग्वाले ने जो हाथ लगाया, फिर तो रथ चलता ही पाया ॥३०॥
पहिले दिन बैषाख वदी को, रथ जाता है तीर नदी को ॥३१॥
मैना गूजर[7] सब आते हैं, नाच कूद चित उमगाते हैं ॥३२॥
स्वामी तुमने प्रेम निभाया, ग्वाले का तुम मान बढ़ाया ॥३३॥
हाथ लगे ग्वाले का जब ही, स्वामी रथ चलता है तब ही ॥३४॥
मेरी है टूटी सी नइया, तुम बिन कोई नहीं खिवैया ॥३५॥
मुझ पर स्वामी जरा कृपा कर, मैं हूँ प्रभु तुम्हारा चाकर ॥३६॥
तुम से मैं अरु कुछ नहीं चाहूँ, जन्म-जन्म तुम दर्शन पाऊँ ॥३७॥
चालीसे को 'चन्द्र' बनावे, वीर प्रभु को शीश नवावे ॥३८॥

नित चालिस ही बार, पाठ करे चालीस दिन ।
खेवे सुगन्ध अपार, वर्द्धमान के सामने ॥३९॥
होय कुवेर समान, जन्म दरिद्री होय जो ।
जिसके नहीं संतान, नाम वंश जग में चले ॥४०॥

---

१ बाल ब्रह्मचारी, खण्ड २ ।

२-७ Miraculous Place of Lord Mahavira. Vol. 1.

حیاتِ ویر

(از دبیرِ قوم شہیان لالہ بھولا ناتھ صاحب درخشاں بی اے پنشنر کمشنری بلند شہر)

ذی حشم ویر تھا سلیمان نے لئے جس کے قدم   سرنگوں حاتم تھا جس کا دیکھکر جود و کرم
تھا رفیع ایسا فلک بھی ہوگیا سجدہ میں خم   وہ بہادر جس کے تھا زیرِ قدم شیرِ اجم
تھا مسیحائے زماں و مرشدِ معجز مقال
موسیٔ طورِ طریقت ویر تھا بے قیل و قال

ظلمتِ عصیاں مٹانے کو تھا وہ اک آفتاب   روح تھی اس کی مقدس اور دلِ عصمت مآب
خاکِ پا اس ویر کے تھے رستم و افراسیاب   خضر بھی سمجھتے تھے اسکو ہادیٔ راہِ صواب
ساقیٔ کوثر تھا آبِ دیں کے پیاسوں کیلئے
حق مجسم بے شبہ تھا حق شناسوں کے لئے

کیا کہیں اپدیش ہم کو ویر نے کیا کیا دیا   فلسفۂ اعمالِ خوب و زشت کا سمجھا دیا
تیرہ روزی کو مٹایا نورِ دیں پھیلا دیا   اس نے روشن کر دیا راہِ حقیقت کا دیا
قبلۂ ایمانِ رحمت کعبۂ اعمالِ نیک
کاشفِ رازِ حقیقت ہر دو عالم میں تھا ایک

وہ ہیں معراجِ نجات اندازِ طاعت ویر کے   چومتے ہیں پاؤں اب تک اہلِ خلقت ویر کے
لوحِ دل پر اس قدر ہیں نقش رحمت ویر کے   ہم رہیں گے تا ابد مرہونِ منت ویر کے
اس کے احسانات سن سن کر طبیعت شاد ہے
نام اس کا ہے زباں پر دل میں اس کی یاد ہے

یاد جب آتے ہیں ہم کو اس کے اوصافِ نکو   یا نظر کرتے ہیں اس کی مہرباں تصویر کو
لب پہ آتا ہے یہی مصرعہ بحالِ گو مگو   "فکر را منتہائے تو چہ جا فکر را منتہائے تو"
کیا درخشاں سے بیاں ہوں ویر کے کشف و کمال
"چھوٹا منہ بات بڑی" کی صادق آتی ہے مثال

ویر جیسا کون تیاگی دوسرا پیدا ہوا؟

(از ممتاز الشعراء جناب منشی پیارے لال صاحب رونق دہلوی)

کیا کہوں میں ویر کو دُنیا میں کیا پیدا ہوا
دھرم کی تصویر۔ پتلا تیاگ کا پیدا ہوا

ویر جیسا کون تیاگی دوسرا پیدا ہوا؟
یہ جہاں میں ایک اپنے نام کا پیدا ہوا

بزمِ امکاں میں دکھائی مشعلِ راہِ نجات
ویر ہی دُنیا میں سچا رہنما پیدا ہوا

نام سے ہوتا ہے اسکے قلبِ مضطر کو سکوں
دل کے دردِ لادوا کی اک دوا پیدا ہوا

ہو گئے سیراب جس سے تشنۂ کامِ آرزو
ویر وہ سرچشمۂ فیض و عطا پیدا ہوا

پاک باطن ذی شعور ہوشمند و صاف دل
نیک طینت۔ نیک خصلت۔ پارسا پیدا ہوا

کر دیا ثابت یہ رونق ہستی موہوم نے
جو یہاں پیدا ہوا۔ گویا وہ نا پیدا ہوا

(از افتخار الشعراء جناب منشی مہاراج بہادر صاحب برق بی اے دہلوی)

دردمند بیکساں۔ درد آشنا پیدا ہوا
خستہ جانوں کا ضعیفوں کا عصا پیدا ہوا

غمزدوں کا گمرہوں کا آسرا پیدا ہوا
غم شریک و غمگسار و غم رُبا پیدا ہوا

امن کا پیغام لایا تھا زمانے کے لئے
کشتیٔ عمرِ رواں کا ناخدا پیدا ہوا

درد سے اس نے ستمگاروں کے دل کو بھر دیا
خضرِ منزل۔ مظہرِ صدق و صفا پیدا ہوا

دھرم کی مورت ہے برق وہ دیوتا پیدا ہوا
ویر ہی دُنیا میں سچا رہنما پیدا ہوا

ویر ہی دُنیا میں سچّا رہنما پیدا ہوا

(از شاعرِ شیریں بیان جناب مسٹر بی۔ ایل صاحب گنجو دہلوی)

ویر کیا پیدا ہوا دھرما تما پیدا ہوا
مذہبی دُنیا کا کامل پیشوا پیدا ہوا

دُور کرنے کے لئے اگیانیوں کا اندھکار
گیان کی مشعل لئے اک دیوتا پیدا ہوا

تھے یہ اُن کے پُن پہلے جن کے اب پرتاپ سے
ترشلا ماتا کو بیٹا ویر سا پیدا ہوا

خضر بھی جب رہنمائی کے لئے عاجز ہوئے
راستہ سیدھا دکھانے رہنما پیدا ہوا

منزلِ مقصود کی سیدھی بتادی سب کو راہ
آج تک جس میں نہ کوئی خرخشا پیدا ہوا

موکش کے تالے کی کنجی اک اہنسا ہی تو ہے
ویر اے گنجو یہی کہتا ہوا پیدا ہوا

(از جادو رقم جناب لالہ بلدیو سنگھ صاحب نگم دہلوی)

آسماں پر دھرم کے نورِ خدا پیدا ہوا
ساری دُنیا کیلئے سورج نیا پیدا ہوا

سینکڑوں برسوں کے مُردے جسنے زندہ کردیئے
ہند میں وہ چشمۂ آبِ بقا پیدا ہوا

جب ہوئی جلوہ نمائی کی فرشتوں کو خبر
سب پکار اٹھے کہ اب مشکل کشا پیدا ہوا

جس نے دُنیا کو دکھائی صاف اک راہِ نجات
ویر ہی دُنیا میں سچا رہنما پیدا ہوا

دیدیا اس نے جہاں کو جیو رکھشا کا سبق
بے زبانوں کیلئے اک دیوتا پیدا ہوا

کردیا روشن جہاں میں اک چراغِ معرفت
خانۂ تاریکِ عالم میں دیا پیدا ہوا

ہر بشر کو ویر نے انسان بنایا اے نگم
نام کا انسان تھا وہ دیوتا پیدا ہوا

ویر ہی دنیا میں یکتا پیشوا پیدا ہوا

(۱) از استاذ ہما جناب پنڈت شگن چند صاحب روشن بی۔ اے۔ ایل ایل۔ بی ایڈووکیٹ میونسپل کمشنر پانی پت

ہوا مبارک اے عزیزو۔ ویر کیا پیدا ہوا
دیوتا مکتی کا سچا رہنما پیدا ہوا

جان و دل دونوں نہ ہوں آ سپر تجھ اور کس طرح
حسن ہے جس پر فدا وہ دلربا پیدا ہوا

دین دکھیوں کی مصیبت اُس نے سب سے ٹال دی
یہ انا تھوں کیلئے مشکل کشا پیدا ہوا

چار آنکھیں ہو گئیں۔ دل میں ترا آ گئی
پھول باغِ دہر میں کیا خوشنما پیدا ہوا

کاٹ کر رکھ دیں علیحدہ نفس کی سب بیڑیاں
شورِ آزادی جہاں میں جا بجا پیدا ہوا

دشمنِ ظلمت ہیں دونوں۔ تیرتھنکر اور قمر
چاند یہ گویا زمیں پر دوسرا پیدا ہوا

کیوں نہ اے روشن اتاریں ہم خوشی سے آرتی
ویر ہی دنیا میں سچا رہنما پیدا ہوا

(۲) از عندلیب گلستان جناب سخی لالہ چتر بہاری لال صاحب عاجز دہلوی

ویر ہی دنیا میں یکتا پیشوا پیدا ہوا
جیو رکھشا کے لئے دھرماتما پیدا ہوا

کر دیا پرکاش گھر گھر۔ دھرم کا دیپک دکھا
نورِ یزدانی مجسم۔ پُر ضیا پیدا ہوا

دھنیہ ماتا ترشلا کو جس کے بطن پاک سے
نور پھیلانے کو پورا چندرما پیدا ہوا

سینہ کی تصویر بن کر شانتی کے روپ میں
دھیرتا اور ویرتا کی پر تما پیدا ہوا

چل گئی اُپدیش سے جس کے نسیم جانفزا
گلشن بھارت میں ایسا خوش ادا پیدا ہوا

کا رنا مے سُن کے عاجز کو یہی وشواس ہے
ویر ہی دنیا میں سچا رہنما پیدا ہوا

جینتی ہو مبارک ویر تیری سب کو سالانہ

(۱) از فصیح السخن جناب بابو سمپت رائے صاحب مسکین ہیڈ کلرک ڈی۔ ایس۔ پی۔ آفس دہلی)

یہی اے ویر تمنا ہے۔ عزیزانہ فقیرانہ
نہ چھوٹے ہاتھ سے میرے تیری الفت کا پیمانہ

لیا ویراگ تو نے چھوڑ کر جب محل شاہانہ
منور کر دیا نورِ قدم سے سارا ویرانہ

پلا کر مجھ کو بھی اے ویر کر دے ایسا مستانہ
کہ کل دنیا نظر آئے مئے الفت کا پیمانہ

تیری تعلیم کے آگے ہر اک نے سر جھکایا ہے
اہنسا دھرم کا قائل ہوا ہے اپنا بیگانہ

تیرے اقوالِ زریں گونجتے ہیں سارے عالم میں
حکیمانہ۔ فہیمانہ۔ رفیقانہ۔ کریمانہ

پھلے پھولے اہنسا دھرم کا گلشن زمانے میں
جینتی ہو مبارک ویر تیری سب کو سالانہ

قبول افتد زہے عز و شرف مسکین عاجز کا
یہ چند اشعار کا اے ویر تحفہ ہے حقیرانہ

(۲) از عکاسِ فطرت جناب کوی بھوشن راج بہادر صاحب شرما بی اے دہلوی)

سرورِ معرفت سے پھر بنا دے دل کو مستانہ
چلے پھر ساقیا محفل میں پیمانہ پہ پیمانہ

اہنسا دھرم کا تو نے دکھایا ہے نیا جلوہ
تیرا انداز دنیا میں رہا سب سے جداگانہ

نرالی آن تھی تیری نرالی شان تھی تیری
تیری شوکت تھی شاہانہ تیرا مسلک فقیرانہ

وجودِ پاک سے تیرے عقیدت ہے زمانے کو
تیرے دربار میں لائے ہیں سب بھگتی کا نذرانہ

مجھے تجھ میں نظر آتی ہے اپنے شیام کی صورت
وہ کنڈل پور ہے تیرا کہ ہے موہن کا برسانہ

پھلے پھولے شرر یہ جینیہ منڈل باغِ عالم میں
مبارک ویر کی سنتان کو یہ جشن سالانہ

(۳) از اختر دہلوی)

وہ جلوہ دل افروز شوا ہی پھر اک بار دکھا دینا
وہ مہر و وفا۔ الطاف و کرم کے شیریں سخن سنا دینا

تاریکی شب ہے بحرِ طلاطم خیز ہے ملاح خوابیدہ
ہے ورطۂ غم میں قومی سفینہ اسکو پار لگا دینا

ہیں اہلِ عالم آج مریضِ بغض و عناد و حرص و ہوا
ہو چشم زدن میں کلی صحت ایسی کوئی دوا دینا

بھرا ہے دیر کی تعلیم میں وہ کیف مستانہ

(از شیل آتو مے جناب بٹو دگمبر پرشاد صاحب ضا گو ہم خلف جناب پریکاں صاحب جوی ضا دہلوی)

بسنت آئی خوشی چھائی چمن کا خود ہی بھر آئی — قلم پھر صفحۂ قرطاس پہ چلتا ہے مستانہ
کلیجہ ہے کس کا سانپ کے پھن پر قدم رکھدے — جواں مردوں میں دکھلاوے کوئی یہ کارِ مردانہ
نہ بجلی سے ڈرا وہ دیر نہ آندھی کے جھونکوں سے — اندھیری رات میں تھا اپنے ہی مقصد کا پروانہ
اہنسا کی ہوئی تبلیغ اس الفت نے دنیا میں — کہ بکری شیر سے کرنے لگی مل جل کے یارانہ
دیا لطف و کرم اور شانتی کے بہہ گئے دریا — کیا اس پھول نے خوشبو سے اپنا دیش مستانہ
کیا تپ جا کے جس صحرا میں وہ صحرا ہوا گلشن — بلاؤں کی جگہ بیکنٹھ تھا جنگل کا ویرانہ

نہ ہو غافل کہ گوہر کیا خبر یہ کب چھلک جائے
بس اپنی عمر کا اب ہو گیا لبریز پیمانہ

(از عندلیب چمنستان سخن کوی ونود دیال راج پنڈت شیو نرائن صاحب ضاد دہلوی)

سنا اپدیش جس نے ہو گیا وہ اُن کا دیوانہ — بھرا ہے دیر کی تعلیم میں وہ کیف مستانہ
جو آتا ہے یہاں وحدت کے بھر بھر جام پیتا ہے — نہیں منڈپ یہ جلسے کا یہ ہے عرفاں کا میخانہ
ملی ہے دھرم کی شکتی کی بجلی تیکی آنکھوں کو — ہے کیول گیان سوامی کا انہیں دیدار جانانہ
دکھائی راہ تونے مکتی کی زمانے کو — دیا پیاسوں کو تونے گیان امرت بھر کے پیمانہ
وہ انتم ترتھنکر تھا اگرچہ شاہ شاہوں کا — بسر کی زندگانی اس نے دنیا میں فقیرانہ

منقش لوحِ دل پر ہے اہنسا دھرم نرائن
مرا جوشِ عقیدت ہے تیری خدمت میں نذرانہ

ضیائے ویر سے معمور ہے ہر دل کا کاشانہ

(از جادو رقم جناب بابو بلدیو سنگھ صاحب نگر دہلوی)

بنایا ویر نے جب پیرہن اپنا فقیرانہ — پھٹا اور ہو گیا قدموں پہ اُس کے تاجِ شاہانہ
پیا خود ویر نے جب اُس مئے وحدت کا پیمانہ — کیا اہلِ جہاں کو بادۂ عرفاں سے مستانہ
بہار آئی۔ ہوا جنگل میں منگل انکے قدموں سے — چراغِ معرفت پر ہو رہی تھی خلق پروانہ
زمانے کو ہوا نورِ الٰہی عرش سے بخشش — ضیائے ویر سے معمور ہے ہر دل کا کاشانہ
محبت کی جہاں کو از سرِ نو زندگی بخشی — مٹایا صفحۂ ہستی سے اس نے لفظ بیگانہ
فرشتوں کے سرِ تسلیم خم تھے اسکی چوکھٹ پر — ہوا جب ترشلا دیوی کے یہ فرزند فرزانہ

ہزاروں سال گذرے آج تک دنیا میں روشن ہے
جہاں میں اے نگم اِس ویر کا پُر نور افسانہ

(از شاعرِ شیریں زبان جناب مسٹر بی۔ ایل صاحب منا گنجو دہلوی)

مسرت خیز ہے یہ جشن کیسا آج شاہانہ — نظر آتا ہے ہر پیر و جواں دل شاد و مستانہ
خوشی میں مست کنڈل پور بھی کچھ ایسا ہے اللہ — کہ فردوسِ بریں بھی آج ہے اس سے کھسیانہ
کھنچی تصویر ہے ہر دل میں اسی کے رُخِ زیبا کی — ضیائے ویر سے معمور ہے ہر دل کا کاشانہ
اگرچہ آپ کو سب نعمتیں دنیا کی حاصل تھیں — گذاری زندگی لیکن شہنشاہ نے فقیرانہ
حقیقت ہو گئی روشن اسے تاریک دنیا میں — پیا جس نے تیرے اپدیش کا سوادِ شیریں پیمانہ

رہِ گم گشتگاں کا ویر تھا اک ناخدا گنجو
اسی نے ڈوبتا بیڑا بچایا تھا دلیرانہ

تھے ملائک جس کے تابع دور تھا وہ ویر کا

(از ناظم بے مثال جناب حکیم مدن لال صاحب مدن منیجر سودیشی دواخانہ)

نور آنکھوں میں سمایا ہے حقیقی ویر کا
دل پہ نقشہ کھنچ رہا ہے آپ کی تصویر کا

آپ کے اپدیش سے دنیا کے پھندے کٹ گئے
آپ کی طرز بیاں میں کاٹ ہے شمشیر کا

جیو کے ادھار کی تصویر ایسی کھینچ دی
گویا جنت سے سوا ہر لفظ تھا تقریر کا

رات دن ہے آپ کا اک نام ہی ورد زباں
آپ کا گھر بن گیا دل ہر جوان ویر کا

نور آنکھوں میں تو دل میں طاقتوں کا ہے ظہور
آپ کی خاک قدم نسخہ بنا اکسیر کا

آپ کی توصیف کا ہر لفظ پر انوار ہے
کیا مسرت خیز ہے جشن ولادت ویر کا

ہر طرف ہے اے مدن گلزار جنت کا سماں
تھے ملائک جس کے تابع دور تھا وہ ویر کا

(از طوطی زماں جناب مولانا ذیشان احمد صاحب شاکر سہانپوری)

ہو رہا ہے پریم چرچا آج گھر گھر ویر کا
کر رہا ہے پریم ورشا پریم ساگر ویر کا

جیتا ہے سنسار کو اس نے بلا شمشیر کے
ہے زمانے سے نرالا پریم خنجر ویر کا

ان کا تھا سارا زمانہ وہ زمانے بھر کے تھے
کیا وسیع اخلاق تھا اللہ اکبر ویر کا

کشٹ میں جب پریم مالا اپنے پیارے ویر کی
پا لیا نروان جس نے جا لیا در ویر کا

سحر تھا۔ اک معجزہ تھا کیا انہوں نے کیا کیا تھا
پریم میں ڈوبا ہوا ایک ایک اکشر ویر کا

پاپ ناشک کرم گھاتک بھیے ہرن منگل کرن
کیسا ہے کلیان کاری نام شاکر ویر کا

(از ناز دہلوی)

لے کے سنیاس وہ محلوں سے باہر نکلا
تیاگ کی جسم پہ اوڑھے ہوئے چادر نکلا

مچ گئی دھوم اہنسا کا پیامبر نکلا
روشنی پھیل گئی ماہ منور نکلا

ظلمتیں ہو گئیں کافور سیہ خانوں کی
روح جاگ اٹھی گلستاں میں گلستانوں کی

مرتبہ کس کو ہے دُنیا میں میسر ویر کا؟

(از مایۂ ناز جناب لالہ سمبھو دیال صاحب سرشار سہانپوری)

ہو گیا ہے نام جب سے نقش دل پر ویر کا
پڑھتا رہتا ہوں وظیفہ میں برابر ویر کا

ویر سے ہو ویر تا خوف و خطر کا کام کیا
میں پلٹ دیتا ہوں دُنیا نام لیکر ویر کا

بادۂ اُلفت کی لذت کو وہ سمجھے کس طرح
جس نے چکھا ہی نہیں ہے پریم ساگر ویر کا

پریم کے اوتار ہیں اور شانتی کے دیوتا
مرتبہ کس کو ہے دُنیا میں میسر ویر کا

ہے بہت ادنیٰ سا خادم ایک ادنیٰ سا غلام
اے عزیزان وطن سرشار رہبر ویر کا ہے

(از سحر گفتار جناب پنڈت جگدیش چندر صاحب جوش بی اے انبالوی)

بول بالا ہے زمانے میں جو ہر سو ویر کا
ہے نتیجہ آپ کی تعلیم عالمگیر کا

ہے تری تعلیم گر قوں کو اُٹھانے کیلئے
بے زبانوں کی زباں ہے حوصلہ دلگیر کا

کیوں نہ بندوں کو ترے مال و خزانے ہیچ ہو
کام کرتا ہے تیرا ہر لفظ جب اکسیر کا

کشت و خوں بالکل مٹایا پریم کی تلوار سے
آپ کی آمد تھی گویا جاگنا تقدیر کا

تیری ہستی نے کیا ہندوستاں کو سرفراز
آسماں تک جا لگا گنبد تیری تعمیر کا

نام دُنیا میں رہے گا اس عجب تسخیر کا
جو احسانے تیری پھیرا ہے مُنہ شمشیر کا

مانتا ہے جوش آج ہر کوئی اُنکے حکم کو
جم گیا ہے ہر دل پہ سکہ ویر کی تقریر کا

(از گلشن رائے گلشن سہ سہ)

ویر کا نام مقدس ہو سدا ورد زباں
منزل مقصود ہو بے کدورت بے گماں

واسطے دنیا کے تھا اپدیش اِن کا آبِ حیات
تھا اثر سیدھا. سادھا چارۂ دردِ نہاں

پھر وہی بھارت ہوا اپنا پھر زمانہ ویر کا

(از مہادھرا داستانِ سخن جناب کوی ونود پنڈت شیو نرائن صاحب مذاق دہلوی)

آنکھ کی پتلی میں جلوہ ہے تیری تنویر کا — عکس آتا ہے نظر تصویر میں تصویر کا

نام لیتا ہوں زباں سے جب میں تجھ سے ویر کا — چومتا ہے نطق گویا منہ لب تقریر کا

جھک گئے دشمن کے سر تیرے اہنسا دھرم سے — پھر گیا منہ ستّ کے ہتھیار سے شمشیر کا

نام بھارت ورش کا دنیا میں روشن کر دیا — تو نے چمکایا ستارہ دیش کی تقدیر کا

تو نے دنیا کو سکھایا ہے اہنسا کا سبق — تیری خاکِ پا میں ہے ویرا اثر اکسیر کا

تجھ کو کاتک کے مہینے میں ملا نروان پد — دیپ مالا اک کرشمہ ہے تیری تنویر کا

کیا مذاقِ خستہ جاں سے ہو ثنا گوئی تیری
تنگ ہے مدحت میں تیری دائرہ تقریر کا

(از فخرِ قوم جناب لالہ جھنو لال صاحب پیکاں جوہری دہلوی)

دھرم سے کر پریم ہو۔ بل کر جواں ویر کا — پھر وہی بھارت ہوا اپنا۔ پھر زمانہ ویر کا

دھیان کرتے ہیں جو سچے دل سے ملیں ویر کا — بن نہیں سکتے نشانہ کرم روپی تیر کا

جنم لیتے ہی وہ مایا برسی کنڈل پور میں — ایک بھی مفلس نہ تھا مارا ہوا تقدیر کا

پھول برساتے تھے دیوی دیوتا آکاش سے — آسماں تک تھا اثر جشنِ ولادت ویر کا

ایسا جلوہ تھا ہزار آنکھوں سے دیکھا بار بار — رہ گیا مشتاق پھر بھی چاند سی تصویر کا

اہلِ عالم سے یہی پیکاں کی ہے التجا
ہر گھڑی ہر وقت ہر دم دھیان کر لو ویر کا

کلمہ بھرتے ہیں سبھی شیخ و برہمن ویر کا

(از گنجینۂ سخن جناب بابو چندو لال صاحب اختر ایڈوکیٹ وائس پریذیڈنٹ دہلی)

دونوں عالم کے لئے تھا وقف تن من ویر کا جلوۂ عرفاں سے تھا معمور خرمن ویر کا
جس میں الفت تھی وہی تھا نشیمن ویر کا دشت کا ہر ایک ذرہ بھی تھا گلشن ویر کا
ایک کنڈل پور نہ تھا دنیا میں مسکن ویر کا

موہ لیتا تھا اسے وہ جس پہ کرتا تھا نظر اسکی باتوں کا ہوا کرتا تھا ہر دل پر اثر
خدمتِ مخلوق میں تھا منہمک آٹھوں پہر دکھ درد عالم کے لیا کرتا تھا تنہا اپنے سر
اشکِ عالم جذب کر لیتا تھا دامن ویر کا

ہو اگر دنیا میں عہدِ ویر کا جاری چلن ویر کی تعلیم سے روشن ہوں پھر دل جان و تن
ویر کی تنویرِ عرفاں سے منور ہو وطن ویر کے نقشِ قدم پر ہم اگر ہوں گامزن
از سرِ نو کیوں پھلے پھولے نہ گلشن ویر کا

اس نے عالم کو کیا اسرارِ حق کا راز داں یاد اسکی ہے دلوں میں تا ابد ورد زباں
اس کے دم سے آج ہے انساں خدا کا ترجماں دل سے ہے مداح اس کا ایک ایک پیر و جواں
کلمہ بھرتے ہیں سبھی شیخ و برہمن ویر کا

(از نتیجۂ افکار جناب بابو جیتر بہاری لال صاحب عاجز دہلوی)

ہے کرشمہ سب جہاں میں یہ شری مہاویر کا ہو گیا دل خوش زمانے میں ہر اک دلگیر کا
نقش ہے دل پہ سکہ ویر کی توقیر کا

آئے تھے دنیا میں یہ کلفت مٹانے کیلئے کرم کے بندھن سے جیووں کو چھڑانے کیلئے
کیا بیاں ہو ہم سے ان کی شانِ عالمگیر کا؟

گمرہوں کے واسطے اک رہنما پیدا ہوا جو زمانے کے بزرگوں سے بہت اچھا ہوا
ہے خلاصہ بس یہی عاجز میری تقریر کا

آسمانوں سے بھی اونچا ہے سنگھاسن دیر کا

(از دیوانۂ قوم جناب مسٹر بی سین صاحب گوہر پانی پتی)

آؤ سب کرنے چلیں مندر میں درشن دیر کا
ہے مرادوں سے بھرا سر سبز گلشن دیر کا

مکت ہونے کے لئے سیدھا ہے رستہ کونسا؟
یہ سبق دیتا ہے اک عالم کو جیون دیر کا

گیان اور ویراگ کا چرچا ہے جبتک ہر جگہ
خشک ہو سکتا نہیں شاداب گلشن دیر کا

گیان اور تپ سے زمانے بھر کو روشن کر دیا
بے بدل ہے کل جہاں میں دھرم درپن دیر کا

ہمسری کوئی کرے کیا لوک اور پرلوک میں
آسمانوں سے بھی اونچا ہے سنگھاسن دیر کا

کیوں نہ قائل آپ کے ہوں آج سب پیر و جواں
دھرم دنیا میں ہے اک سچا سناتن دیر کا

مکت ہونے کی تمنا ہے تو چل اس راہ پر
درس دیتا ہے دل گوہر کو سادھن دیر کا

(از شاعر رنگین بیان جناب مولوی محمد اسمٰعیل صاحب مظلوم سہارنپوری)

فی الحقیقت دیکھنے قابل ہے آنگن دیر کا
دل میں اہل دل کے قائم ہے نشیمن دیر کا

کیسی ہی بپتا پڑے تو ہو نہیں سکتا ہراس
دونوں ہاتھوں سے جو پکڑے بڑھ کے دامن دیر کا

اس کے دل سے دیر کی الفت نکل سکتی نہیں
جسکی آنکھوں نے کیا اک بار درشن دیر کا

جب گیا گلزار میں تو ہو گیا دل باغ باغ
گا رہی ہے بہار ہر گلشن میں سوسن دیر کا

جو مخالف تھے لگا کے سب نے مل کر ایڑی کا زور
بال بیکا کر سکے لیکن نہ دشمن دیر کا

جس کے دل میں ہمیشہ رہے دیر کی الفت کا داغ
ہم سمجھتے ہیں اسے مظلوم دشمن دیر کا
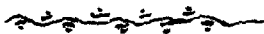
منبعِ رحم و عنایت ہے نشیمن ویر کا

(از فشاں و بحرِ فصاحت شمس العلماء جناب ڈاکٹر ایم ایچ جعفری صاحب نازؔ ایم اے بی ٹی پی ایچ ڈی)

منبعِ رحم و عنایت ہے نشیمن ویر کا — اور جہانِ عدل کہلاتا ہے گلشن ویر کا

تختِ اندر ہل گیا جس دم لیا اس نے جنم — کیا قیامت خیز تھا دشمن کو بچپن ویر کا

اسکی نظروں میں سکندر کا نصیبہ ہیچ ہے — ہو گیا سپنے میں بھی جسکو درشن ویر کا

"جیو کا پاپی یہ من بھی پریم کا مندر بنے" — کس قدر سچا ہے یہ اُپدیش روشن ویر کا

چترِ شاہی پہ ہے تف ظلِّ ہما کیا چیز ہے — سایہ افگن چاہیئے بس سر پہ دامن ویر کا

پاپ کی تاریکیوں میں ہے تلاشِ راہبر — یا الٰہی ہاتھ میں آجائے دامن ویر کا

پریم سے اُسکے نہ آئے کام جو دکھ درد میں
ہے اسی دھرمی کے دل میں سچا مسکن ویر کا

(از بلبلِ گلشنِ سخن جناب لالہ چرنجی لال صاحب لالہؔ گورنمنٹ ہائی اسکول دہلی)

پتہ پتہ سے عیاں ہے روئے روشن ویر کا — ہے تر و تازہ جہاں میں آج گلشن ویر کا

قلزمِ ظلم و ستم میں غرق ہو سکتا نہیں — ہاتھ سے جس نے پکڑ رکھا ہے دامن ویر کا

مثلِ موسیٰ دیکھتے ہیں نورِ حق کی روشنی — تا ابد قائم رہے گا پاک گلشن ویر کا

پارۂ آہن کو یوں کندن بنا دیکھا ہے یہ — سنگِ پارس ہے ہر اک سنگِ فلاسفر ویر کا

کیوں ضیائے حسن سے روشن نہ ہو اپنی ضمیر — نور ہے ہر آنکھ میں۔ ہر دل میں مسکن ویر کا

کوندتے ہی مٹ گئی۔ چمکی نہ پھر برقِ ستم — باعثِ برکت ہوا ہستی کا خرمن ویر کا

ہر گلِ داغِ جگر پہ کیوں نہ ہو رونق سوا
دل نہیں پہلو میں لالہؔ ہے یہ گلشن ویر کا

آئینہ حق و صداقت کا دکھایا دیونے

(از بلبلِ گلستانِ سخن جناب پنڈت امرناتھ صاحب اشنہا ادیب پرنسپل کالج سہارنپور)

جہل کی تاریکیاں اور راگیاں کا پردہ ہٹا | اٹھا ایسا علم و دانش کا پڑھایا دیونے

جڑ اصنا۔ گیان تناخیں۔ نیکی جنکی پتیاں | برکھش ایسا دھرم پالن کا لگایا دیونے

چھلکا شدھی۔ بیج بدھی اور گودا پرمانند | مان مریادا کا ایسا پھل چکھایا دیونے

کس طرح انکی دیا کے گائیں گیت اے ادیب

ہم نہ کچھ بھی تھے ہمیں سب کچھ بنایا دیونے

(از مخزنِ حلاوت جناب منشی محمد صدیق حسین صاحب صدیق دہلوی)

انتشار دہر کا نقشہ مٹایا دیونے | امن کا پیغام عالم کو سنایا دیونے

رہ گئیں موجیں تڑپ کر بحرِ طوفاں خیز کی | ڈوبتی کشتی کو ساحل پر لگایا دیونے

تا قیامت کیف کم ہوگا نہ ہستی کا مری | بادۂ عرفاں کا وہ ساغر پلایا دیونے

دیکھئے صدیق کو بھی ہو گیا مدحت سرا

آئینہ حق و صداقت کا دکھایا دیونے

(از منبع علم و سخن جناب منشی محمد مشتاق صاحب مشتاق انبالوی)

چاند بن کر جس گھڑی جلوہ دکھایا دیونے | خاکِ کنڈل پور کو نوری بنایا دیونے

ڈالدی جس پر نظر تائب گناہوں سے ہوا | بے نشاں ہو کر جہاں میں نام پایا دیونے

گِر رہا تھا جانبِ پستی جب ہندوستاں | نور کی دیکر جلا اس کو اٹھایا دیونے

اپنے ست تپ اور تیاگ کے پربھاؤ سے

ملک کو مشتاق اصنا کا بنایا دیونے

درد کو ہمدرد بن جانا سکھایا ویر نے

(از مرکز علم و فن جناب سید حکیم اقبال احمد صاحب ادیب جوجنرل سکریٹری بزم ادب انبالہ)

بے زبانوں کا زباں والوں کو گرویدہ کیا — یہ کرشمہ اپنی عظمت کا دکھایا ویر نے
زخم دل کو مرہم کافور کی حاجت ہے کیا — درد کو ہمدرد بن جانا سکھایا ویر نے
دیکھے عالم کو "اہنسا پرمو دھرما" کا سبق — ہند کو جنت نشاں آکر بنایا ویر نے

کچے دھاگے سے بندھی آتی ہے دنیا دیکھ لو
معرفت کا جام کچھ ایسا پلایا ویر نے

(از منبع فلسفہ جناب مولوی محمد احمد صاحب اختر دیوبندی)

کر کے تپ بارہ برس حاصل کیا کیول گیان — پھر گمرہوں کو راستہ سیدھا دکھایا ویر نے
کیا ہمیں سارہ؟ کیا جیند گپت؟ کیا مہاراجہ نند؟ — سب کو اپنا خادم بے زر بنایا ویر نے
رکھ دیا چرنوں میں سر ہاتھی نے عظمت دیکھ کر — اپنا گرویدہ زمانے کو بنایا ویر نے

شمع عرفاں کی جھلک اختر دکھا کر دہر میں
اپنا پروانہ ہر اک دل کو بنایا ویر نے

(از خزینۂ سخن جناب سید علی احمد صاحب تاباں شیخپوری)

جگمگا اٹھا ضیا پاشی سے جس کی بحر و بر — وہ چراغ مہر بھارت میں جلایا ویر نے
دیکھیے پیغام اہنسا اور نوید کرم داد — خواب غفلت سے زمانے کو جگایا ویر نے
پھول برساتے تھے دیوی دیوتا آکاش سے — شکم مادر میں جنم جس وقت لیا ویر نے

دے گئے کار نیک کی تعلیم تاباں دہر کو
راستہ مکتی کے پانے کا بتایا ویر نے

امن کا پیغام عالم کو سنایا ویر نے

(۱) از منبع علم و ہنر جناب ڈاکٹر محمد علی صاحب شاکر انبالوی

دل نہ اس دنیائے فانی سے لگایا ویر نے
چند روزہ زیست پر دھوکا نہ کھایا ویر نے

چھوڑ کر تخت و حکومت ساکن بن جا بنے
تیاگ جس کا نام ہے وہ کر دکھایا ویر نے

جو چلا اس راہ سے آواگون سے چھٹ گیا
جین مت کا راستہ ایسا بتایا ویر نے

اک گوالا ٹھونک کر کانوں میں کیلے چل دیا
درد سے لیکن نہیں لب تک ہلایا ویر نے

مدتوں سہتے رہے تکلیف صبر و شکر سے
جان کر کرموں کا پھل غصہ نہ کھایا ویر نے

جانچنے کو دیوتاؤں نے بھی انیک اپسرگ کئے
صبر و استقلال ہی لیکن دکھایا ویر نے

اندر بھوتی کی طرح آئے کئی پنڈت بھی اور
سب کو علمی بحث میں نیچا دکھایا ویر نے

جب کوئی رستہ نہ پایا پھر تو قدموں پر گرے
عالموں کو اس طرح پیرو بنایا ویر نے

جین مت گویا ہے کشتی بحر ہستی کے لئے
جو چڑھا اس کو ہی پار اک دم لگایا ویر نے

جین مت کو چشمۂ عرفاں کہیں تو ہے بجا
جام وحدت جس سے بھر بھر کر پلایا ویر نے

صلح کل کا صبر کے میداں میں جھنڈا گاڑ کر
امن کا پیغام عالم کو سنایا ویر نے

جین مت کے باغ میں شاکر نہ آئیگی خزاں
تا ابد پھل لائے گا جو بیج بویا ویر نے

(۲) از پیکر صدق و صفا جناب شیخ محمد یامین صاحب مہر (انبالوی)

ظلم کا نام و نشاں تک مٹایا ویر نے
درس الفت ذرہ ذرہ کو پڑھایا ویر نے

خواب غفلت میں پڑا سوتا تھا ہر فرد بشر
راگ گا گا کر مروت کے جگایا ویر نے

خوش نصیبی یہ ہماری کہ خاک ہندوستان سے
امن کا پیغام عالم کو سنایا ویر نے

بزم اعدا ہو کہ ہو اپنوں کی محفل اے مہر ور
بے خطر پیغام حق سب کو سنایا ویر نے

ہند کو جنت نشاں آ کر بنایا ویر نے

(از گنجینۂ حقائق جناب لالہ بول چند صاحب نادان جرنلسٹ انبالوی)

کشتیٔ ہندوستاں تھی آہ جب منجدھار میں
ناخدا بن کر اسے ساحل پہ لایا ویر نے

گرم تھا بازار معصوموں کے کشت و خون کا
ظلم کا نام و نشاں بالکل مٹایا ویر نے

دور دورہ تھا اودیا کا ہمارے دیش میں
ہند کو جنت نشاں آ کر بنایا ویر نے

چار سو چھائی تھی ظلمت جس سے کوئی نہ بچا
امن کا پیغام عالم کو سنایا ویر نے

مال و زر دولت کو چھوڑا جان کی پروا نہ کی
رنج و غم جور و جفا سب کچھ اٹھایا ویر نے

ستیہ اہنسا تپ سنجم تیاگ کا پالن کرو
موکش پانے کا یہ سیدھا رستہ دکھایا ویر نے

فیض پایا ہے بشر نے ان کے چشمۂ فیض سے
روح کی تعلیم کا دریا بہایا ویر نے

سجدہ آ کر فرشتوں نے سوامی کو کیا
معرفت سے درجۂ عرفان پایا ویر نے

تو بھی اے نادان شرن ہو جائیگی مکتی تیری
پار بھو ساگر سے لاکھوں کو لگایا ویر نے

(از مخزن ادب جناب حضرت ممتاز صاحب انبالوی)

امن کا پیغام دنیا کو سنایا ویر نے
حرف فتنہ صفحۂ دل سے مٹایا ویر نے

واقف میخانۂ ہستی ہوا ہے بادہ خوار
معرفت کا جام کچھ ایسا پلایا ویر نے

زخمۂ عرفاں سے کار ساز ہستی چھیڑ کر
عالم لاہوت کا نغمہ سنایا ویر نے

وہ گوالوں کا ستم و ظلم سنگم دیو کا
دائمی سکھ کیلئے ہر دکھ اٹھایا ویر نے

ٹوٹی کشتی کا میری لبِ دریا ہی ساحل ہوا

(از عندلیبِ چمنستانِ سخن جناب سید عارف حسین صاحب عارف [illegible])

ہوگیا دل کا غنی۔ دولت ملی حشمت ملی
ایک دانہ ویر کے خرمن سے گر حاصل ہوا

روحِ تازہ پھونک کر زندہ دوبارہ کر دیا
کس کے دم سے جین مت کو یہ عروج حاصل ہوا!

مٹ کے خود دنیا کو مٹنے سے بچالے کون ہے؟
نفس پر اتنا کسی کو کب اختیار حاصل ہوا

(از فطرت نگار پنجاب کے مشہور ڈرامہ نویس لالہ کشن چند صاحب زیبا)

ہیں اصولِ ویر اہنسا تپ برت سنجم تیاگ
گر عمل جس نے کئے پالن وہی کامل ہوا

پریم و اہنسا کا سبق اس نے سکھایا دہر کو
ٹوٹی کشتی کا میری لبِ دریا ہی ساحل ہوا

گر مہیں کر لی ویر کی تسکشا کو جس نے ایکبار
کاٹ کر آٹھوں کرم وہ موکش میں داخل ہوا

(از جادو قلم جناب خواجہ صغیر حسین صاحب انصاری سہانپوری)

ویر کے دربار سے الفت کا جو سائل ہوا
چین اس کو مل گئی اور اطمینان حاصل ہوا

مل گیا ملکِ قناعت۔ ہوگیا وہ بادشاہ
ویر کے دریا سے ایک قطرے کا جو سائل ہوا

کیوں نہ ہو بزمِ محبت میں چراغاں آج شب
آج کے دن ویر کو نروان پد حاصل ہوا

(از فخر الشعراء جناب مہاراج بہادر صاحب برق بی۔ اے دہلوی)

اگر نروان پد کا فی الحقیقت تو نے لیا
چڑھائے دھرم کی بیدی پہ چاہئے دل کا نذرانہ

مرقع تیاگ کا ہے زندگی مہاویر سوامی کی
لیا ویراگ چھوڑا جس نے تاج و تختِ شاہانہ

گلِ مضموں چنے ہیں برق میں نے فکرِ رنگیں سے
کہ یہ پشپانجلی ہے ویر کی محفل کا نذرانہ

جس نے کی تقلید تیری ویر کامل ہو گیا

(از ناظم بے مثال جناب حکیم مدن لال صاحب مدنؔ دہلوی)

مِل کے پارس سے طلا ہوتا ہے آہن جس طرح — جس نے کی تقلید تیری ویر کامل ہو گیا
ویر کے الطاف کا یہ معجزہ ہے اے مدنؔ — وعظ سنتے ہی تیرا میں دل سے قائل ہو گیا

(از جمیل القلم جناب لالہ چیترداس صاحب تانی فرید کوٹی)

آفتابِ نور کو قربت تیری منظور تھی — وہ مثیلِ حسن بن کر تجھ میں داخل ہو گیا
تا خدائی پر دیر تیری جس نے بسر کر لیا — بحرِ دنیا کا اُسے نزدیک ساحل ہو گیا

(از جادو وطن از جناب پنڈت پورن چند صاحب رنگین انبالوی)

ویر تھا تو۔ ویر ہے تو اور رہے گا ویر تو — دیکھ کر تصویر تیری دل سے بے دل ہو گیا
درسِ عبرت ہے جہاں کیواسطے تیرا سخن — وحدتِ مہاویر کا رنگینؔ قائل ہو گیا

(از شمع قوم جناب لالہ دیپ چند دیپک بی۔ اے منشی فاضل ادیب فاضل دہلوی)

جس نے کی تقلید تیری ویر کامل ہو گیا — مرنے جینے سے چھٹا۔ نروان حاصل ہو گیا
اس قدر چرچا تیری بخشش کا عالم میں ہوا — ہر جوان و پیر تیرے در کا سائل ہو گیا

(از فدائے قوم جناب لالہ جوتی پرشاد صاحب پریمی دیوبندی)

میں خودی میں چور تھا پر جب سنا تیرا کلام — "میں خدا خود ہوں" خیالِ غیر باطل ہو گیا
کرم رد پوں دشمنوں سے کس طرح پاؤں نجات؟ — راز میں یہ جان کر مکتی کے قابل ہو گیا

(از مصورِ فطرت جناب منشی محمد علی خاں صاحب شوخ بڑوت)

ویر شواہی کی محبت کے کرشمے کو تو دیکھ — جو پرانا دل تھا سینے میں نیا دل ہو گیا
جب زمانہ بھر ہے وارفتہ تیرا تو کیا عجب — شوخؔ سا جو رہیاں گر تجھ پہ مائل ہو گیا

وید بن کر خود خدا دل میں نازل ہو گیا

(از دبیر قوم جناب بابو بھولا ناتھ صاحب درخشاںؔ میتوی نسیم کشن منیجر)

راہِ حق میں جو مٹا سمجھو کہ قابل ہو گیا
وید رہبر کب ہوا؟ جب نقشِ منزل ہو گیا

جلوہ گاہِ وید جب ہر کعبۂ دل ہو گیا
قصۂ دیر و حرم دنیا سے زائل ہو گیا

وید کا ہر قول نقشِ صفحۂ دل ہو گیا
ہر بشر کو امتیازِ حق و باطل ہو گیا

وید کے مقصد سے جو انسان غافل ہو گیا
وہ سمندر تیر کر غرقابِ ساحل ہو گیا

وید کو دیکھا تو از خود رفتہ یوں دل ہو گیا
جیسے پروانہ نثارِ شمعِ محفل ہو گیا

اے درخشاںؔ تیرے در کا جو سائل ہو گیا
بندۂ عاصی وہی بخشش کے قابل ہو گیا

(از افتخارِ سخن جناب بابو سمیت رائے صاحب مسکینؔ ہیڈ کلرک ڈی۔ ایل او دہلی)

وید کے حلقہ بگوشوں میں جو داخل ہو گیا
اشرف المخلوق کہلانے کے قابل ہو گیا

اسکے دسترخوان پر جو آ کے شامل ہو گیا
خود ہی مجنوں خود ہی لیلیٰ خود ہی محمل ہو گیا

اسکی شانِ لطفِ بے پایاں بتاتی ہے ہمیں
وید بن کر خود خدا دل میں نازل ہو گیا

نام تیرا جب لیا اے وید جس نے ایک بار
پاپ کے بندھن کٹے مکتی کے قابل ہو گیا

آ تجھے زاہد بتائیں ہم طریقہ موکش کا
وید کی تقلید سے وہ گیان حاصل ہو گیا

ہے عیاں شانِ خدائی اسمیں وہ بھگوان ہیں
جان و دل سے پھر تو مسکیںؔ اس کا قائل ہو گیا

(از شیریں گفتار جناب مسٹر بلدیو سنگھ صاحب نکودھاوی)

وید کو قدرت سے ایسا نور حاصل ہو گیا
پڑ گئی جس پر نظر وہ ماہِ کامل ہو گیا

وید کی تعلیم سے اتنا ہوا اسکو عروج
ذرۂ ریگِ بیاباں عرشِ منزل ہو گیا

اب دھنسا دھرم کی پھیلی تھی دنیا میں شعاع
وید کا ہر شبد اک خورشیدِ منزل ہو گیا

ہے یہ حکم دیکھئے تو وید کے ہی فیض سے
دوزخی انسان بھی جنت کے قابل ہو گیا

کہاں پھر غم رہے گر دیر سا غمخوار ہو جائے

(از مخزنِ طلاوت جناب مولوی محمد ایوب صاحب ۲ ٹماٹیڈ کیٹ سہارنپور)

سورگ سے بھی بہت دلکش یہ سنسار ہو جائے
اھنسا دھرم کا دنیا میں اگر پرچار ہو جائے

زمیں بھارت کی گلشن بے خار ہو جائے
کہاں پھر غم رہے گر دیر سا غمخوار ہو جائے

(از بلبلِ معنی گردِ داستان جیلخان بہار شیخ قربان احمد صاحب زینی آنریری اسسٹنٹ سکریٹری)

جدا ہو خلق پر گندہ وہ تلوار ہو جائے
گلے سے لگ کے اسکو ہار امرت دھار ہو جائے

ہنسیں آہوں کے گل اور آنسوؤں کا ہار ہو جائے
اھنسا دھرم کا دنیا میں اگر پرچار ہو جائے

(از مرکز علوم و فنون جناب سید حسن عباس صاحب رئیس و آنریری مجسٹریٹ سہارنپور)

چلائے پریم کی کشتی جو بلی ہے اھنسا کی
تو اس کا بحرِ غم سے کیوں نہ بیڑا پار ہو جائے

قضا کا خوف اسکو اور نہ دشمن کا کوئی خطرہ
اھنسا دھرم کا ہتھیار جس کا یار ہو جائے

(از استاد علوم ادب جناب مولوی ایس۔ کے فخر زمنشی عالم و منشی فاضل انبالوی)

دیوالی آئی عالم جگمگا اٹھا چراغاں سے
ذرا اب دیپک تعلیم کا پرچار ہو جائے

دیئے کو اپنے روشن کیجئے شمع الفت سے
اھنسا کے دیئے سے ضو فشاں تہوار ہو جائے

(از عندلیب چمنستانِ سخن جناب سید عارف حسین صاحب رئیس سہارنپوری)

چمن میں ایسی رونے محبت دیر سے ہو گی
یہ کیا ممکن گل و بلبل میں بھی تکرار ہو جائے

صداقت کا عمل ہے اس کا دو کو دوا ہو
اور پھر سنتوش سے معمور یہ سنسار ہو جائے

(از دیوانہ قوم جناب لالہ شیو پرشاد صاحب شفیق تہیا گنج سہارنپوری)

دیا تھا ویر نے جو درس اگر وہ یاد ہو جائے
محبت کا جہاں میں گرم پھر بازار ہو جائے

ہر اک ذرہ جہاں کا مطلع انوار ہو جائے
اور ہندوستاں میں بھی نیکی کا پھر سے پیار ہو جائے

مشہور روزانہ اردو اخبارات کے ایڈیٹر صاحبان کی پُرزور شردھانجلی

(از بلبلِ چمنِ سخن جناب حضرت صحرائی ناظم ملاپ)

گونجی فضائے ہند اہنسا کے نام سے — چھلکی مئے حیات محبت کے جام سے
دل مسکرائے ویر کے دلکش کلام سے — سرشار جگ کا شوق ہوا اُن پیام سے
انسانیت کا درس سکھانے کو آگئے — مہاویر راز زیست بتانے کو آگئے

(از عندلیبِ گلزارِ سخن جناب لالہ نانک چند صاحب ناز ایڈیٹر پرتاپ)

ہند کی عظمت بڑھی ہے ویر کے پیغام سے — آسماں بھی کھا گیا خم اُسکے اونچ بام سے
بھر گیا آنکھوں میں تعلیم دو عالم کا خمار — پی لئے دو گھونٹ جب اسکے چھلکتے جام سے
فلسفہ اسکا فرشتوں کی زباں پر نقش ہے — مٹ نہیں سکتا کبھی یہ گردشِ ایام سے

(از شہسوارِ میدانِ صحافت جناب منشی گوپی ناتھ صاحب امن اسسٹنٹ ایڈیٹر تیج)

موسیٰ و محمد تھے اس شان کے رہبر — کفار کو پیغامِ فنا اِن کی تھی شمشیر
اس قسم کے تھے رہنما عیسیٰ و مریم — تھے الفتِ انسان کی وہ اک بولتی تصویر
محدود تھی ہمدردی مگر نوعِ بشر تک — ممتاز ہیں اس طبقہ میں بھگوان مہاویر

(از شگفتہ زبان جناب لالہ سیوو رام صاحب نجمی ایڈیٹر ویر بھارت)

مسافر وادیِ عشقِ وطن کا — مصیبت کو ہی راحت جانتا ہے
چل مہاویر کے نقشِ قدم پہ — گر محکومی کو ذلت جانتا ہے
کہو کیا حالِ دلِ زخمی کہ سب کچھ — وہ آشوبِ قیامت جانتا ہے

(از استادِ علم و سخن علامہ وقار انبالوی ایڈیٹر احسان لاہور)

سینہ کی جوت سے دور اس نے ہر اندھیکار کیا — پاپ کی نگری میں اہنسا کا وہ پرچار کیا
پریم پرکاش سے بھرپور یہ سنسار کیا — کرودھ کا ناش کیا۔ دُور اہنکار کیا
مہاویر سوامی نے ہر جیو کا اپکار کیا

سوتنتر آج بھارت کو کرایا ویر شوامی نے

(از زور قلم جناب ماسٹر سیتا رام صاحب ماہر پانی پتی)

اندھیرے کو بھارت کے مٹایا ویر شوامی نے
دیا نور حقیقت کا جلایا ویر شوامی نے

مسخر ہو گیا عالم۔ کیا تسخیر ہر دل کو
کلام حق ہمیں آکر سنایا ویر شوامی نے

دیا جام محبت بھر کے اس نے پریم ساگر سے
ہمیں امرت اہنسا کا پلایا ویر شوامی نے

سراپا خود دیا بن کر اہنسا کے اصولوں سے
سوتنتر آج بھارت کو کرایا ویر شوامی نے

اہنسا کی یہ شکتی ہے کہ گاندھی جیسی ہستی کو
اہنسا کا سچا پجاری بنایا ویر شوامی نے

وہی تھا ویر جس نے نفس امارہ کو مارا تھا
مکمل اندریوں پر قابو پایا ویر شوامی نے

بہت جادو یہاں دیکھے بہت سے گل فشاں دیکھے
مگر امرت کی ورشا سے رجھایا ویر شوامی نے

زمانہ جن سے کرتا تھا ہمیشہ دور سے نفرت
انھیں چھاتی سے آکر خود لگایا ویر شوامی نے

کوئی مانے نہ مانے برملا کہتا ہوں یہ ماہر
پلٹ دی ساری دنیا کی ہی کایا ویر شوامی نے

(از نتیجۂ خیال جناب پنڈت آتما رام صاحب آتما کوشک دیپ فاضل نباروی ایڈیٹر اخبار گڈ جن بھومی دہلی)

جب یہاں پر ٹوٹتے تھے ظلم غربا پر بہت
ظلم کی تصویر جب بھارت سراپا ہو گیا

بزم دنیا میں جنم تب لے لیا مہاویر نے
نور جس کا ایک عالم پر ہویدا ہو گیا

وہ دکھایا معجزہ کہ سخت سے بھی سخت دل
سوز الفت کا مجسم ہی سراپا ہو گیا

جین مذہب کی حقیقت کی بیاں سطور سے
نقش ہر دل پر اہنسا کا عقیدہ ہو گیا

وہ دکھائی شمع اس نے پریم کے اپدیش کی
تنگ اور تاریک دل میں بھی اجالا ہو گیا

اہل مغرب بن رہے ہیں کوشک دیکھو شیریں
ویر کے اپدیش کا دنیا میں چرچا ہو گیا

مہاویر شوامی مہاویر شوامی

(از پروانہ قوم تیاگ مورتی شری چندن منی جی مہاراج)

یہاں بھارت بھومی میں کٹتی تھی گیّا — نہیں بے زباں کا تھا کوئی رکھیا
پھنسی جب بھنور میں تھی بھارت کی نیّا — کہو کون آیا تھا بن کر کھویّا؟

مہاویر شوامی - مہاویر شوامی

سنا کر امرت بھری جین بانی — ہٹا ڈالی دنیا سے خوں کی روانی
کئے پار جس نے کروڑوں ہی پرانی — کہو کون تھا وہ مہاپرش گیانی؟

مہاویر شوامی - مہاویر شوامی

اہنسا کا سندیش جگ کو سنا کر — گیا کون نندرا سے بھارت جگا کر
کیا جس نے روشن جہاں بھر کو آ کر — کہو کون تھا وہ دھرم کا دِواکر؟

مہاویر شوامی - مہاویر شوامی

سدا ہند باسی جپیں جس کی مالا — پلایا تھا جس نے مدھر پریم پیالہ
بھٹکوں کو جس نے تھا رستہ پہ ڈالا — کہو کون ایسا تھا رہبر نرالا؟

مہاویر شوامی - مہاویر شوامی

شمر گھٹ کے اندر بھی جن کو کرتے ہیں بندن — درشنوں سے جن کے کٹیں کرم بندھن
ہے سارا جگ جن کو دکھ کے نکندن — کہو کون تھے ویر وہ پیارے چندن؟

مہاویر شوامی - مہاویر شوامی

مہاویر شوامی مہاویر شوامی

(از نتیجہ افکار جناب پنڈت بنسی لال جی شرما مالیر کوٹلہ)

زمانے میں اندھیر جب چھا رہا تھا | اہنسا کا جس دم نشاں مٹ گیا تھا
دھرم کے بچانے کو کون آگیا تھا؟ | ادویا کا طوفان آمنڈا ہوا تھا

تمہا ویر شوامی ۔ مہاویر شوامی

غریبوں کی دنیا تھی برباد ساری | تھی جب بے زبانوں پہ بیداد بھاری
تب مٹائی دھرم سے کس نے اپنا چاری؟ | تھا سارے جگت پہ متعصبات طاری

مہاویر شوامی ۔ مہاویر شوامی

محبت کی تعلیم بتا کس نے دی ہے؟ | شکتی ہوا کس کے دم سے بجلی؟
کس کی بدولت سنسار میں شانتی آئی ہے؟ | بھلائی بلا غرض کہو کس نے کی ہے؟

مہاویر شوامی ۔ مہاویر شوامی

آگئی تازگی ہر بیر و جوان میں | کہو تھی یہ تاثیر کس کی زباں میں؟
پھیلا دیا نور کس نے جہاں میں؟ | گیان کی مشعل لے کر ہندوستان میں

مہاویر شوامی ۔ مہاویر شوامی

اہنسا کا میدان سر کر رہے ہیں | جو اپدیش گاندھی جی اب کر رہے ہیں
وہ ہے کون جس کا کہ دم بھر رہے ہیں؟ | یہ کس کے قدم پہ قدم دھر رہے ہیں؟

مہاویر شوامی ۔ مہاویر شوامی

(بزبان پنجابی) **بھگوان مہاویر دی یاد**

(از دیوانۂ وطن جناب شری ہری چند صاحب اختر (جیون دوآبہ))

آج توں ڈھائی ہزار سال پہلاں — سجنوں اس جہان وچ اک دیر آیا
ترشلا دیوی سی ماتا دا نام یارو — اوہدی ککھ وچ دھار شریر آیا
چیت شدی ترودشی شبھ گھڑی اندر
بن کے رب دی موہنی تصویر آیا

باراں برساں تپسیا کٹھن کیتی — بڑے دکھ جھلے پھر من نوں مار لیتا
جے کر انہاں تے کسے نے ظلم ڈھایا — نہیں دل وچ برا وچار کیتا
آخیر پربھو نے کیول گیان پا کے
آ کے دنیا دا پھیر سدھار کیتا

ارجن مالی تے چنڈ کوشیے جیہے — لکھاں جیواں نوں جگ توں تار یا سی
گوتم سوامی سی آنہاں دا شیش وڈا — چندن بالا دا جیون سدھاریا سی
سجنوں دیوالی دے دن نروان پا کے
پربھو موکش دے دل پدھاریا سی

جھنڈا ستیہ اہنسا دا چک آچا — ساری دنیا وچ امن کرائی جاواں
باپو گاندھی نے جو سندیش دتا — اوہناں گلاں تے پیرو دھائی جاواں
تا ہر پریم دی جوت جگا سارے
ویر پربھو دی جے جے بلائی جاواں

(در زبان فارسی) **بیا بتخانہ دل دیر از رہ چشم**

(از دبیر قوم جناب لالہ بھولا ناتھ صاحب درخشاں سپول کشمیری بلند شہری)

ضمیر انور تو ہست رشک ساغر جم — درین ست عکس فگن نقش کل بر شہ عالم

تو رہنمائے جہانی چو اختر اعظم — مرا ست دیدن تو باعث سرور دوام

ترا ز ضیا۔ سر تاج شہان ملک جہاں — چو خم شدند بہ پایٔ تو تافتند اماں

چنیں پرستش پائے تو از پئے انساں — مرا ست وجہہ۔ از رہ اطمیناں

بہ ہر مرجع درویش و بادشاہ توئی — مشیر صادق آفاق و خیر خواہ توئی

معین بیکس و محتاج را پناہ توئی — سریر ملک و دیں اہل عز و جاہ توئی

بیا بتخانۂ دل دیر از رہ چشم
بساز کعبۂ حق چہ جلوہ گاہ صنم

(در زبان دیہاتی) **کھول کر دیدّوں کو دیکھو تو بڑا پن دیر کا**

(از فطرت نگار جناب پنڈت آسا رام صاحب چودھری مار دو سہانپوری)

بول جے مہادیو کی کرتا ہوں درشن دیر کا — رانی تر شلا راج سدھارتھ کے نندن دیر کا

دھرتی۔ امبر۔ اگنی۔ اور تھے جنگلے دیکھو ہی جے — آپوں ہی کرتے تھے دیو۔ دیکھ چھٹ پن دیر کا

راجے۔ نواب۔ پیشنٹ۔ نیشی ہور ٹھاکر — جھکتے نہ تھے دیکھکر بار بار جوبن دیر کا

دیوتا تھا اور دھرم کا ایک اوتار تھا — گوڑ تے دیکھو بڑھاپے نے لڑکپن دیر کا

پار تارا کھربوں کو کروڑوں کی گتی کر گیا — کھول کر دیدّوں کو دیکھو تو بڑا پن دیر کا

کمبھ پر پھانسی کے لٹکتے سے تارا کس نے دیوا — تگہ پتھانو کا دھنتر دل میں سمرن دیر کا

جاؤ سب جے بولتے مہادیو جی کے دھام کو
چودھری مار دو نے بھی دیکھا ہے چاندن دیر کا

ویر شوامی کے جنم سے در کھلا نروان کا

(از اُستادِ زماں جناب بابو شنکر چند صاحب روشن ایڈوکیٹ پانی پت)

ویر شوامی کے جنم سے در کھلا نروان کا ۔ سورگ کا نظارہ کنڈل پور کے میدانوں میں ہے

کیوں نہ ہفت افلاک پر تحت اندر کلا ہے ۔ دیوتا ویراگ کا راجہ کے ایوانوں میں ہے

تیرہ تھے کس لیے مٹائیں پاپ کی تاریکیاں ۔ نور بن کر معرفت کا وہ صنم خانوں میں ہے

تیاگ کر گھر بار جس گردش میں کی عمر بسر ۔ آج وہ گردش کہاں ساقی کے پیمانوں میں ہے؟

ہاں دکھا اے ویر شوامی حسن کا جلوہ نیا ۔ ایک مدت سے یہ روشن تیرے دیوانوں میں ہے

(از بلبل چمن سخن جناب بابو رمیش چند صاحب تمنا بلیکشی ایڈوکیٹ پانی پت)

شکل آنکھوں میں بسی آج مہاویر کی ہے ۔ کیا ضرورت مجھے پھر اور کی تصویر کی ہے

جلوۂ طور تو موسیٰ ہی نے دیکھا ہوگا ۔ دل میں تصویر ہر شخص کے مہاویر کی ہے

مدتوں بعد بھی یہ دل میں اتر جاتے ہیں ۔ کاٹ اب بھی ترے الفاظ میں شمشیر کی ہے

کوٹ کر تو نے اہنسا تھی بھری رگ رگ میں ۔ جو بھی ہے ہند میں طاقت اسی اکسیر کی ہے

بزم میں آج اے بیکس کہیں روشن ہے ضرور ۔ تیرے ہر شعر میں جھلک اسی تنویر کی ہے

(از فخرِ قوم جناب بابو جیند ولال صاحب اختر ایڈوکیٹ دہلی)

آج کیوں ہر ذرۂ خاکِ زمیں پر نور ہے ۔ چپہ چپہ کیوں زمیں کا جلوہ گاہِ طور ہے

کیوں پتہ پتہ باغِ عالم کا نشہ میں چور ہے ۔ کیوں بچہ بچہ آج بھارت ورش کا مسرور ہے

وقت ہے اس ویر شوامی کی ولادت کا ہے جس ۔ نامور دنیا میں ہے آفاق میں مشہور ہے

جس کا بدخواہوں سے بھی برتاؤ تھا شفقت کا سلو ۔ ڈنک کھا کر بھی بچایا تا جو تیغ زنبور ہے

مردہ روحوں میں بھی پیدا کر دیئے آثارِ زیست ۔ کس قیامت کی صدا ہے یا کہ بانگِ صور ہے

پھول برسائے نہ بامِ چرخ سے کیوں اندر بھی ۔ شادیٔ جنت کیلئے بھگتی کا یہ دستور ہے

توصیفِ مہاویر

(از امیر الشعرا جناب منشی لبھو رام صاحب جوش ملسیانی)

خوبیاں حجّ و حرم کی مٹی جاتی تھیں — دیر کے جلوے نے انھیں مطلعِ انوار کیا
تیرے احساس نے اعجازِ مسیحا ہو کر — دردِ پنہاں سے علاجِ دلِ بیمار کیا

تیرے دعوے کی صداقت کے ہوئے سب قائل
جس نے انکار کیا تھا اُس نے بھی اقرار کیا

(از فخرِ قوم جناب بیرسٹر چمپت رائے صاحب)

شری ارہنت کے درشن جو ہم اکثر پا جاتے — نہ کل سنسار ساگر سے وہیں ہم موکش سکھ پاتے
خدا ہے۔ دیو ہے۔ پرماتما ہے ارہنت جی — تمام ہی پرچھے گن ہیں دیو میں نظر آتے

کرم سہیت آتما۔ کرم رہیت پرماتما ہے
بجز اس کے نہیں کچھ بھید ہم دونوں میں ہے بھیا

(از حقائق نگار جناب منشی بشیشور پرشاد صاحب منور لکھنوی)

رنجیدہ دلوں کے لئے راحت کے پیامی — بیکس کے مددگار تھے مجبور کے حامی
کیوں زندۂ جاوید نہ ہو ذاتِ گرامی — تھے شہرۂ آفاق مہاویر سوامی

الفاظ حمد و ثنا کے لئے لاؤں کہاں سے
وصف آپ کے باہر ہیں میری حدِ زباں سے

(از ذکی الفہیم جناب مولوی محمد حسن خاں صاحب احمدی آسان اسسٹنٹ سکریٹری انجمن احمدیہ دہلی)

کیا محبت ریز ہے اندیش پیارے دیر کا — رحم سے قصہ چکایا تیر کا شمشیر کا
رحم اول رحم آخر جین مت تو رحم ہے — فلسفہ ہم کو بتایا رحم عالمگیر کا

ہے دعا آسان کی ہندو مسلماں ایک ہوں
سب کے دل پر نقش ہو سکہ تیری توقیر کا

عقیدت ویر

(از افتخار سخن جناب سنتری جنیشور پرشاد صاحب مائل دہلوی)

ہو ورد زباں آج مہا ویر مہا ویر — ہر دم ہو لبوں پر دم تقریر مہا ویر
عالم کی ضیا روح کی تنویر مہا ویر — ادراک کی ضو علم کی تصویر مہا ویر

(از امیر الشعرا جناب منشی چنڈی پرشاد صاحب شیدا دہلوی)

ویراگ کا پیکر تھا وہ اک گیان کی تصویر — جو بیسواں اوتار تھے دنیا میں مہا ویر
بندھن سے ہر اک کرم کے آزاد تھے حق گیر — عرفاں کی تجلی میں تھے یزداں کی تصویر

(از جادو رقم جناب سنتری بلدیو سنگھ صاحب نگم دہلوی)

دوزخ دنیا کو اس نے کر دیا خلد بریں — سچ تو یہ ہے اس جہاں میں ویر لاثانی ہوا
فیض کے دریا بہائے چشمۂ عرفان نے — خضر کا آب حیواں بھی شرم سے پانی ہوا

(از ناظم کلام جناب کوی راج پنڈت رگھو نندن سنگھ صاحب طاہر دہلوی)

بیکسوں کے خون کا دریا رواں تھا ملک میں — ویر آیا پریم کی گنگا بہانے کے لئے
جن غریبوں کا نہ تھا کوئی جہاں میں غمگسار — تو انھیں آیا کلیجے سے لگانے کے لئے

(از سحر گفتار جناب پنڈت جگدیش چند صاحب جوش انبالوی)

ویر کے پرتو نے کل دنیا کو روشن کر دیا — تیاگ جیون ہے ترا تاریک رستے پر دیا
کس ادا سے تو نے کھولا زندگی کے راز کو — کس طرح قطرے کو تو نے اک سمندر کر دیا

(از دھرم پریمی جناب لالہ ہر سنگھ صاحب ایڈیٹر جین پرچارک سہارنپور)

ہو گئی ہے نقش دل پر کیا محبت ویر کی — کھنچ رہی ہے سامنے نظروں کے صورت ویر کی
مست ہو کر کیوں نہ ہوں جلوۂ رنگیں میں گم — بڑھ گئی ہو جبکہ اس درجہ عقیدت ویر کی

تجلیات ویر

(۱) از ممتاز الشعرا جناب علامہ پنڈت برجموہن صاحب کیفی دہلوی

خبر دنیا میں کسی کو بھی نہیں انجام کی — پھر ضرورت ہے جہاں کو ویر کے پیغام کی

(۲) از افسر الشعرا حضرت آغا شاعر قزلباش

پرائی آگ میں گرنا بہت مشکل ہے دانا کی — مہاویر سوامی نے اک جا کر دکھا شیر اور بکری

(۳) از حقائق نگار جناب منشی بشیشور پرشاد صاحب منور لکھنوی

اک کشش رکھتا تھا بیگانے یگانے کیلئے — ویر کی تعلیم تھی سارے زمانے کے لئے

(۴) از مخزن علم و فن جناب علامہ شری الوپ چند صاحب آفتاب پانی پتی

آزاد ہو کے شاد کیا مادر وطن — کرتے ہیں یاد ویر کو بھارت کے مرد و زن

(۵) از فطرت نگار جناب پنڈت وشمبر پرشاد صاحب فدا بی۔اے

بھلائی جگ کی کرنے کو ہند میں [illegible] — یہ اقلیم محبت کے تپسوی بن کر حکمراں آئے

(۶) از منبع علم و فن جناب لالہ امر چند صاحب قیس جالندھری

اس صداقت پہ ہے سب اہل نظر کو اتفاق — ہند کی عظمت بڑھی ہے ویر کے پیغام سے

(۷) از عندلیب سخن گیانی سادھو سنگھ صاحب سادھو دیپ فاضل منشی فاضل فرید کوٹ

صہبائے معرفت سے پُر دل کا جام کر دو — پھر ویر کی جہاں میں تعلیم عام کر دو

(۸) از مصور فطرت جناب پنڈت امرناتھ صاحب ساحر ریٹائرڈ تحصیلدار دہلی

اک مہاویر زماں وہ صاحب مقدور تھے — وصف میں جن کے قلم قاصر زباں معذور ہے

(۹) از بلبل بوستان سخن جناب لالہ شیر سنگھ صاحب ناز دہلوی

نام جس کا زخمیوں کا مرہم کافور ہے — اُس ویر کے نور سے معمور کنڈل پور ہے

(۱۰) از اثر خامہ جناب بابو رگھبیر پرشاد صاحب ویر سہارنپوری

شری مہاویر سوامی جی میری آنکھوں میں آ جاؤ — مجھے درشن ہمیشہ دو میرے دل میں سما جاؤ

جلوۂ ویر

(از ممتاز الشعرا جناب حضرت عرشؔ ملسیانی)

دُنیا میں وردھمان کا جلوہ نظر آیا بے زبان زمانے کا مسیحا نظر آیا
آزادئ عالم کا تماشا نظر آیا ہر افضل و اعلیٰ سے بھی اعلیٰ نظر آیا

سرچشمۂ صد فیض ہوا رحمتِ عالم
اوتار اہنسا کا ہوا زینتِ عالم

تقدیر ہے کیا ناخنِ تدبیر کے آگے کچھ چیز تصور نہیں تصویر کے آگے
کیا رات ہے خورشید کی تنویر کے آگے اک کھیل ہے اعجاز مہاویر کے آگے

اندر کو ڈرایا کبھی میرد کو ہلایا
دُنیا نے جو اب تک نہیں دیکھا تھا دکھایا

ہر علم میں یکتا تھے۔ ہر اک فن میں تھے کامل مشہور زمانے میں ہوئے عالم عامل
بندوں کیلئے فیض رساں جوہر قابل مقبولِ جہاں۔ قوتِ تسخیر کے حامل

وہ آب کہ آئینہ اگر دیکھے تو شرمائے
وہ تاب کہ یاقوت بھی ہیرے کی کنی کھائے

پیغام سنایا کہ اہنسا میں ہے جینا لگتا ہے اہنسا سے کنارے پہ سفینہ
ہاتھوں میں تھا اس بادۂ پر کیف کا مینا دُنیا کو سکھاتا تھا جو جینے کا قرینا

وہ مئے جو پی لے وہ جنت کا مکیں ہو
جنت کا مکیں ایک طرف۔ روح امیں ہو

Lord Mahavira's Message of Salvation

Dr. Ravindra Nath Tagore.

"Mahavira proclaimed in India, the message of salvation that religion is a reality and not a mere social convention, that salvation comes from taking refuge in that true religion and not from observing the external ceremonies of the community, that religion cannot regard any barrier between man and man as an eternal verity. Wondrous to relate, this teaching rapidly overtopped the barriers of the races' abiding instinct and conquered the whole country. For a long period now the influence of Kashatriya teachers completely suppressed the Brahmin power."

—Jain Gazette, Delhi, (28th Oct. 1943) P. 161

Salvation is Doctrine of Mahavira

Dr. K. N. Katju.

In these days of hatred and distrust, which seem to encompass humanity in a fearful fashion, darkening the whole field of human endeavour and activity, the salvation of the human race lies in the doctrines preached by Shri Mahavira.

—Mahavir Sandesh, Jaipur (25th May 1947) P. 16

Jainism in Germany

Hon'ble S. Dutt. Indian Ambessador in Germany,

"I am particularly glad to see how in this great country (Germany) so distant from the native place of Jainism, the scholars and others show a great interest for the dogmas and the philosophy of the Jain religion. The number of the Jains amounts only 12 and a half millions, but inspite of it, the teachings of this great religion ought to be remembered and followed more than ever in past.

—Voice of Ahinsa, Aliganj Vol II. P 250

Way of Peace and Happiness

His Excellency
General K. M. Cariappa
C-IN-C.

The Commander-in-chief sends you his very best wishes and hopes that your work on Lord Mahavira's life will be a success with high dividends in obtaining peace and happiness of humanity in this world.

—Letter No 34/C-in-C 5th. Sep. 1950.

Shri K.M. Cariappa

Mahavira's Teachings.

Necessary for Good-Life.

Honble Rajkumari Amrit Kaur

Ahinsa is a basic necessity for a good life for individual, community, nation and world. Without it, there can be neither contentment nor prosperity, nor peace

—VoA Vol. II P. 92

Usefull for all Times

Mrs. Lila Wati Munshi

The sandesh of Bhagwan Mahavira is useful for all times, specially in these days, when the world is divided into warring camps.

—Mahavir Sandesh Jaipur (25th May, 1947) P. 4

True Path of Liberty and Justice.

Hon'ble Dr. M. B. Niyogi.

Chief Justice, Nagpur High Court.

The Jain thought is of high antiquity. The myth of its being an off-shoot of Hinduism or Buddhism has now been exploded by recent historical researches. The Ratan Traya of the Jain thinkers is the true path towards Liberty and Justice. The Anekanta-vada or the Syada-vada stands unique in the world's thought. The teachings of Jainism will be found on analysis to be as modern as they are ancient. The Jain teachers were the first and foremost in the history of human thought to propound the principle of Ahinsa.

—*Jain Shasan (Bhartiya Gian-Pith) Foreword P. 7—18*

Reign of peace

Hon'ble Justice N.C. Chatterji
Calcutta High-Court.

If the message of Lord Mahavira is followed by all, there would be a reign of peace and all causes of unrest in the world will be speedily removed.

—*Short Studies on China And India. P. 148.*

Jainism has given Gandhi

Honble P.N. Sapru. Allahabad.

The Jain community has given to this country the greatest leader and reformer Gandhi. In a materialistic world the spiritual teachings of Jainism has an immense value.

—*Vir, Delhi (29-5-1943) P. 58.*

Hon'ble Mrs. Roosvelt Struck Most.

Hon'ble Shri Misri Lall Gangwal
Chief Minister of Madhya Bharat.

The only panacea to heal up the wounded humanity is the principle of Ahinsa. It is the onerous duty of Jain Community to spread their sublime principle of Ahinsa far and wide. Hon'ble Mrs. Roosvelt visited India. What struck her most in our country is our cultural morality of Ahinsa, with which Indians fought out successfully battle of Independence. --*V.O.A. Vol. II P. 79.*
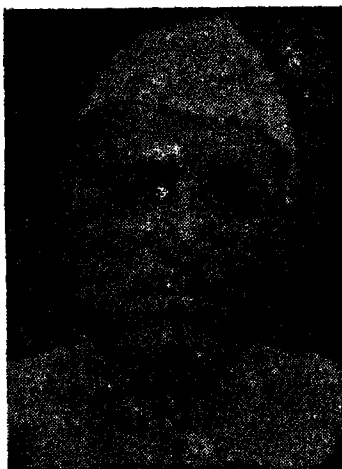
Shri Misrilal Gangwal

Lord Mahavira's Victory

Hon'ble Shri Sitaram Jajoo
Law Minister of Madhya Bharat.

I am anxious to see the day when the principles of love and non-violence preached by Lord Mahavira would be practised by people all over the world, leading to peace and contentment in all corners of the globe. He was a very brave man as he had attained victory over his passion and desires. —*V O A. Vol. II. P. 78.*

Greatness Of Jainism.

H. H. Shri Krishna Rajendra Waidyar Bahadur

G.C.S.I., G.B.E., Maharaja of Mysore.

Jainism has cultivated certain aspects of that life which have broadened India's religious out-look. It is not merely that Jainism has aimed at carrying Ahinsa to its logical conclusion undeterred by the practicalities of the world, it is not only that Jainism has attempted to perfect the doctrine of the spiritual conquest of matter in its doctrine of the Jina—What is unique in Jainism among Indian Religions and philosophical systems is that it has sought Emancipation in an upward movement of the spirit towards the realm of Infinitude and Transcendence.

—Vir. Vol. X. P. 1.

Nationalistic out-look

Hon'ble Raja Narendra Nath.

The Jains have always a Nationalistic out-look.

—Vir. (20th May, 1943) P. 259.

Non-Violence, Mercy And Forberance.

His Excellency Shri. M S. Aney Governor of Bihar.
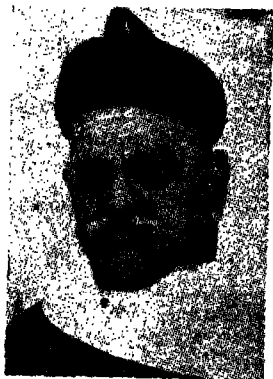
Shri M S. Aney,

The doctrine of non-violence, mercy and forberance reeched in Mahavira's Teachings its highest expression. He carried the doctrine to its logical end and insisted upon man and his followers to observe a code of conduct in which scrupulous attention has been paid to avoid physical or mental violence to anybody, even the meanest creature crawling on the earth.

—Lord Mahavira Commemoration. Vol. I P 5—6

●●

Gandhi Owes Inspirations.

His Excellency Dr. B. Pattabhi Sitaramayya.

Governor Madhya Pradesh,

The Father of Nation, Mahatma Gandhi owes his inspiration for the teaching of non-violence to the founders of the Jain Culture. There cannot be greater compliment to the principles of Jainism then this undeniable fact.

—Voice of Ahinsa Vol II P. 143.

Jainism is Eternal Truth.

Mahamahopadhyaya
Dr. Ganga Natha Jha.
M. A., D., Litt., L.L.D.

Jainism is based upon the eternal truth of philosophy, the study of which truth is not only desirable but also to a very great extent obligatory.

J.H.M. (Nov. 1924) P. 6.

Jain Literature in Tamil.

Shri V.G. Nair, Asst. Secy Sino-India Cultural Society.

'*Tirukural*' and *Naladiyar*, which are considered most precious, have influenced Tamil people for greater than any other book in the entire Tamil Literature. In the view of Prof. M. S. Ramswami Ayungar the great author of 'Tirukural' was a Jain.

The next important Jain work in Tamil is '*Naladiyar*, which is one of the Vedas of the Tamil people. Its one English translation by Rev. G. V. Pope was published by Luzac & Co in 1900 and the other by W. P. Chetty and Co. The teachings inculcated in '*Naladiyar*' by the pious Jain ascetics, have greately contributed in moulding the National Characteristics and the religious thoughts of Tamil speaking people.

—V o.A. Vol. 1, Part I P. 8 and Part V. P. 5.

Lord Mahavira's Life and Work.

Dr. Bool Chand M.A. Ph. D.

Mahavira left the world, realised the truth and came back to the world to preach it. There was immediate response from the pepole and soon got disciples and followers. Eleven learned Brahmins were the first to accept his discipleship and became ascetics.

Mahavira was never tired of answering questions and problems of various types, '*Scientific*, '*Ethical Metaphysical and Religious*. He had broad out—look and Scientific accuracy. He had firm conviction and resolute will. His tolerance was infinite. He was a cold realist and has immense faith in human nature. He was a thorough going rationalist who would base his action on his conviction, unmindful of the context of established customs or inherited traditions.

Mahavira's disparaged social inquity, economic rivalry and political enslavement. His Sangha was open to all irrespective of caste, colour and sex. Merit and not birth was his determination. He popularised philosophy and religion and threw open the portals of heaven even to the down and the weak, the humble and the lowly.

—Lord Mahavira Commemoration Vol. I. P. 60—65

Lord Mahavira

PREACHED

Universal Religion | **Love and Harmony.**

Hon'ble Shri Narayn Sinha
Finance Minister, Bihar.

Lord Mahavira preached to the world the ideals of Ahinsa, Universal Religion and fellow feelings of which we are so much devoid to day. It is the realisation of Lord Mahavira's ideals where in lies the real peace and happiness of all living in this sub-continent of India.

Hon'ble Dr. Syed Mohamad
Development Minister, Bihar.

To-day the world is weary of violence and is seeking a new order of life based on non-violence, love and harmony therefore the message of Ahinsa and universal brother—hood propogated by the great spiritual teacher Mahavira should once more be taught to the strifetorn world.

—Mahavir Sandesh Jaipur.
(25-5-47) P: 20.

Jain Books Older Than Classical Lirterature:

Prof. Dr. Herman Jacobi.

Jainism has a metaphysical basis of its own, which secured it a distinct position apart from the rival systems both of the Brahmans and of the Buddhists. Now I have never been of opinion that Jainism is derived from Hinduism or Brahamanism.

The sacred Books of the Jains are old, avowedly older than the Sanskrit literature, which we are accustomed to call classical. We can find no reason why we should distrust the sacred books of the Jains as an authentic source of their history.

Let me assert my conviction that Jainism is an original system quite distinct and independent from all others and that it is of great importance for study of the philosophical thought and religious life in ancient India.

—Sramana Bhagwan Mahavira Vol. I. P. 55—80.

JAIN LOGIC & HARMONY

Prof. Dr. W. Schubrig

He, who has knowledge of the structure of the world cannot but admire the logic and harmony of Jain Refined cosmographical ideas.

—Anekant, Vol. I. P. 310.

AHINSA IS LOVE & LOVE GOD

Dr. M. Abbas Ali Khan Lomas

Ahinsa is the fruit of love and love is God. Let every individual on earth eat and digest the fruits of this Holly Tree.

—VOA. Vol. I.P. I.

MAHAVIRA'S TRIUMPHAL SONG.

Dr Albert Poggi, Genova.

The teachings of Mahavira sound like the triumphal song of a victorious Soul that has at least found in this very world its own deliverance and freedom.

—*VOA. Vol. II. P. 36.*

Great Ethical Value.

Dr. A. Guernot- France.

There is very great Ethical value in Jainism for man's improvement. The Jainism is a very original, independent and systematical doctrine It is more simple more rich and varied than Brahamanical system and not negative like Buddhism.

—*Jain Dharama Prkash P: ५*

Spiritual Teachings.

Mr. Walt Whitman.

The bard of America, the universal poet and the prophet of the new world Mr. Walt whitman is an expounder of the teachings of Jainism, the religion and philosophy of the spiritual conquerors who have earned the title of 'JINA' and whose teachings are given to the world through the instrumentality of the Jains in India.

—*Digamber Jain 'Surat' Vol X P. 39.*

Wonderful Effect Of Jainism

Dr. Hopkin

I found once that the practical religion of the Jains was one worthy of all commendation and I have since regretted that I stigmatized the Jain religion as insisting on denying God, Worshipping man and nourshing vermin as its chief tenents, without giving the regard to the wonderful effect, this religion has on the character and morality of the people. But as is often the case, a close acquaintance with a religion brings out its good side and creates a much more favourable opinion of it as a whole than can be obtained by a merely objective literary acquaintance.

—Vir, Delhi. Vol. VIII P. 26.

UNIVERSAL TREASURES

Dr. Roymond Frank Piper.
Prof. University of New-York.

In the sacred writtings of the Jain Faith, there are many wonderful sayings which are universal treasures.

—*The Voice of Ahinsa. Vol. I Pt. III. P. 4*

DISTINGUISHED PRINCIPLES

Dr. Archie J. Bahm
Prof. University of New-Mexico

I look with considerable appreciation upon Jain logic as having long distinguished principles which only now are being re-discovered in the West.

—VOA *Vol. I. P. II. P. 20*

Mahavira's Religion Uncriticisable

Dr. G. Tucci M.A., Ph. D. Prof. University of Rome.

No scholar, I think will deny, that Jainism is one of the greatest and most important, creations of Indian mind, still surviving after centuries of gloring life. There is no branch of Indian civilization or literature or philosophy on which the deeper study of Jainism will not throw light. It is impossible to any sound scholar, interested in the history of Indian logic to ignore Jain logic, which deserves the largest attention and most deligent researches.

The literature of every belief can be discussed and scrutinized by scholars, but the living essence of Mahavira's doctrine shall remain un-touched by any criticism.

GREAT SAVIOUR LORD MAHAVIRA

Prof. Dr. U.S. Tank.

Lord Mahavira, the great saviour of the world had handsome and symmetrical body and magnetic personality with heroic courage and perserverance.

He had cast off the bonds of igncrance. Illumination had come upon Him and He became 'master' as *Theosophist* would say.

VOA. Vol. II. P. 67—70.

Developed System of the Metaphysics

Dr. Helmuth Von Glasenapp, Prof. Berlin University.

Jainism is uptil now very little known in Europe. The Jains have created a developed system of metaphysics, written up to the minute details, which looking to its terminology as also to its contents, could be looked upon as an independent and a peculiar product in the philosophical region of the wonderfully fruitable Indian spirit.
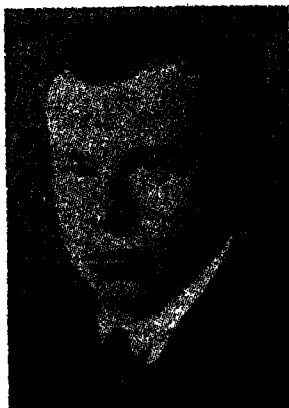
MAHAVIRA FINEST KIND OF SUPERMAN.

P. Joseph Mary ABS. Germany

Mahavira's ideal teachings is the strongest spiritual reactionary. He has proved through his life that soul is not the slave of body. He destroyed the world of this materialistic creed and ethic in a way that we may call Him a Superman of the finest kind. We claim for Him the verses of the German thinker Herder:—

"He's hero of the conqueror of Battle-fields,
He's hero the conqueror in Lion-hunting,
But he's hero of heroes, the conqueror of himself."

—Bhagwan Mahavir Ka Adarsh Jiwan P. 17.

JAINISM IS SOLUTION OF MANKIND.

Dr. Louis Renou Prof. Sorbonne University, Paris (France).

"What is the use of creating new religious movements, when JAINISM COULD OFFER THE SOLUTION REQUIRED FOR THE NEEDS OF SUFFERING MAN-KIND. It has the advantage of possessing an ancient and venerable tradition. It is the first amongst the world religions, which proclaimed Ahinsa as the main criterion of Moral life."

—*World Problems and Jainism* (*Intro*) *P.I.*

Solution of Brutal Force.

Prof. Albert Eintein

Brutal force cannot be met successfully for any length of time with similar brutal force, but only with non-co operation towards those who have undertaken to use brutal force.

—*Mahavir Commemoration Vol 1. P. 3.*

Jain Valuable Literature.

Sir Vincent A. Smith

The Jain possess and sedulously guard extensive Libraries full of valuable material as yet very imperfected explored and their books are specially rich in historical and semi-historical matters.

—*Jain Encyclopaedia Vol I P. 27.*

TORCH-BEARERS OF HUMANITY

Prof Dr. Herr Lothar Wendel, Germany

The day will come soon, when all Jain Tirthankaras will be recognised as the Torch-bearers of Humanity.

—*VOA. Vol. III P. 81.*

GOSPEL OF AHINSA

Prof. Tan Yunshan of China

The Gospel of Ahinsa was first deeply and systematically expounded, properly and specially preached by the Jain Tirthankaras more prominently by the last 24th Tirthankara Mahavira Varddhamana. Then again by Lord Buddha and at last it was acted in thoughts, words and deeds & symbolized by Mahatma Gandhi.

—*Mahavira Commemoration Vol. I.*

Example for Everyone

Mr. Herbert Warren of England.

Mahavira lived a life of absolute truthfulness, a life of perfect honesty, a life of complete chastity and a life which gives protection to all living beings. He lived without possessing any property at all, not even clothing. He enjoyed Omniscience, was perfectly blissful, knew himself to be immortal and his life is an example for everyone who wishes to get away from pain.

—*Vir. (15.5.26) P. 2.*

Why I Accepted Jainism ?

Mr. Matthew McKay

Jains offer their message to all. In Jainism you will not be requested to accept any statement with behind faith. From my personal experience, I can say that all who will accept its teachings and put them into practice will enter a world of undreamed delight.

Jainism teaches that soul is immortal and in its pure nature is full of absolute knowledge and infinite bliss. It is only when soul is drawn low by the body and the senses that it is held in bondage with karmas. To meditate for only a few minutes daily on the pure nature of the soul is path to Liberation and Salvation. These are the main reasons why I accepted wonderful Jainism.

—*Why I became Jain ? (World Jain Mission.)*

Why I Became A Jain ?

Mr. Louis D. Sainter.

I am a Jain because Jainism presents consistent solution of the problems of happy life.

The question who am I ? What am I ? For what reasons do I exist ? All are answered in the most irrefutable manner. It gives perfect health & peace of mind. There is a metaphysical and scientific explainations of all apparent injustices as known to the West, hence I have accepted the Jainism.

—*Vir (15.5.1926) P. 3.*
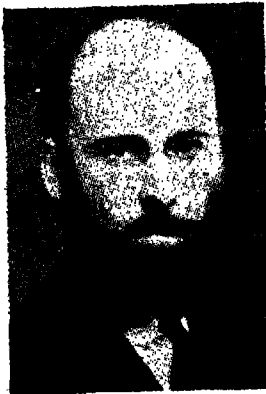
JAIN YOGA

Dr. Felix Valyi

Jainism has been neglected by the West. Only a handful of European scholars have devoted time to the study of the sources of Jainism and even now very few Americans know the essential fact about Jainism. Jacobi, W. Schubrig and H. V. Glasenapp, Guerinot F. W. Thomas have clarified the tradition and the teachings of Mahavira. Buddha who probably was himself a Jain, took the tremendous decision to start his own middle path.

The greatest Indologist of Germany, HEINRICH ZIMMER in his posthumous work **"The Philosophies of India"** published by the Panthon Books, in New York in 1951, has proved that Jain Yoga originated in Pre-Aryan India. Jainism is the fountain head of Indian thoughts in its Purest Yogic Tradition and Jain Yoga is pre-historic, seems certain

The spiritual exercises of St. Ignace of Loyola are a sort of Christian Yoga, limited in its scope, is now recognized that the **'Imitation of Christ."** by Thoms Kempis is also a kind of Medioeval Yoga for the training of the Christian Mind. Sufism is equally based on yogic principle, but all these non-Indian manifestations of yoga thoughts and practice never reached the height which Jainism has achieved long before Patanjali, the codifier of yoga. There is ample evidence that Jainism represents the purest and strictest form of yoga as self discipline. Lord Mahavira appears to be mainly as a man of iron will. Jain yoga is pure yoga & Mahavira is the greatest example of such training the embodiment of the ideal man, perfect man.

—VOA Vol. II P. 98—103.

Is Death the End of Life ?

Shri B. Nateson, Editor the Indian Review, G.T. Madras.

"Is death the end of life ? Does individuality persist after death ? Are there other worlds to which the soul travels after stuffling off this mortal coil ? Do gifts and oblations and ceremonies affect the course of the spirit after leaving the body ? Is there any truth in re-birth ?" These are questions which haunt every thinking man.

Stories of Nachiketas or Markandeya are bound to impress, but there are some striking instances of authentic facts, which must carry conviction in respect of the theory of re-birth:-

"Soldier castor, was transferred to Maymayo (Burma) and there he felt that he had seen the land, lived in it and he told Lance Carparal Carrigon that on the other side of the Iraw-

ady, there was a large temple with a huge cracks in the wall from top to bottom and near by a large bell—statement that he found true afterwards.[1]"

"Shanti an 8 years old girl of Jung Bahadur, a merchant of Delhi, used to say, ever since she could talk that in her former life, she was married to a man of Mathura. whose address she gave. She recognized her former husband at once and told him facts which were known only to him and his former wife. She also told him that she had buried Rs. 100/- at a certain place in her previous life, which she recovered."[2]

A 5 years old child of one Devi Prasad Bhatanagar, living in Prem Nagar, Cawnpur says that in his previous birth his name was Shiva Dyal Muktar and that he was murdered during the Cawnpur riot in 1931. One day he insisted to go to his old house, where he said his former wife was lying ill. He was taken there and he at once recognised his wife his children and other articles.[3]

A similar case is also reported from Jhansi[4] and there are several other authentic instances[5] to prove re-births and Sir Oliver Lodge, a Scientist was able to prove that the spirit after leaving the body continues to hover round its late abode.

---

1. 'Sunday Express' London of 1935.
2. Indian Review, Madras, Vol 51 (Sept. 1950) P. 581.
3. Amrita Bazar Patrika, dated 1st. May 1938.
4. 'Hindustan Times, New Delhi, dated 16th. Sept. 1938.
5. a. 'Immortal Life,' by Voice of Prophency, Poona.
   b. 'What Becomes of Soul After Death' ? By Divine Life Society Rishikesh (Dehra Dun)
   c. 'Life Beyond Death,' by A. B. Patrika, Calcutta.

AHINSA IN ISLAM

Dr. M. Hafiz Syed M.A.,Ph.D.,D.Litt. Prof. Allahabad University

The fundamental principle under lying the ideal of Ahinsa is the recognition of one life in all mineral, vegetable, animal and human. "**Not giving pain, at any time, to any being in thought, word or deed, has been called Ahinsa by the great sages.**"

How can a teacher of mankind, the prophet of Islam enjoy anything but Ahinsa on his people, when God sent him on this earth with the express command—"**And we have not sent thee but as a mercy for the world**[1] "

The lower animals were too not by any means excluded from the benefit of the prophet's all-embracing love. It is recorded of him that when being on a Journey, he did not say his prayers untill he had unsaddled his camel, a piece of amiable conduct puts us strongly in mind of the famous last lines of Coleridge's Ancient Mariner:—

'He prayeth well who loveth well,
Both man and bird, and beast.
He prayeth best, who loveth best
All things both great and small;
For the dear God who loveth us,
He made and loveth all.

---

1. Alkoran XXI 107.

In the holy Koran animal life stands on the some footing as human life in the sight of God: '**There is no beast on earth nor bird, which flieth with its wings, but the same is a people life unto you mankind—upto the lord shall they return**"[1]

"All his creatures are Allah's family for their subsistance is from Him; therefore the most beloved unto Allah is the person who does good to Allah's family. Whoever is kind to his creatures, Allah is kind on him."

Some of the mystics in Islam never encouraged the practice of Slaughtering animals. What is called Ahinsa is completely observed during the period of Hajj, where the Muslims from all over the world congregate in the name of God. There were and there still are a number of Muslim Saints and commoners, who abstain from meat eating. Hazrat Ali seldom took meat and would say, **"Don't make your stomach a tomb of slaughtered animals."**

A man came before the prophet with a carpet and said, **"O Prophet, I passed through a wood and heard the voices of the young ones of birds, took and put them into my carpet. Their mother came fluttering round my head and I uncovered the young. The mother fell down upon them. I wrapped them up in carpet and these are the young ones which I have."** The Prophet said, **"Put them down,"** and when he did so, their mother

1. Koran VI 38.

joined them. The Prophet said, **"Do you wonder at the affection of the mother towards her young? I swear by Him who sent me, verily God is more loving to His creatures. Return them to the place from which ye took them and let their mother be with them[1]."**

As a matter of fact any kind of flesh-eating is not obligatory on the Muslims[6]. The prophet often insisted upon the rights of dumb animals. Said He, "Do you love your Creator? Then love your fellow creatures first, verily there are rewards for it[3] He who keeps any one from eating flesh will be saved from the fire of hell[4]".

It is a great pity that on account of certain historical reasons Islam in India passes as a synonym for violence Muslim Conquerors are described as having overrun countries with the Koran in the one hand and the sword in the other, whereas we read in Koran, **"There is no compulsion in religion[5]."** The Prophet did not believe that merely making the Muslims profession of faith once in a lifetime could make a **'mumin'** (faithful) to entitle to Salvation. He said, **"He is not a 'MUMIN' who Committeth adultery or who stealth or who drinketh liquor or who plundereth or who embezzleth; beware, beware Kindness (Ahinsa) is a mark of faith and who ever hath not Kindness (Ahinsa) hath no faith."**

It is clear from these authentic and authoritative quotations that Islam like other faiths of the Aryan stock does believe in Ahinsa with all its underlying significance and has never preached violence, force or coercion as some ill-informed enemies of Islam suppose it to do.

1-3. *"Voice of Ahinsa" Aliganj (India), Vol I P. 20—23.*

4. Asma, daughter of Yazid.

5 Holy Koran, Sura II, Ayat 257.

६ 'हजरत मोहम्मद साहब का अहिंसा से प्रेम' इसी ग्रन्थ का पृ० ६४

७ 'इस्लाम में अहिंसा' इसी ग्रन्थ का खन्ड ३।

JAIN MONKS

Jain Monks not for Name

Dr. Herman Jacobi

Sole and whole object of Jain Monks is to lead a life dedicated to the betterment of soul and uplift of humanity. They do not become Sadhus for name and fame.

—Short Studies on China and India. P. 150.

Moral Tone of Jain Monks

Rev. Prof. Dr. Charles W. Gilkey

I have been greatly impressed by the high moral tone and ethical standard of Jain Sadhus & also by their teachings.

—Short Studies on China & India. P. 151.

SPIRIT OF PEACE

Miss Millicent Shephard, Chief Organiser Moral & Social Association

From one lamp a thousand can be lit from the glowing lamp of Jain Acharya's teaching and examples many holy lives are lit. May their spirit of peace and followship spread through out.

—Short Studies on China and India. P. 151.

Far Far Greater Influence than the Greatest Emperors.

Shri G.D. Dhariwall

Jain monks have been very learned scholars & not merely blind followers of Jain Law. They got high degree of sacrifies and selfleasness and their influence on the public has been far far grearter than that of the greatest Emperors. It is no wonder that Jainism has influenced the Indian civilization to a greater degree than Buddhism.

—J. H. M. (Feb. 1924) P. 28.

Literary Contributions of Jain Monks.

Shri S.R. Sharma Prof. History, Willingdon College, Sangli,

"The Jain religious preceptors, saints and scholars have rendered remarkable services to the Nation as well as to the world by their lofty character and ennobling literary compositions, As for the proper understanding and appreciation of English language one cannot afford to neglect the master pieces of Shakespeare or Militon in the same way the litterary compositions of the Jain Acharyas can not be ignored due to the fact that their study is indispensable for the knowledge of Kananda and other Languages.

—S. C. Diwakar Nyayathirthe[1]

"No Indian Vernacular," wrote Mr. Lewis Rice, "contains a richer or more varied mine of indigenous literature than Jain works[2]" Jains wrote on all subjects[3] such as Religion, Ethics, Grammar,Prosody, Medicine and even on Natural Science: Out of the 280 poets no less than 95 are Jain poets, the Vira—Saiva or Lingayat poets come to next being 90, whereas the Brahmanical writers are only 45 and the rest all included 50.[4]

---

1. A Public Holiday on Lord Mahavira's Birthday P. 12
2. Rice. Mysore and Coorg. Vol I Para 398.

3-4. For names of books and their authors consult 'Jainism and Karanata Culture by Karanataka Historical Research Society DHARWAR. (S. India). Priced Rs. 5/-

Catalogues of Jain Literature in various languages from:—

(a) Digamber Jain Pustkalya, SURAT.
(b) Bhartya Gianpith, 4 Durga-Kund Road Banaras.
(c) Digamber Jain Parishad, Dariba Kala, Delhi.
(d) Jain Mitar Mandal, Dhrampura, Delhi.
(e) World Jain Mission, Aliganj, Eta, U.P.
(f) Manak Chand Jain Grantha Mala, Hirabagh, C.P. Tank, Bombay.

The interest in Jain Literature evinced both by rulers as well as their ministers and generals is amply indicated by works such as the 'Prasanottara Ratan-malika' by Amoghavarsa of Rastrakuta, Nanartha-Ratan Mala by Irugapa Dandanayaka of Vijayanagara and the Chaundaraya Purana by Chaundaraya, Minister and General of Mara Singha and Racamalla Ganga but here we shall deal with the work contributed by Jain monks[1] only:—

KUNDKUNDACHARYA is by far the earliest, the best known and most important of all Jain writers[2], His influence is indicated by the fact that after Lord Mahavira and Gotama Gandhara, he is Kunkunda whose name is taken with great honour and respects[3]. An inscription at Sravana belogola says, **"The Lord of ascetics, Kundkunda was born through the great fortune of the world. In order to show that he was not touched in the least, both within and without by dust (Passion) the Lord of ascetics left the earth the abode of dust and moved four inches above[4]. His most important works are (1)Samayasar (2)Pravachanasar (3)Niyamasar**

1, For 28 famous Jain Monks and their work see, JAIN ACHARYA; Rs. 1/10 by Digamber Jain Pustakalya, Surat.

2. Narsimhuachary: Karoataka Kavicaritre: Vol I Introd, P. XXI.

3. मङ्गलं भगवान् वीरो, मङ्गलं गौतमो गणी ।
मङ्गल कुन्दकुन्दाद्यो, जैन धर्मोऽस्तु मङ्गलम् ॥

4. Epigraphia Carnatica Vol II S.B. 254—351.

(4) **Rayanasar** (5) **Pancastikaya** (6) **Astepahuda** and (7) **Bhavamokkha**.[1]

UMASWAMI who is said to be disciple of Shri Kundkunda has composed (1) **Tattvarthadhigama Sutra** (2) **Bhasya on the same** (3) **Puja-Prakarana** (4) **Jambudwipa Samasa** (5) **Prasamarati**. Prof. Dr. Hira Lal calls Tattvarthadhigama Sutra to be the **Jaina Bible**[2] It is the fountainhead of the Jaina philosophy and also of the use of Sanskrit by Jains. Its importance may be judged from the fact that top most scholars like Samantabhadr, Pujyapada, Akalanka, Vidyanandi, Probha Chandra and Srutasagara are among its commentators.

SAMANTABHADRA in Sravanabelgola inscription is described as one whose sayings are an adamantine goad to the elephant the disputant and by 'whose power this whole earth became barren (i.e. was rid) of even the talk of false speakers He must have been a very great disputant is also indicated by the title **'Vadi-Mukhya'** given to him in the **"Anekanta-Jayapataka"** by Haribhadra Suri a Svetambara writer. He powerfully maintained the Jaina doctrine of Syadvada,[3] interesting corroberation of which may by found in the instance of Vimla Chandra who is said to have put up a notice at the gate of the place of Satrubhayankara, challenging the Saivas, Pasupatas, Buddhas, Kapalikas and Kapllas to engage him in disputation.[4] The advent and of this great writer is

1. All may be had in Hindi, from Surat, while Samaysara in English from Bhartya Gianpith, 4, Durgakund Road Banaras.
2. Prof H. L. op. cit. pp. vi-vii.
3. Rice, (E.P.) op. cit. P. 36.
4. Cf. Ep. Car. II. Introd. P. 84.

rightly considered to mark an epoch not only in Digambar & Svetambara history but also in the whole Sanskrit Literature.[1] His well known work is the Ratankarandka Sravakachar, which means Jewel Casket of laymen's Conduct. His words are admitted as pious and powerful as those of Lord Mahavira.[2] He also wrote several other books like (1) **Aptamimansa** (2) **Jina Stuti-Sataka and (3) Svayambhu Sutra etc.**

PUJYAPADA is also called Devanandi. He was a very eminent scholar of Philosophy, Logic, Medicine; and Literature, Pujyapada (one whose feet are adorable) appears to have been a mere title, which he acquired because forest deities worshipped his feet. He is also called **Jinendra Buddhi'** on account of his great learning. His most famous works 'Jinendra-Vyakarna or Grammar of Jinendra - buddhi is well known. 'Pancavasutka,' the best commentary on Jinendra is also supposed to be the work of Pujyapada. Panini Sabdavatara is another Grammatical work traditionally cosidered to be a commentary on Panini grammar by Pujyapada. Vopadeva counts it among the 8 authorites on the Sanskrit grammar[3] He also wrote Kalyanakarka a treatise on medicine; long continued to be an authority on the subject. The treatment it prescribes is entirely. vegetarian and non-alcoholic[4] Pujyapada was a triple doctor (Ph. D., D. Litt.,

1. Bombay Gazette I ii P. 406.

२ जीव सिद्धि-विधायीह कृत-युक्त्यनुशासनं।
वचः समन्तभद्रस्य वीरस्येव विजृम्भते ॥
— श्रीजिनसेनः हरिवंशपुराण।

3-4. Rice (E.P.) op. Cit. p. 110, 27-37.

M. D)[1] He was not only an highly learned thinker but was also a great saint,[2] whose sacred feet, celestial beings worshipped with great devotion[3] His Sarvartha Sidchi is an elaborate commentary on the Tathvartha Sutra of Umaswami. His Upasakacara is an hand-book of ethics for the Jain laity.[4]

AKALANKA is classed among the Nayyayikar or great logicians.[5] He said to have challenged the Buddhists at the court of kings Hastimaila (Himasitala) of Kanchi, saying that the defeated party should be ground in oil mills[6] The Buddhists were driven to Ceylone owing to the victory of the Jain teacher[7] This victorious logic of Akalanka made his name proverbial as a Bhttakalanka in logic. His most famous work is the Tatvarthavartika Vyakhyalankara.

JINASENA who by his propagating increased the power of the Jain sect, was a celebrated Jain author[8]. He was the king of poets. He commenced Adipuran which according to Bhandarkar is an encyclopaedic work in which there are instances of all matters and figures.[9] He also wrote Mahapuran which is a very nice historical work. He has also written Parsvabhyudaya, which is one of the curiosities of Sanskrit literature. It is at once the product and mirror of the literary taste of the age. Universal judgement assigns the first place among Indian poets to **KALIDASA**, but **Jinasena claims to be considered**

1-3. C. S. Mallinathan : Sarvartha Siddhi, Introd. P. IX.
4. Prof. Dr. Hira Lal, op. cit. P. XX.
5. Peterson, op cit. P. 79.
6-7. An inscription at Sravanbelgola also alludes to this victory, which gained solid footing and patronage of Pallavas Kings.
—*Prof. Moti Lal : Digamber Jain (Surat) Vol. IX P. 71.*
8. Cf. Bhandarkar, The Bombay Gazetter I ii P. 406-407.
9. Bhandarkar, Report on San. MSS. 1883-84. P. 120-121.

a higher genius than the author of the 'CLOUD MESSENGER'[1] **The story relating to the origion of 'PARSVABHYUDAYA' is too interesting to be omitted.** Kalidasa came to Bankapura priding over the production of his 'Megha Duta' Being instigated by Vinayasena, Jinasena told Kalidasa that he had pirated the poem from some ancient writer. When challenged by Kalidasa to prove his statement Jinasena pretended that the book he referred to was at a great distance and could be got only after eight days. Then he came out with his own Parsvabhyudaya', the last line of each verse in which was taken from Kalidasa The latter is said to have been confounded by this, but Jinasena finally confessed his whole trickery.[2]

Soma Deva was the most learned writers. "What make his works of very great importance", observes Dr. Hira Lal, "are the learning of the author which they display and the masterly style in which they are composed" The Prose of 'Yasastilaka' vies with that of Bana and poetry at places with that of Magha.[3] According to Peterson 'Somadeva's work Yasastilaka is in itself a true Poetical merit, which nothing but the bitterness of theological hatred would have excluded so long from the list of the classics of India.[4] In the words of Peterson ' it represents a lively picture of India and well high absorbed the intellectual energies of all thinking men.[5] The last part entitled 'Upasakadhyanam'. divided into 46 chapters is a handbook of popular instructions on Jaina doctrine and devotion[6] His other work of considerable interest is 'Nitivakyamrta' which is almost verbally modelled on Kautilya's 'Artha-sastra.' Indeed it is a certificate to the University of this Jaina writer.

These writers were historic persons. who exercised tremendous influence in their own days is equally certain.

1. Journal of Royal Asiatic Society (Bombay Branch) 1894,p224
2. Cf Nathram Premi, op. cit. P. 54-55.
3. Dr. Hira Lal, op. cit. P. xxxii.
4-6. Peterson, op. cit. IV. P. 33, 46.

Miracle Place of Mahavira.

Justice R. B. Jugmander Lal M.A., M.R.A.S. Bar-at-Law.

There is a temple of Lord Mahavira in Chandanpur gram of Pargana and Tehsil Naurangabad in Jaipur State, at a distance of about nine miles from the Pataunda Mahavira Road Rly. Station, between Gangapur city and Hindaun Junction on the B.B. & C.I. Rly.

The calm image of Lord Mahavira, with round cheeks, arched eye-brows and almost dimpled chin gives a sort of innocent child-like or cherub-like look to the face The mouth is an eternal blossoming of a smile of irresistible calm and never-failing compassion and sweet beneficence. The right foot resting on the left thigh showed a life-like firmness in the curve between the ankle and the toes. Similarly the hand, specially the left hand showed a life-like rendering of flesh in stone. So I gazed on and on at the figure of calm compassion and Serene Bliss.

About 500 years ago the Image was discovered by a cowherd, whose one cow on return home gave no milk. Suspecting that some one milked her in grazing, he watched her and found that she repaired to a spot, stood quietly there and milk flowed from her as if unseen hands were milking. This phenomenon occured from day to

day. The cowherd felt that this was due to some God on the spot. He got together some men and started digging the spot. After the digging proceeded for some time, a voice came from below; "Slowly ! Slowly ! The spade therefore worked carefully and it was found that it had touched the Image, and but for the supernatural warning the Image would have been injured. The delighted cowherds carefully seperated the Image from its earthly prison, wondered at it and worshipped it.

When the news got abroad and Jainas found it to be an image of their Lord Mahavira they came and tried to shift the Image but about 900 chariots broke under it and when they got voluntary consent of the cowherd and he touched the reins only then they succeeded in moving it first to a modest temple.

His Highness the Maharaja of Bharatpur sentenced his treasurer to be shot dead with a gun. The treasurer was perhaps innocent and in his hopelessness, he invoked the assistance of the image vowing that he would dedicate Rs. 50,000 if he escaped death from the gun. The next morning when the man was to be shot, gun was fired at him, but it would not go. The man was saved. The matter being reported to the Maharaja, he ordered that the treasurer should be shot next day. The treasurer fearing to lose his life which he believed to have been saved by Lord Mahavira in this miraculous manner, again passed his whole time in weeping and supplicating to the Lord to save him again and he also vowed to increase his votive offering of the preceeding day from Rs. 50,000 to Rs. 75,000. The next day also

the gun though fired, refused to go and kill the man. Annoyed by this the Maharaja ordered the man to be shot dead a third time. Fear overpowered the condemned man but Faith filled his heart; his soul ran for protection to the Lord once more, raising his offering also from Rs. 75,000 to one lac. The third day also the gun refused to kill the condemned. Now the Maharaja's anger turned into surprise. He ordered for the release of the treasurer and called him to himself and inquired : "Who is your Protector"? The man answered "Lord Mahavira". The Maharaja was satisfied and he himself also denoted hand-some money with which the present central temple of Lord Mahavira has been built. Thus the Image came to be installed for good in its present position.

His Holiness the Battaraka, priest of the temple was given almost Royal Honours even by the Mohammedan Emperors. One of its Battarakas was credited with having possessed a Magic Carpet like the one mentioned in the Arabian Nights, which could take a man to any place where he wished to go. Once a Mohammedan king from Delhi sent a deputation to invite the Bhattarka to his special Durbar at Delhi. The deputation took two months to reach the Bhattarka, but the Bhattarka sat on his huge Magic Carpet reached the Imperial Capital in three or four days' time. The king was surprised. He well received the Bhattarka but refused to allow a Royal Palanquin to him in the procession. But by a Miracle the Bhattarka managed to make his Palanquin to go on the top of the king's own Palanquin and over the palace itself. The last Bhattarka Mahendra Kirti ji also dabbled in

white or black magic. It is said that once he had a vision of a Devi or Goddess who came to be his as a result of his incantations[1].

The most ordinary miracles[2] known now are: The cowherds all round pray for cows etc. to become milking and for butter and ghee to be produced. The first milk and ghee to be offered to the Lord. Maunds and maunds of ghee and milk are thus offered at the Mela on Chaitra Shukla 15 and the chariot is taken out on Baisakh Badi 1. The Mainas and Gujars come in great number and Nizam himself moves the chariot of Lord Mahavira.

It is proved even now in many Jain and non Jain cases that any wish devoutly and faithfully wished here finds its fulfilment with-in one year[3].

Lord Mahavira and Socialism.

Pro. Dr. H. S. Bhattacharya, M. A., L. B., Ph. D.

The problem of problems to-day is how to stop the struggle between the rich and the needy. The people of

---

1. *Voice of Ahinsa, Aligang, Vol I. Part II P. 27—30.*
2. Atishaya Kshetras or Miracle places are not mere myth and idle imaginations. These are not only in India but also in Greece, Rome, France, Germany, Mexico, America and indeed in all the countries of the world. Countless vows and votive offerings made to Khwaja Moinuddin Chishti of Ajmer, annual pilgrimage to Lourdes in France, many votive offerings to the Golden image of the Holi Virgin in her famous church at Marseilles and many Wishing Wells in England are a few instances.—*VoA. Vol. I Part II. P. 30.*
3. My various wishes are being fulfilled and if any one doubts, he may try himself having full faith and confidence in Lord Mahavira. He will wonder for immediate effect.—Author.

wealthy section have plenty of food, clothing and bank balances yet they are struggling hard to aungment and increase what they have had, struggling restlessly. On the other hand there is the sweeting mass, toiling and moiling for scanty meals. There is again a third class of men, the so called middle class people, who have got to put up the appearance of the wealthy section whereas in reality they are as poor, if not poorer than the labour class, and their condition is really miserable.

One view in this connection has been that the needy and hungry exploited mass should openly rise up and snatch away the riches of the rich by force. The other is to vest all wealth in the state to take away the excess wealth from the rich and distribute it in accordance with the needs of the people. The present day socialism suggests that every man at certain stage of his life should stop to earn more.

The life of the great Jaina Teacher Shri Vira shows that from his very childhood, he was extremely unaggressive and non-acquiring disposition. For one full year before his Renunciation of the world, he was giving away all his wealth and at the time of asetic life he distributed the very clothes and ornamnets which he had on his body and when he attained the final self-realisation, he went on without any food.

He gave away all that he did not want, not because he was compelled to do so but because of his own free will and choice. The life of Shri Vira thus teaches us a lesson, which the modern Socialism would profit by always remembering that in order that a human being may voluntarily consent for an equal distribution of wealth, his character and not merely external atmosphere should be built up in a appropriate manner.

Shri Vira, keeping nothing for himself, reduced his necessaries to their barest minimum—In the words of Thomas Carlyle, made his "claim of wages a zero." It is true that the people of this materialistic age would not be able to practise renunciation to the extent and the manner done by Shri Vira, but unquestionably, He is the transcendent ideal to be followed as much faithfully and closely as possible. Some amount of renunciation or Aparigraha[1] as it is called in the Jaina Ethics should be the fundamental principle of all the socialist philosophy and the motto of the socialist should be **Live and Let live** like that of Shri Vira[2].

Christianity was taken from Jainism.

Miss. Elizabeth Frazer.

Jainism is the only non-allegorical religion—the only creed that is a purely scientific system, which insists upon and displays a thorough understanding of the problem of life and soul. It was founded by omnsiscient men. No other religion can lay claim to this distinction.

Jainism is the only religious system that recognises clearly the truth that religion is a science. It is the only man-made religion, the only one that reduces everything to the iron laws of nature and with modern science.[1] On a scientific basis it is worth-while to investigate the Jain

---

1. Jainism has provided 'Parigraha Parimana Varata'—the vow of setting a limit to the maximum wealth and property, which a Jain house-holder is to fix before-hand. according to reasonable estimate of his needs, to which he would never exceed. If and when he has reached that limit he will try to earn no more. If the earnings come inspite of it, he would devote the surplus to relief sufferers in order to be fair to the individual, society and country——Pro. Dr. Hira Lal: What Jainism Staud for : P. 11.
2. Abridged from VoA. Vol. II. P. 64.

claims that full of penetrating all elucidating light is to be found only in Jainism[1]. It is perfectly true when the Jains say that Religion is originated with man and that the first deified man of every cycle of time is the founder of Religion. Whenever a Tirthankara arises, He re-establishes the scientific truth concerning the nature of life and these truths are collectively termed Religion.' Since Jainism is the only religion that lays claim to having produced omniscient-men, it does seem plain that religion does originate from the Jains; that Rishabbha Deva the first perfect man of current cycle of time was the founder as even the Hindus admit. (Bhagwat Puran 27)

Christianity was taken from India in the 6th. Century B. C. Its doctrines agree in every particular with Jainism, and as Mr C. R. Jain has shown in his Interpretation of St. John's Revelation, the twenty-four Elders of that book are the 24 Tirthankaras of Jainism. The countless number of Siddhas (perfect souls) in Jainism are also to be found in the Book of Revelation. The same conceptions of Karma, of the inflow and stoppage and riddance of matter in relation to karmic activity, are common to both the relegions. The description of the condition of the soul in Nirvana is identically the same and the same is the case with the natural attributes of the soul substance. **'This is a 100 % agreement'.** There may be some agreement between Christianity and other religion on a few points, but never cent-percent. This is sufficient to show that **Christianity was taken from Jainism.** European scholarship has also shown that the seeds of Christianity were sown centuries before the supposed date of Jesus. Bearing all these facts in mind, there can be no doubt that Christianity originated in the time of Mahavira himself[2].

---

1. 'Jainism and Science.' This book's page 119—125.
2. Scientific interpretation of Christianity, reprinted in Sramana Mahavira. (Jain Sidhanta Society, Panjara Pole} Ahmedabad) —*Vol, Part I, P. 89—95.*

What is Jainism ?

VidyaVardhi Shri C. R. Jain, Bar-at-Law.

Jainism is a science and not a code of arbitary rules and capricious commandments. It is a **Practical Religion of Living Truth**. It is a religion of men founded by men, for the benefit of men and all living beings. It goes to nature direct for the study of all kinds of problems subjecting everything to minute enquiry and critical examination. It is a source of everlasting infinite happiness and a true path of real truth. It is a source of independence, freedom, self-realisation, self-responsibility and a brave non-injuriousconduct.

Jainism maintains that all men, women and living beings in the Universe possess abilityof fulness and perfection, which is marred by the operation of their own action & by their own efforts, they may check the further influx of karmic matter & destroy its past bonds. The life of Jain Tirthankaras, who attained omniscience by their own efforts in the very manhood is an experienced example for all worldly creatures that Jainism enables even one however lowly or vicious; to enjoy ever-lasting infinite bliss, infinite knowledge and infinite energy.

1. For details see his 'What isJainism?' Priced Rs.2/- Published by All India Digamber Jain Parishad, Dariba Kala, Delhi, *fromwhere a price-list of other English Jain books may also be had free.*

The way for man to become God.*

Dharma Bhushan Brahamchari Shital Prasada ji.

All living beings seek happiness. Sensual pleasure is essentially impermanent, depends on the contract of other things, envolves trouble in its obtainment and creates uneasiness after its experience. What one really wants is undying and unabating happiness.
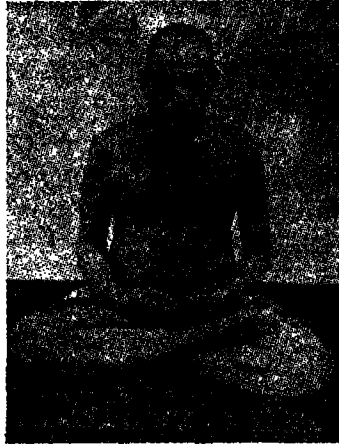
The pleasure one experiences comes from within and is independent of the senses. The real nature of every soul never-the-less one resides in the form of an ant and the other in that of elephant or one rests in a human frame and the other is a super-human-body, is perfection having ability of obtaining infinite vision, infinite knowledge, infinite energy and infinite bliss.

Question may be raised—When all the souls are alike and nature of one soul (JIVA) is identical with that of other, why is one poor, ugly, miserable, unhealthy, weak and illeterate and the other rich, beautiful, happy, healthy, brave and intelligent ?

Jainism has scientifically proved that just as a heated iron-ball takes up water particles when immersed

---

*Must study, "Jainism is a Key to True happiness Priced Re. 1/- Published by Secy Dig. Jain Atishya Mahavir ji, Mahavira Park Road, Jaipur.

with water, similarly the material particles of Karmoi Matter[1] (AJIVA) inflow (ASRAVA) towards the soul on account of wrong belief[2], Vowlessness[3], Passions[4], and Yoga[5]. If the inflow of the Karmas is not checked, they are attracted, accumulated and bound with the soul in the form of a fine Karmic body[6]. This bondage of Karma

---

1. There are 8 main kinds of Karmas:—
2. KNOWLEDGE OBSCURING,(ज्ञानावरणीय कर्म) which obscures soul's knowledge.

(ii) CONATION OBSCURING, (दर्शनावरणीय कर्म) which obscures nature of soul's conation,

(iii) DELUDING,(मोहनीय कर्म) which produces wrong belief and passionate thought activities of anger, pride. deceit, greed, etc.

(iv) OBSTRUCTIVE,(अन्तराय कर्म) which obstructs soul's power and capacity to earn.

(v) AGE, (आयु कर्म) which keeps the soul entangled in a body for a fixed time.

(vi) BODY MAKING,(नामकर्म) which makes good or bad bodies.

(vii) FAMILY DETERMING, (गौत्र कर्म) which takes the soul to a high or low social condition.

(viii) FEELING PRODUCING,(वेदनीय कर्म)which tends to produce pains miseries and diseases.

The first four Karmas obscure the natural attributes of the soul, so are called DESTRUCTIVE (घातिया कर्म)The other four do not obscure the nature of the soul so are called NON-DESTRUCTIVE. (अघातिया कर्म)

For details see 'Gomatasar Karamkand' Priced Rs. 5/8/- in English & Mahabhanda Vol I & II. both for Rs.20/- in Hindi.

2. WRONG BELIEF, (मिथ्यात्व which is of five kinds:—

(i) ONE SIDED CONVICTION,(एकान्त) every thing has many qualities and natures. To accept some and reject the others is a one sided view.

(BANDHA) makes changes in the natural attributes of the soul, just as the combination of fire changes cold water into hot. Every form of mundane life is a soul in its impure state, so nothing but the thickness and thinness of the material particles combined with the soul is the real cause this increase or decrease of the worldly possessions.

(ii) PERVERSE BELIEF, (विपरीत) To believe that sacrifice of animals will bring good or that soul is materia! & destructible.

(iii) DOUBTFUL BELIEF,(संशय) To doubt in the existence of soul, karmic bondage, purity of soul etc.

(iv) IGNORANT BELIEF, (अज्ञान) Not trying to be enlightened in the problems concerning the soul.

(v) BLIND DEVOTIONAL BELIEF,(विनय) Without right discrimination to honour right and false ways of piety equally.

3. VOWLESSNESS,(अव्रत) Which are also of five kinds:—
Hinsa, Falsehood, Theft, Non-Chastity, Heavy attachment to possessions.

4. PASSIONS (कषाय) These are mainly of 4 kinds, anger, pride deceit and greed. Each of them, is subdivided into four classes:-

(i) ERROFEEDING, (अनन्तानुबन्धी) Which prevents right belief and right realization of the soul's purity.

(ii) PARTIAL VOWS PREVENTING, (अप्रत्याख्यानावरण)
Which prevents adopting of five 'Anu Barta'.

(iii) FULL VOWS PREVENTING, (प्रत्याख्यानावरण) Which prevents adopting of five vows (Maha Barta).

(iv) PURE CONDUCT PREVENTING (संज्वलन) Which does not allow to follow Muni Dharma.

Thus these 16 kinds of main passions when added to nine minor passions (1) Laughter. (2) Indulgence. (3) Nonindulgence. (4) Sorrow. (5) Fear. (6) Hate. (7) Masculine sex inclination. (8) Feminine sex inclination. (9) Neuter sex inclination, which work along with main passions, become twentyfive.

Observing Five vows[7] (पांच महाव्रत) five rules of Action[8] (पांच समिति) Three kinds of Control[9] (तीन गुप्ति) Ten Virtues[10] (दश लक्षण धर्म) Twelve Meditations[11] (बारह भावना) and suffering calmly and peacefully unavoidable Twenty-two troubles[12] (बाईस परीषहजय) are the most effective and proper methods of checking and stopping (SAMBARA) the influx of fresh Karmic matter into the constitutions of the soul, and then one has also to destroy (NIRJARA) the bondages of the Karmas previously attacked with the soul, in the fire of Twelve Austerities.[13] in order to attain complete & totally freedom

---

5. ACTIVITY (योग) of mind, speech and body.

6. A human being got 3 kinds of bodies:—

(i) PHYSICAL BODY—is made of flesh, blood and bones etc.

(ii) KARMIC BODY—is formed of Karmic molecules which bound with soul by good or bad activities.

(iii) ELECTRIC BODY—is formed of electric molecules, which are very fine and floating through out the Universe. It helps in the functions of Karmic and physical bodies. When a man dies only the physical body is left here, the other two bodies go with the soul to the next birth.

7. Ahinsa, Truthfu'ness, Non-stealing, Aprigrah and Brahmcharya.

8. Careful walking, speaking pure and sweet words, accepting pure food, taking and putting articles and attending call of nature at the place free from insects etc.

9. Control of mind, speech and body.

10. Forgiveness, Humility, Straightforwardnesss, Truthfulness, Purity of heart, Self-control, Penance, Charity, Non- attachment and Chastity.

11—13. This book's P. 284, 303, 318.

(MOKSHA) from all the Karmic bondages, and when the Karmic dust, which prevented the soul to enjoy its natural virtues so far, is removed, it will automatically begin to feel its own qualities of omniscience.

To practice meditation and austerity, we should sit in a solitary place for at last 24minutes leaving all attachments of worldly substances meanwhile, closing our eyes, we should daily consider again and again and again 'Bara Bhavana[14]' and having no concern with non-soul substances, we must see only the souls. They will look all equally pure and perfect. Thus seeing we shall remove all distinctions of high and low, good and bad, agreeable or disagreeable. We shall thus be free from attached thought activity. Thus we may divert our attention from other souls and look ourselves only to concentrate, "I am pure soul, I am perfect soul. I am quite seperate with all other substances, even from my body. I am eternal, I am immortal, I am un-created, I am non material, I am non-destructible, I am all-knowing. I am all-seeing, I am all-peaceful, I am all-blissful. Really this soul of mine is pure God, Parmatma and Arahant, residing in the temple of body." So long as we shall remain attentive to ourselves; we shall enjoy true peace and happiness. This firm conviction only can gradually cure the disease of desires, passions and miseries. This self realization is a key to purify the mundane soul.

A right believer who has properly understood Karmas as his enemies, always tries to conquer them and there comes a time when surely conquering them he destroys all the four destructive Karmas & becomes Jinendra, God, and on the expiry of the remaining four non-destructive Karmas, he attains Moksha (Salvation) and becomes 'Siddha'—the perfect pure soul having ever-lasting infinite bliss and undying and un-abating true happiness.

Jainism Abroad.

Shri Kamta Prasad Jain. D.L., M.R.A.S. Hony. Director
World Jain Mission, Aliganj Etah.

Jainism is a cosmopolitan religion; rather it is a science and way of life. The sacred discourses of the blessed Tirthankaras were addressed to Aryans and non-Aryans alike: even the beasts and birds hearkened to them and tried to live according to the lofty ideals of truth and Ahinsa preached by the Holy Ones. Thus Jainism is a world religion: Jain Tradition asserts its world wide prevalence in ancient times, but it is deplcrable that many mis-under-standings about Jainism are in vogue and our scholars are under the impression that Jainism was never carried abroad beyond the borders of India, because they think that Jainism has never been a proselitising religion and not a single monument of Jainism has been found in any foreign country. Sometime ago we heard Sir Patrick Fagon, K.C.I.E., C S.I., remarking in the session of the Conference of the Religions of the Empire (Wembly Exhibition, London) that "Jainism cannot claim to be a missionary religion like Buddhism." But as a matter of fact, this view is not based on right observation of the history and religious

culture of the Jainas. How could a religion which enjoins upon its monastic followers—who, indeed, have ever been in great numbers side by side with its laymen and were scholars of high repute[1]—to remain engaged during the whole time of their life, in preaching the truth far and wide and to stay not more than three days at a place, except the rainy season,[2] be ascribed as wanting in the missionary spirit? On the contrary, we find a very clear account of Jain monks, kings and merchants, who went out side India and carried the blessed Ahinsa message of the Tirthankaras to far off countries in the Jaina canonical books. In India itself, many a tribe of non-Aryan stock e.g. Bhars and Kurumbas were converted to Jainism[3] and were raised to the status of the ruling chiefs. Bhar and Kurumba ruling chiefs played an important part in the mediaeval history of Jainism. Even foreigners like Parthians[4] and Indo-Greeks[5], Sudras and even Muslims were taken into the fold of Jainism[6]. Jain images, which were caused to be consecrated by these people are available and worshipped by the Jainas. Jain lyrics and hymns composed by Muslim converts namely Jinabakhsha,

---

1. AIYANGAR, Studies in the South Indian Jainism, pp. 1—175
2. Jaina Penance, P. 79.
3. OPPERT, Original Inhabitants of India, pp. 238.
4. "......there were Parthians at Mathura who had immigrated during the rule of the Ksatrapas and who, although they were converted to Jaina—upheld the tradition of their native land......"

   —Prof. H. Luders (D. R. Bhandarkar Volume, P. 288).
5. LAW, Historical Gleanings, P. 78.
6. BULHER, Indian Sect of the Jainas. P. 3.

Abdul Rahman and others are being sung even now by the Jain laity. "The right *Prabhavana* (glory) of Jainism," says saint Samantabhadra, is to dispel the gloom of ignorance by the sun of knowledge and every Jain votary is ever anxious to preserve in this sacred cause in order to spread the right knowledge all over the world. Therefore it looks absurd to say that Jainism lacks missionary spirit.

Of course it is a fact that no Jain relic has been found in any foreign country, except Tibet, where Dr. Tucci found a Jaina image which he carried over to Rome. But we should remember also, in this respect that so far no scientific research or study has been made in any of the countries by a Jainologist and it is possible that Jain relics might have been passed for as those of Buddhists, as has been the case in India in early days of Indian research. Moreover instances are not lacking when later Buddists erected their edifices or terraced temples on older remains of the Jain Faith[2].

In this article therefore, we propose to show that Jainism did not remain confined to India only. In the light of archeological finds at Mohenjodaro and Harappa the history of Indian culture and with it that of Jainism should be calculated since interior to Tirthankaras Parsva and Mahavira[3]. The nude images and signs on the Indus Seals prove the prevalence of Yoga cult of Ahinsa

---

1 अज्ञान तिमिर व्याप्ति मपाकृत्य यथायथम् ।
जिनशासन माहात्म्य प्रकाशः स्यात् प्रभावना ।। रत्नकरण्डक:

2. Indian Historical Quarterly, Vol XXV. P.P. 205—207.

3. Dr. ZIMMER, Philosophies of India (New york) pp. 217-281.

as preached by Lord Rishabha, the first Tirthankara[1]. People of Indus valley thus being the followers of the Rishabha-cult of Ahinsa were responsible to spread it beyond the borders of India. We have reasons to believe that original inhabitants of Su-rashtra in India of the "sub" tribe followed Jain religion and went to foreign countries on commercial and other purposes. They settled in the country round about Babylonia and were styled as Sumers[2]. Scholars like Dr. Kirfel have proved affinities and commercial connection between the Indo-meditarranean peoples[3]. Dr. Pran Nath has discovered a copper plate inscription from Prabhapattan of the Babylonian monarch Nebusch which records that this monarch visited India and went to Girnar to pay his obeisance to Tirthankara Nemi[4]. Shrenika Bimbasara was a devout Jaina[5]. He tried his best to propagate the religion of the Jainas far and wide and we are glad to note that his son, Prince Abhaya, was successful in converting to Jainism a prince of Persia[6]. Moreover Lord Mahavira was present at the time and His preaching tours, no doubt, were extended to the whole of Arya Khanda, which includes most of the present world. Thus the mission of the Jain religion to the foreign countries began even before the sixth century B.C. or with the beginning period of a reliable Indian history, which is now being done in an organised form by the "World Jain Mission of India". Herein below we give a narrative account of the missionary activities of the Jainas in foreign countries, which we hope, will interest the readers and will dispel the wrong notion about Jainism.

1—Afghanistana: We begin with the country lying just on the border of undivided India, which was once a

---

1. Jaina Antiquary, Vol. XIV p.p. 1—7 & The Voice of Ahinsa Vol. II. p.p. 4—6,

२. संक्षिप्त जैन इतिहास, भा० ३ खंड १ पृ० ७०—७५ ।

3. The Voice of Ahinsa, Vol. I. P. 9.

4. Times of India, Tuesday, March 19,1953.

5. Smith, Oxford History of India. P. 45.

6. Tank, Dictionary of Jaina Bibliography P. 92.

part of the Mauryan Empire of our mother-land It was called as 'Northern India' and when Fa-Hian the Chinese Traveller came to India in the 4th. century A.D he wrote that 'with the country of Wirchang commences North India[1]' Hieun-Tsang, who visited India in the 7th century found Indian Kings ruling in Afghanistan and most of them followed the religion of Jinas. He met many Digambara Jainas there[2]. In ancient times the country of Afghanistan was known as **Balhika** or **Jauna** (Yavana) and it is evident from the Jaina canonical sources that Rishabhadeva, the first Tirthankara visited the countries of Ambada; Bahli, Illa, Jauna and Pahlva during his preaching tour[3]. Bharat, the son of Rishabha Deva and first **Chakravarti** monarch of India conquered this tract of land and it was included in the Indian Empire[4]. The modern province of Balkha in Afghanistan has been indentified with the ancient Bahli or Balhika. The country was teeming with Jaina temples, stupas and pillars. Jainas were in great number and their naked ascetics called **Nirgranthas** were moving freely in the country teaching the people the blessed principle of **Ahinsa and Anekanta** The Mauryan Emperors like Chandragupta, Asoka & Samprati patronsed the Jainas & followed the Jaina religion. They were responsible to send cultural missions of the Jaina Sadhus to the countries of **Afghanistan, Arabia, Persia and middle Asia**. When Greeks occupied Afghanistan and North Western portion of India, Jainism remained flourishing there. Alexander the Great had an encounter with naked Indian Saints, whom he called Gymnosophists and who were no other than the Digambara Jain ascetics[5] on the

1. Modern Review, 1927, PP. 132 ff.
2. Hindi Encyclopaedia, Vol. I. pp. 678-680 and Travels of Hieun Tsang. The Chinese pilgrim wrote that "The li-hi (Nigrantha) distinguish themselves by leaving their bodies naked and pulling out their hair"—St. Juliev Vienna, P. 224.
3. आवश्यक चूर्णि, १८०—Life in Ancient India, P. 270.
4. Asoka & Jainism : The Jaina Antiquary, Vol. VII P. 21.
5. Encyclopaedia Britannica, Vol. XXV (11th edition) and संक्षिप्त जैन इतिहास, भा० २, खंड १ पृ० १८०—१९९

Eastern border of Afghanistan-near about Taxilla. Among the Indo-Greek kings who ruled over Afghanistan and North-western India, Menander was attracted towards Jainism. He, with hundreds of Indo-Greeks tried to understand Jainism and to live upto its principles[1].

King Samanides ruled over Afghanistan from 893 A.D. to 999 A.D., who had great leanings towards Indian wisdom and culture[2]. His name indicates, as it appears to be the corrupted form of the Sanskrit name Shramanadas (श्रमणदास), that he was either the follower of Jain religion or that of Buddhism, for the word Shramana was used for the recluse of both the religions. It seems that in latter times Buddhism displaced Jainism in Afghanistan and became state religion. It thus could be the reason for the absence of any Jain relic in that country; though Buddhist ones are being pointed out at Bamian and elsewhere. Out of these cave temples and stupas, which are ascribed to Buddhism, it as possible that some of them might be belonging to Jainas. As far instance the Pillar of Wheel called "Meenar Chakri" which is situated near Kabul is quite indentical in its shape and workmanship to the pillars of the Jain temples in South India. It is desirable that some Jain scholar should visit these countries in order to investigate the monuments of their ancient sites.

2 Abyssinia and Ethiopia—The Greek historian Herodotus mentioned the existence of the Gymnosophists in Abyssinia and Ethiopia[3] and we know that the term 'Gymnosophist' denotes the Nirgrantha Jain recluses[4]. Sir William Jones making no discrimination between Jainism and Buddhism, was doubtful that whether they followed the doctrines of Buddha. But it is clear that Buddhism could not have reached so early to such a far off country, since its first foreign mission was sent by king Asoka.

---

1. Milinda Panha.
2. Hindi Vishwa-Kosh, Vol I. pp. 678-680, Modern Review, Feby 1927, p. 133.
3. Asiatic Researches, Vol. III. P. 6.
4. Encyclopaedia Britannica (11th. edition), Vol. XV., p. 128.

3 Africa—The tract of land down the Egypt was called 'Rakastan' by the ancient Greeks, which proves that it was the abode of the people of Raksasa tribe of Vidyadharas, who were great patrons of Jainism. Thus it is obvious that Jainism was prevailing in this part of Africa in a very hoary antiquity. Even now a days there are lacs of Jain immigrants from Gujrat and elsewhere, who have settled in Kenya and other parts of East-Africa. They have their temples, schools and libraries there. In the city of Mombasa their number is so great that the locality in which they reside is called "Jain street." It is hoped that a Digambara Jain temple will also be built there through the influence of Swami Kanji Maharaj of Songarh.

4 Algeria—Recently a Jain image was presented to the Indian embassy of Algeria, which anyhow reached to that country. It has been sent to India.

5 America—The ancient culture of Ahinsa was much influenced by Indian Thought and Culture. Rather it is found that Indians settled in this country in a very remote period, whose descendants are existant even to-day in Mexico. Shri Chaman Lal has studied these people and he wrote that some of their rites resemble those of Jainas.

In modern times it was late Shri Virachand Raghav ji Gandhi, B.A., M R.A.S. who went to America(U S.A) in 1893 A D. in order to participate in the Parliament of World Religions held at Chicago. His speeches attracted the attention of American people and many of them attended his classes. Thus Jainism was introduced in the country of uncle Sam during the last century and its study was started in certain Universities of U S.A. In 1934 A.D. when another session of the Parliament of Religions was held in the historic city of Chicago, our risen brother Champat Rai Jain attended it as a representative of Jainism. He gave a new vision of study regarding Christianity between Jainism, and ancient Christianity. He had a good reception in America One Mrs. Kleinschmidt became his disciple and studied Jain-

ism and comparative religion. She started a 'School of Jain studies' which continued for some time. The attention of the Christian intellectuals was directed towards the hidden meaning of Bible and a movement called "I am Movement" came into existence, whose members live a strict vegetarian life and believe in the divinity of soul like Jainism. Nowadays Mrs. Kleinschmidt and some other aspirants are distributing Jain Literature, which they receive from The World Jain Mission of India.

6 Arabia—In fact Arabia and Central Asia were great strongholds of the Jainas at one time. The Mauryan Emperor Samprati, who was a devout Jain, sent Jaina missionaries to these countries[1], and they were successful in their sacred endeavours, for, we are told that at the time of the advent of Islam in those countries and also when Arabia was attacked by the king of Persia, the Arab Jainas were persecuted, which forced them to migrate to and settle in some Southern parts of India[2]. Like Arabs, the Jainas of South are styled as '**Sonakas**' in some places in the Tamil Literature. No doubt it is a fact that a free trade was carried on between India and Arabia in ancient times, and as such Jainas must have participated in it.

7 Burma—Which was known by the name of **Suwarnadvipa** to ancient Indians, has maintained cordial relations with India since pre-historical period. While Charudatta was out on a trade expedition, he went to **Suwarnadvipa** by crossing Airawati (Irrawady) river and

---

1. Parishista Parva, Pt II. pp. 115-124.
2. "Formerly they (Jains) were very numerous in Arabia, but that about 2500 years ago, a terrible persecution took place at Mecca by orders of a king named Parshwa Bhattaraka which forced great numbers to come to this country.

—Asiatic Researches, Vol IX, P. 284.

The name of the king Parshwa seems to be the corrupt form of Parsya, which means Persia.

See—Jain Siddhant Bhaskar, Vol XVII, pp. 83—85.

Girikuta hill and then transcending the forest of **Vetra**, he reached the country of **Tankanas** : thence he was carried over by **Bherundas** through the air to the Island of Burma[1]. Charudatta found some Jaina temples there. Thus Jainism was prevalent in Burma. Even to-day there are many Jaina immigrants to Burma, who are big trade magnets at Rangoon and elsewhere.

8 Central Asia—Sir Aurel Stein, a former principal of the Oriental College: Lahore, discovered that ancient India established colonies in Central Asia and ruled there for several centuries. They also introduced there their own language—a kind of Prakrita[2]". We know that Prakrita is the canonical language of the Jainas and they seem to have penetrated the country and preached their doctrines there. In this respect the following remarks of Rev. Abbe. J. A. Dubois are strikingly significant:—

> "Jainism, probably at one time, was the religion of all Asia-from Siberia to Cape Camorin, north to south. and from the Caspian-Sea to the Gulf of Kamaschatka, from west to east".[3]

Likewise Major General J. G. R. Furlong after a thorough investigation, informs that "Oksina, Kaspia, Cities of Balkh and Samarkand were early Centers of this (Jaina) faith, and the importance of this sect is also seen in their name being given to one of the gates of Jeru-Salem[4]".

Some paintings of the naked Jain saints were found in a cave in Chinese Turkistan. Viewing these facts we find the narrations given in the Jain Puranas about these countries worth reliability and it is safe to presume that Jainism was once a prevalent religion of Central Asia.

9 Ceylon—The modern Ceylon represents the ancient Lanka of Ravana, although scholars do not agree to this. It is believed generally that the modern Ceylon can

---

1. Harivansa Purana, XXI 99.
2. Modern Review (March, 1948) P. 229
3. Descriptions of...the People of India and of their Institution Introd. 1817).
4. Short Studies in the Science of Comparative Religions (1867) P. 33 and P. 67.

be either the island of Simhala or Ratnadvipa[1]. As it may be anyway, it is clear that the Jainas were aware of Lanka, Simhala and Ratnadvipa since a hoary antiquity[2]. It is said that Ravana, the king of Lanka was a staunch Jain. He obtained a jewelled image of Tirthankara Shantinatha from Indra, which was thrown into sea at the downfall of Lanka[3]. In the historical period one king Shanker of Karanataka country traced it out of the depth of sea and installed it in his country. During the period of Tirthankara Parshva, the Vidyadhara kings namely Mali and Sumali brought another image of Jina from Lanka which was installed in a temple at Sirpur. King Karakandu of Champa also restored another image from Lanka at Terapura Caves in Deccan. He visited Lanka and married the princess of that country[4]. Many a Jain merchant went to Lanka, Simhala and Ratnadvipa[5]. Thus Jainas had ancient contracts with Ceylon.

During the historical period, we know that the Jaina Missionaries reached Ceylon as early as the sixth century B.C. and they were successful in getting Jaina Centres established there—so much so that a few kings of Ceylon were converted to the Jaina faith. "It is said that the king **Pandukabhaya,** who ruled in the beginning of the second century after Buddha, from 367—307 B.C., built a temple and a monastry for two **Nigathas** (Jainas). The monastry is again mentioned in the account of the reign of a later king **Vattagamini** (38-10 B.C). It is related that **Vattagamini** being offended by the inhabitants caused it to be destoryed after it had stood there for the reigns of 21 kings, and erected a Buddhist **Sangharama** in its place[6]". Thus Jainism lost its stronghold in that island, but it could not be wiped off altogether, for we come across later instances in which Jain **munis**

---

1. Dey, Geographical Dictionary of Ancient India, P. 113.
2. Jain Siddhanta Bhaskar Vol. XVI. pp. 91—98.
3. Paumacariu and Padmapurana.
4. See Karakandu-carriu (Karanja Series).
5. *Harisena Kathakosha p. 192. Varangachari p. 66 etc.*
6. Mahavansa, pp. 66-203 and the Indian-Sect of the Jainas. P. 37.

are mentioned to have connections with the rulers of Lanka. In the mediaeval period Muni Yasha Kirti was honoured by the then king of Ceylon and probably he visited the Island and preached Jain doctrines there[1].

10 China—The cultural relationship between China and India is of great antiquity, which is beyond our comprehension. The Jainas were aware of it since the period of Rishabhadeva, and styled it as an non-Aryan country[2], which fact is borne out by the history of China itself, for; it is said that the original inhabitants of China were uncultured people and the Chinese people, who belong to the Mongolian stock, are said to have migrated to that country from somewhere near the Caspian sea[3]. Weber found a great similarity between the astronomical theories of the Jainas and the Chinese and he conjectured that the Chinese might have borrowed it from the Jainas through the Buddhists[4]. The ancient religious teachings of the China were indentical to Jainism, so wrote Shri Champat Rai Jain[5]. A certain image of the Buddha is so very striking and similar to that of a Jaina that even a staunch Jain would not hesitate to accept it for that of a Jaina **Tirthankara**[6]. According to Dr. Guisspe Tucci Chinese literature abounds with references to Jainas who are called Nigranthas or Acelakas[7]. References to China in the Jaina literature are multifurious and the reader is requested to refer to our article entitled "Jainism and China" published in the "Sino-Indian journal"[8].

---

1. Jaina Shilalekha Sangraha (Bombay) P. 112.
२. प्रश्न व्याकरण सूत्र (हैद्राबाद्)पृ० १४.
3. Hindi Vishwakosha (Calcutta) Vol. VI. P. 417.
4. Indian Antiquary. Vol. XXI. P. 15.
5. "The theories of Lao-Tze......are in the main an abridged version of the teachings of Jainism."-Confluence of Opposites P.252.
6. Cf. Image of SAHASRA BUDDHA is 20 miles off from Nanking (India Pictorial Weekly). 18th July 1948.
7. "Vira"—Mahavira Jayanti No, Vol. IV, pp. 353-354.
8. Sino Indian Journal, Vol. I. Part II P. 73-84.

11 Egypt: The cultural relation between Egypt and India were also remarkable. "Sir Flinders Petrie of the British School of Egyptian Archaeology discovered at Memphis (the ancient capital of Egypt) some statues of Indian types. Such discoveries prove the existence of an Indian colony in ancient Egypt about 500 B. C One of the statues represents an Indian Yogi, sitting cross legged in deep meditation. Ideas of asceticism which appeared in Egypt about this time must have been due to contact with the Indians[1]." It is possible that this statue might be resembling to that of a Jain. Any how it is said about the Jaina antiquities at Mathura that "the dress and ornaments of the figures were strikingly Egyptian in style......Many of the symbols by which each Jaina Saint is identified were Egyptian,"[2]

The religious dogmas of the Egyptians were also mostly like those of the Jainas. They had no belief in a creator of universe, and further like the Jainas, they professed and preached a plurality of Gods; whom they describe as infinitely perfect and happy.[3] They also accepted the existence of an immortal soul and extended it even to the lower animal world.[4] They were apt to observe the rules of abstinence, and never took fish, and vegetables like radish, garlic etc. in their diet[5]. The feeling of **Ahinsa** was so manifest in them that they did not even wear shoes other than those made from the plant papyrus.[6] They made nude images of their God Horus, which bear great resemblance to those of the Jaina Tirthankaras[7] Therefore it is conceivable that Jainism surely once had its way in Egypt and Ethiopia.

---

1. Modern Review, March 1948, P. 239
2. The "Oriental" (Oct. 1802), P. 23-24
3. Mysteries of Freemasnory, P. 271
4. The Story of Man, P. 187
5. The Story of Man, P. 191
6. Addenda to the Confluence of Opposites, P. 2
7. The Story of Man, P. 167-191

12 England: It was only in the last century that Jainism was introduced in England by late Shri Virchand Raghavji Gandhi & Justice Jagmandarlal Jaini. They visited England between 1899-1901 and succeeded in establishing a Jain Order of English people known as "Mahavira Brother-hood." Many a English aspirants joined it. The Grand old living English Jain brother Mr. Herbert Warren embraced Jainism at that time & studied the Jain philosophy very deeply. In 1928 our risen Brother Champatrai visited Europe & England He established a library of Jainism in London and opened classes of Jain philosophy, which were attended by good many enquirers and students. He was the first Jaina who arranged the celebrations of the anniversary of Mahavira Jayanti in London for the first time in 1929. Earlier a 'Jain Literature Society' for the publication of the Jain literature was started in London, which published such important work, as 'Pravacana Sara" and the "Outlines of Jainism" etc. In 1950 Mr. Matthew McKay and Dr. Henry William Talbot, the two disciples of Rev. C. R. Jain wrote to me (K. P. Jain) advising to revive the missionary activities for the propagation of Jainism. Accordingly a Society by name "The World Jaina Mission" has been founded in India and the work of spreading the teachings of the Jinas is being done by it. Mrs. A. Cheyne, Mr. Frank Mansell and other brethren have taken keen interest in it and on the occasions of birthday and Nirvana Day anniversaries of Lord Mahavira public meetings were held in London.

13 France: It was through the efforts of late Brother C. R. Jain that an interest about Jainism was created in France. One Mr. Francois became a disciple of Shri Jain. French Scholars studied Jainism. Prof. Guironot published two scholarly books on Jainism. Nowadays Prof. Dr. Louis Renou of the Paris University is taking interest in the study of Jainism.

14 Germany: Indo-German relations of Culture and wisdom are very important and Jainism found a great scholar and savant in late Prof. Dr. Hermann Jacobi. The credit of vindicating Jainism as an Independent and

a religion older than Buddhism goes to him. Recently another German scholar Dr. Heinrich Zimmer has established the independent antiquity of Jainism assigning it to the pre-Aryan Dravid period. The interest of German scholars towards the Jain studies is increasing day by day. Besides such prominent scholars as Dr. Schubring and Dr. Kirfel, we find scholars like Dr. H. Von Glasenapp, Dr. Hammn, Dr. Kohl, Dr. Roth, Dr. Fischer and others, who are carrying on Jain studies in a scientific way. They have translated and published a few of the Jain canonical books in German Language. Dr. Glasenapp's work entitled ' Der Jainismus" is a monumental book on Jainism in Germany. But there is also another aspect of Jaina studies in Germany which has attracted the attention of the common man. In 1932 a German Youth namely Herr Lothar Wendel came into the contact of late Rev C. R. Jain and studied Jainism near him. He became his disciple and tried to live a life of a true Jain. He translated the work of *Rev*. C. R Jain and **Samayika-Patha** into German language, which were published and roused a keen interest about Jainism in the public mind. After his release from the Russian War captives Camp, Mr. Wendel came into the touch of the World Jaina Mission and agreed to work as its Hony. representative in Germany. On our advice he accepted the proposal of starting a Jain Library there under the auspicious of the World Jaina Mission and enough literature was sent to him. In 1951 he got the "C R. Jaina India Library" opened and inaugurated by Major General Shri Prem Kishan, the ambassador of India in Germany. This library has received good reception not only from the German people; but also from the people of the adjoining countries Recently the Government of France and India have presented a set of their respective publication on Indian Culture to it. Now since Mr. Wendel is in India in order to study Jainism, it is being looked after by Herr G. Frahmke. Last year in 1952 before starting for India, Mr. Wendel convened the 'Universal forgiveness Day Conference' on the occasion of the Jaina festival "**Ksamavani**" which attracted the attention of prominent

German scholars and statesmen. Thus, Jainism is attracting the attention of and appealing to the hearts of the German people.

15 Greece: The ancient Greeks owed not a little to Indian philosophy. The Macedonians or the Greeks were the followers of the Egyptians, who were influenced by the Jaina teachings, as we have seen above. The religious history of the Greeks, too, shows signs of the prevalence of Jaina doctrines in their country. Greek philosophers, like Pythagoras[1] (5th century B. C.), Pyrrho[2] and Plotinus were the chief exponents of Indian philosophy. They Studied philosophy with the Gymnosophists (Jainas). So, rightly did Pythagoras proclaim the immortality of the soul and the doctrines of transmigration in the manner of Jainas.[3] He advocated and passed a simple life, punctuated with the rules of asceticism—the vow of silence being one of them, holding an important place in Jaina asceticism.[4] He condemned meat diet and use of beans, which has puzzled European writers much. But the fact is that Pythagoras had learnt wisdom from the Gymnosophists (Jainas,[5] and the Jainas do not use beans in combination with milk and curd, on the ground that in conjunction with the human saliva such a combination of beans becomes the breeding soil of an infinity of microscopic germs, which are destroyed in the process of digestion. It was to avoid the destruction of so many innocent lives that the Jainas recommended abstaining from the use of beans in combination with milk and curd and the Pythagorians had probably taken the doctrine from the Jainas.[6]

---

1. The Confluence of Opposites, Addenda, P. 3,
2. Lord Mahavira & Some Other Teachers of His Time, P. 35
3. "Vira", Vol. II, P. 81
4. Ibid.
5. Gymnosophists were Digambara Jains, See Encyclopaedia Britannica, XV., P. 128
6. Addenda to the Confluence of Opposites, P. 3.

Likewise, Pyrrho also seems to have propagated Jaina doctrines in Greece. Diogenes Laortius (IX 61 and 63) refers to the Gymnosophists (Jainas) and asserts that Pyrrho of Elis, the founder of pure scepticism came under their influence and on his return to Elis imitated their habits of life.[1] Pyrrho's scepticism seem to be a corrupt form of the Jaina doctrine "**Syadavada**." And even the ancient Dionysian cult of Greece betrays signs of Jaina influence. It was the belief of the Dionysians that "the soul is in its nature divine, while the body is merely its prison-house." It makes its first appearance, in Greece as a result of the experiences of man in a state of **ecstasy**, notably in connection with the Dionysian cult. It was in fact, the triumphant advance of the Dionysian religion, which first gave currency to the conviction that the soul acquires hither to unsuspected powers once it is free from the trammels of the body.[2]" Similary in the later period Plotinus asserted the divine nature of soul and said; "We say what He is not, we cannot say what He is.[3]" This refers clearly to the immaterial nature of soul called **Brahma**.

The Greek mythology too, advocates the self-same teaching of soul's potential immortality and its transmigration as a result of its being in bondage with flesh.[4] The ancient Greeks worshipped nude images,[5] like the Jainas.

Besides it the important and the visible feature of the spread of Jainism in Greece is the shrine of the **Shramanacharya** (the naked saint) at Athens,[6] who hailed from Bayagaza, which shows clearly that there was once in prevalent an organised order (**Sangha**) of the Jainas.

1. Encylopaedia Britannica, (11th ed.), Vol. XII. P. 753.
2. Ibid, Vol. II, P. 80.
3. Modern Review, March 1948, P. 229.
4. Supplement to the Confluence of Opposites, P. 9-12.
5. Journal of the Royal Asiatic Society, Vol. IX. P. 232.
6. Indian Historical Quarterly, Vol. II, P. 293.

Of course, it gained a commanding influence there so as to attract the attention of the Greeks in as much as it induced them to build a shrine of the abovenamed Jaina **Shramanacharya** at Athens.[1] Hence rightly did Prof. M. S. Ramaswamy Aiyangar, remark that Buddhist & Jaina **Shramanas** went so far as Greece, Roumania and Norway to preach their respective religions.[2]

16. Indonesia, Java etc: Indian philosophy and religion, architecture and literature, music and medicine were the important contributions of the Indians to the cultural history of Indonesia, Java, & other Islands of that group. The early Indian immigrants to these islands were headed by a personage namely **Kaundinya,** which name plays a very important role in the Jaina narrative legends.[3] The Jaina accounts of the voyages of Jain merchants to Java dvipa, Malaya dvipa and many other such islands is so lively and accurate that scholars have traced in them the sense of historicity.[4] In the early medieaval period when Indian Settlers migrated to Indonesian islands from South India, Jainism was in its ascension in the South[5] and it is but natural that Jainism could had been taken over to the islands of Indonesia, Java, and Malaya. Dr. Sylvan Levi expressed his view in affirmative in this respect and recently Dr. Bjanraj Chattopadhyaya has produced a remarkable book on the subject from which Prof. J. P. Jain has deduced the following points, which require special study and research:—

1. The first royal family of Indian origin of Kamboj was connected with the **Nagas** and we have early and extensive mention of these people in the Jain literature,

2. **Kaundinya** was the first ancestor of the Indian settlers in Kambodia, who visited India. Jain Rishi Ugraditya refers to a Kaundinya as one of those Arhata Vaidyas

---

1. Lord Mahavira and some other Teachers of His Time, P. 19
2. The "Hindu" of 25th July 1919
3. Jaina Siddhanta Bhaskara, XVII, P. 103.
4. Sec. The articles by Dr. V. S. Agarwala and Dr. Motichand
5. Sec. Medieaval Jainism by Dr. R. A. Saletore

(physicians) who never prescribed alcoholic and fleshy medicines and condemned meat diet.

3. In the islands of Kamboj, Java, Malaya etc. the Indian settlers were strictly vegetarians and never offered animal sacrifices.

4. The word 'Jina' was used as synonymous to Buddha'.

5. The images of Buddha which has been found there, are different than those found else - where and bear resemblance to the images of Tirthankaras. They appear nude, having no sign of **Yajnopavita** thread. The numerical significance of some **Chaityalas**, as being 52, seems to bear a remarkable reference to Jain tradition in which 52 Chaityalas of **Nandishwar-dvipa** are worshipped thrice a year during the **Ashtanhika** festival.

6. An inscription belonging to about 9th century A. D. refers to Lord Parsvanatha, the 23rd Tirthankara. It mentions also the Jaina work on medicine called 'Kalyana Karaka.'

7. Some opening verses of devotion in certain inscriptions betray the Jaina mode of obeisance.

8. The legends of **Ramayana** and **Mahabharata** sculptured there are more in agreement to the Jaina version of these epics.

Viewing above facts, it seems most probable that Jainism was the early religion of the Indian immigrants who settled in Indonesia and other islands.

17. Iran (Persia): To the Indians, the modern country of Persia or Iran was known by the name of Parasya. It is mentioned along with Arabia in the Jaina "Prashna Vyakarana-Sutra" (Hyderabad edition p. 24) which proves that Jainas were in contact with Persia since a very remote period. The Jainas being great seafarers used to go to Persia and took their ships laden with all kinds of merchandise. Ayala was a great merchant of Ujjain, who went to Persia and thence to the port of **Venyalala.**[1] Jainacharya Kalaka also visited the country of Parsya. Pahalva was a province of Parsya,

1. Avashyaka-Churni. P, 448

which country was visited by Rishabhadeva.[1] When Dwaraka was totally burnt in a great conflagration, then Kujjaraya who was the son of Baladeva, the Yadava King, went to Pablva.[1] Now these Pahalvas are identified with the Parthians. It is evident from the Jain archaeology of Mathura that these Parthians came to India and professed Jain faith.[2] At the time of Lord Mahavira a close contact between India and Persia was in existence and many Persians came to worship Tirthankara Mahavira: We know Prince Ardraka of Persia became a Jain monk near the Lord. King Samprati sent Jaina missionaries to this country also. Major General J. G. R. Furlong remarked long ago that "Oxiana, Kaspia and cities of Balkha and Samarkand were early centres of their (Jainas) faith."[3] Abu-alla, a Darvesh of **Basra** seems to had come in contact with the Jainas and followed Ahinsa very minutely.[4]

18. Japan: The teachings of Zen Buddhism in Japan bears resemblance to Jainism and so it is possible that ancient Japanese were in cultural contact with Jainas. Recently Japanese scholars have started studying Jainism. Prof. Dr. Nakamura and his disciples are taking keen interest in it

19 Netherland: Scholars of Netherland are taking interest in Jain studies M. Buys is making special study of Jainism in comparison to Buddhism.

20. Tibet The Himalayan region was the early home of Jainism, since **Kailash** was the sacred place where Lord Rishabha performed penances, gained Omniscience and set the wheel of **Dharma** roling. Images of the Tirthankars are found there in its adjoining country Tibet. Reference to Jainism in the Tibetian manuscripts have been found by Dr. Tucci.

Thus we see that Jainism was not confined to India only: it was once a religion of world wide pursuance. What is needed now is that scholars should be provided with all facilities to make research and study of Jainism abroad

---

1. Uttaradhayana-Sutara, II, 29
2. Bhandarkara Comm: Volume, P. 285-88
3. The Short Studies in Science of Comparative-Religion Intro:, P. 7
4. Der Jainismus,

CONTRIBUTIONS OF JAINS

Shri Jinendra Das Jain B. Sc. (Ind. Chem.) B. Sc. (Engg.)
S.D.O., P.W.D. (I. B.) Punjab Government.

1. Origin: It is wrong to suppose that Jainism arose with Lord Mahavira. He is not the founder of Jainism,[1] but merely a reviver of the faith; which existed long before him.[2] The series of 24 Tirthankaras (Prophets) each with his distinctive emblem (चिन्ह) was evidently & firmly believed in the beginning of the Christian era."[3] When Shri Ramchandra ji was contemporary of 20th Tirthankara Lord Mansumarata Natha, Lord Krishna of 22nd Tirthankara Lord Nemi Natha & Mahatma Buddha of 24th Tirthankara Lord Mahavira, how can Shri Mahavira or 23rd Tirthankara Lord Parasva Natha be the founder of Jainism ? "Had it been so the Hindus would have never said that Jainism was founded by Rishbha, the son of Nabhi Raya & instead of confirming the Jaina tradition about the origin of their religion, would have contradicted it as untrue."[4]
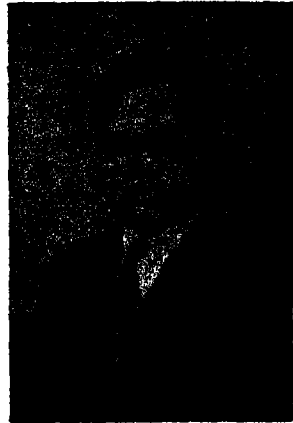
---

1. (a) Sir Dr. Willam Wilson Hunter: The Indian Empire, P. 668.
   (b) Aiyangar; Studies in the South Indian Jainism Part I.
   (c) Encyclopaedia of Religion & Ethic· Vol. VII Page 472.
   (d) Dr. H. S. Bhattacharya; Jain Antiquary, Vol. XV. P. 14.
   (e) S.S. Tikerkar; Illustrated Weekly, (22nd March 1953) P. 16.
   (f) This book's Pages, 99, 100, 101, 102, 106 and 111.
2. Prof. A. Chakaravarti; I. E. S: Jain Antiquary, Vol. IX P. 76.
3. Dr. V. A. Smith: Archeological Survey of India Vol. XX P. 6.
4. C. R. Jain, Bar-at-Law: J. H.M. Allahabad (Nov, 1940) P. 4.

Dr. Niyogi, the Chief Justice of Nagpur High Court tells us, "The Jain thought is of high antiquity. The myth of its being an off-shoot of Hinduism has now been exploded by recent historical researches."[1] The Bombay High Court has decided, "It is true, as later researches have shown, that Jainism prevailed in this country long before Brahaminism came into existence and it is wrong to think that Jains were originally Hindus and were subsequently converted into Jainism "[2] According to the ruling of Madras High Court, "Jainism has an origin and history long anterior to *Surti* and *Sumurti*.[3] According to Dr. H. Jacobi, "The interest of Jainism to the students of Religion consists in the fact that it goes back to a **Very early period** and to **Primitive** currents of religious and metaphysical speculations, which gave rise also to the oldest philosophies *Sankhya*, *Yoga* and to *Buddhism*"[4] Jainism was in existence long before *Mahabharata*, *Ramayana* and even Vedic period. Rigveda, Ather-Veda, Yagurveda, Samaveda, Bhagwatpurana, Ramayana; Mahabbharata, Mansumarati, Shivpurana, Vishnupurana, Markandapurana, Aganipurana, Vayupurana, Gararhapurana, Naradapurana, Sikandhapurana etc.etc. almost all thesacred booksofHindusBrahmins & Buddhists frequently mention the names of *Jinendras*, *Arhantas* and Jain *Tirthankars* with great honour and respect.[5] Modern researches have proved beyond doubt that the religion of Dravida was Jain.[6] Prof. A. Chakravarti, a retired I.E.S. also informs, "First Tirthankara Lord Rishbha's religion evidently was prevalent in whole India before the Aryan's invasion as is evidenced by various references found in Rigveda."[7] Admittedly the *Jain Sanskriti* was in full

1. Dr. M. B. Niyogi, C. J. Nagpur: JainShasan, Introd. P. 16.
2. 1937, All India Law Reporter (Bombay) Page 518.
3. 50, Indian Law Reporter (Madras) Page 228
4. Transaction of 3rd International Congress History of Religions II Page 59. Reprint in J. Ant. Vol. V.
5. This books Pages 41—70. 405—411.
6. Prof. Belvalker: Brahma Sutra, 109.
7. Voice of Ahinsa (World Jain Mission, Aliganj) Vol. II P. 4

progress prior to Aryans' invasion.[1] A recent exavation in Sindh of the pre-historic civilization of Mohenjodaro and Harappa shows unmistakable points regarding the existence of Jainism in that remote pre-vedic and Pre-Aryan age.[2] According to Miss. Frazer, "Only Jainism has produced omniscient men. It does seem plain that religion does originate from the Jains."[3] "The Jainas worked out their system from the most primitive notion about matter"[4] "The principles of Jains have according to the traditions, existed in India from the earliest times."[5] Even Shri Shankaracharya, the greatest rival of Jainism had to confess that Jainism is prevailing from a very old time.[6] So Major General J. G. R. Furlong has rightly remarked, "Jainism appears an earliest faith of India, it is impossible to find a beginning of Jainism & the nudity of Jain saints points to the remote antiquity of this creed, to a time when *Adam* and *Eve* were naked"[7]

According to Pt. B.G. Tilk, Jainism is Anadi.[8] Sentient being and non-sentient things have been in existence in the past, are present now and will exist in future," says Matthew McKay, "So Jainism, which is a religion of every sentient being was in existence in past, is present now & will exist in future." In the present cycle of time (Osarpani Yuga) Jainism was founded by the 1st Tirthankara Lord Rishbha Deva,[9] who according to His Exellency Shri M. S. Anney, is expressly regarded in the Bhagwatpurana as an *Avatar* of Vishnu,"[10] "and who in the words

---

1. Jain Sandesh, Agra (26th April, 1945) Page 17.
2. Shri Joti Persada: Jaina Antipuary, Vol. XVIII Page 58.
3. Scientific Interpretation of Christainity.
4. Encyclopeadia of Religion & Ethic: Vol. II Page 199.
5. Dr. Bimal Charan Law: Historical Gleanings.
6. 'बादरायण' व्यास वदान्त सूत्र भाष्य अध्याय २ पाद २ सूत्र ३३—३६.
7. Short Studies in Science of Comparative Religions Int.P 28,
8. Daily Keari of 13th Dec. 1910.
9. Prof. A. Chakaravorti: Jain Antiquary. Vol. IX P. 76 (78).
10- Voice of Ahinsa, Vol. II P. ii

of K.B. Firoda, Speaker Bombay Legislative Assembly, "is the first law-giver to the humanity and who had sown the seeds of Culture & Civilization in this mudane world & gave the 1st lesson in all the Arts and Sciences to the world, which owes deep depth of gratitude to Him[1] therefore Revd. J. A. Duboi is perfectly right when he says :—

"Yea ! his (Jain's) religion is the only true one upon the earth, the **Primitive Faith of Mankind** "[2]

2. Ahinsa: Although countless saints have also eulogised the doctrine of Ahinsa, but they all got the original inspiration from Jainism, which greatly influenced their customs and usages. Mahatma Gandhi is truly regarded the greatest apostle of Ahinsa, but in the words of Gandhi ji himself, "Lord Mahavira is the '**Avatar**'of Ahinsa."Whoever desires paradise should sacrifice & slaughter animals," was the common preachings in ancient India. Jainism raised a revolt against this misnomer and established sacredness of all lives.[3]

Virta: Jainism is the religion professed by Jainas. Jaina means a follower of *Jina*, which word again etymologically signifies a conqueror, a victor, a lord triumphant, who subdues his passions and frees his soul from all Karmas and attains Omniscience. The religion of such conquerors is ofcourse a **Conquering religion**. Its Ahinsa is no bar to heroism, because according to Jainism the presence of passion is hinsa and its absence is Ahinsa.[4] So one who is under the influence of passions is quilty of hinsa even if no one is actually injured; as under passion the spirit first injures the self. But one who is not moved by passions, even kills thousands, does not commit hinsa,[5] because his aim and intention is not to harm but to avoid them from harm. Just as a house-

---

1. Voice of Ahinsa (World Jain Mission Aliganj) Vol. II. P. iii.
2. Description of the Character of......India......Civil, found by Major Welke, Acting Resident, Mysore in 1806 and Published by East India Company in 1817.
3. Shri T.K. Takol: Mahavira's Commemration (Agra) Vol. I P. 217
4. ,5 Authentic Jaina Text 'Purshartha Siddyupaya' Sloka 43 to47

holder owes responsibility to his household, he also owes duty to his city, his country and his nation, so a true Jain shall not hesitate to defend his hearth and home, his relatives, his neighbours and his country, if needed even by means of sword, as in such cases his primary intention is not to commit any wrong, but to prevent the commission of wrong and to defend the victim, hence to fight the battles for protecting country, honour property & punishing criminals is no hinsa for a householder in Jainism.[1] It is the reason that Jainas were not only conquerors in the realm of the spirit, but were also heroes of war and state. History tells us that Shrenika Bimbsara, Ajatshaturu, Nandivardhana, Chanderagupta, Asoka, Samprati, Kharavela, Amoghavarsha etc. etc. the greatest emperors and Chamundraya, Gangraj, Bijjala, Durgaraj, Bhamashah and Dyaldass etc. etc. the greatest field-martials were Jains.[2] It is wrong to suppose that Jain's Ahinsa is the cause of India's down-fall.[3] The fact is that our holy mother land re-gained freedom only with the weapon of Ahinsa. Had Jains not been brave, the brave Rajputs would never appoint them as their Comander-in-Chiefs. Sardar V.B Patel has already observed "The term *Jain* stands for Ahinsa and Ahinsa teaches *braveness*"[4] and Pt. Gourishankar Hirachand Ojha has truly said, "India has produced Chivalrous persons and Jains have never lagged behind in this respect inspite of the prominent place allotted to *compassion* in Jainism."[5]

4. Practical Religion: Jainism is mainly divided into 'Muni-dharma' & House-holders' dharma,' which are again subdivided into various stages, so that even a layman with limited capacity of every caste and state may adopt it conveniently and consistently with due regard to temporal advancement; thus Jainism is pre-eminently a Practical Religion.

1- 2. This books Pages 419, 42 :, 425

3. 'जैन अहिंसा और भारत का पतन' Ibid. Page 433

4. Glory of Gommatesvara (Mercury Publishing House, Madras—10) Page 71.

5. राजपूताने के जैन वीरों का इतिहास, भूमिका।

5. Theism: Jainism believes the Universe immortal[1] eternal[2] and un-created.[3] *Parlai* (कयामत) is not total annihilation but merely a sudden change.[4] It requires no judge for punishment. Law of Karma is itself complete, un-eroring and self-acting. For this scientific belief; those, who believe in a creator some times look Jainism as an atheistic, but it can not be so called,[5] because Jainism does not deny the existence of God.

6. Anekanta is a scientific out-look to accommodate different view-points in the domain of thoughts as well as in action by its constitution of Reality; therefore only Jainism is a toleratable religion to remove misunderstandings of different aspects.[6] and to understand controversy friendly.

7. Karmavada: Almost all religions admit that gain or loss and pleasure or pain is the result of Karmas, but Jainism has scientifically indicated how and why Karmic matter is attracted and bounded with soul? How Karmas can be stopped & destroyed? So Jainism is most essential for those, who want to destroy the Karmic enemies and to attain unabating all-bliss[7]

8. All-equality: The real nature of all souls, whether of Brahamins, Chandals, men,[8] women, animals or beasts is alike.[9] They are high & low merely on account of their own karmas, which all living beings are capable to destroy. Caste, creed or state is no bar to become the highest soul, hence Jainism rootsout all **distinctions** of caste or state, high or low; & as such recognises all living beings of the earth *equal*.

1- 4. Foot notes of this book's Pages 340—344.

5. "जैन धर्म नास्तिक नहीं" । This book's PP. 116-118.

6. "अनेकान्तावाद् अथवा स्याद्वाद" । This book's PP. 358 361.

7. "कर्मवाद्" । This book's PP. 363-368.

8. 10 "जैन धर्म और शुद्र" व "जैन धर्म और पशुपक्षी" ख० ३

9. Indepedence: Betterment of soul does not depend upon others. By establishing that every individual is an architect of his own destiny and by its own efforts he is capable to attain true happiness, Jainism enables every one to become *Pursharti* and "Independent."

10. Universal Brotherhood: By observing Ahinsa, rooting-out caste-distinctions, maintaining *Samavada*[1] and extending love even to animal kingdom, Jainism establishes **all-peace** & a naclus of Universal Brotherhood.

11. Godhood: Omniscience and God-like everlasting true happiness is the natural attitude of every soul, which is hiden under karmic dust on account of passions and when it is removed **'Atma'** (Soul) attains *Sobhavic* quality (Man-Passions=God, while God+Passions=Man) of self-supreme blissing **Parmatma**—God,[2] as such in the words of Dr. M. H. Syed, Jainism raises man to Godhood"[3] and "No other religion is in a position to furnish a list of men, who have attained Godhood by following its teachings, than Jainism".[4]

12. Man's own religion: In the words of Miss. Elizabeth Frazer, "Jainism is the only man-made religion"[5] and according to German Scholar Dr. Charlotta Krause, "Man is the greatest subject for man's study," hence French thinker Dr. A. Guernot has rightly remarked, "There is a very great ethical value in Jainism for man's improvement."[6]

13. Good health & peace of mind: The very fundamental virtues (आठ मूल गुन) abstaining from meat, wine; not taking food after sun-set (रात्रि भोजन) taking pure and simple food, drinking straining water (छना जल) etc. are such useful religious principles, which according to

---

1. "समयवाद" This book's Page 392.
2. 'The Way for man to become God.' This book's, PP. 209-213.

3-4. Footnotes, Nos. 1 & 2 of this book's Page 331.

5-6. This book's Pages 207, 180.

Shri Manilal H. Udani, "One who follows strictly the principles of Jainism will always keep best health, noble thoughts and peace of mind."[1]

14. Scientific-outlook: Jainism is a science to purify a mundane soul, to attain perfection and to obtain undying bliss. Even European thinkers have declared, "Jainism is the only religious system, which reduces every thing to the iron law of nature and with Modern Science.[2]

15. Socialism: There shall be no need of any control of food, cloth or other material and contentment will prevail alround, if *Parigrah Pramana* (Voluntarily limiting essential material according to reasonable need) vow of Jainism is practised by all.[3]

16. Morality: Ten-fold (दशलक्षण) Dharma of Jains, by teaching Forgiveness, Mildness, Straightforwardness, Truthfulness, Purity of heart, Self-control, Self-mortification, Charity, Un-attachment and Brahamcharya, raises the moral tone.

17. Industry and Commerce: Jains have been the master of industry & Commerce. History tells us that they went to foreign countries for trade even long before the pre-historical period. Inspite of being small in number even now they own a very large number of Industrial concerns, which are not only producing useful requirements for the country, but also providing good facilities for training to our technical hands & livelihood to countless Indians. Col. Todd has truly indicated in his Annals of Rajasthan, "Half of the mercantile wealth of India passes through the hands of Jain laity."

18 Influence: Jainism's influence, greatness and importance may be judged from the fact that almost all the authoritative sacred books of Hindus, Brahamins and Bhuddhists—all the three ancient sects and even Rigveda

1. Digamber Jain (Surat) Vol. IX Page 33.
2. This book's Pages 119-125, 206-207.
3. "Lord Mahavira and Socialism." This book's Page 204-206,

etc. all the four Vedas mention frequently the praise of *Arhantas*'. '*Jinendras*' and various *Tirthankaras*[1]. Even India took its name Bharat Varsha' after the name of Jain Emperor, first Chakarvarti *Bharata*[2], the eldest son proof of first Tirthankara 'Rishabha[2]'.

19. Monks:- According to Prof. Dhariwal, "Jain Monks are not merely blind followers of Jain Law, but they are very learned scholars with for greater influence than that of the greatest Emperor[3]". Their **NUDITY** is a conculsive Proof of their self-control and contentment.[4]

20 Jain Worship: is not idol worship, but it is an ideal worship. The images of Tirthankaras in the Jain temples are only the statues of those great being, who had attained to the perfect state. The English people also gather every year in the Trefalgar Square in London to honour the stone statue of Admiral Nelson & they place before it flowers and garlands, but no one dare to accuse the English people of idolatry. They adore the spirit of Nelson through that statue of stone and this is idealatry Similar is the case with the Jain worship.[5]

21 Literature: V. A. Smith declares, "The Jains possess extensive literature full of valuable material as yet.[6]" So Dr. A. N. Upadhya has rightly said, "Jain Bhandars' are old, authentic and valuable literary treasures and deserves to be looked upon as a part of our *National Wealth.* Mss. are such a stuff that they cannot be replaced if they are once lost."[7] Jainism contribute in:-

(*a*) ***Languages***: According to the retired I. E. S. Prof. A. Chakarvarti, "The contributions of Jain scholars to literature in different language is the *Pride of India*."[8]

1- This book's Pages 41-45, 405-418.

2- Ibid. pp. 410—411.

3- Ibid. P. 194.

4- Ibid. Footnotes of Pages 305-308.

5- 'Arhant Bhagati' This book's Vol. III.

6- Hindi Jain Encyclopaedia Vol. I. P. 27.

7- Jainas Antiquary Vol. IX P. 20-29 & 47-60.

8- Prof. A. Chakaravarti: Jain Antiquary. Vol. IX P. 10.

Particularly in *Prakrit*,[1] *Sanskrit*[2] and *Tamil*[3] are *unrivilled* and served as model for latter non-Jain writers.[4] They also contributed richly in *Dravadin*[5], *Kannada*,[6] *Gujrati*,[7] *Hindi*,[8] *English*,[9] *Urdu*,[10] and various other languages on all the important subjects of the day.

(*b*) ***Arithmetic***: American scholar Mr. James Biset points out, "The writers of Jain sacred books are very systematic thinkers and particularly strong in arithmetic. They know just how many different kinds of different things there are in the Universe and they have them all tabulated and numbered, so that they shall have a place for every thing & every thing at his right place[11]. Prof. Dr. Bibhuti Bhusan Dutt finds, "*Ganita-sara-Sangraha* is an important treatise on arithmetic by a Jain scholar Mahavira is still available".[12]

(*c*) ***Mensuration***: "The formula concerning the mensuration of a segment of a circle has been stated by the celebrated Jain metaphysician Umasvami, several centuries before Bhaskara I". Jain Acharya Nemi Chandera has employed the law of indices, summation of series, mensuration, formula for circle and its segment, permutations and combinations."[13]

---

1. (a) Prakirt Studies by Dr. A. N. Upadhya: Jaina Antiquary Vol. VIII Page 69-86. & also Vol. XVII. P. 33
   (b) Prof. Dr. Banadeo Saran Agarwal: Varni. Abhinandan Granth. P. 24 & Jain Sidhant Bhaskar. Vol. XVI. P. 21.
2. Varni Abhinandan Grantha. pp. 24. &310—318.

3-4. J. Ant. IV. 35, 69, 100; V. 1, 35, 67; VI 42; VII 15-20; IX 10.

5-6. Dr. Tatia: Aryan Path (May 1953) P. 236.

7-9. Get free Cat. from Bhartya Gianpith, Benaras; Dig. Jain Pustakalya, Surat; World Jain Mission Aliganj (U.P.) India

10. Get free Catalogue of books from Jain Mitar Mandal, Dharam Pura, Delhi; Shri Atmanand Jain Tract Society, Ambala City.

11. Mr. James Biset Pratt: India & Its Faith Page 258 Also Jain Antiquary Vol. XVI. 54-69.

12. Bulletin of Calcutta Methematical Society, Vol. XXI P. 119.

13. Shri K.P. Mody: Tattvar thadhigama Sutra. Jaina Antiquary Vol.I. P. 25. and Vol. XVI. pp. 54-69.

(*d*) ***Mathematic***: The Bulletin of Calcutta Mathematical Society (Vol. XXI) mentions that Jain scholar Mahavira's investigations in the solution of rational triangles and quadrilaterals deserve special consideration. "Indeed these have certain notable features, which we miss in the others. Certain methods of finding solution of rational triangles, the credit for the discovery of which should rightly go to Mahavira, are attributed by modren historians by mistake to writers posterior to him."[1]

(*e*) ***Grammar:*** *Jinendra-Vayakarna* is a very famous Jain work on grammar. *Panini-Sabdavatara* is another Jain grammatical work. Vopadeva counts it among the 8 original authorities on sanskrit grammar[2].

(*f*) ***Science:*** Jainism is purely a Scientific system,[3] and the Jain Tirthankaras were the greatest Scientists hence Jainism is the greatest subject for the study of modern science. Prof. Ghasiram has ably explained Jain principles in full compliance of science in his *Cosmology Old and New*.

(*g*) ***Classification:*** According to Dr. Brajindra Nath Seal, "Jainacharya Shri Umasvami's classification of animals is a good instance of classification by series, the number of senses possessed by the animal taken to determine its place in the series[4].

(*h*) ***Atomic Theory:*** The most remarkable contribution of the Jaina relates to their analysis of atomic linking or the mutual attraction of atoms in the formation of molecules.[5]

(*i*) ***Medicine:*** *Khagendra-Manidarpana* is a Jain work on Medicine[6]. *Kalyanakaraka* is another Jain treatise on medicine which long continued to be an authority on the subject with entirely a vegetarian and non-alcoholic treatment.[7]

---

1. Bulletin of Calcutta Mathematical Society Vol. XXI, No. 2, of 1929.
2. Rice (E. P.) Op. Cit. Page 110.
3. 'जैन धर्म और विज्ञान' This book's PP. 119-125.
4- 5 The Positive Sciences of the Ancient Hindus (1915) P. 88-95.
6- 7. Rice (E.P.) Op. Cit. PP. 45, 27, 37. J. Ant. Vol. I.pp 45, 83.

(*j*) ***Astronomy:*** German Thinker Dr, Schubrig observes, "History of Indian Astronomy is not conceivable without famous Jain work *Surya Pragyapti* (सूर्य प्रज्ञप्ति)[1]

(*k*) ***Magic:*** According to Prof. C. S. Mallinathan. "Jainacharya Shri Pujyapada possessed miraculous power. Celestial beings worshiped his sacred feet with great devotion[2]." There are abundant references of magic in Jain literature[3].

(*l*) ***Metaphysics:*** According to Dr. Jacobi, "Jainism has a metaphysical basis of its own, which secured it a distinct position apart from rival systems[4]."

(*m*) ***History:*** Dr. B. C. Law, observes in his Historical Gleanings, "Jainism has played an important part in the history of India" and according to Smith, "Jaina books are specially rich in historical and semi-historical matters[5]."

(*n*) ***Politics:*** Pt. Panalal Vasant has proved, the Jainas to be pioneer in Politics[6].

(*o*) ***Geography:*** As Jain monks tours on foot and village to village and ordinarily do not stay more than 3 days at one place except in rainy season, certainly their Geographical observations are vast and they wrote important books on the subject[7].

---

1. Cosmology Old & New. P IX, जैन सिद्धान्त भास्कर, वर्ष ५ पृ० ११०, वर्ष ६ पृ० ३३, वर्ष १६ पृ० ४२, वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थ पृ० ४६३।
2. Sarvartha Siddhi (Mahavira Atishaya Com, Jaipur) Int. IX.
3. J. Ant. Vol. VII. PP. 81-88. Vol. VIII. PP. 9-24, 57-68. An-Ekant. Vol. I. P. 555;
4. This book's Page 179.
5. Hindi Jain Encyclopaedia, Vol. I P. 27.
6. वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० ३६१ जैन सिद्धान्त भासकर वर्ष १६ पृ० ६१ ।
7. जैनसिद्धान्त भास्कर, वर्ष १३ पृ० ३, अनेकान्त वर्ष १ पृ० ३०८, वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थ पृ० ३२३।

(*p*) ***Stories:*** Jain Puranas & Katha-Koshas are full of useful stories with historical fact and the beauty is that not even one Jain-story can be regarded subnersive to the public morality[1].

(*q*) ***Dramas***: containing attractive languages on all important subjects may be found in a very large number in Jainism.[2]

(*r*) ***Religious Books***: According to Dr. Jacobi, "Sacred books of the Jains are old, avowedly older than the Sanskrit literature, which we are accustomed to call classical."[3]

(*s*) ***Poets***: *Kural* a very important ethical poem was composed by Tiruvalluvar, who was definitely a sympathiser with Jainism and the author of *Naladiyar*, *Tolkappiyam*, *Valaiyapati*, *Silappadikaram*, *Jivaka Chintamani*, *Yasodhara Kavay*, *Ghudamani* and *Nitakesi* are Jains. Ponna was a great Jain poet upon whom Rastrakuta king Kannara conferred title of **Kavi Chakaravarti**. Pompa another Jain poet is regarded as the **Father of Kannada Literature.** Jain Poet Ranna was the **Court poet** of the Karnataka emperor Tailapa II & his son Satyasraya[4]. Universal Judgement assigns first place to poet Kalidasa but Jain poet Jinsena claims to be considered a higher genius[5].

(*t*) **Iconography**-Images of '*Jina*' was made centuries before the rule of Nanda. Images of 'Jain Tirthankaras' made during Mouryan rule are at Patna museum. In the history of Indian iconography, the Jain images have their **earliest place**[6].

(*u*) **Painting**—Jain art of painting is one of pure draught-man-ship, the pictures are brilliant statements of

---

1. Dr. Jagdish Chandra: Varni Abhinandan Granth, 358.
2. Ibid P. 450. Premi. Jain Sahitya & Itihas P. 260. 496.
3. This book's Page. 178.
4. Prof. Dr: Nathmal Tatia : Aryan Path (May, 1953) P. 237.
5. Journal, Bombay branch, Royal Asiatic Society (1894)P. 224.
6. Leader, Allahabad (17-9-1950) P. 11. J. Ant. Vol. XVI P. 105.

the epic and drawing has perfect equilibrium of a mathematical equation[1]:—

(v) **Art & Architecture**—According to Dr. Guirenot, "Indian art owes to Jains a number of remarkable monuments and in architecture their achievements are greater still[2]". According to Mr. Walhouse, 'The whole capital and canopy of Jain pillars are a wonder of light, elegant lightly decorated stone work[3]. Udaigiri caves of Orissa and architectural finds of Kushan age of Mathura[4] are Jain objects of rare beauty, which have won world's praise[5] In the words of K. Narayana Iyengar, Ag. Director of Archaeology, "the Gomatesvara Colossus (56½ ft. high of 983 A.D.) is not only a National heritage but is also considered as one of the **Wonders of the World**"[6]. Splendid Jain temples of Abu are marvellous.[7] One of these namly Adinatha was built in 1031 by Vimlasha minister of Bhim deva and other of Neminatha by Tejpal minister in 1230 are superfine architectural wonders. Palitana in Gujrat is known as; 'the city of temples' since it contains no less than 3000 Jain temples[8] Rishbhadeva's temple at Ajmer, which took 25 years for the Jaipur artists to depict is a specimen of the finest architecture. Pt. Jawahar Lal Nehru paid it visit in 1945 and said, "It is a museum of an unusal mind from which one can learn something **Not only about Jain Philosphy and out-look, but also about Indian Art**[9]."

(w) **Logic**-According to Shri Tukol, "Jainsm reached

---

1. Indian Collections, Museum, Fine Arts, Boston Vol. IV. P. 33.
2. Ch. La Religion Djaina by Guerinot. P. 279.
3. Walhouse: Indian Antiquary. Vol. V. P. 39.
4. Jain Stupa & Antiquities of Mathura, U. P. Govt. Press.
5. World Problem and Jainism (World J. Mission) PP. 6—7.
6. Glory of Gommatesvara (Mercury Publishing House, Madras 10) P. XII.
7. "Dilawar Temples." (Govt. of India) Publication Division, Civil Lines, Delhi.
8. Digamber Jain (Surat) Vol: IX. P. 72 H.
9. Hindustan Times, New Delhi (June 20, 1953) P. 8.

a very high sense of perfection in the field of Logic[1]." Prof. Ghasiram proves, "Jain logic of Sayadvada is Einstien's theory of Relativity[2]." In the words of Dr. Schubrig, "He, who has a thorough knowledge of the structure of the world can not but admire the inward logic and harmoney of Jain ideals.[3]" So Dr. Tucci has rightly said, "It is impossible to any scholar interested in the history of Indian logic to ignore Jain logic, which deserves the largest attention of most diligent researches[4]."

(x) **Philosophy**—Dr. M.H. Syed, a well-known scholar of comperative religions wonders at the analytic philosophy of Jainism and says, "Jain's psychological insight into human nature stands unique for the distracted world of to-day[5]." Jain philosophy is India's ancient heritage and in the words of Dr. Jacobi, "Jainism is of great importance for the study of philosophical thoughts in an ancient India.[6]

(y) **Culture**—In his lecture at the Indian Institute of Culture, Dr. Tatia has proved that the cultural heritage of India is closely woven fabric of colourful strand of the Jain contributions[7]. Accordingly Dr. Losch rightly remarks, "Jainism has played an astonishing important part in the Indian Culture.[8]"

(z) **Ethics**—According to Dr. A. Guirenot, "There is great ethical value in Jainism for man's improvemant."[9]

23. **Struggle of Existence**—Jainas have been successful in every branch of life and have never shown any unfitness for the struggle of existence.

24 **Salvation**—Union of non-soul matter (Karmas) with soul is hindrance to true happiness and is the only

---

1. Mahavira Commemoration (Mahavira Jain Society, Belaganj, Agra) Vol. I. P. 218.
2-3. Cosomology Old and New P. IX and 195—201.
4. This book's P. 182. Varni Abhinandan Grantha 46-78.
5. Voice of Ahinsa Vol. II. P. 87.
6 Jain Antiquary Vol. V. & this book's P. 179.
7. Dr. Nathmal Tatia: Aryan Path (May 1958) pp. 234-238.
8. Prof. Dr. Losch, VoA. Vol. I. Pt. II. P. 26.
9. This book's Page. 180.

case of our imperfection. In order to annihilate Karmas we must have a clear and steady[1] *True Belief* (सम्यग्दर्शन) of soul and non-soul, as doubt is the parent of stagnation. We must also know the path of truth, which can only be. well indicated by omniscientists. In the history of the world, Jainism is the only religion, which has produced omniscient-men, which are called *'Arhantas'*, *'Jinendras'*, *'Tirthankaras'*; on the surface of the earth, so to know their teachings rightly is *'True Knowledge'* (सम्यग्ज्ञान) In the words of Frederick Harrison, "we must learn" to live & not live to learn. "So we must follow *True Conduct*, (सम्यग्चारित्र) experienced by all-knowing *Tirthankaras* with *'True Belief'* and *'True-Knowledge'*. The combination of these THREE JEWLES (रत्नत्रय is certainly the surest way (सम्यग्दर्शनज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्ग) to attain *'Salvation*[1]".

25. Conclusion – Jainism is not only a real source of of getting worldly enjoyments and heavenly pleasures, but is a science to purify the mundane soul, to attain perfection, omniscience and undying infinite true happiness. It is original, indipendent, scientific, rationlistic, demorative, universal, systematic and primative faith not only of man kind but even of birds and beasts. It provides freedom, pure bliss, self-responsiblity, self realization, all equality, voluntary co-operation, reciprocel help, spiritual advancement, all-love, noble thoughts sweet temper, simple living, pure food, contentment, international peace, exampalary action and brave conduct. It is an intimate friend of all, even of the most sinful and lowly beings but is an enemy of injustice, vice, ignorance, desires, passions and impurity. All sorts of distinctions of birth, caste, class and state and all differences of rulers and the ruled, masters and servants, high and low, rich and poor, traders and labourers automatically dis-appear and in the words German Thinker Dr. Charlotta Krause, "**This miseriable world may become paradise with all and all peace, ever lasting joy and true infinite bliss, if Jainism is practised by all the people of the world**[2].

---

1. The Way for a Man to become God, This book's P. 209-213.
2. This book's P .110.

विश्वशान्ति के अग्रदूत श्री वर्द्धमान महावीर
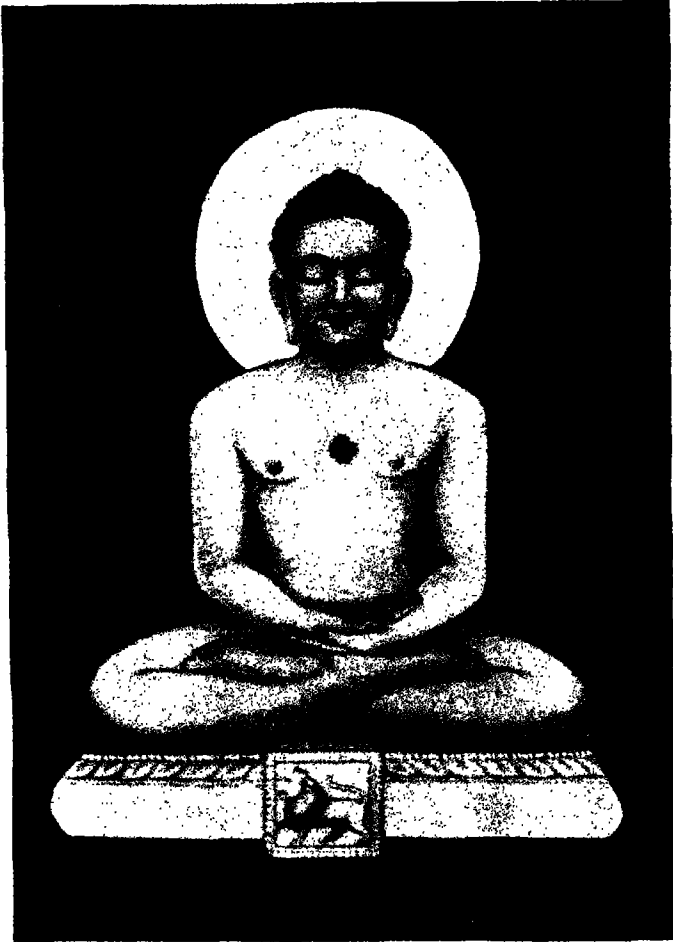
जन्म: चैत्र सुदी १३, ५९९ पू.ई.   तप: मंगसिर वदी १०, ५६९ पू.ई.
सर्वज्ञ: वैशाख सुदी १०, ५५७ पू.ई. निर्वाण: कार्तिक वदी १५, ५२७ पू.ई.

श्री वर्द्धमान महावीर

और

उनका प्रभाव

वीर-भूमि

कर्म कालिमा काटी जिन, केवल लक्ष्मी पाय।
श्री वर्द्धमान भगवान् के, चरण नमूं हरषाय॥

इसी भारतवर्ष के विदेह[1] देश में वैशाली[2] नाम का विशाल नगर है, जिसकी विशालता के कारण ही उसका नाम वैशाली पड़ा[3]। चीनी यात्री ह्यु्न्सांग ने वैशाली को कई मीलों में फैली हुई बड़ी सुन्दर नगरी स्वीकार किया है[4]। वास्तव में वैशाली जैन-इतिहास में एक उत्तम स्थान रखती है और वह महान् जैन-सम्राट् चेटक की राजधानी थी[5]। इसी वैशाली के निकट कुण्डपुर नाम का एक बहुत सुन्दर नगर था जो वैशाली का ही

---

१ "वर्तमान् विहार प्रान्त को गङ्गा नदी उत्तर और दक्षिण दो भागों में बांट देती है। गङ्गा के उत्तर की ओर मिला हुआ इलाका जो आज कल मुजफ्फरपुर, मोतीहारी और दरभंगा जिले हैं, वे वीर-समय में विदेह देश कहलाते थे।"—मन्त्री श्री वैशाली (कुण्डलपुर) तीर्थ प्रबन्ध कमेटी छपरा (बिहार)।

२. Ancient Geography of India, P. P. 507, 717.

३. Ancient India, P. 42, 54.

४. ह्यु्न्सांग का भारत भ्रमण, पृ० ३६२-३६५।

५ Vaisali is famous in Indian History as capital of Lichivi Rejas and the Haedquater of powerful confederacy. —Dr. B. C. Law: Jaina Antiquary, Vol. X. P. 17.

भाग समझा जाता था[१] । इसी कुण्डपुर[२] को कुण्डग्राम[३] अथवा कुण्डलपुर[४] भी कहते हैं। इसमें बड़े बड़े बाजार[५] और सात मञ्जिले[६] ऊँचे महल थे। यहां के स्वामी राजा सिद्धार्थ थे[७], जो 'णात' वंश के क्षत्रिय थे[८] ! 'णात' यह प्राकृत भाषा का शब्द है और नात' ऐसा दन्ती नकार से भी लिखा जाता है[९] ! संस्कृत में इसका पर्यायरूप होता है ज्ञात[१०] । इसी से 'चारित्रभक्ति' में श्री पूज्यपादाचार्य ने "श्रीमज्ज्ञातकुलेन्दुना" पद के द्वारा श्री वर्द्धमान महावीर को 'ज्ञात' वंश का चन्द्रमा लिखा है[११] । राजा सिद्धार्थ महादयावान्, शक्तिमान्, क्षमावान् और बुद्धिमान् थे ! इन के शुभ गुणों को देख कर वैशाली के महाराजा चेटक ने अपनी अत्यन्त रूपवती, शीलवती, गुणवती तथा धर्मवती पुत्री[१२] त्रिशलादेवी प्रियकारिणी का विवाह राजा सिद्धार्थ के साथ किया था।

---

१. श्रवण बेलगोल शिलालेख नं० १ ।

२. (i) सुत्रांभः कुण्डमाभाति, नाम्ना कुण्डपुरं पुरम् ॥

—हरिवंशपुराण, खण्ड १ सर्ग २ ।

(ii) सिद्धार्थनृपति-तनयो, भारतवास्ये विदेहकुण्डपुरे ।

—आचार्य पूज्यपादजी : दशभक्ति पृ० ११६ ।

३. The birth place of Mahavira is Kunde-gram, a suburb of Vaisali, a Villaga in Muzaffarpur District, Bihar.

—Dr. Herbert V. Guenther: V.O.A. Vol. II. P. 232.

४-६. जैन संक्षिप्त इतिहास, (दि० जैन पुस्तकालय सूरत), भा० २, खण्ड १, पृष्ठ ४८-५० ।

७-११. अनेकान्त वर्ष ११, पृष्ठ ६५ ।

१२. कुछ श्वेताम्बरीय ग्रन्थों में 'बहन' लिखा है परन्तु श्वेताम्बर मुनि श्री चौथमल जी के 'भ० महावीर का आदर्श जीवन' पृ० ५ पर साधु टी० एल० वास्वानी ने त्रिशला प्रियकारिणी को चेटक की पुत्री स्वीकार किया है।

हज़रत ईसा से ५६६ वर्षों[१] पहले आषाढ शुक्ला ६ की रात्रि को जब तीन चौथाई रात आ चुकी थी, माता त्रिशलादेवी मीठी नींद में आनन्दविभोर थी कि उनको १६ स्वप्न दिखाई दिये[२]। जिस प्रकार इन्द्राणी अपने ठाट-बाट के साथ इंद्र के पास जाती है उसी तरह सुबह होते ही त्रिशलादेवी अपनी सहेलियों सहित राजदरबार में गई। राजा सिद्धार्थ ने रानी को आते देखकर बड़े आदर से उसका स्वागत किया, और अपने पास सिंहासन पर बैठाया। रानी ने अपने १६ स्वप्न कह कर उनका फल पूछा। राजा बड़े बुद्धिमान् थे। उन्होंने अपने निमित्तज्ञान से विचार कर उत्तर में कहा– "(१) हाथी देखने का फल यह है कि तुम एक बड़े भाग्यशाली पुत्र की माता बनने वाली हो। (२) बैल देखने का फल यह है कि वह धर्मरूपी रथ के चलाने वाला होगा। (३) सिंह देखने का फल यह है कि वह अनन्तानन्त शक्ति का धारक होगा। (४) लक्ष्मी देखने का फल यह है कि वह मोक्षरूपी लक्ष्मी प्राप्त करने वाला होगा। (५) सुगन्धित फूलों की माला देखने का फल यह है कि उसकी प्रसिद्धि समस्त संसार में फैलेगी। (६) पूर्णचन्द्र देखने का फल यह है कि वह मोहरूपी अन्धकार को नष्ट करने वाला होगा। (७) सूर्य के देखने का फल यह है कि वह सम्पूर्ण ज्ञान का प्रकाश करेगा। (८) युगल मछली के देखने का फल यह है कि वह बड़ा भाग्यशाली होगा। (९) जल के भरे कलश देखने का फल यह है कि वह सुख व शान्ति के प्यासों की प्यास बुझायेगा। (१०) सरोवर देखने का यह फल है कि वह १००८ श्रेष्ठ लक्षणों का धारी होगा। (११) लहराते हुए समुद्र के देखने का फल यह है कि वह समुद्र के समान गम्भीर और गहरा

१. साधु टी० एल० वास्वानी: भ० महावीर का आदर्श जीवन, पृ० ५।

२. श्री महावीर पुराण, जिन वाणी प्रचारक का० कलकत्ता, पृ० ५५-५६।

विचारक होगा। (१२) सिंहासन देखने का फल यह है कि वह तीनों लोक के साम्राज्य का स्वामी होगा। (१३) देव विमान के देखने का फल यह है कि वह स्वर्ग से तुम्हारे गर्भ में आया है। (१४) नाग प्रासाद देखने का फल यह है कि वह जन्म से ही तीन ज्ञान का धारी होगा। (१५) रत्नराशि देखने का फल यह है कि वह महाश्रेष्ठ गुणों का स्वामी होगा। (१६) अग्नि देखने का फल यह है कि वह तप रूपी अग्नि से कर्मरूपी ईंधन को भस्म करने वाला होगा।" स्वामी द्वारा इस प्रकार स्वप्न का फल जान कर रानी सन्तुष्ट होगई और मुस्कराती हुई राज महल को वापस चली गई।

अपने अवधिज्ञान से तीर्थंकर महावीर के जीव को गर्भ में आया जान कर माता त्रिशला की सेवा के लिये स्वर्ग के इन्द्र ने महारूपवती और बुद्धिमती ५६ कुमारियां[1] स्वर्ग से भेज दीं। उनमें से कोई माता की सेज बिछाती थी, कोई सुन्दर वस्त्र और रत्नमय आभूषण पहनाती थी, कोई माता से पूछती थी कि जीव नीच किस कर्म से होता है? माता उत्तर में कहती थी जो प्रतिज्ञा करके भङ्ग करदे। कोई पूछती थी गूंगा क्यों होता है? तो माता बताती थी कि जिसने पिछले जन्म में दूसरों की निन्दा और अपनी प्रशंसा की, वह इस जन्म में गूंगा हुआ है। एक ने पूछा बहरा किस पाप कर्म से होता है? माता जी ने बताया, जिन्होंने शक्ति होने पर भी जरूरतमन्दों की आवाज पर ध्यान न दिया हो, वे इस जन्म में बहरे हुए। एक ने पूछा लङ्गड़ा होना किस पाप कर्म का फल है? माता ने उत्तर दिया कि जिन्होंने पिछले जन्म में पशुओं पर अधिक बोझ लादे और न चलने पर उन्हें मारे। एक ने पूछा टूंडा होने का क्या कारण है? माता ने

---

१. इन ५६ कुमारियों के नाम देखने के लिये पुण्याश्रव-कथाकोष पृ० २०७-२०८।

बताया कि जो शक्ति होने पर भी दान न दे। इस भाँति ५६ कुमारियां माता जी को रिझाती थीं और अपनी शंकाओं का समाधान करती थीं।

वीर-जन्म
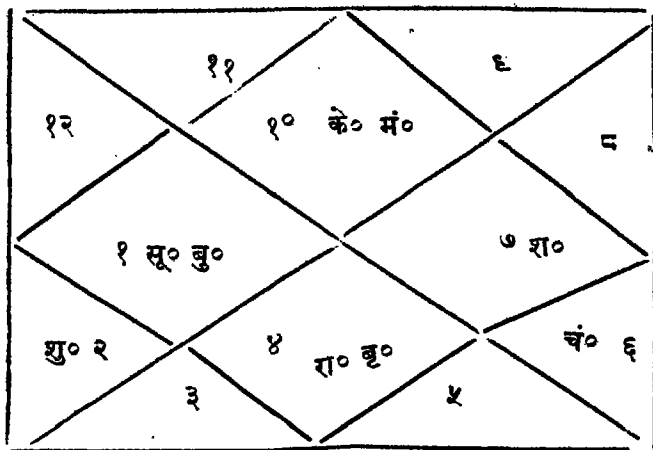
वीर-जन्म-कुण्डली

हँसी खुशी के दिन वीतते देर नहीं लगती। गर्भ से ९ मास ८ दिन[1] बाद ईस्वीय सन् से ५९९[2], मोहम्मद साहब से ११८०[3], विक्रमी सं० से ५४२[4] साल पहले चैत्र सुदी त्रयोदशी[5], उत्तराफाल्गुणी नक्षत्र[6] में सोमवार[7] को जब कि

---

१. पं० कैलाशचन्द्र जी : जैन धर्म पृ० २२।

२-३. Pt. Vishva Natha: Golden Itihas of Bharat Warsha P. 36.

४. पं० जुगलकिशोर: भ० महावीर और उनका समय, पृ० ४२।

५-६. चैत्र-सितपक्ष-फाल्गुनि शशांकयोगे दिने त्रयोदश्याम्।
जज्ञे स्वोच्चस्थेषु गृहेषु सौम्येषु शुभलग्ने ॥ ५ ॥

—श्री पूज्यपादाचार्यः निर्वाणभक्ति।

७. The Celebrated son of King Sidharatha was born at an

चौथे दुःखमा-सुखमा काल के समाप्त होने में ७५ साल ३ माह[१] बाकी रह गये थे, २३वें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ के निर्वाण से २५० वर्ष बीत जाने पर कुण्डपुर में भ० महावीर का जन्म हुआ। तीन लोक का नाथ स्वर्ग छोड़ कर पृथ्वी पर आवे, फिर भला किसको आनन्द न होगा ?

संसारी प्राणियों का तो कहना ही क्या है, नरक में भी एक क्षण के लिए सुख और शान्ति होगई[२]। महाराजा सिद्धार्थ ने पुत्र-जन्म के उपलक्ष में मुँहमांगा इनाम बाँटा[३], बन्दीखाने के क़ैदी छुड़वा दिये[४], अनेक धार्मिक प्रभावशाली क्रियाएँ की गईं[५]। दस रोज तक बड़े उत्साह के साथ जन्मोत्सव मनाया गया[६], राजज्योतिषी ने शुभ लग्न निकाल कर जन्म कुण्डली बनाई[७], और बालक को बड़ा भाग्यशाली बताया[८]। इनके गर्भ से ही राजा तथा देश का अधिक यश और वैभव बढ़ना

---

auspicious moment towards the close of night. It Was MONDAY and the 13 th day of the moon in the month of Chaitra —Prof. Dr H. S. Bhattacharya: Lord Mahavira (J. M. Mandal) P. 7.

१. श्री कामताप्रसाद : भगवान् महावीर पृ० ६७।

२. पं० अजुध्याप्रसाद गोयली : हमारा उत्थान और पतन, पृ० ३३।

३-६. पं० कामताप्रसाद : भगवान् महावीर, पृ० ६७।

७. जो जन्म कुण्डली ऊपर दिखाई है वह भगवान् महावीर की है:—
(i) महर्षि शिवव्रतलाल वर्मन् : गास्पल ऑफ वर्द्धमान, पृ० २७।
(ii) श्री चौथमल जी : भगवान् महावीर का आदर्श जीवन, पृ० १६१।
(iii) श्री फल्टेन श्री महावीर-स्मृति ग्रन्थ, पृ० ८७।

८. ज्योतिष के अनुसार जन्म कुन्डली के ग्रहों का फल देखिये:—
(i) महर्षि शिवव्रतलाल वर्मन : गास्पल ऑफ वर्द्धमान् पृ० २८-२९।
(ii) श्री महावीर-स्मृति ग्रन्थ (आगरा) पृ० ८७-८८।

आरम्भ होगया तथा प्रजाजन की सुख और शान्ति में वृद्धि ही वृद्धि होने लगी, इस लिये माता पिता ने उनका नाम 'वर्द्धमान' रखा[1] । यह ही उनका जन्म नाम है[2] ।

वीर की वीरता

To-day we wonder why the Devas do not come down on the earth. But whom should they come down to day ? Who is superior to them in knowledge, power or greatness on the earth ? Should they come down to smell the stench of the slaughter houses, the meat-shops, Stinking Kitchens and recking restourants ? The Devas do come down when there is an adequate cause, e. g. to do reverence to a World Teacher.

Barister C. R. Jain: Rishabhadeva The Founder of Jainism P. 80-81.

यह तीर्थंकर भगवान् का ही पुण्यकर्म है कि इस लोक में क्या परलोक तक में 'वर्द्धमान' के जन्म की धूम मच गई। अपने अवधिज्ञान से तीर्थंकर भगवान् का जन्म जान कर देवी देवताओं ने भी स्वर्ग लोक में उनका जन्मोत्सव बड़े उत्साह से मनाया। भुवनवासी देवों की आनन्द भेरी, व्यन्तर देवों के मृदङ्ग, ज्योतिषी देवों के शङ्ख और कल्पवासी देवों के घण्टे बजने लगे। आकाश जय-जय कार के शब्दों से गूँज उठा। सुधर्म इन्द्र तो देवी-देवताओं सहित कुमार वर्द्धमान के दर्शनों के लिए

१. Siddharatha & Tirsala Piriakarni fixed his name Vardhamana, because birth his with the wealth and qrosperity, fame and merits of Kundagrama increased.
—Kalpasuttra, 32-80.

२. जैन भारती Vol. XI, P 336.

कुण्डपुर आया[1] और उनको भक्ति पूर्वक नमस्कार किया। उनके माता-पिता को ऐसे भाग्यशाली पुत्र होने पर बधाई दी। वह कुमार वर्द्धमान के दर्शन करके इतना आनन्दित हुआ कि स्वर्ग की समस्त आनन्दमय विभूतियों को भूल गया। इतना अनुपम शरीर कि मायामयी एक हजार[2] आंखें बना कर दर्शन करने से भी उसका हृदय तृप्त नहीं हुआ। वह श्री वर्द्धमान जी को ऐरावत हाथी पर बिठा कर बड़े उत्साह और स्वर्गिक ठाट-बाट से सुमेरू पर्वत पर लेगया और वहां एक बड़ी सुन्दर रत्नमई पाण्डुक शिला पर विराजमान करके सुधर्म इंद्र ने क्षीर सागर से देवों द्वारा लाये गए पवित्र जल के एक हजार आठ स्वर्णमय कलशों से श्री वर्द्धमान जी का अभिषेक किया[3]। साधारण मनुष्य में क्या शक्ति कि देवों के इतने विशाल अभिषेक को झेल सके? सुरेन्द्र ने अद्भुत शक्ति से प्रभावित हो, भक्तिपूर्वक नमस्कार करके श्री वर्द्धमान जी की आरती की[4] और उनका नाम 'वीर'

---

१. If the Angels of the Bible, the Farishtas of Quran and Devas of the Hindus are not a mere myth and idle imagination than how the Indras of Jains are unbelievable?

—Justice Jugamander Lal : V.O.A. Vol. I P. II. P. 30.

ii लखनऊ के संग्रहालय में एक प्राचीन शिला-पट्ट है जिस में महावीर का जन्म-कल्याणक देवगण मनाते दर्शाया गया—महावीर स्मृति ग्रन्थ (आगरा) भा० १, पृ० २७।

२. श्री लोहाचार्य : श्री सम्मेद महात्म. श्लोक ७६।

३-४. Having respsotfully salutated and going three times round Vardhamana, the king of the Gods said, salutation to the bearer of a gem in the womb! The illuminator of the Universe, I am Lord of gods and have come from 1st Deva-loka to celebrate the birth

रक्खा[१] और बड़े उत्साह से उनका जन्म कल्याणक मनाया[२]।

वीर-दर्शन का प्रभाव

When the teachings of 'Sangya' given in Sutta is duly considered, it makes bold enough to believe that Sangya of the Buddhist books is no other man than the Jain Muni referred in Mahavira Purana. Since he had his doubts about the next World and as to whether a man continues or not ofter death, he got removed with the mere Darshana of Lord Mahavira.

—Shri Kamta Pd. J. H. M. (Feb. 1925) P. 32.

संजय और विजय नाम में दो चारण मुनियों को इस बात में भारी सन्देह[३] उत्पन्न हो गया था कि मृत्यु के बाद जीव किसी दूसरी अवस्था में प्रवेश कर लेता है या नहीं[४] ? जन्म के कुछ दिन बाद[५] उन्होंने श्री वर्द्धमान जी को देखा तो तीर्थंकर के अनन्त-

---

festival of the last Supreme Lord". He performed 'abheseka'. ceremony with 1008 pots of gold and precious stone full of pure water of the ocean of milk and worshipped Lord Vardhamana and had his Arti along with the waving of an auspicious lamp.
—Sramana Bhugwan Mahavira, Vol. II. Part I. Page. 188-195.

१-२ Indra, the celestial Lord was pleased to see the child Vardhamana, in whom he saw a true heroism and he called. Him by the name of 'VIRA".
—Uttara Purana 74 .276.

३. भगवान् महावीर और उनका समय (वीरसेवामन्दिर) पृ० २।

४. Jain Hostel Magzine. Allahabad. (Feb. 1925) P. 32.

५. ऊपर का फुटनोट नं० ३।

ज्ञान के प्रभाव से उनके हृदय का शङ्का रूपी अन्धकार तत्काल आप से आप मिट गया, जिस प्रकार सूर्य को देख कर संसारी अन्धकार नष्ट हो जाता है, इस लिये उन्होंने बड़ी भक्ति से उन का नाम 'सन्मति' रखा[1]।

वीर की महावीरता

Having been subdued by the great strength of Vardhamana, Sangama, the celestial being paid homage to the conqueror and called Him by the name of 'MAHAVIRA'—The Great Hero.

—Uttara Purana, 74-205.

श्री वर्द्धमान महावीर दोयज के चन्द्रमा के समान प्रतिदिन बढ़ रहे थे। आठ वर्ष की छोटी सी आयु में ही उन्होंने अहिंसा, सत्य, अचौर्य, परिग्रह परिमाण तथा ब्रह्मचर्य पाँचों अणुव्रत सम्पूर्ण विधि के साथ पालने आरम्भ कर दिये थे। उनकी वीरता अनुपमरूप और वज्रमयी शरीर की धूम इस लोक में तो क्या देवलोक तक में फैल गई थी[2], एक दिन उन की वीरता की प्रशंसा स्वर्ग लोक में हो रही थी[3], कि सङ्गम नाम के एक देव को शङ्का हुई कि भूमिगोचरी वर्द्धमान स्वर्ग के देवों से भी अधिक शक्तिशाली कैसे हो सकते हैं[4] ? उसने उनकी परीक्षा करने की ठान ली।

---

१. संजयस्यार्थसंदेहे संजाते विजयस्य च ।
जन्मानन्तरमेवैनमभ्येत्यालोकमात्रतः ॥२८२॥
तत्संदेहगते ताभ्यां चारणाभ्यां स्वभक्तितः ।
अस्त्येष सन्मतिर्देवो भावीति समुदाहृतः ॥२८३॥

—उत्तरपुराण, पर्व ७४।

२. कामताप्रसाद : भ० महावीर, पृ० ७५।

३-४. The Indra of the Soudharma Devo-Locka said, "O Gods, Vardhamana's Valour and fortitude are un-

वीर की महावीरता

[illegible] सहित खेलते थे बाग में श्री वर्द्धमान ।
एक देव बन कर सर्प आया लेने को इम्तहान ॥
[illegible] से भयानक सर्प के सब भाग गये मित्र ।
[illegible] फन पर पांव रखकर खड़े होगये भगवान ॥

—ब्रजबाला प्रभाकर

वीर की निर्भयता

एक मस्त हाथी भागा जंजीर तोड़कर, पैरों से जिस ने रौंद दिये सैंकड़ो बशर ।
काबू में जिसको कर सके न फ़ीलवान भी, वीरों के वीर ने उसे वशमें किया ।

—आफ़ताब [illegible]ती

श्री वर्द्धमान अपने साथियों के साथ वन में क्रीड़ा कर रहे थे, इतने में वहां एक महाभयानक, विशालकाय सर्प निकला और उस वृक्ष से लिपट गया जिसके पास वह खेल रहे थे । उस विकराल रूप नागदेव को देख कर दूसरे राजकुमार भयभीत होकर भागने लगे, परन्तु राजकुमार वर्द्धमान के हृदय में जरा भी भय का संचार नहीं हुआ—वह बिलकुल निर्भयचित्त होकर उसके विशाल फने पर पाँव रख कर खड़े होगये' और उस काले नाग से ही क्रीड़ा करने

---

paralleled and no God, Demi—God, or Indra, however strong, he may be, is able to frighten Him away or defeat Him". One of the gods considering how it is possible that Gods possessing immeasurable Strength can not defeat an earthly man, immediately went to test Lord Vardhamana's fortitude and with the object to terrify him, he assumed the form of a fomidable huge venomous snake, with a large body resembling a mass of collyrium the thicket of the forest by his intense blackness and well-developed hood, producing terrible noise, advanced rapidly with a very wrathful gait towards Vardhamana, but He threw him far off like a withered piece of string. Having ascertained the truthfulness, the God repended for his sinful action. He bowed down before Vardhamana and said, "O Lord of the three worlds! You are able to shake Mount Meru and with it the entire earth with the touch of the toe of your foot, O Supreme Being! I am a god only in name but not in action, you please forgive me for my impudent behaviour".—Sramana Bhugawan Mahavira. Vol. II. Part II, P. 214-217.

१-२ Mahavira put his feet on the expanded hood of the

लगे'। देव जो भयानक सर्प का रूप धारण करके परीक्षा करने आया था, वीर की वीरता और निर्भयता को देख कर आश्चर्य करने लगा। अपना असली रूप प्रकट करके उसने श्री वर्द्धमान जी को नमस्कार किया और कहा कि तुम वीर नहीं बल्कि 'महावीर' हो[२]।

वीर की निर्भयता

One day Mahavira saw an elephant, which was mad with fury with juice, rushing. All shocked and frightened on the sight of the impending danger. Without losing a moment, Mahavira faced the danger squarely, went towards the elephant, caught hold of his trunk with His strong hands, mounted his back atonce.—Amar Chand: Mahavira (J.M. Banglore) P.4.

श्री वर्द्धमान महावीर बड़े दयालु और परोपकारी थे। एक दिन उन्होंने सुना कि एक मस्त हाथी प्रजा को कष्ट दे रहा है, बड़े २ महावतों और योद्धाओं के वश में नहीं आता, सैकड़ों आदमी उस ने पांव के नीचे कुचल कर मार दिये। सुनते ही श्री वर्द्धमान जी के हृदय में अभयदान का भाव जाग्रत हुआ। लोगों ने रोका कि हाथी बड़ा भयानक है, परन्तु वह निर्भय होकर हाथी के निकट गये। हाथी ने सूंड उठा कर उन पर भी आक्रमण किया, लेकिन श्री वर्द्धमान ने उसकी सूंड को पकड़ कर उस के ऊपर चढ़ गए और बात की बात में उस खूनी मस्त हाथी को काबू में कर लिया[३]। ऐसे अतिवीर बालक थे वह।

---

snake and fearlessly holding it in his hands began to handle it quite playfully. —Prof. Dr. H. S. Bhattacharya: Lord Mahavira. (J. Mitar Mandal) P. II.

१-२. उत्तर पुराण, ७४. २०५।

३. (i) संक्षिप्त जैन इतिहास (सूरत) भा० २, खंड १. पृ० ५२।

(ii) कामता प्रसाद : भगवान् महावीर पृ० ७५।

वीर विद्याध्ययन

Owing to his acqusitions in his previous births, Mati (Sensuous Knowledge) Sruti (Scriptural Knowledge) and Avadhi (Clairvayant Knowledge) were innate in Mahavira. What then, remained for Him to learn and where was the teacher to teach Him. —Dr. H.S. Bhattacharya : Lord Mahavira. P.11.

वर्द्धमान कुमार पूर्व जन्म से ही अपार पुण्य संचित करके आये थे। उनकी बुद्धि का विकास अपूर्व था। वे जन्म से ही मति, श्रुति और अवधि तीनों प्रकार के ज्ञान से विभूषित थे। स्वायत्त होने के कारण स्वयंबुद्ध और समस्त विद्याओं के ज्ञाता थे। वे उत्तम योग्यता के धारी और समस्त मनुष्यों में श्रेष्ठ थे। यह कैसे संभव हो सकता है, कि दो ज्ञान के धारी साधारण पुरुष, तीन ज्ञान के धारी महा तेजस्वी को शिक्षा दें? वास्तव में तीर्थंकरों का कोई गुरु नहीं होता वे तो स्वयंभू होते हैं[१]।

यथानाम तथागुण

Mahavira has been remembered by numerous names such as VAISALIYA (Citizen of Vaisali) VIDEHA (son of Vidhatta) ARIHATA (destroyer of Karmic enemies) VARDHAMANA (for increasing silver, gold, prosperity and popularity since He had been begotten) MAHAVIRA (for his fortitude and hardihood) VIRA (for his braveness) ATIVIRA (for being greatest Hero) SANMATI (for his great Kno-

---

१. The Jain tradition is unanimous and clear that Tirthankara being a genius is 'Svyambuddha'. *He requires no thcher. Uttara Purana P. 610.*

wledge) NATAPUTTA (of being Nata Clan) NIRGRANTHA (for being unclothed and free from worldly bonds) JINA (Conqueror of karmas) and by a host of other names.

—Amar Chand: Manhavira (J. M. S. Banglore) P. 3-4.

श्री वर्द्धमान के नाम केवल 'वीर', 'अतिवीर', 'महावीर' और 'सन्मति ही न थे बल्कि 'यथानाम तथागुणाः' १००८ गुण होने के कारण उनके १००८ नाम थे[1]। उनके पिता 'णातृ'[2] (नात[3], नाथू[4]) वंश के क्षत्रिय थे।'णात' का संस्कृत में पर्यायरूप 'ज्ञातृ'[5] है। इस कारण इनको 'णातपुत्त'[6], 'ज्ञातृपुत्र'[7] नाथवंशी[8] भी कहा जाता है। कवियों ने इनको 'नाथकुलनन्दन'[9] कहा है। विदेह देश में जन्म लेने के कारण उनको 'विदह'[10] अथवा 'विदेहदिन्न'[11] भी कहा गया है। उनकी माता वैशाली की होने के कारण उनको 'वैशालिक'[12] भी कहा गया। श्रम वहन करने के कारण ये 'श्रमण'[13] कहलाये। बौद्धों ने योगी महावीर का उल्लेख 'निगंठ'[14], नातपुत्त'[15], 'निर्ग्रन्थ'[16], 'ज्ञातपुत्त'[17] नाम से किया है। सर्वज्ञ होने पर वे 'तीर्थंकर'[18], 'भगवान् महावीर'[19]

---

१. कामताप्रसाद : भगवान् पार्श्वनाथ पृ. १६-१८,

२-८. जुगलकिशोर : भ० महावीर और उनका समय, पृ० २।

९. कामताप्रसाद : भ० महावीर, पृ० ७१।

१०-११. आचाराङ्ग सूत्र २४, १७।

१२. विशाला जननी यस्य, विशालकुलमेव च।
विशालं वचनं चास्य, तेन वैशालिको जिनः॥

—सूत्रकृताङ्ग टीका, २-३

१३. "Mahavira is called Sarmana"

—Jain Sutras [S. B. E.] part I P. 193.

१४-१७ दीघनिकाय।

१८-१९, धनंजयनाममाला।

नाम से प्रसिद्ध हुए। श्वेताम्बरीय ग्रन्थों में उनका उल्लेख 'महामाहन्'[1] और 'न्यायमुनि'[2] के नाम से हुआ। हिन्दू शास्त्रों में इनका कथन 'अर्हन्'[3], 'महामान्य'[4], 'माहण'[5] आदि नामों से हुआ है। वीर स्वामी अपने जीवन-काल में ही 'अर्हन्त', 'सर्वज्ञ', 'तीर्थंकर' कहलाते थे[6]।

वीर-जन्म के समय भारत की अवस्था

धर्म के नाम पर हिंसामयी यज्ञ

I am grieved to learn that it is proposed to offer animal sacrifice in Temples. I think that such sacrifices are barbarous and they degrade the name of religion. I trust the authorities will pay heed to the sentiments of the cultured people and refrain from such sacrifices.

—Pt. Jawaharlal Nehru: Humanitaion Outlook P. 31.

मूलतः यज्ञ का मतलब था अपने स्वार्थों को बलिदान करना[7], अपने जीवन को दूसरों के हित के लिये क़ुर्बान करना[8]। अपनी सम्पत्ति तथा जीवन को देश और समाज के लिये अर्पण कर देना[9]। परन्तु खुदगर्ज और लालची लोगों ने अपने स्वार्थ की कुर्बानी के स्थान पर बेचारे गरीब पशुओं की कुर्बानियों के यज्ञ चालू कर दिये[10]। वैदिक सिद्धान्त के स्थान पर न जाने कहाँ से "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" के सिद्धान्त-वाक्य घड़ दिये[11]

१-२. उपासक शास्त्र, पृ० ६।

३-५. ऐशियाटिक रीसर्चिज भा० ३ पृ० ११३-११४।

६. जयभगवान स्वरूपः इतिहास में भगवान् महावीर का स्थान, पृ० १०।

७-१०. श्री रणवीर जी : दैनिक उर्दू 'मिलाप' दीवाली एडिशन १९५० पृ० ५।

११. पं० नवलकिशोर सम्पादक 'संसार' : ज्ञानोदय भाग २, पृ० २७३।

गये। पशुवलि धर्म का प्रधान लक्षण हो गया था[1]। धर्म के प्रमाणों[2] की दुहाई देकर स्वार्थ और लोभ के वश ऐसे हिंसामयी यज्ञों को स्वर्ग का कारण बताकर अश्वमेध, गोमेध और नरमेध यज्ञ तक के विधान थे[3]। रन्तिदेव नाम के राजा ने यज्ञ किया, उसमें इतने असंख्य पशुओं की हिंसा की गई कि नदी का जल खून के समान लाल रङ्ग का होगया था, जिसके कारण उस नदी का नाम चर्मवती प्रसिद्ध हो गया था[4]। लोकमान्य बालगङ्गाधर तिलक के शब्दों में यह पुण्य जैन धर्म को ही प्राप्त है कि जिसके प्रभाव से ऐसे भयानक हिंसामयी यज्ञ बन्द हुए[5]।

यह भगवान् महावीर का ही प्रभाव था कि जानदार पशुओं के स्थान पर यज्ञों में घी, धूप, चावल आदि शुद्ध सामग्री से

१-२ या वेदविहिता हिंसा सा न हिंसेति निर्णयः।
शस्त्रेण हन्यते यच्च पीड़ा जन्तुषु जायते ॥ ७० ॥
स एव धर्म एवास्ति लोके धर्मविदां वरः।
वेदमंत्रैर्विहन्यन्ते विना शस्त्रेण जन्तवः ॥ ७१ ॥—(स्कन्धपुराण)

अर्थात्—"जिसका वेद में विधान किया गया है वह हिंसा हिंसा नहीं है बल्कि अहिंसा है शस्त्र के द्वारा मारने पर जीव को दुःख होता है इसी शस्त्र-वध का नाम पाप है। लेकिन शस्त्र के बिना वेदमन्त्रों से जो जीव मारा जाता है वह लोक में धर्म बतलाया है।"

३. ज्ञानोदय भाग २ पृ० ६५५।

४-५ In the ancient times innumerable animals were butchered in sacrifice. Its proof is in Meghdutta, but the credit of the disappearance of this terrible massacre from the Brahmanical religion goes to the share of Jainism.—Lokmanya B. G. Tilk: A Public Holiday on Lord Mahavira's Birthday P. 3.

वीर-जन्म के समय भारत में हिंसामयी यज्ञ

नाम से 'गोमेध'-'अश्वमेध' के हो रहे थे यज्ञ भारतवर्ष में।
तब अहिंसा धर्म का झंडा लिये अवतरित हो वीर आये हर्ष में।।

—'प्रफुल्लित'

धर्म के नाम पर पशु-बलि

मांस की लालसा में पशु-वध
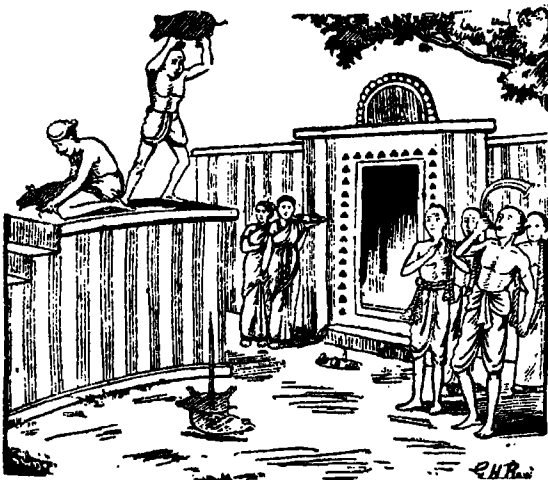
होम होने लगा[1] और यह स्वीकार किया जाने लगा कि यज्ञों में हिंसा करने से नरकों के महादुःख भोगने पड़ते हैं[2]। स्वर्ग की प्राप्ति नहीं होती[3]। यदि मन्त्रों द्वारा यज्ञों में भस्म होने वाले जीवों को स्वर्ग की प्राप्ति हो तो लोग अपने बूढ़े माता-पिता को यज्ञों में भस्म करके उनको स्वर्ग की प्राप्ति सहज में क्यों न करा देते[4]? यदि हिंसामयी यज्ञों से स्वर्ग की प्राप्ति सम्भव है तो ऋषि

---

१. The noble principle of Ahinsa has influenced the Hindu Vedic rites. As a result of Jain preachings animal sacrifices were completely stopped by Brahmans and images of beasts made of flour were substituted for the real and veritable ones required in conducting yagas.
— Prof M.S. Ramaswami Ayangar Jain Shasan P. 134.

२. "इज्यायज्ञश्रुतिकृतैर्यो मार्गैरबुधोऽधमः
हन्याज्जन्तून् मांसगृध्नुः स वै नरकभाङ् नरः ॥"
—महाभारत अनुशासनपर्व

The base and ignorant man who commits acts of hinsa by killing creatures under the pretext of worship of Gods, or performance of vedic sacrifices, goes to hell.
—Mahabharta Anusasan Parva 115, 35-36-47

३. "नाकृत्वा प्राणिनां हिंसा मांसमुत्पद्यते क्वचित्।
न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत् ॥"—मनुस्मृति ५, ८४।

Flesh can not be obtained without killing creatures, and Heven can not be attained if creatures are killed. Therefore flesh should be discarded.
—Manusumarti 5-84.

४. "निहतस्य पशो यज्ञे स्वर्गप्राप्ति यदीष्यते।
स्वपिता यजमानेन किन्तु कस्मान्न हन्यते ॥" २८ ॥—विष्णुपुराण।
अर्थात्—यज्ञ में मारे हुए पशु को यदि स्वर्ग की प्राप्ति मानते हो तो यजमान अपने पिता को क्यों नहीं मार देता?

मुनि घर-बार तथा स्त्री-पुत्र मित्र आदि को त्याग कर जंगल में क्यों कठोर तपस्या किया करते[1] ? धर्म के नाम पर पशु-हिंसा वास्तव में बुरी है[2] । यह भगवान् महावीर की ही शिक्षा का फल है कि धर्म के नाम पर होने वाले यज्ञों का अन्त हुआ[3] और पशुओं के बलिदान के स्थान पर निजी दुर्भावनाओं का बलिदान होने लगा[4] ।

शूद्रों से छूत-छात

Mahavira's church was open not only to the noble Aryan, but to low-born sudra and even to the alien, deeply despised in India the 'Malechhha',

—Dr Bulher : Essay on the Jainas.

शूद्रों के साथ उस समय पशुओं जैसा व्यवहार होता था[5], उनको सुसंस्कृत शिक्षा-दीक्षा प्राप्त करने का कोई अधिकार न था[6], वे बिचारे यज्ञ का प्रसाद पाने के भी योग्य न समझे जाते थे[7] । व्रत ग्रहण करने की तो एक बड़ी बात है[8] धर्म का शब्द उनके

---

१ यदि प्राणिवधात् धर्मः स्वर्गश्च खलु जायते ।
संसार मोचकानान्तु कुतः स्वर्गोभिवास्यते'' ॥-मत्स्यपुराण, मांसाहारविचार भा० २, पृ० २८ ।

अर्थात्—यदि प्राणियों की हिंसा करना धर्म हो और उससे स्वर्ग मिलता हो तो संसार को छोड़ देने वाले त्यागियों को कैसे और कहाँ से स्वर्ग मिलेगा ?

२. Scarifice of animals in the name of religion is a remnant of barbarism.

—Mahatma Gandhi : Humanitarian Out-look (South Indian Humanitarian League. Madras) P 31.

३-४ Anekant Vol. XI P. 95-102.

५-६ अनेकान्त, भाग १, पृ० ७ ।

७-८. ''न शूद्राय मतिं दद्यान्नोच्छिष्टं न हविष्कृतम् ।
न चास्योपदिशेद्धर्मं न चास्य व्रतमादिशेत् ॥ १४ ॥—वाशिष्टधर्मसूत्रम्

कानों में पड़ गया तो शीशा और लाख गर्म करके उनके कानों में ठूंस दिया जाता था[१]। यदि किसी शूद्र ने वेदों का उच्चारण कर लिया तो उसकी जीभ काटली जाती थी[२], यदि किसी प्रकार धर्म का श्लोक याद कर लिया तो उनके शरीर के टुकड़े कर दिये जाते थे[३]। छूत-छात इतने जोरों पर था कि शूद्रों के शरीर से छू जाने वाले और शूद्र से बात-चीत करने वाले मनुष्य तक को उस जन्म में महाभ्रष्ट शूद्र और मृत्यु के बाद कुत्ते की गति का अधिकारी माना जाता था[४]। ऐसी भयानक स्थिति के समय भगवान् महावीर का जन्म हुआ[५], भगवान् महावीर स्वामी ने ही ऊँच-नीच की भावना का प्रभावशाली खण्डन कर शूद्रों तक के लिये स्वर्ग के द्वार खोल दिये[६]।

जातिगत भेद-भाव

Caste or sex or place of birth,
Can not alter human warth.
Why let caste be so supreme,
'T is but folloy's passing stream.— Lord Mahavira.

अर्थात्—शूद्र को बुद्धि न दो और न यज्ञ का प्रसाद दो और उसे धर्म तथा व्रत का उपदेश न दो।

१-३ ''श्रवणे च युजतुभ्यां श्रोत्रपरिपूरणम्।
उच्चारणे जिह्वाच्छेदो धारणे हृदयविदारणम्।''—वैदिकवाङ्मय
अर्थात्—शूद्र यदि वेदों का श्रवण करले तो उसके कान शीशे और लाख से भर देने चाहियें, उच्चारण करले तो उसकी जीभ काट देनी चाहिये और यदि याद करले तो उसका हृदय विदारण कर डालना चाहिये।

४. 'शूद्रान्नात् शूद्रसंपर्कात् शूद्रेण सह भाषणात्।
इह जन्मनि शूद्रत्वं मृतः श्वा चाभिजायते॥—स्मृतिग्रन्थ।
अर्थात्—शूद्र के अन्न से, छू जाने से और बात-चीत करने से भी मनुष्य इस जन्म में शूद्र हो जाता है और वह मरने के बाद कुत्ता होता है।

५. पं० जुगलकिशोर : भगवान् महावीर और उनका समय।

६. जैन धर्म और शूद्र खण्ड ३।

महापाप करने पर भी ब्राह्मणों को केवल इस लिये कि ब्राह्मण-कुल में जन्म लिया, उनको देवताओं का देवता स्वीकार किया जाता था[1]। पुरोहित लोग हिंसामयी यज्ञ कराने के लिये हर समय तैयार रहते थे, क्योंकि यही उनकी जीविका थी[2]। पापी से पापी ब्राह्मण का भी धर्मात्माओं के समान आदर सत्कार होता था। ऊँच-नीच का भेद-भाव जोरों पर था[3]। ऐसे भयानक समय में भगवान् महावीर स्वामी ने संसार को बताया कि आत्मा सब जीवों में एक समान है[4]। मनुष्य मनुष्य सब एक हैं अपने कर्मों के विशेष की अपेक्षा से क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र चार वर्ण हैं। चारों वर्णवाले जैन धर्म का पालने में परम समर्थ हैं[5]। ब्राह्मण के शरीर पर कोई ऐसा कुदरती चिन्ह नहीं जिससे उसकी प्रधानता नजर आवे[6]। भगवान् महावीर ने तो स्पष्ट कहा है कि कोई ऊंच जाति में जन्म लेने से ऊँच, और नीच जाति में

---

१. ब्राह्मणः सम्भवे नैव देवानामपि दैवतम्।—मनुस्मृति, ११-८४।
अर्थात्—ब्राह्मण जन्म से ही देवताओं का देवता है।

२. पं० अयोध्याप्रसाद गोयलीय 'हमारा उत्थान और पतन, पृ० ६३।

३. (क) ज्ञानोदय भाग २, पृ० ६७३।
(ख) आजाद हिन्दुस्तान (१६-४-१९५१), पृ० ३४।

४. जैन धर्म और पशु-पक्षी, खण्ड ३।

५. विप्रक्षत्रियविट्शूद्राः प्रोक्ताः क्रियाविशेषतः।
जैनधर्मे पराः शक्तास्ते सर्वे बान्धवोपमाः॥
—श्री सोमसेन : त्रैवर्णिकाचार, अ. ७, १४२।

अर्थात्—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारों वर्ण अपने २ कर्मों के विशेष की अपेक्षा से कहे गये हैं। जैन धर्म को पालन करने में इन चारों वर्णों के मनुष्य परम समर्थ हैं और उसे पालन करते हुए सब आपस में भाई २ के समान हैं।

६. श्री गुणभद्राचार्य : उत्तरपुराण, पर्व ७४।

जन्म लेने से नीच नहीं होता[1], बल्कि रागादि कषाय करने से नीच और उनका त्याग करके धर्म सेवन करने वाला उच्च होता है। ब्राह्मण कुल में जन्म लेने वाला दयाभाव नहीं रखता तो वह चाण्डाल है[2] और शूद्र अपने आसन, वस्त्र, आचरण और शरीर को शुद्ध कर लेता है तो वह ब्राह्मण है[3]। ब्रती चाण्डाल वास्तव में ब्राह्मण के समान है[4]। जैन धर्म किसी विशेष देश, समाज या जाति की सम्पत्ति नहीं है, चाण्डाल कुल में जन्म लेने वाला जैन साधु होकर तप तक कर सकता है[5]। शूद्र कुल में जन्म लेनेवाला यदि जैन धर्म में विश्वास रख कर सम्यग्दृष्टि हो जाये तो वह जिनेन्द्र भगवान् की पूजा तक का अधिकारी है[6]। ऐसे अनेक दृष्टान्त मौजूद हैं कि चाण्डालों ने वीर भगवान् के उपदेश से प्रभावित होकर केवल श्रावक धर्म ही नहीं बल्कि मुनि धर्म तक ग्रहण किया[7]।

---

१. जैन धर्म और शूद्र, खण्ड ३।

२. सुत्तनिपात (वसलसुत्त) जिसका हवाला मांसाहार विचार, भाग २, पृ० ५।

३. शूद्रोऽप्युपस्कराचारवपुः शुध्याऽस्तु तादृशः।
जात्याहीनोऽपि कालादि लब्धौ ह्यात्मा धर्मभाक्॥
—श्रीसागारधर्मामृत, अ० २ श्लो० २२।

अर्थात्—आसन और बर्तन आदि जिसके शुद्ध हों, मांस और मदिरादि के त्याग से जिसका आचरण पवित्र हो और नित्य स्नान आदि के करने से जिसका शरीर शुद्ध रहता हो, ऐसा शूद्र भी ब्राह्मण आदि वर्णों के सदृश श्रावक धर्म का पालन करने योग्य है।

४. न जातिर्गर्हिता काचिद् गुणाः कल्याणकारणम्।
व्रतस्थमपि चाण्डालं तं देवा ब्राह्मणं विदुः॥
—श्री रविषेणाचार्य, पद्मपुराण, ११-२०३।

अर्थात्—हे देवो! कोई भी जाति बुरी नहीं है क्योंकि गुण ही कल्याण के करने वाले होते हैं। व्रती चाण्डाल को भी ब्राह्मण जानो।

५-७ जैनधर्म और शूद्र धर्म, खण्ड ३।

धार्मिक दुर्दशा

The Rishis, who discovered the law of Non-Violence in the midest of Violence were greater geniuses than Newton and greater warriors than Wellington.

— Prof. Dr. Roman Rolland: Mahatma Gandhi, P. 48.

उस समय धर्मतत्व लोगों की दृष्टि से ओझल हो गया था और उस की बड़ी दुर्दशा थी[१]। तीनसौ तरेसठ प्रकार के धर्म प्रचलित थे[२]। नदी, नालों, पहाड़ों तथा सूरज और चाँद को देवी-देवता मानकर पूजा जाता था[३]। चारों तरफ मिथ्यात्व रूपी अंधेरा छा रहा था[४]। सारे संसार में हा हाकार मचा हुआ था[५]। हिंसा को अहिंसा, पाप को पुण्य और अधर्म को धर्म कहते थे[६]। जनता धर्म के असली रूप को भूल गई थी[७]। ऐसी महाहिंसक स्थिति में जो वीर अहिंसा स्थापित करे वही सच्चा महावीर है[८]। संसार के समस्त प्राणियों का जीवन महादु:खदायी था। ऐसे महा भयानक समय में भगवान् महावीर का जन्म हुआ[९]।

सामाजिक दुःस्थिति

The Jaina view displays a remarkable sense of moral responsibility and there are a number of features in Jainism or things that are suggestive in the re-thinking of fundamental problems of to day.

—Prof. M.A. Venkata Rao:- Mysindia (August 2, '53) p. 7.

१-२. कामताप्रसाद : भगवान् महावीर, पृ० ४० ।

३-५. पं० अयुध्याप्रसाद गोयलीय : हमारा उत्थान और पतन, पृ० ३३ ।

६ अनेकान्त, भा० १, पृ० ७ ।

७ दैनिक उर्दू मिलाप, दिवाली ऐडीशन १९५० पृ० ५ ।

८ Prof. Dr. Roman Rolland : Mahatma Gandhi, P 48.

९. पं० जुगलकिशोर : भगवान महावीर और उनका समय ।

भगवान् महावीर के समय भारत की सामाजिक स्थिति भी बड़ी भयानक थी[१]। मानव-स्वभाव की कोई क़द्र न थी[२]। हिंसा, परिग्रह, अनाचार और दुराचार का बोल बाला था[३]। खुदगर्जी और मतलब-परस्ती इतने जोरों पर थी कि भाई अपने भाई के पेट में खजर चभाने में भय न खाता था[४]। स्त्रियों का कोई आदर-सत्कार न था[५], उनके लिये "न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति" जैसी कठोर आज्ञायें थीं। वह केवल भोग की सामग्री, विलास की वस्तु, पुरुष की सम्पत्ति अथवा बच्चा जनने की मशीन मात्र रह गई थी[६]। स्त्रियों को धार्मिक ज्ञान प्राप्त करने का अधिकार न था[७]। अपने निजी स्वार्थ के वश होकर उत्तम से उत्तम रीति-रिवाज नष्ट कर दिये गये थे। किस में शक्ति थी कि धर्म के ठेकेदारों के विरुद्ध प्रभावशाली आवाज़ उठा सके? भगवान् महावीर ने ही ऐसी बिगड़ी दशा में समस्त कुरीतियों को नष्ट करके सुख और शान्ति की स्थापना की[८]।

---

१. ज्ञानोदय, भा० २, पृ० ६५५।

२-३. ज्ञानोदय, भाग २, पृ० ६७३।

४-५. हमारा उत्थान और पतन, पृ० ३३।

६. अनेकान्त, वर्ष ११, पृ० १००।

७. Megasthenes also said, "The Brahmans do not communicate a knowledge of philosophy to their wives." But Mahavira took a highly rational attitude in this matter and permitted the inclusion of women into His SANGHA, and this step marked a revolutionary improvement of their status in Society.

—Dr. Bool Chand: Lord Mahavira (JCRS, 2.) P. 15.

८. अनेकान्त, वर्ष ११, पृ० १००।

बाल-ब्रह्मचारी

Lord Mahavisa did not marry

—Prof. Dr. H. S. Bhattacharya: Lord Mahavira P 13.

वर्द्धमान कुमार की वीरता, रूप, गुण और सुन्दर युवावस्था देख कर अनेक राजा-महाराजा अपनी-अपनी कुमारियों का सम्बन्ध श्री वर्द्धमान जी से करने के लिये राजा पर जोर डालने लगे। माता त्रिशला देवी तो इस बाट में थी ही कि कब मेरा लाडला बेटा जवान हो और मैं विवाह करके अपने दिल के अरमान निकालूं। उन्होंने कलिंग देश के महाराजा जितशत्रु की राजकुमारी यशोदा को अनुपम सुन्दरी, महागुणों की खान और हर प्रकार से योग्य जानकर उससे कुमार वर्द्धमान का विवाह करना निश्चित् किया[1]। राजा सिद्धार्थ ने भी इस प्रस्ताव को सराहा। संसार की भयानक अवस्था को देखकर वर्द्धमान का हृदय तो पहले से ही वीतरागी था, वह कब काम वासना रूपी जाल में फँसना पसन्द करते? जब माता जी ने इसकी स्वीकारता मांगी तो कुमार वर्द्धमान जी मुस्करा दिये और बोले—"माता जी! अधिक मोह के कारण आप ऐसा कह रही हो, संसार की ओर भी जरा देखो, कितना दुःखी है वह?" रानी त्रिशला देवी ने कहा—"बेटा यह ठीक है, किन्तु तुम्हारी यह युवावस्था तो गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने की है, यशोदा से विवाह करके पहले गृहस्थ धर्म का आदर्श उपस्थित करो, यह भी एक कर्त्तव्य है,

---

१. यशोदयायां सुतया यशोदया पवित्रवत्या वीरविवाहमङ्गलम्।
अनेककन्या परिवारयाऽऽरुहत्समीक्षितुं तुङ्गमनोरथं तदा ॥ ८ ॥
स्थितेऽथनाथे तपसिस्वयंभुवि प्रजात कैवल्य विशाललोचने।
जगद्विभूत्यै विहरत्यपि क्षितिं-क्षितिं विहाय स्थितवांस्तपस्ययम् ॥ ९ ॥

—श्री जिनसेनाचार्यः हरिवंशपुराण

फिर धर्मतीर्थ की स्थापना करना।" राजकुमार वर्द्धमान जी ने कहा– "मां! देखती हो, कुछ लोग भोग में कितने अन्धे हो रहे हैं? परउपकारता के लिये समाज में स्थान नहीं है! आत्मिक धर्म को भूले हुए हैं। स्त्री जाति को योग्य सम्मान प्राप्त नहीं है। शूद्रों के लिये धर्म सुनना पाप बताया जाता है। स्वाद के वश हिंसक यज्ञ होते हैं। संसार इन्द्रियों का दास बना हुआ है। तो क्या मैं भी उनकी भांति भ्रान्ति में पड़ूं[1]? मां की ममता भी वर्द्धमान जी की कर्त्तव्य दृढ़ता के सम्मुख क्षीण हो गई[2]।

दिगम्बरीय सम्प्रदाय के अनुसार श्री वर्द्धमान महावीर सारी उम्र ब्रह्मचारी रहे, परन्तु श्वेताम्बरी सम्प्रदाय इन का यशोदा से विवाह होना बताता है। श्री वर्द्धमान के ब्रह्मचारी होने या न होने से उनकी विशेषता या गुणों में कोई कमी नहीं पड़ती। अनेक तीर्थंकर ऐसे हुए जिन्होंने विवाह कराया, परन्तु निष्पक्ष विद्वानों के ऐतिहासिक रूप से विचार करने के लिये दोनों सम्प्रदायों के प्रमाण देना उचित है।

पद्मपुराण[3] हरिवंशपुराण[4] और तिलोयपण्णत्ती[5] नाम के दिगम्बरीय ग्रन्थ बताते हैं कि २४ तीर्थंकरों में श्री से वासुपूज्य,

---

१-२, 'अहिंसा वाणी'. वर्ष २, पृ० ५।

३. वासुपूज्यो महावीरो मल्लिः पार्श्वो यदुत्तमः ।
'कुमारा' निर्गता गेहात् पृथिवीपतयोऽपरे ॥
—पद्मपुराण २०-६७।

४. निष्क्रान्तिर्वासुपूज्यस्य मल्लेर्नेमिजिनान्त्ययोः ।
पञ्चानां तु 'कुमाराख्यां' राज्ञां शेषजिनेशिनाम् ॥
—हरिवंशपुराण ६०-२१४।

५. णेमी मल्ली वीरो 'कुमारकालं' मि वासुपुज्जो य ।
पासो विय गहिदतवो सेसजिणाणं रज्ज चरिमंमि ॥
—तिलोयपण्णत्ती ४, ६०, ७२।

मल्लिनाथ, अरिष्टनेमि, पार्श्वनाथ और महावीर पाँच बाल-यति हुए हैं, जिन्होंने 'कुमार' अवस्था में संसार त्याग दिया था। श्वेताम्बरीय ग्रन्थ भी अपने पउमचरिय[1] तथा आवश्यकनिर्युक्ति[2] नाम के ग्रन्थों में इसी बात को स्पष्ट रूप से स्वीकार करते हैं कि महावीर ने 'कुमार' अवस्था में संसार त्याग दिया था! अब केवल यह देखना है कि 'कुमार' शब्द का अर्थ क्या है? 'कुमार' का अर्थ है कुँवारा यानी अविवाहित अथवा ब्रह्मचारी[3]! आवश्यकनिर्युक्ति की गाथा २२१-२२२ में 'कुमार' शब्द का मतलब यदि बाल्यावस्था होता तो उसी ग्रन्थ की गाथा २२६ में[4] 'पठमवय' अर्थात् पहली[5] यानी कुमार अवस्था में वीर स्वामी के दीक्षा लेने का कथन न आता! इससे और भी स्पष्ट होगया कि पहली बार गाथा २२१ और २२२ में 'कुमार' शब्द का

---

१. मल्ली अरिट्ठनेमी पासो वीरो य वासु पुज्जो ॥ ५७ ॥
एए 'कुमारसीहा' गेहाओ निग्गया जिणवरिन्दा ।
सेसा वि हु रायाणो पुहई भोत्तूण निक्खन्ता ॥ ५८ ॥
—पउमचरियं

२. वीरं अरिट्ठनेमि पासं मल्लिं च वासुपुज्जं च ।
एए मुत्तूण जिणे अवसेसा आसि रायाणो ॥ २२१ ॥
रायकुलेसु वि जाया विसुद्धवंसेसु खत्तियकुलेसु ।
न य इच्छियाभिसेआ 'कुमारवासम्मि' पव्वइया ॥ २२२
—आवश्यकनिर्युक्ति

३ (i) पाइय सद्द महण्णवो कोष पृ० ३१६ ।
(ii) जैनागम शब्द संग्रह पृ० २६० ।

४. वीरो अरिट्ठनेमि पासो मल्ली वासुपुज्जो य ।
'पढम वए' पव्वइया सेसा पुण पच्छिम वयंमि ॥ २२६ ॥
—आवश्यकनिर्युक्ति

५. मनुष्य की चार अवस्थाओं में पहली कुमार अवस्था है:—
(१) कुमार (२) युवा (३) प्रौढ (४) वृद्ध ।

अर्थ अविवाहित अर्थात् ब्रह्मचारी ही है[1], जैसा कि स्वयं श्वेताम्बरीय मुनि श्री कल्याणविजय जी भी स्वीकार करते हैं कि भगवान् महावीर के अविवाहित होने की दिगम्बर सम्प्रदाय की मान्यता बिलकुल निराधार नहीं है[2] ?

---

१ "स्वयं श्वेताम्बरी प्राचीन ग्रन्थों, 'कल्पसूत्र' और 'आचाराङ्गसूत्र' में भगवान् महावीर के विवाह का उल्लेख नहीं है। श्वेताम्बरीय 'आवश्यक निर्युक्ति' में स्पष्ट लिखा है कि भगवान् महावीर स्त्री-पाणिग्रहण और राज्याभिषेक से रहित कुमारावस्था में ही दीक्षित हुए थे। (नयइत्थिआभिसेआ कुमारविवासंमि पव्वइया) अतएव वल्लभीनगर में जिस समय श्वे० आगमग्रन्थ देवर्द्धिगणि क्षमा-श्रमण द्वारा संशोधित और संस्कारित किए गए थे, उस समय प्राचीन आचार्यों की नामावली चूर्णि और टीकाओं में विवाह की बात बढ़ाई गई सम्भव दीखती है। उस समय गुजरात देश में बौद्धों की संख्या काफी थी। वल्लभी राजाओं का आश्रय पाकर श्वे० जैनाचार्य अपने धर्म का प्रसार कर रहे थे। बौद्धों को अपने धर्म में सुगमता से दीक्षित करने के लिए उन्हें अपनी ओर आकृष्ट करने के लिये उन्होंने अपने आगमग्रन्थों का सङ्कलन बौद्ध ग्रन्थों के आधार से किया प्रतीत होता है। बौद्ध यात्री हुएनत्सॉंग ने अपने यात्रा विवरण (पृ० १४२) में स्पष्ट लिखा है कि श्वेतपटधारी जैनियों ने बौद्ध-ग्रन्थों से बहुत सी बातें लेकर अपने शास्त्र रचे हैं। पाश्चात्य विद्वान् भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि सम्भवतः श्वेताम्बरों ने श्री महावीर जी का जीवन वृत्तान्त म० गौतमबुद्ध के जीवन चरित्र के आधार से लिखा है। (बुल्हर, इण्डियन सेक्ट ऑफ दी जैन्स पृ० ४५) "ललित विस्तार" और "निदान कथा" नामक बौद्ध ग्रन्थों में जैसा चरित्र गौतम बुद्ध का दिया है, उससे श्वेताम्बरों द्वारा वर्णित भ० महावीर के चरित्र में कई बातों में सादृश्य है। कैम्ब्रेज हिस्ट्री ऑफ इंडिया पृ० १५६) इस दशा में दिगम्बर जैनियों की मान्यता समीचीन विदित होती है और यह ठीक है कि महावीर जी बालब्रह्मचारी थे।"

—कामताप्रसाद: भगवान् महावीर पृ० ७६-८१।

२. "दिगम्बर सम्प्रदाय महावीर को अविवाहित मानता है जिसका मूलाधार शायद श्वेताम्बर सम्प्रदाय सम्मत 'आवश्यकनिर्युक्ति है। उसमें जिन पांच तीर्थंकरों को 'कुमार प्रव्रजित' कहा है, उनमें महावीर भी एक हैं। यद्यपि

श्वेताम्बरीय प्रसिद्ध मुनि श्री चौथमल जी महाराज ने अपने "भगवान् महावीर का आदर्श जीवन"[1] के पृ० १६१ पर जो भगवान् महावीर की जन्म कुण्डली[2] दी है उसी के आधार पर श्री ऐल० ए० फल्टेन साहब ने ज्योतिष की दृष्टि से भी यही सिद्ध किया कि भगवान् महावीर का विवाह नहीं हुआ बल्कि वे बालब्रह्मचारी थे[3]।

पिछले टीकाकार 'कुमार प्रव्रजित' का अर्थ 'राजपद नहीं पाये हुए' ऐसा करते हैं, परन्तु 'आवश्यकनिर्युक्ति' का भाव ऐसा नहीं मालूम होता।

श्वेताम्बर ग्रन्थकार महावीर को विवाहित मानते हैं और उसका मूलाधार 'कल्पसूत्र' है। कल्पसूत्र के किसी सूत्र में महावीर के गृहस्थ आश्रम का अथवा उनकी भार्या यशोदा का वर्णन हमारे दृष्टिगोचर नहीं हुआ।

कुछ भी हो इतना तो निश्चित् है कि महावीर के अविवाहित होने की दिगम्बर सम्प्रदाय की मान्यता बिलकुल निराधार नहीं है।"

श्वेताम्बर मुनि श्री कल्याणविजय जी महाराजः श्रमण भ० महावीर (श्री क० वि० शास्त्र संग्रह समिति जालोर, मारवाड़) पृ० १२।

१. चौथमल जी का यह प्रसिद्ध ग्रन्थ श्वेताम्बर सम्प्रदाय की प्रसिद्ध संस्था 'श्री जैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति रतलाम' ने विक्रम सं० १९८९ में प्रकाशित किया है।

२. इस जन्म कुण्डली को, 'वीर-जन्म' खण्ड २ में देखिये।

३. The Svetambara Jains hold that Lord Mahavira was married and had a daughter, while Digambera School asserts with definiteness that Lord Mahavira was not at all married. His Janam-kundli as given in this book. is admitted by Svetambaras, according to which under the rules of Astrology also he is proved to be un-married:—

पत्नीभावे यदा राहुः पापयुग्मेन वीक्षितः।
पत्नीयोगस्तदा न स्यात्‌''' .... ॥

जब दिगम्बर सम्प्रदाय दूसरे अनेक तीर्थंकरों का विवाह होना स्वीकार करता है, यदि वर्द्धमान कुमार का भी विवाह होता तो कोई कारण न था कि श्री जिनसेनाचार्य ने जहां हरिवंश पुराण में महावीर के विवाह की योजना का उल्लेख किया है[1], वे यशोदा से उनके विवाह होने का कथन न करते। वास्तव में भगवान् महावीर का विवाह नहीं हुआ, वे बाल ब्रह्मचारी थे[2], निष्पक्ष विद्वानों ने भी उन्हें अखण्ड ब्रह्मचारी बताये हैं[3]।

Meaning: 'when the 'Rahu appears in the 7th house and is aspected by two evil Planets, there is no possibility of a wife "

In another place the Astrology rule runs:—

पत्नीभावे यदा राहुः पापयुग्मेन वीक्षितः ।
पत्नी योगस्थिता तस्य भूताऽपि म्रियतेऽचिराद् ॥

Meaning: 'When Rahu stands in the 7th house and is aspected by two eivil planets, the wife remains in expectation and while in expectation she soon dies "

In the horsecope of Lord Mahavira Rahu stands in the 7th house and is seen by two evil planets—'Saturn' and 'Mars' therefore there can be no wife to Lord Mahavira. according to both the rules, the versions given by Digamberas is correct'.

—L A. Paltane : Mahavira Commemoration. Vol. I P 87.

१. हरिवंश पुराण पर्व ६६, श्लोक ८, ६, जिन को अर्थ सहित फुटनोट नं० १ में पृ० २६४ पर देखिये।

२. (i) खण्डेलवाल जैन-हितेच्छु (१६ नवम्बर १६४३) पृ० ६ और ४२।

(ii) पं० नाथूराम प्रेमी : जैन साहित्य और इतिहास पृ० ५७२।

(iii) अनेकान्त वर्ष ४ पृ० ५८०।

(iv) जैन संक्षिप्त इतिहास भा० २ खंड १ पृ० ५४।

३. डा० वासुदेवशरण अग्रवाल : भगवान् महावीर (कामताप्रसाद) भूमिका पृ० २।

पूर्व-जन्म

जो सत्पुरुषों की कथा तथा उनके पूर्व जन्मों को पढ़ते हैं, कहते हैं, विश्वासपूर्वक सुनते हैं, उनमें अनुराग रखते हैं, इसमें सन्देह नहीं है कि उनका पाप दूर होकर अवश्य पुण्य का उपार्जन होता है। श्री कृष्ण जी ने भ० नेमिनाथ बाइसवें तीर्थंकर और महाराजा श्रेणिक ने भ० महावीर चोबीसवें तीर्थंकर के समोसरण में महापुरुषों की कथाओं को विश्वासपूर्वक सुन कर इतने विशेष पुण्य का उपार्जन किया कि जिनके पुण्य फल से वे आने वाले युग में स्वयं तीर्थंकर भगवान् होंगे।

—श्री गौतम गन्धर्व : पद्मपुराण, पर्व १।

मांसाहारी भील

एक दिन महावीर स्वामी एकान्त में विचार कर रहे थे, कि यह संसार क्या है ? मैं कौन था ? क्या हुआ ? अब क्या हूँ ? अनादि काल से कितनी बार जन्म-मरण हुआ ? उन्होंने अवधिज्ञान से विचारा कि एक समय मेरा जीव जम्बूद्वीप के विदेह क्षेत्र में पुष्कलावती देश में पुण्डरीकिणी नाम के नगर के निकट मधुक नाम के वन में पुरुरवा नाम का मांसाहारी भीलों का सरदार था, कालिका पत्नी थी, पशुओं का शिकार करके मांस खाता था, एक दिन रास्ता भूलकर श्री सागरसेन नाम के मुनि उस जंगल में आ निकले। दूर से उनकी आंखों की चमक देख हिरन का भ्रम हुआ, झट तीर कमान उठा उनकी ओर निशाना लगाया ही था कि कालिका ने कहा कि यह हिरन नहीं, वनदेवता मालूम होते हैं। वे दोनों मुनिराज के पास गये।

मुनिराज ने उपदेश दिया कि संसार में मनुष्य-जन्म पाना बड़ा दुर्लभ है। इसे पा कर भी मिट्टी में मिल जाने वाले शरीर का दास

श्री वर्द्धमान महावीर का पूर्व-जन्म (शिकारी भील)

बना रहना उचित नहीं। भील बोला—"महाराज ! मैं किसी का दास नहीं हूं भीलों का सरदार हूं।" उसकी यह बात सुन कर साधु हँस दिये और बोले—"अरे भोले जीव ! तू सरदार कहां है ? दो अंगुल की जीभ ने तुझे अपना दास बना रक्खा है, जिसके स्वाद के लिये तू दूसरे जीवों के प्राण लेता फिरता है।" भील चुप था। भीलनी ने कहा—"यदि खायें नहीं तो भूख से मर जायें ?" साधु बोले—"भूख से किसी को न मरना चाहिये, किन्तु ध्यान यह रखना चाहिये कि अपनी भूख प्यास की ज्वाला मिटाने के लिये दूसरे जीवों को कष्ट न हो। अन्न, जल और फल खाकर भी मानव जीवित रह सकता है। पशु-हत्या में हिंसा अधिक है। मांस मदिरा और मधु जीवों का पिण्ड है। इनके भक्षण से बड़ा पाप लगता है[1] आज ही इनका त्याग कर दो"। भील-भीलनी ने स्थूल रूप से अहिंसा व्रत ग्रहण करके उनका पालन किया, जिसके पुण्य फल से भील सौधर्म नाम के पहले स्वर्ग में देव हुआ। उसने दूसरों को सुखी बनाया, इस लिये स्वर्ग के सुख उसे मिले।

चक्रवर्ती-पुत्र

स्वर्ग के भोग भोगने के बाद मैं अयोध्या नगरी में श्री ऋषभदेव[2] के पुत्र प्रथम चक्रवर्ती भरत[3] के मरीचि नाम का पुत्र हुआ। संसार को दुःखों का खान जान कर जब श्री ऋषभदेव जी ने जिन दीक्षा ली, तो कच्छ महाकच्छ आदि ४ हजार राजे भी उनके साथ दीक्षा लेकर जैन साधु होगये थे, तो मरीचि भी उनके साथ जैन-साधु हो गया था।

एक दिन अधिक गरमी पड़ रही थी, भूमि अंगारे के समान

---

१. आठ मूल गुण खण्ड २ में मांस का त्याग, मदिरा का त्याग, मधु का त्याग।
२ जैन धर्म के संस्थापक श्री ऋषभदेव, खण्ड १।
३. भरत और भारतवर्ष, खण्ड २।

तप रही थी, शरीर को झुलसाने वाली गरम लूयें चल रही थीं, सूरज की तपन से शरीर पसीने में तर होरहा था। मरीचि उस समय प्यास की परिषय को सहन न कर सका; इसलिये दिगम्बर पद को त्याग कर उसने वृक्षों की छाल पहन ली लम्बी जटा रख ली। कंद, मूल फल खाने लगा और यह विचार कर के कि जैसे श्री ऋषभदेव के हजारों शिष्य हैं, उसने कपिल आदि अपने भी बहुत से शिष्य बना कर सांख्य मत का प्रचार करना आरम्भ कर दिया[1]। संसारी पदार्थों की अधिक मोह-ममता त्यागने के कारण मृत्यु के बाद वह ब्रह्म नाम के पाँचवें स्वर्ग में देव हुआ।

ब्राह्मण-पुत्र

स्वर्ग से आकर मैं अयोध्या के कपिल ब्राह्मण की काली नाम की स्त्री से जटिल नाम का पुत्र हुआ। बड़ा होकर परिव्राजक सांख्य-साधु होगया। संसारी वस्तुओं को त्यागने का कैसा सुन्दर फल प्राप्त होता है! मृत्यु होने पर सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ।

भोग भोगने के बाद इसी भारतवर्ष के स्थूणागार नामके नगर में भारद्वाज नामक ब्राह्मण की स्त्री पुष्पदन्ता के पुष्पमित्र नाम का पुत्र हुआ। वहाँ भी परिव्राजक का साधु होकर सांख्य मत का

---

१. एक बंगाली बैरिष्टर ने 'प्रैक्टिकल पाथ' (Practical Path) नाम के ग्रन्थ में लिखा है कि ऋषभदेव का नाती मरीचि प्रकृतिवादी था और वेद उसके तत्वानुसार होने के कारण ही ऋग्वेद आदि ग्रन्थों की ख्याति उनके ज्ञान द्वारा हुई है। फलतः मरीची ऋषि के स्तोत्र, वेद, पुराण आदि ग्रन्थों में है और स्थान-स्थान पर जैन तीर्थंकरों का उल्लेख पाया जाता है।

—स्वामी विरूपाक्ष वडियर, धर्मभूषण, पंडित, वेदतीर्थ, विद्यानिधि, एम० ए० प्रोफेसर संस्कृत कालेज इन्दौर : जैन धर्म मीमांसा।

प्रचार किया[1]। संसार त्यागने के कारण फिर सौधर्म स्वर्ग प्राप्त हुआ[2]।

वहां से आकर श्वेतिक नाम के नगर में अग्निभूति ब्राह्मण की गौतमी नाम की स्त्री से अग्निसह नाम का पुत्र हुआ[3]। यहाँ भी परिव्राजक धर्म का संन्यासी होकर प्रकृति आदि २५ तत्वों का प्रचार किया[4]।

संसार त्यागने के कारण फिर मर कर सनत्कुमार नाम के तीसरे स्वर्ग में देव हुआ[5]।

वहाँ से फिर इसी भारत क्षेत्र के मन्दिर नाम के नगर में गौतम नाम के ब्राह्मण की कौशाम्भी नाम की स्त्री से अग्निभूति नाम का पुत्र[6] हुआ। यहाँ भी सांख्य मत का प्रचार किया[7]। संसार त्यागने के हेतु महेन्द्र नाम का चौथा स्वर्ग प्राप्त हुआ।

वहां से आकर मैं उक्त मन्दिर नाम के नगर में साङ्कलायन नाम के ब्राह्मण की मन्दिरा नाम की पत्नी से भारद्वाज नाम का पुत्र हुआ[8]। पूर्वजन्म के संस्कारों के कारण त्रिदण्डी दीक्षा ग्रहण की और तप के प्रभाव से देवायु का बंध कर ब्रह्म नाम के पांचवें स्वर्ग में देव हुआ[9]। संसारी मोह-ममता के त्याग का देखिये कितना सुन्दर फल मिलता है! सम्यग्दर्शन न होने पर भी संसारी सुखों का तो कहना ही क्या, स्वर्गों तक के भोग आप से आप प्राप्त होजाते हैं तो सम्यग्दर्शन के प्राप्त हो जाने पर मोक्ष के अविनाशक सुखों में क्या सन्देह हो सकता है?

त्रस, स्थावर, नर्क और निगोद

आग में कूदना, विष का सेवन करना, समुद्र में डूब मरना उत्तम है, किन्तु मिथ्यात्व सहित जीवित रहना कदाचित् उचित

१-६ श्री महावीरपुराण (जिनवाणी-प्रचारक कार्यालय कलकत्ता) पृ० १४-१५।

नहीं है[1] । सर्प तो एक जन्म में दुःख देता है, लेकिन मिथ्यात्व जन्म-जन्मान्तर तक दुःख देता है[2] । मिथ्यात्व के प्रभाव से जीव नरक तक में भी दुःख अनुभव नहीं करता, किन्तु दूसरे अधिक ऋद्धियों वाले देवों की उत्तम विभूतियों को देख कर ईर्ष्या भाव करने, महा सुखों के देनेवाली देवाङ्गनाओं का वियोग होने तथा आयु के समाप्त होने से छः महीने पहले माला मुरझा जाने से मिथ्यादृष्टि स्वर्ग में भी दुःख उठाता है । मृत्यु के छः महीने पहले मेरी भी माला मुरझा गई तो इस भय से कि मरने के बाद न मालूम कहाँ जन्म होगा ? ये स्वर्ग के सुख प्राप्त होंगे या नहीं ? अत्यन्त शोक और रुदन किया, जिसका फल यह हुआ कि स्वयं स्वर्ग की आयु समाप्त होते ही मैं निगोद[3] में आ पड़ा । अनन्तानन्त वर्षों तक वहां के दुःख उठा कर वर्षों तक वहाँ के दुःख भोगे, फिर एकइन्द्रीय वनास्पति काय प्राप्त हुई । कई बार मैं गर्भ में आया और वह गर्भ गिर गये । इसी प्रकार ६० लाख बार जन्म-मरण के दुःख सहन करके शुभ कर्म से राजगिरी नाम की नगरी में शांडिली नामक ब्राह्मण की स्त्री पारासिरी के स्थावर नाम का पुत्र हुआ[6] । संसारी पदार्थों की अधिक इच्छा न रखने और मन्द कषाय होने के कारण आयु के समाप्त होने पर महीन्द्र नाम के चौथे स्वर्ग में देव हुआ[7] ।

श्रावक तथा जैन-मुनि

जिस प्रकार काठ की संगति से लोहा भी तिर जाता है, उसी प्रकार धर्मात्माओं की संगति से पापी तक का भी कल्याण होजाता

१-२. चौबीसी पुराण (जिनवाणी का० कलकत्ता) पृ० २४३ ।

३-४ विस्तार के लिये खंड २ में भ० महावीर का धर्म उपदेश ।

५. श्री शकलकीर्ति जी : वर्द्धमान पुराण (हस्तलिखित) ।

६-७. श्री महावीर पराण (कलकत्ता) पृ० १६ ।

है। अब की बार महीन्द्र स्वर्ग में धर्मात्मा लोगों की संगति मिली जिसके कारण मैं विषय-भोगों में न फँस कर मन्द-कषाय रहा। स्वर्ग के सुखों को पुण्य तथा नरक, निगोद को पाप कर्मों का फल जान कर, माला मुरझाने पर भी मैं दुखी न हुआ, तो इसका फल यह हुआ कि स्वर्ग की आयु समाप्त होने पर मैं मगध देश की राजधानी राजगृह में विश्वभूति नाम के राजा की जैनी नाम की रानी से विश्वनन्दी नाम का बड़ा पराक्रमी राजकुमार हुआ। राजा का विशाखभूति नाम का एक छोटा भाई था, जिसकी लक्ष्मणा नाम की रानी और विशाखनन्द नाम का पुत्र था। यह सारा परिवार जैनी था। विश्वनन्दी बड़ा बलवान और धर्मात्मा था, वह श्रावक व्रत बड़ी श्रद्धा से पालता था।

संसार को असार जान कर अपने आत्मिक कल्याण के लिये विश्वभूति ने संसार त्यागने की ठान ली। उसके राज्य का अधिकारी तो उसका पुत्र विश्वनन्दी ही था, परन्तु उसको बच्चा जान कर अपना राज्य छोटे भाई विश्वभूति के सुपुर्द करके अपने पुत्र विश्वनन्दी को युवराज बना दिया और स्वयं श्रीधर[1] नाम के मुनि से जिन दीक्षा लेकर जैन-साधु होगया।

युवराज विश्वनन्दी के बागीचे पर विशाखनन्दी ने अपना अधिकार जमा लिया। समझाने से न माना और लड़ने को तैयार होगया तो विश्वनन्दी विशाखनन्दी पर झपटा। विशाखनन्दी भय से भागकर एक पेड़ पर चढ़ गया। विश्वनन्दी ने एक ही झटके में उस वृक्ष को जड़ से उखाड़ दिया। विशाखनन्दी भाग कर पत्थर के एक खम्भे पर चढ़ गया, परन्तु विश्वनन्दी ने अपनी कलाई की एक ही चोट से उस पत्थर के खम्भे को भी तोड़ दिया। विशाखनन्दी अपनी जान बचाने के लिये बुरी तरह भागा। उसकी ऐसी

---

१. महावीर पुराण (कलकत्ता) पृ० १७।

भयभीत दशा को देखकर विश्वनन्दी को वैराग्य आ गया और श्री संभूत नाम के मुनि से दीक्षा ले कर जैन-मुनि होगया। इस घटना से विशाखभूति को भी बहुत पश्चात्ताप हुआ कि पुत्र के मोह में फँस कर साधु-स्वभाव विश्वनन्दी का बागीचा विशाखनन्दी को दे दिया, सच तो यह है कि यह समस्त राज्य ही उसका है। जब विश्वनन्दी ने ही भरी जवानी में संसार त्याग दिया तो मुझ वृद्ध को राज्य करना कैसे उचित है ? वह भी जैन-साधु हो गया।

विशाखनन्दी मकान की छत पर बैठा हुआ था कि विश्वनन्दी जिनका शरीर कठिन तपस्या के कारण निर्बल होगया था, आहार के निमित्त नगरी में आये तो असाता कर्म के उदय से एक गउ भागती हुई दूसरी ओर से आई। जिससे मुनि महाराज को धक्का लगा और वह भूमि पर गिर पड़े। विशाखनन्दी ने यह देख कर हंसते हुए कहा कि हाथ से वृक्ष उखाड़ने और कलाई की एक चोट से वज्रमयी खम्भ को तोड़नेवाला वह तुम्हारा बल आज कहाँ है ? आहार में अन्तराय जान कर मुनिराज तो बिना आहार किये सरल स्वभाव जङ्गल में वापिस जाकर फिर ध्यान में लीन होगये, परन्तु विशाखनन्दी मुनिराज की निन्दा करने के पाप फल से सातवें नरक गया, जहां महाक्रोधी और कठोर नारकीयों ने उसे गर्म घी में पकवान के समान पकाया, कोल्हू में उसे गन्ने के समान पीड़ा और आरे से उसके जीवित शरीर को चीरा, मुद्गरों से पीटा। वर्षों इसी प्रकार उसको नरकों की वेदनाएँ सहनी पड़ीं। महामुनि विश्वनन्दी शान्तप्रणाम आयु समाप्त करके तप के प्रभाव से महाशुक्र नाम के दसवें स्वर्ग में देव हुये। विशाखभूति भी तप के प्रताप से उसी स्वर्ग में देव हुये थे। यह दोनों आपस में प्रेम से स्वर्गों के महासुख भोगते थे।

नारायण पद

स्वर्ग के महा सुख भोग कर विशाखभूति का जीव इसी भारत क्षेत्र में सुरम्य देश के पोदनपुर नगर के प्रजापति नाम के राजा की जयावती नाम की रानी से विजय नाम का प्रथम बलभद्र हुआ और मैं विश्वनन्दी का जीव उसी राजा की मृगावती नाम की रानी से त्रिपृष्ठ नाम का पहला नारायण हुआ। हम दोनों बड़े बलवान् थे। पिछले जन्म के संस्कार के कारण हम दोनों का आपस में बड़ा प्रेम था। विशाखनन्दी का जीव अनेक कुगतियों के दुःख भोगता हुआ विजयार्द्ध पर्वत के उत्तर में अलकापुरी के राजा मयूरग्रीव की रानी नीलंजना के अश्वग्रीव नाम का प्रतिनारायण हुआ। यह बड़ा दुष्ट था, इसी कारण इस की प्रजा इससे दुखी थी।

विजयार्द्ध के उत्तर में ही रथनपुर नाम के देश में एक चक्रवाक नाम की नगरी थी जिस का राजा ज्वलनजटी था, जिसकी रानी वायुवेगा थी जिसके स्वयंप्रभा नाम की पुत्री थी जिसके रूप को सुनकर अश्वग्रीव उससे विवाह कराना चाहता था। परन्तु ज्वलनजटी ने अपनी राजकुमारी का विवाह त्रिपृष्ट कुमार से कर दिया। जब अश्वग्रीव ने सुना तो अपने चक्र-रत्न के घमण्ड पर ज्वलनजटी पर आक्रमण कर दिया। खबर मिलने पर त्रिपृष्ठ कुमार और उसका भ्राता विजय उसकी सहायता को आ गए। पहले तो दूत भेज कर अश्वग्रीव को समझाना चाहा, परन्तु वह न माना। जिस पर देश रक्षा के कारण इनको भी युद्ध भूमि में आना पड़ा। बड़े घमसान का युद्ध हुआ। अश्वग्रीव योद्धा था, उसके पास बड़ी भारी सेना थी। दूसरी ओर बेचारा ज्वलनजटी। शेर और बकरी का युद्ध क्या? कई बार ज्वलनजटी की सेना के पांव उखड़ गए। मगर त्रिपृष्ट दोनों हाथों में तलवार लेकर इस वीरता से लड़ा कि अश्वग्रीव के दांत खट्टे

होगये और जोश में आकर उसने त्रिपृष्ट पर अपना चक्र चला दिया। पुण्योदय से वह चक्र त्रिपृष्ट कुमार की दाहिनी भुजा पर आ विराजमान हुआ और उसने वह चक्ररत्न अश्वग्रीव पर चला दिया जिस के कारण अश्वग्रीव प्राणरहित हो गया। उसकी फौज भाग गई, त्रिपृष्ट कुमार तीनों खण्ड का स्वामी नारायण हो गया।

अफ्यून का नशा, भङ्ग का नशा, शराब का नशा तो संसार बुरा जानता ही है, किन्तु दौलत तथा हकूमत का नशा इन सब में अधिक बुरा है। तीनों खण्ड का राज्य प्राप्त होने पर त्रिपृष्ट आपे से बाहर होगया। गाना सुनने में उसकी अधिक रुचि थी। उसने शय्यापाल को आज्ञा दे रखी थी कि जब तक वह जागता रहे गाना होता रहे और जब उसको नींद आ जाये गाना बन्द करवादे। शय्यापाल को भी गाने में आनन्द आने लगा। एक दिन की बात है कि त्रिपृष्ट सो गया परन्तु शय्यापाल गाने में इतना मस्त हो गया कि त्रिपृष्ट के सो जाने पर भी उसने गाना बन्द नहीं करवाया। जब त्रिपृष्ट जागा तो उस समय तक गाना होते देख कर वह आग बबूला होगया और उसने शय्यापाल के कानों में गर्म शीशा भरवा दिया। विषय भोग में फँसे रहने के कारण वह मर कर महातमप्रभा नाम के सातवें नरक में गया जहाँ इतने महादुख उठाने पड़े कि जिन को सुन कर हृदय कांप उठता है[१]।

पशु-गति

नरकों के महादुःख वर्षों तक सहन करने के बाद मुझे इसी भारतवर्ष में गङ्गा नदी के किनारे वनिसिंह के पहाड़ों में शेर की योनि प्राप्त हुई। यहां भी अनेक जीवों की हत्या करने के कारण

१. भ० महावीर का धर्म उपदेश, खंड २।

श्री वर्द्धमान महावीर का पूर्व-जन्म (शेर की योनि)
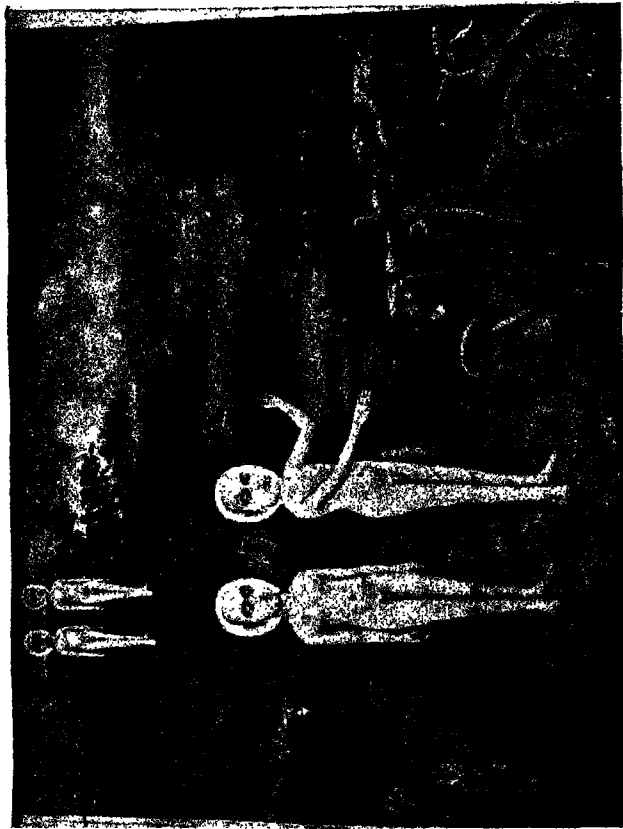
रत्नप्रभा नाम के पहले नरक में गया। वहां के दुःख भोगने के बाद सिंधुकूट के पूर्व हिमगिरि पर्वत पर फिर सिंह हुआ। एक दिन हिरण का शिकार करने के लिये उसके पीछे भाग रहा था कि उसी समय अजितंजय और अमिततेज नाम के दो चारण मुनि वहां आगये। उन्होंने शेर से कहा कि पिछले जन्म में भी तुम शेर ही थे जीव हत्या करने के कारण तुम्हें वर्षों तक नरक के महा दुःख भोगने पड़े। यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो तो जीव-हत्या तथा मांस भक्षण का त्याग कर दो। शेर ने कहा कि मांस के सिवाय मेरे लिये और कोई भोजन नहीं है। अमिततेज नाम के मुनिराज ने कहा—"दिगम्बर पदवी को त्याग कर तुम ने श्री ऋषभदेव के वचनों आदि का अनादर किया था। इसी मिथ्यात्व के कारण जन्म-मरण, नरक आदि के अनेक दुःख सहने पड़े। अपने एक जीवन की रक्षा के लिये अनेक जीवों का घात कैसे उचित है? पिछले पापों के कारण तो तुम आज पशुगति के दुख भोग रहे हो, यदि अब भी मिथ्यात्व को दूर करके सम्यग्दर्शन प्राप्त न किया तो इस आवागमन के चक्कर से न निकल सकोगे।" मुनिराज के उपदेश से मृगराज की आंखें खुल गईं। आत्मा की वाणी को आत्मा क्यों न समझे! सिंह की आत्मा में भी ज्ञान तो था, परन्तु ज्ञानावर्णी कर्म के कारण वह गुण ढका हुआ था। योगीराज अजितञ्जय ने उसका परदा हटा दिया, सिंह को पहले जन्मों की याद आगई जिससे उसका हृदय इतना दुखी हुआ कि उसकी आंखों से टप-टप आंसू पड़ने लगे। शिकार से उसे घृणा हो गई। उसने तुरन्त ही मांस-भक्षण तथा जीव-हिंसा के त्याग की प्रतिज्ञा करली। मुनिराज के वचनों में पूरा श्रद्धान करने से उसे सम्यग्दर्शन प्राप्त हो गया। सम्यग्दर्शन से अधिक कल्याणकारी वस्तु तो सारे संसार में कोई नहीं है, हर प्रकार के संसारी सुखों तथा स्वर्ग की विभूतियों का तो कहना ही क्या है, मोक्ष तक के

सुख बिना इच्छा के आप से आप ही प्राप्त हो जाते हैं। हिंसा के त्याग और सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का फल यह हुआ कि मर कर वे सौधर्म नाम के पहले स्वर्ग में सिंहकेतु नाम का महान् ऋद्धियों का धारी देव हुआ। जहाँ से वह अकृत्रिम चैत्यालय में जाकर श्रेष्ठ द्रव्यों सहित अर्हन्त देव की पूजा किया करता था। मनुष्य लोक नन्दीश्वरादि द्वीपों में जिनेन्द्र भगवान् की प्रतिमाओं की पूजा तथा मुनियों की भक्तिपूर्वक बन्दना करता था।

राज्यपद

स्वर्ग में भी अर्हन्त भक्ति करने के पुण्य फल से मैं विजयार्द्ध पर्वत के उत्तर की तरफ कनकप्रभ नाम के देश में विद्याधरों के राजा पंख की कनकमाला नाम की रानी से कनकोज्वल नाम का बड़ा पराक्रमी और धर्मात्मा राजकुमार हुआ। निर्ग्रंथ मुनि के उपदेश से प्रभावित होकर और संसारी सुखों को क्षणिक जान कर भरी जवानी में दीक्षा लेकर जैन साधु हो गया और तप कर के लांतवें नाम के सातवें स्वर्ग में महा ऋद्धिधारी देव हुआ, वहां भी वह सम्यग्दृष्टि शुभ ध्यान तथा जिन पूजा में लीन रहता था, जिस के पुण्य फल से वह अयोध्या नगरी के राजा बज्रसेन की रानी शीलवती से हरिषेण नाम का बड़ा बुद्धिमान् राजकुमार हुआ। राजनीतिक के साथ-साथ जैन सिद्धान्तों का बड़ा विद्वान् था। मैं श्रावक धर्म को भलि भांति पालता था। एक दिन विचार कर रहा था कि मैं कौन हूँ? मेरा शरीर क्या है? स्त्री, पुत्र आदि क्या मेरे हैं और कुछ मेरा लाभ कर सकते हैं? मेरी तृष्णा किस प्रकार शान्त होगी? तो मुझे संसार महाभयानक दिखाई पड़ा, वैराग्य भाव जाग्रत हो गए और श्री श्रुतसागर नाम के निर्ग्रन्थ मुनि से दीक्षा लेकर मैं जैन साधु हो गया। दर्शन,

ज्ञान, चरित्र, तपरूप चारों आराधनाओं का सेवन करके समाधि-मरण से प्राणों का परित्याग होने के कारण महासुखों के प्रदान करने वाले महाशुक्र नाम के दसवें स्वर्ग में महान् ऋद्धि-धारी देव का भी देव हुआ।

चक्रवर्तीपद

आज का संसार भी स्वीकार करता है कि जैनी अधिक धनवान् और आदर सत्कार वाले हैं। इसका कारण उनका त्याग, अहिंसा पालन और अर्हन्त भक्ति है। जब थोड़ी सी अर्हन्त पूजा करने, मोटे रूप से हिंसा को त्यागने तथा श्रावक धर्म को पालने से अपार धन, आज्ञाकारी सन्तान अतिसुन्दर स्त्री, महायश और सतकार, निरोग शरीर की बिना इच्छा के भी तृप्ति हो जाती है तो भरपूर राज-पाट और संसारी सुख प्राप्त होने पर भी जो इनको सम्पूर्ण रूप से बिना किसी दबाव के त्याग करके भरी जवानी में जिन दीक्षा लेकर कठोर तप करते हैं, उन्हें इस लोक में राज्य सुख और परलोक में स्वर्गीय सुख की प्राप्ति में क्या सन्देह हो सकता है? मन्द कषाय होने और मुनि धर्म पालने का फल यह हुआ कि स्वर्ग की आयु समाप्त होने पर मैं विदेह क्षेत्र में पुष्कलावती नाम के देश में पुण्डरीकिणी नगरी के राजा सुमित्र की रानी सुव्रता के प्रियमित्रकुमार नाम का चक्रवर्ती सम्राट हुआ। ९६ हजार रानियां, ८४ लाख हाथी, १८ करोड़ घोड़े, ८४ हजार पैदल मेरे पास थे। ९६ करोड़ ग्रामों पर मेरा अधिकार था। ३२ हजार मुकुट बन्द राजा और १८ हजार मलेच्छ राजा मेरे आधीन थे। मनवांछित फल की प्राप्ति करा देने वाले १४ रत्न[1] और नौ निधियाँ[2] जिनकी रक्षा देव करते थे, मैं स्वामी था।

१-२. विस्तार के लिये भ० महावीर का आदर्श जीवन, पृ० १०९-११०।

मैं रात दिन किये गये अशुभ कर्मों को सामयिक द्वारा नष्ट करता और साथ ही अपनी निन्दा करता था कि आज मुझ से ये पाप क्यों होगये ? इस प्रकार मैं शुभ क्रियाओं द्वारा धर्म का पालन करता था और दूसरा की रुचि धर्म में कराता था।

एक दिन मैं परिवार सहित तीर्थंकर श्री क्षमङ्कर जी की वन्दना को उनके समोशरण में गया। भगवान् के मुख से संसार का भयानक स्वरूप सुन कर मेरे हृदय में वीतरागता आगई और छः खण्ड के राज्य तथा चक्रवर्ती विभूतियों को त्याग कर जिन दीक्षा लेकर जैन साधु होगया[1]। तप और त्याग के प्रभाव से मैं सहस्रार नाम के बारहवें स्वर्ग में उत्तम विभूतियों का धारी सूर्यप्रभ नाम का महान् देव हुआ[2]।

इन्द्रपद

मनुष्य जन्म के तप का प्रभाव स्वर्ग में भी रहा, धर्म प्राप्ति के लिये मैं रत्नमयी जिन प्रतिमाओं के दर्शनों को जाता था, उन की भक्तिपूर्वक अनमोल रत्नों से पूजा करता था। नन्दीश्वर द्वीप में भी जाकर अकृत्रिम चैत्यालयों की पूजा किया करता था। तीर्थंकरों तथा मुनीश्वरों की भक्ति में आनन्द लेता था[3]। कण्ठ से झरने वाले अमृत का आहार करता था। तीर्थंकरों के पञ्च कल्याणक उत्साह से मनाता था, जिस के पुण्य फल से स्वर्ग की आयु समाप्त होने पर मैं भारत क्षेत्र में छत्राकार नगर के महाराजा नन्दिवर्धन की वीरवती नाम की रानी से नन्द नाम का राजकुमार हुआ। धर्म में अधिक रुचि होने के कारण श्रावकों के बारह व्रतों को अच्छी तरह पालन करता था[4]। श्री प्रोष्ठिल नाम के मुनि के उपदेश से वैराग्य आगया तो राजपाट को लात मार कर उनके निकट दीक्षा लेकर जैन साधु हो गया[5]। और केवली भगवान्

१-५. महावीर पुराण (कलकत्ता), पृ० ४०-४१।

के निकट सोलह कारण भावनाएँ[1] मन, वचन काय से भाकर तीर्थंकर नामक महापुण्य प्रकृति का बंध किया। आयु के अन्त में आराधनापूर्वक शरीर त्याग कर, उत्तम तप के प्रभाव से अच्युत नाम के सोलहवें स्वर्ग के पुष्पेत्तर विमान में देवों के देव इन्द्र हुये।

तीर्थंकरपद

पुण्य की महिमा देखिये जिसके कारण बिना इच्छा के भी स्वर्ग के उत्तम सुख स्वयं प्राप्त हो जाते हैं और स्वर्ग से भी महाउत्तम विमान आप से आप मिल जाते हैं। विमान में सम्यग्-दृष्टि देवों से तत्व-चर्चा करने, तीर्थंकरों के कल्याण को उत्साह-पूर्वक मनाने सरल स्वभाव, मन्द कषाय तथा अहिंसामयी व्यवहार करने के कारण अच्युत विमान से आकर अब मैं माता त्रिशलादेवी का पुत्र वर्द्धमान हुआ हूं[2]।

वीर-वैराग्य

पूर्व जन्म के चित्र जब सिनेमा की फिल्म के समान एक के

---

१. विस्तार के लिये "जैनधर्म प्रकाश" पृ० १०१।

२. श्वेताम्बर जैनों की मान्यता है कि पहले महावीर का जीव ऋषभदत्त ब्राह्मण की पत्नी देवनन्दा के गर्भ में आया था, परन्तु इन्द्र की आज्ञा से नैगमेशदेव ने उसे क्षत्राणी त्रिशला की कोख में पहुंचा दिया, क्योंकि तीर्थंकर हमेशा क्षत्रिय होते हैं। श्वेताम्बरों की इस मान्यता के विषय में श्वेताम्बरीय विद्वान् श्री चन्द्रराज भण्डारी के निम्न-वाक्य दृष्टव्य हैं—"इस में सन्देह नहीं है कि उपरोक्त प्रमाण में से बहुत से प्रमाण बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। इन से तो प्रायः यही जाहिर होता है कि 'गर्भहरण' की घटना कवि की कल्पना ही है"। भ० महावीर, पृ० ६५)।

—श्री कामताप्रसाद : भगवान् महावीर पृ० ६८।

बाद दूसरे श्री वर्द्धमान महावीर के अवधि ज्ञान[1] में झलके तो उनके हृदय में वीतरागता के भाव जाग उठे। वे विचार करने लगे कि संसार रूपी नाटकघर में अनादि काल से मैंने कैसे-कैसे नाटक खेले। पाप कर्म से शिकारी भील हुआ। अहिंसा व्रत से चक्रवर्ती सम्राट का पुत्र हुआ। मेरे उस भव के पिता भरत ने चक्रवर्ती विभूतियों में सच्चा सुख न देख, नग्न दिगम्बर मुनि हुए और उसी भव में मोक्ष गये। मेरे ताऊ बाहुबली जी ने जिन दीक्षा ले, जैन साधु हो उसी भव से निर्वाण पद पाया। मेरे बाबा श्री ऋषभदेव सम्पूर्ण राज सुखों को त्याग कर जैन साधु हो, उसी जन्म से मुक्ति प्राप्त की। मैं मन्दभागी दिगम्बर मुनि पद से डिगने के कारण आज तक संसार में रुल रहा हूँ।

बारह भावना

१—अनित्य भावना

राजा राणा छत्रपति, हथियन के असवार।
मरना सबको एक दिन अपनी-अपनी बार[2] ॥

---

१. Deeply immersed in self-contemplation. the prince went or seeing through 'Clairvoyant vision' (Avadhi). births after births that from the beginingless time, He is being moved by karma in this world. —Prof. Dr. H. S. Bhattacharya : Lord Mahavira, (J.M.M.Delhi) P. 13-14.

२. Kings, Emperors and Presidents.
And riders of aeroplanes;
All shall die at one's own turn
Admidst the sea and plains.
—1st. Meditation of Transitoriness of things.

स्त्री, पुत्र, धन आदि संसार के सारे पदार्थ नष्ट होने वाले हैं। जब देवी-देवता और स्वर्ग के इन्द्र तथा चक्रवर्ती सम्राट सदा नहीं रह सके तो मेरा शरीर कैसे रह सकता है ? केवल आत्मा ही सदा से है और सदा रहनेवाली है। इसके अलावा जितने भी संसार के पदार्थ हैं, वे सब अनित्य हैं, आत्मा से भिन्न हैं, एक दिन उनसे अवश्य अलग होना है । पुण्य के प्रताप से संसारी पदार्थ स्वयं मिल जाते हैं और अशुभ कर्म आने पर स्वयं नष्ट होजाते हैं, तो फिर उनकी मोह-ममता करके कर्मों के आस्रव द्वारा अपनी आत्मा को मलीन करने से क्या लाभ ?

२—अशरण भावना

दल-बल देवी-देवता, मात-पिता परिवार।
मरती बरियां जीव को, कोई न राखनहार[1] ॥

इस जीव को समस्त संसार में कोई शरण देने वाला नहीं है। जब पाप कर्म का उदय होता है तो शरीर के कपड़े भी शत्रु बन जाते हैं। जब प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव को निरन्तर छः माह तक आहार नहीं हुआ, तो उनके जन्मोपलक्ष में १५ मास तक साढ़े तीनकरोड़ रत्न प्रतिदिन बरसाने वाले देव कहां चले गये थे ? सीता जी के अग्नि-कुण्ड को जलमयी बनाने वाले देव, रावण के द्वारा सीता जी को चुराते समय कहां सोगये थे ? हजारों योद्धाओं के प्राणों को नष्ट करके रावण के बन्धन से सीता जी को

---

१. No army, power and invention,
Mother, fathere and the kins;
All at the time of Death
Shall none keep ye in.
—2nd. Meditation of No-Shelter.

छुड़ा कर लाने और वृक्षों तक से उनका पता पूछने वाले श्री राम-चन्द्र जी का प्रेम गर्भवती सीता जी को वनों में निकालते समय कहां भाग गया था ? देवी-देवता, यन्त्र-मन्त्र, मात-पिता, पुत्र-मित्र आदि किसी की भी सारे संसार में कोई शरण नहीं है। यदि पुण्य का प्रताप है तो शत्रु तक मित्र बन जाते हैं। पुण्यहीन को सगे और मित्र तक जवाब दे देते हैं।

सारे संसार में यदि कोई शरण्य है तो अर्हन्त भगवान् ही हैं। क्योंकि द्रव्य रूप से जो आत्मा अर्हन्त भगवान् की है वही आत्मा हमारी है। जो गुण अर्हन्त भगवान् की आत्मा में प्रकट हैं, वे ही गुण हमारी आत्मा में छुपे हुये हैं। अर्हन्त होने से पहले उनकी आत्मा भी हमारे समान कर्मों द्वारा मलीन और संसारी थी। और हम संसारी जीव भी यदि अपनी आत्मा के कर्मरूपी मैल को उन के समान दूर करदें तो हमारी आत्मा के गुण प्रकट होकर हमारी पर्याय भी शुद्ध होकर अर्हन्त भगवान् के समान सर्वज्ञ हो जाये। इस लिये जो अर्हन्त भगवान् को द्रव्य रूप से, गुण रूप से और पर्याय रूप से जानता है[1]। वह अपनी आत्मा और इसके गुणों को अवश्य जानता है, और जो अपनी आत्मा को जानता है, वह निज-पर के भेद को जानता है[2]। और जो इस भेद-विज्ञान को जानता है, उसका मोह संसारी पदार्थों से अवश्य छूट जाता है। और जिसकी लालसा अथवा रागद्वेष नष्ट होजाते हैं, उसका मिथ्यात्व अवश्य जाता रहता है। और जिसका मिथ्यात्व दूर हो गया उसको सम्यग्दर्शन प्राप्त हो जाता है[3]। सम्यग्दृष्टि का ज्ञान सम्यक्ज्ञान और उसका चरित्र सम्यक् चरित्र हो जाता है। इन तीनों रत्नों की एकता मोक्षमार्ग है, जो अविनाशक सुखों और सच्ची शान्ति का स्थान है। इस लिये

१-३. सम्यक्दर्शन (सोनगढ़) पृ० ६-८।

सदा आनन्द ही आनन्द प्राप्त करने के हेतु सारे संसार में व्यवहार रूप से केवल अर्हन्त भगवान् की शरण है।

३—संसार-भावना

दाम बिना निरधन दुखी, तृष्णावश धनवान ।
कहूँ न सुख संसार में, सब जग देखो छान' ॥

यह संसार दुःखों की खान है। संसारी सुख खाँड में लिपटा हुआ जहर है। तलवार की धार पर लगा हुआ मधु है। इन से सच्चे सुख की प्राप्ति मानना ऐसा है, जैसे विष भरे सर्प के मुख से अमृत झड़ने की आशा। जिस प्रकार हिरण यह भूल कर कि कस्तूरी इसकी अपनी नाभि में है उसकी खोज में मारा-मारा फिरता है, इसी प्रकार जीव यह भूल कर कि अविनाशक सुख तो इस की अपनी निज आत्मा का स्वाभाविक गुण है, सुख और शान्ति की खोज संसारी पदार्थों में करता है। यदि संसार में सुख होता तो छयानवें हजार स्त्रियों को भोगने वाला, बत्तीस हजार मुकुट बन्ध राजाओं का सम्राट, जिनकी रक्षा देव करते हैं, ऐसे नौनिधि और चौदह रत्नों का स्वामी, छःखण्ड (समस्त संसार) का प्रजापति चक्रवर्ती राजसुखों को लात मार कर संसार को क्यों त्यागते ? जब संसारी पदार्थों में सच्चा आनन्द नहीं, तो इनकी इच्छा और मोह-ममता क्यों ?

---

१. Pain to the poor without wealth,
And rich in the wit of Desire;
Oh ! Shall ye see amidst the world
Nay joice, but anxiety sphere.
—3rd. Meditation of Worldly Condition.

४—एकत्व-भावना

आप अकेला अवतरै, मरै अकेला होय ।
यों कबहूं इस जीव को, साथी सगा न कोय[1] ॥

मेरी आत्मा अकेली है, अकेले ही कर्म करती है, अकेले ही कर्म का फल भोगती है। स्त्री, पुत्र, मित्र आदि हमारे दुःखों को देख कर चाहे जितना खेद करें, परन्तु जो दुःख हमको हो रहा है उसमें कदाचित् कमी नहीं कर सकते। जब वेदनीय कर्म का प्रभाव कम होगा तभी दुःखों में कमी होगी। चारों घातिया कर्मों का संवर तथा निर्जरा भी आत्मा अकेली ही करके अर्हन्त अथवा अघातिया कर्मों को भी काट कर सिद्ध होकर अविनाशी सुखों का अकेले ही आनन्द लूटती है। जब आत्मा का कोई दूसरा साथी-सङ्गी नहीं है तो संसारी पदार्थों, कषायों और परिग्रहों को अपनाकर अपनी आत्मा को मलीन करके संसारी बन्धन दृढ़ करने से क्या लाभ ?

५—अन्यत्व-भावना

जहां देह अपनी नहीं, तहां न अपनो कोय ।
घर सम्पति पर प्रगट ये, पर हैं परिजन लोय[2] ॥

---

१. Single Cometh ye,
And goeth alone;
None saw a Companion
That followeth the Soul
—4th. Meditation of Solitary Condition of Soul.

२. Whence the body thou not,
How others are thee;
House, wealth and else visible
Are aloof from the unseen Ye.
—5th. Meditation of Soul being seperate from body.

जिस प्रकार म्यान में रहने वाली तलवार म्यान से अलग है उसी प्रकार शरीर में रहने वाली आत्मा शरीर से भिन्न है। आत्मा अलग है, शरीर अलग है, आत्मा चेतन, ज्ञान रूप है, शरीर जड़, ज्ञान शून्य है। आत्मा अमूर्तिक है, शरीर मूर्तिमान है। आत्मा जीव (जानदार) शरीर अजीव (बेजानदार) है। आत्मा स्वाधीन है और शरीर इन्द्रियां द्वारा पराधीन है। आत्मा निज है, शरीर पर है। आत्मा राग-द्वेष, क्रोध-मान, भय-खेद रहित है, शरीर को सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास आदि हजारों दुःख लगे हैं। इस जन्म से पहले भी यही आत्मा थी और इस जन्म के बाद नरक स्वर्ग, अर्हन्त अथवा मोक्ष प्राप्त करने पर भी यही आत्मा रहेगी। आत्मा नित्य है, शरीर नष्ट होने वाला है, आत्मा के चोला बदलने पर यह शरीर यहीं पड़ा रह जाता है। जब प्रत्यक्ष में अपना दिखाई देने वाला यह शरीर ही अपना नहीं, तो स्पष्ट अलहदा दिखाई देनेवाले स्त्री, पुत्र, धन, सम्पत्ति आदि कैसे अपने हो सकते हैं? जब उनका संयोग सदा नहीं रहता तो इनकी मोह-ममता क्या? जिस प्रकार किरायेदार मकान से मोह न रख कर किराये के मकान में रहता है, उसी प्रकार जीव को शरीर का दास न बनकर शरीर से जप-तप करके अपनी आत्मा की मलीनता दूर करके शुद्धचित् रूप होना ही उचित है।

६—अशुचि भावना

दिपै चाम चादर मढ़ी हाड़ पिंजरा देह,
भीतर या सम जगत में और नहीं घिन गेह[१] ॥

१. Encased Within the film of Skin,
Body—a Skeleton of Flesh and bone;
Nowhere is seen so ugly a thing
Throughout the Worldly zone.
—6th Meditation of the Impurity of Body.

आत्मा निर्मल है, इसका स्वभाव परम पवित्र है। क्रोध, मान, माया, लोभ, राग-द्वेष, चिन्ता, भय, खेद आदि १४ अंतरङ्ग तथा स्त्री, पुत्र, दास-दासी, धन सम्पत्ति आदि दस प्रकार के बहिरङ्ग परिग्रहों से शुद्ध है। शरीर महा मलीन है। इसका स्वभाव ही अपवित्र है, इसके ६ द्वारों से हर समय मल-मूत्र, खून, पीप आदि टपकते हैं। अनादि काल से अनेक बार शरीर को खूब धोया, परन्तु क्या कोयले को धोने से उसकी कालिमा नष्ट हो जाती है? यदि मैं अपनी आत्मा को कषायों और परिग्रहों से एक बार भी शुद्ध कर लिया होता तो कर्मरूपी मल को दूर करके हमेशा के लिये शुद्धचित् रूप होजाता। जिन्होंने अपनी आत्मा को सांसारिक पदार्थों की मोह-ममता से शुद्ध कर लिया, वे अजर-अमर हो गये, मोक्ष प्राप्त कर लिया, आवागमन के फंदे से मुक्त होगये। यदि मैं भी पर पदार्थों की लालसा छोड़ दूं तो आठों कर्म नष्ट होकर सहज में अविनाशक सुखों के स्थान—मोक्ष को अवश्य प्राप्त कर सकता हूँ।

७—आस्रव भावना

मोह नींद के जोर, जगवासी घूमें सदा।
कर्म चोर चहु ओर, सरबस लूटें सुध नहीं[१]॥

सारे संसार में मेरा कोई बुरा या भला नहीं कर सकता और न मैं ही किसी दूसरे का बुरा या भला कर सकता हूं। दूसरे का बुरा तब होगा जब उसके पाप-कर्म हृदय में आवेंगे, केवल मेरे

---

१. Heated with various thoughts on Earth,
Thou ever suffered Death and Birth;
Ah! Chains of Desire electrified alround
Plundered ye, and thou knew not.
—7th. Meditation of Enflow of karmas.

चाहने से उसका बुरा नहीं हो सकता। हां, किसी का बुरा चाहने से मेरे कर्मों का आस्रव होकर मेरी आत्मा मलीन हो, मैं स्वयं अपना बुरा कर लेता हूं। इसी प्रकार जब मेरे अशुभ कर्म आवेंगे तो दूसरे के मेरा बुरा न चाहने पर भी मुझे हानि होगी। और शुभ कर्मों के समय दूसरों के बुरा करने पर भी मुझे लाभ होगा। जब कोई मेरी आत्मा का बुरा नहीं कर सकता, तो शत्रु कौन ? और जब किसी दूसरे से मेरी आत्मा का कल्याण नहीं हो सकता तो मित्र कौन ? मैं स्वयं पांच प्रकार के मिथ्यात्व, बारह प्रकार के अव्रत, पचीस प्रकार के कषाय और पन्द्रह प्रकार के योग करके सत्तावन* द्वारों से स्वयं कर्मों का आस्रव कर के अपनी आत्मा के स्वाभाविक गुण, अविनाशक सुख व शान्ति की प्राप्ति में रोड़ा अटकाने के कारण स्वयं अपना शत्रु बन जाता है।

८—संवर-भावना

पंच महाव्रत सचरण, समिति पंच परकार।
प्रबल पंच इन्द्री-विजय, बार निर्जरा सार[१]॥

पांच समिति, पांच महाव्रत, दस धर्म, बारह भावना, तीन गुप्ती, बाईस परिषय जय रूपी सत्तावन* द्वारों से मैं स्वयं आस्रव (कर्मों का आना) का संवर (रोक थाम) कर सकता हूँ और इस प्रकार अपनी आत्मा को कर्म रूपी मल से मलीन होने से बचा सकता हूं। दूसरा मेरी आत्मा का भला-बुरा करने वाला सारे संसार में कोई शत्रु या मित्र नहीं।

---

१. Whence light reflected by the Science Divine,
Broke the Desires unto the dust;
Onward it traced a path to tread
For the Soul to escape from the idea's crust.
8th Meditation of Stoppage of karmas.

* कर्मवाद, खण्ड १।

९—निर्जरा-भावना

ज्ञान दीप तप तेल भर, घर शोधें भ्रम छोर
या विध बिन निकसै नहीं, बैठे पूरब चोर[1] ॥

जिस प्रकार एक चतुर पोत संचालक छेद हो जाने से जहाज में पानी घुस आने पर पहले छेदों को बन्द करता है और फिर जहाज में भरे हुये पानी को बाहर फेंक कर जहाज को हल्का करता है जिससे उसका जहाज बिना किसी भय के सागर से पार हो सके, उसी प्रकार ज्ञानी जीव पहले आस्रव रूपी छेदों को संवर रूपी डाटों से बन्द करके कर्म रूपी जल को आने से रोक देता है, फिर आत्मा रूपी जहाज में पहले से इकट्ठा हुये कर्म रूपी जल को तप रूपी अग्नि से सुखा कर निर्जरा (नष्ट) कर देता है, जिस से आत्मा रूपी जहाज संसार रूपी सागर का बिना किसी भय के पार कर सके।

१०—लोक-भावना

चौदह राजु उतंग नभ, लोक पुरुष संठान ।
तामें जीव अनादितें, भरमत है बिन ज्ञान[2] ॥

---

१. Followed by the lamp of Wisdom,
And sacrifice- as oil lit;
Ran ye- to get out the prison
Of the atomic idea's knit.

—9th. Meditation of Shedding of Karmas.

२. Vast's the magnitude of the Universe,
The Earth midway-the Heaven and Hell;
Where's the soul from time's infinite
Whithered without a scientific cell.

—10th. Meditation of Universe.

यह संसार (Universe) जीव (Soul) अजीव (Matter) धर्म (Medium of motion) अधर्म (Medium of rest) काल (Time) आकाश (Space) छः द्रव्यों (Substances) का समुदाय है[1]। ये सब द्रव्य सत् रूप नित्य हैं, इस लिये जगत भी सत् रूप नित्य, अनादि[2] और अकृत्रिम[3] है, जिसमें ये जीव देव, मनुष्य, पशु, नरक, चारों गतियों में कर्मानुसार भ्रमण करता हुआ अनादि काल से आवागमन के चक्कर में फँस कर जन्म मरण के दुःखों को भोग रहा है। जिस प्रकार धान से छिलका उतर जाने पर उसमें उगने की शक्ति नहीं रहती, उसी प्रकार जीव आत्मा से कर्म रूपी छिलका उतर जाने पर आत्मा चावल के समान शुद्ध हो जाती है, और उसमें जन्म की शक्ति नहीं रहती और जब जन्म नहीं तो मरण और आवागमन कहां? कर्मों का फल भोगने के लिये ही तो जीव संसार में रुल रहा है। जब शुभ अशुभ दोनों प्रकार के कर्मों की निर्जरा होगई तो फल किस का भोगोगे? इस लिए संसार के अनादि भ्रमण से मुक्त होने के लिये निर्जरा से भिन्न और कोई उपाय नहीं।

११—बोधि-दुर्लभ भावना

धन कन कंचन राजसुख, सबहि सुलभकर जान।
दुर्लभ है संसार में एक यथारथ ज्ञान[४]॥

१-३. भगवान् महावीर का धर्मोपदेश खण्ड २।

४ Wealth, gold and the rule.
All are easy to gain;
Hard it's to get in the World
A Scientific mind with a Scientific reign.
—11th. Meditation of the Rarity of Acquiring Enlightenment.

इस जीव को स्त्री, पुत्र, धन, शक्ति आदि तो अनादि काल से न मालूम कितनी बार प्राप्त हुये, राज-सुख, चक्रवर्ती पद, स्वर्गों के उत्तम भोग भी अनेक बार प्राप्त हुये, परन्तु सच्चा सम्यक्ज्ञान न मिलने के कारण आज तक संसार में रुल रहा हूँ। मैंने पर पदार्थों को तो खूब जाना, परन्तु अपनी निज आत्मा को न समझा कि मैं कौन हूँ ? बार-बार जन्म-मरण करके संसार में क्यों भ्रमण कर रहा हूँ ? इससे मुक्त होने और सच्चा सुख प्राप्त करने का क्या उपाय है ? जब संसारी पदार्थों की लालसा में फंस कर उनसे मुक्त होने की विधि पर कभी विचार नहीं किया तो फिर मुक्ति कैसे प्राप्त हो ? इसलिये संसारी दुःखों से छूटने के लिये और सच्ची सुख शान्ति प्राप्त करने के लिये निज-पर के भेद-विज्ञान को विश्वासपूर्वक जानने की आवश्यकता है।

१२—धर्म भावना

जांचे सुरतरु देय सुख, चिंतत चिंता रैन।
बिन जांचे बिन चिंतयें, धर्म सकल सुखदैन[१]॥

अपनी आत्मा का स्वाभाविक गुण ही आत्मा का धर्म है। आत्मा के स्वाभाविक गुण तीनों लोक, तीनों काल में समस्त पदार्थों को एक साथ जानना, सारे पदार्थों को एक साथ देखना, अनन्तानन्त शक्ति और अनन्ता सुख को अनुभव करना है। यह धर्म सम्यक्दर्शन[२], सम्यग्ज्ञान[३], सम्यक्चारित्र[४], रत्नत्रय[५]रूपी है, अहिंसामयी[६] है दशलक्षण[७]स्वरूप है। इनको प्राप्त करने से यह

---

१. Delight in the result when pray thou master,
And dejection is the fruit when anxiety thy fate;
Whence ne ye beg, nor in an anxious mood
'FREEDOM' is sure through 'the Scientific gate'.
12th. Meditation on Dharma (Law).

२-७. भगवान् महावीर का धर्मोपदेश, खण्ड २।

जीव आठों कर्मों को काट कर मोक्ष (Salvation) प्राप्त करके सच्चा सुख और आत्मिक शान्ति प्राप्त कर सकता है।

इस प्रकार बारह भावना भाने से श्री वर्द्धमान महावीर की संसारी पदार्थों से रही-सही मोह-ममता भी नष्ट हो गई। संसार उन्हें महादुःखों की खान और धोखे की टट्टी दिखाई देने लगा। उन्होंने अपने माता-पिता से प्रार्थना की कि जब तक कर्मरूपी इन्धन तप रूपी अग्नि में भस्म नहीं होगा, आत्मिक शान्ति रूपी रसायन की प्राप्ति नहीं हो सकती। इस लिये तप करने के लिये जिन दीक्षा ग्रहण करने की आज्ञा दीजिये। पिता जी ने कहा—"क्षत्री धर्मः परमोधर्म" राज्य करना ही क्षत्रियों का धर्म है। वीर स्वामी ने उत्तर में कहा—"छः खण्ड का राज्य करने वाले भरत सम्राट आज कहाँ है?" और भरत सम्राट पर विजय[1] प्राप्त करने वाले श्री बाहुबलि योद्धा आज कहां? इन्द्र को जीतने वाला[2], कैलाश पर्वत को हिला देने वाला[3] म्लेच्छों और राक्षसों का अधिपति रावण आज कहाँ? और ऐसे महायोद्धा रावण को भी जीतने वाले श्री रामचन्द्र जी आज कहाँ[4]? मैं संसारी उत्तमोत्तम वस्तुओं का धारी नारायण हुआ। छः खण्डों का स्वामी चक्रवर्ती हुआ। परन्तु आवागमन से मुक्त न हो सका। राज सुख तो क्षण भर का है। पृथ्वी पर हरी घास पर ओस के समान क्षणिक है।" पिता जी ने कहा माता को तुम्हारा कितना मोह है? वीर स्वामी ने उत्तर दिया—"मैंने अनादि काल से अनन्तानन्त जन्म धारे, अनेक जन्म के मेरे अनेक माता-पिता थे, वे आज कहां? संसार में कोई ऐसा जीव नहीं है, कि जिस किसी से किसी जन्म में कुछ न कुछ सम्बन्ध न रहा हो।" माता त्रिशला देवी ने कहा कि वन में रीछ, भगेरे, सांप, शेर आदि

---

१. श्री आदिनाथ पुराण।

२-४. पद्मपुराण।

अनेक भयानक पशु निवास करते हैं। कोमल शरीर होने के कारण भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी आदि परिषहों का सहन करना भी बड़ा दुर्लभ है। वीर स्वामी ने बड़े विनयपूर्वक माता जी से निवेदन किया—"आप तो गुणों की खान हो, भली भांति जानती हो कि आत्मा मेरी है, शरीर मेरा नहीं, आत्मा के निकल जाने पर यह यहीं पड़ा रह जाता है, तो इसका क्या मोह ? जिस प्रकार नदियों से सागर और इन्धन से अग्नि कभी तृप्त नहीं होती, उसी प्रकार संसारी सुखों से लालची जीव का हृदय कभी तृप्त नहीं होता ? सच्चा सुख तो मोक्ष में है। मोक्ष की प्राप्ति मुनि-धर्म के बिना नहीं । स्वर्ग के देव भी मुनि धर्म पालन करने के लिये मनुष्य जन्म की अभिलाषा करते हैं। मेरे याद है, जब मैं स्वर्ग में था, तो दूसरे सम्यक् दृष्टि देवों के समान मैंने भी प्रतिज्ञा की थी कि यदि मनुष्य जन्म मिला तो अवश्य मुनि-धर्म ग्रहण करूंगा। कृपा करके मुझे अपने वचन पूरे करने का अवसर दीजिये।"

अपने अवधिज्ञान से श्री वर्द्धमान महावीर का वैराग्य जान, ब्रह्मलोक के बाल ब्रह्मचारी और महान् धर्मात्मा लोकान्तिदेव भगवान् महावीर के वैराग्य की प्रशंसा करने के लिये स्वर्ग लोक से कुण्डग्राम आये[1] और वीर स्वामी को भक्तिपूर्वक नमस्कार कर, उनकी इस प्रकार स्तुति की:—

"तप से महा गन्दा शरीर परम पवित्र हो जाता है, तप मनुष्य जन्म का तत्व है, धन्य है आपने संसार को असार जाना। वह

---

१. यह है भी स्वाभाविक कि जिसे जो वस्तु प्यारी है और जिससे उसकी प्राप्ति होती है, उसके निकट वह स्वतः ही पहुँच जाता है। लौकान्तिक देवगण विरागी आत्मानुभवी होते हैं। तीर्थंकर के महावैराग्य और श्रेष्ठ परिणाम विशुद्धि का रसास्वादन करने के लिये वे कुण्डलपुर में आये। भ०महा०, पृ०८७

कौनसा शुभ दिन होगा कि हम स्वर्ग के देव मनुष्य जन्म धार कर आपके समान संसार को त्याग कर तप करेंगे।"

वीर स्वामी के माता-पिता की भी स्तुति करके लौकांतिदेवों ने उनसे कहा कि आपका बुद्धिमान पुत्र तारनतरण जहाज है, जो स्वयं इस दुख भरे भव सागर से पार होगा और दूसरों को धर्म का सच्चा मार्ग दिखा कर पार उतारेगा। आपके लिये आज से बढ़कर और कौनसा शुभ दिन होगा? धन्य है ऐसे भाग्यशाली माता-पिता को कि जिनके सुपुत्र ने पाप रूपी अन्धकार के नाश करने का दृढ़ निश्चय कर लिया है। देवों के इस प्रकार समझाने से उनका मोहान्धकार नष्ट हो गया और उन्होंने बड़े हर्ष के साथ वीर स्वामी को जिन-दीक्षा लेने की आज्ञा दे दी।

वीर-त्याग

कोई इष्टवियोगी विलखै, कोई अनिष्टसंयोगी।
कोई दीन-दरिद्री दीखै, कोई तन का रोगी॥
किसही घर कलिहारी नारी, भाई कहीं बैरी होवै।
कोई पुत्र बिन झुरै, कोई मरै तब रोवै॥
जो संसार विषै सुख होता, तीर्थङ्कर क्यों त्यागे।
काहे को शिव साधन करते, संयम सों अनुरागे॥

—चक्रवर्ती सम्राट श्री वज्रनाभि : वैराग्यभावना

जहाँ रावण जैसा विद्याधरों का स्वामी एक स्त्री की अभिलाषा में तीन खण्ड का राज्य नष्ट करदे, भीष्मपितामह के पिता जैसे वीर कामवासना के वश होकर एक मछियारे की नीच जाति कन्या से विवाह करालें, जहां मगध देश के सम्राट श्रेणिक बिम्बसार के पिता उपश्रेणिक काम के वश होकर, यमदण्ड नाम के जंगली भील की पुत्री तिलकमती से विवाह करालें, जहां विश्वामित्र ऋषि जैसे

महा तपस्वी का तप मेनका जैसी साधारण स्त्री डिगादे वहां श्री वर्द्धमान् महावीर कामरूपी अग्नि को वश करने में महावीर रहे।

भरत को जिस राज-पाट के दिलाने के लिये माता केकयी ने श्रीरामचन्द्र जी जैसे योग्य, होनहार राजकुमार को चौदह वर्ष के लिये वनों में निकलवा दिया, जिस राज-पाट की प्राप्ति के लिये दुर्योधन ने अपने भाइयों तक के साथ महाभारत जैसा भयानक युद्ध करके भारत के प्रसिद्ध योद्धाओं का अन्त कर दिया, जिस राजपाट की प्राप्ति के लिये बनवीर ने मेवाड़ के राणा उदयसिंह को मरवाने के लिये हजारों यत्न किये, जिस राज-पाट के लिये मोहम्मद गौरी ने भारत पर सत्रह बार आक्रमण किया, जिस राज-पाट की लालसा में सिकन्दर महान् ने लाखों यूनानी वीरों को मरवा डाला, जिस राज-पाट के हेतु औरङ्गजेब ने अपने पिता शाहजहां को बन्दीगृह में डाल दिया, उसी राज-पाट को श्री वर्धमान महावीर ने एक सच्चा अधिकारी और माता-पिता की अभिलाषा के बावजूद दम के दम में सहर्ष त्याग दिया।

श्री वर्द्धमान महावीर ने जिन दीक्षा लेने से पहले अपने खजाने का मुंह खोल कर स्पष्ट आज्ञा दे दी थी कि अमीर हो या गरीब, जिसका जो जी चाहे लेजावे. चुनाँचे तीन अरब अठासी करोड़ अस्सी लाख अशर्फियों की मालयत की सम्पत्ति अनाज आदि दान देकर उन्होंने जनता की सात पुश्तों तक की जरूरतों को पूरा कर दिया था[1]।

खेत (जमीन) मकानात, चांदी, सोना, पशु-धन, अनाज, नौकर, नौकरानी, वस्त्र, बर्तन, दस प्रकार की बाह्य तथा क्रोध,

---

१. मास्टर रखाराम मोदगल, आत्मानन्द ए० बी० स्कूल लुधियाना।

वीर-वैराग्य

मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, घृणा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, मिथ्यात्व, चौदह अंतरङ्ग, समस्त २४ परिग्रहों का त्याग करके २९ साल तीन महीने २० दिन[1] की भरी जवानी में सम्पूर्ण राज-पाट ठुकराकर और इन्द्रिय-सुखों से मुंह मोड़कर अपने आत्मोत्कर्ष को साधने और दुखियों की सच्ची सेवा करने के लिये श्री वर्द्धमान महावीर ने ईसामसी सन् से ५६९ वर्ष पूर्व मंगसिर बदी दशमी के दिन[2] संध्या समय चन्द्रप्रभा[3] नाम की पालकी में बैठ कर ज्ञातखण्ड[4] नाम के वन में अपने सम्पूर्ण वस्त्र, आभूषण आदि उतार कर नग्न दिगम्बर[5] होकर जैन साधु

---

१. धवल और जय धवल तथा भगवान् महावीर और उनका समय, पृ० १३।

२. अनेकान्त, वर्ष ११, पृ० ९६-९९।

३-४. पं० खूबचन्द शास्त्री : महावीर चरित्र (सूरत) पृ० २५७।

५. Mahavira discarded cloth.

—Illustrated Weekly. (March 22, 1953) P. 16.

(ii) विस्तार तथा नग्नता की विशेषता के लिए 'बाइस परिषयजय' में नग्नता नाम की छठी परिषह के फुटनोट, खण्ड २।

(iii) श्वेताम्बरीय 'कल्पसूत्र' में कथन है कि यद्यपि भ० महावीर दिगम्बर वेष में रहे थे, परन्तु इन्द्र का दिया हुआ 'देवदूष्य' वस्त्र धारण करते थे। दीक्षा के दूसरे वर्ष में उन्होंने उस का भी त्याग कर दिया था और वे अचेलक (नग्न) हो गए थे। इस पर पं० नाथूराम जी प्रेमी लिखते हैं। "भगवान् के समयवर्ती आजीवक आदि सम्प्रदाय के साधु भी नग्न ही रहते थे, पीछे जब दिगम्बरी वृत्ति साधुओं के लिए कठिन प्रतीत होने लगी होगी और देश कालानुसार उन के लिए वस्त्र रखने का विधान किया गया होगा, तब यह 'देवदूष्य' की कल्पना की गई होगी। भगवान् रहते थे नग्न, पर लोगों को वस्त्र सहित ही दिखलाई देते थे, श्वेताम्बर सम्प्रदाय के इस अतिशय का फलितार्थ यही है कि भगवान् नग्न रहते थे।" (जैन हितैषी बम्बई भा० १३)

—भ० महावीर (कामताप्रसाद) पृ० ८६।

होगये[१]। उन्होंने अपने केशों का भी लौंच कर डाला और २८ मूलगुण[२] ग्रहण करके पत्थर की शिला पर "ॐ नमः सिद्धेभ्यः"[३] कह कर उत्तर[४] की ओर मुंह करके ध्यान में लीन होगये। जिसको अपने अवधिज्ञान से विचार कर स्वर्गों के देवों ने श्री वर्द्धमान महावीर का तप कल्याणक बड़े उत्साह से मनाया। इसी ज्ञातखण्ड नाम के वन में तपस्या करते हुये उनको चौथे प्रकार का मनःपर्यय ज्ञान भी प्राप्त होगया था।

वीर का प्रथम आहार

जिस प्रकार बड़ का छोटा सा बीज बो देने से भी बहुत बड़ा वृक्ष उत्पन्न हो जाता है उसी प्रकार पात्र को दिया हुआ थोड़ा सा भी दान बहुत उत्तम तथा मनवांछित फल की उत्पत्ति करनेवाला है। दान के फल से मिथ्यादृष्टि को भोग-भूमि के सुख मिलते हैं और सम्यग् दृष्टि स्वर्गों के सुख भोगता हुआ परम्परा से मोक्ष पाता है। तीर्थङ्कर भगवान का प्रथम पारण करने वाला तद्भव मोक्षगामी होता है।

—श्रावक-धर्म-संग्रह पृ० १७१।

---

१ Lord Mahavira being a 'genius Suyambuddha' required no teacher. Paying obeisance to 'Siddha', Lord Mahavira Himself observed the Dharma of Sramanas.

(a) Uttra Puran. P. 610.

(b) Jain Suttra Vol. I. P. 76-78.

(c) Jain Hostel Magzine, Allahabad (January 1938) P.9.

२. श्रावक-धर्म-संग्रह (वीर सेवा मन्दिर सरसावा) पृ० २५।

३-४. Mahavira took off even cloth and became absobutely naked and uncovered. He turned to the North and uttering "Salutation to the Siddhas" uprooted with his own hands five tufts of hair from his head and adopted the order of homeless monks.

—Prof. Dr. H.S. Bhattacharya: Lord Mahavira. P.24.

महावीर स्वामी का प्रथम आहार मगध देश के कुल ग्राम के सम्राट कुल[1] के यहाँ ७२ घण्टे[2] के उपवास के बाद हुआ।

जो निर्ग्रन्थ मुनियों और सच्चे साधुओं को भक्तिपूर्वक विधि के साथ शुद्ध आहार देते हैं और जिन के ऐसे नियम हैं कि मुनि के आहार का समय गुजर जाने पर भोजन करेंगे, उनके पाप इस प्रकार धुल जाते हैं जिस प्रकार जल से लहू धुल जाता है[3]। राज-सुख और इन्द्र-पद की प्राप्ति सहज से हो जाती है। संसारी सुख तो साधारण बात है, भोग भूमि के मनोवाञ्छित फल भी आप से आप मिल जाते हैं। सहस्रभट सुभट ने नियम ले रखा था कि सम्यग्दृष्टि साधुओं के आहार का समय जब गुजर जाया करेगा तब भोजन किया करूंगा। इस नियम का मीठा फल यह हुआ कि वह कुबेरकान्त नाम का इतना भाग्यशाली सेठ हुआ कि जिसकी देव भी सेवा करते थे। पिछले जन्म में इच्छारहित साधुओं को आहार कराने के कारण ही हरिषेण छः खण्ड का स्वामी चक्रवर्ती सम्राट हुआ। जब त्यागियों और साधुओं के आहार कराने से इतना पुण्य-लाभ है, तो जिस के घर तीर्थंकर भगवान् का आहार हो उसके पुण्य का क्या ठिकाना? स्वर्ग तो उसी भव में मिल ही जाता है और मोक्ष जाने की ऐसी छाप लग जाती है कि थोड़े ही भव धारण करके वह अवश्य मोक्ष प्राप्त कर लेता है। वीर स्वामी के आहार को अपने अवधिज्ञान से जान कर स्वर्ग के देवों तक ने भी पंच अतिशय किये।

---

१. उत्तर पुराण, पृ० ६११।

२. बं० सूरजभान वकील : महावीर भगवान् पृ० ४।

३. गृहकर्मणापि निचितं कर्म विमार्ष्टि खलु गृहविमुक्तानां।
अतिथीनां प्रतिपूजा रुधिरमलं धावते वारि॥ ११४॥
—रत्नकरण्डश्रावकाचार।

वीर-चरण-रेखा

जैसें योद्धाओ में वासुदेव, फूलों में अरविन्द कमल, क्षत्रियों में चक्रवर्ती श्रेष्ठ हैं। वैसे ही ऋषियों में श्री वर्धमान महावीर प्रधान हैं, कि जिनके चरणों में अपना सर झुकाने के लिए स्वर्ग के इंद्र और संसार के चक्रवर्ती लालायित रहते हैं। —सूत्र कृताङ्ग

सोने की पालिकी में चलने वाले राजकुमार वर्द्धमान आहार करने के बाद नंगे पांव पैदल जङ्गल को वापिस लौट आये और एक वृक्ष के नीचे पद्मासन लगाकर ध्यान में लीन हो गए। थोड़ी देर बाद उसी रास्ते से पुष्पक नाम का सामुद्रिक शास्त्री गुजरा तो उसने वीर स्वामी के चरणों की रेखा देखकर अपने सामुद्रिक ज्ञान से जान लिया कि यह चरण किसी बहुत भाग्यशाली और प्रतापी सम्राट के हैं, उसने विचार किया कि अवश्य कोई महाराजा रास्ता भूल कर इस जङ्गल में आ घुसा। यदि मैं उसको सही रास्ता बता दूं तो वे मुझे इतना धन देंगे कि मैं सारी उम्र की जीविका की चिन्ता से मुक्त हो जाऊँगा। यह सोचकर वह पांव के चिन्हों के साथ-साथ चलता हुआ उसी स्थान पर पहुँच गया कि जहां वीर स्वामी ध्यान में मग्न थे। वह आगे को चलने लगा, परन्तु पांव के निशान आगे न दीखे। वह केवल उस वृक्ष तक ही थे। सामुद्रिक शास्त्री को वहां कोई सम्राट नजर न पड़ा। वीर स्वामी को साधारण साधु जान कर विचार किया कि शायद मेरी समझ में कुछ अन्तर रह गया हो, उसने वहीं अपनी पुस्तक को बगल से निकाल कर वीर स्वामी की रेखाओं से मिलान किया तो वह आश्चर्य करने लगा कि पुस्तक के अनुसार तो ये बड़े भाग्यशाली सम्राट होने चाहियें, परन्तु यहाँ तो इनके पास लङ्गोटी तक भी नहीं। उसने सोचा कि मेरी यह पुस्तक

गलत है जिस तरह आज इससे धोखा हुआ आइन्दा भी भय है, इस लिये वह अपनी पुस्तक को फाड़ने लगा। जो लोग वीर स्वामी के दर्शनों को आये थे उन्होंने पूछा, पण्डित जी यह क्या? उसने कहा, "मेरी पुस्तक के अनुसार ये चरणरेखायें किसी प्रतापी महाराजा की होनी चाहियें, परन्तु उनके स्थान पर मैं ऐसे साधारण मनुष्य को देख रहा हूँ कि जिस बेचारे के पास एक लत्ता तक भी नहीं, मेरा ग्रन्थ ग़लत मालूम होता है, इस के रखने से क्या लाभ"? लोगों ने समझाया कि पण्डित जी! जिनको आप साधारण भिक्षुक समझते हो ये तो महाराजा सिद्धार्थ के भाग्य-शाली राजकुमार हैं, जिन्होंने राज्य काल में किसी भी याचक को खाली हाथ नहीं लौटाया और अब एक ऐसा असाधारण दान देने के लिये तैयार हुए हैं कि जिस को पाकर संसार के समस्त प्राणी सदा सुख और शान्ति अनुभव करेंगे। यह सुन कर पंडित जी बड़े प्रसन्न हुए और वीर स्वामी को भक्तिपूर्वक नमस्कार किया[१]।

बाइस परिषहजय

"A real Conqueor is the man that having withstood all pains and sorrows has got over them, and take with him high up, above all worldly miseries, pure and unsoiled his most precious treasure—Soul."

—Dr. Albert Poggi : Mahavira's Adrash Jiwan. P. 16.

जैसे ज्ञानी मनुष्य क़र्जे की अदायगी से अपनी जिम्मेवारी में कमी जान कर हर्ष मानता है वैसे ही श्री वर्धमान महावीर दुःखों और उपसर्गों को अपने पिछले पाप कर्मों का फल जान कर

---

१. भगवान् महावीर का आदर्श जीवन, पृ० २४४।

उन की निर्जरा के लिये २२ प्रकार की परिषह बिना किसी भय, खेद तथा चिन्ता के सहन करते थे:—

१. भूख परीषह—एक दिन भी भोजन न मिले तो हम व्याकुल हो जाते हैं, परन्तु श्री वर्द्धमान महावीर ने बिना भोजन किये महीनों तक कठोर तप किया। आहार के निमित्त नगरी में गए, विधिपूर्वक शुद्ध आहार अन्तराय रहित न मिला तो बिना आहार किये वापस लौट आये और बिना किसी खेद के ध्यान में मग्न होगये। चार पांच रोज के बाद फिर आहार को उठे फिर भी विधि न मिलने पर बिना आहार वापस आकर फिर ध्यान में लीन होगये। इस प्रकार छः छः[1] महीने तक आहार न मिलने पर वे इस को अन्तरायकर्म का फल जान कर कोई शोक न करते थे।

२. प्यास की परीषह—गर्मियों के दिन, सूरज की किरणों से तपते हुए पहाड़ों पर तप करने के कारण प्यास से मुंह सूख रहा हो, तो भी मांगना नहीं, आहार कराने वाले ने आहार के साथ बिना माँगे शुद्ध जल दे दिया तो ग्रहण कर लिया वरन् वेदनीय कर्म का फल जान कर छः छः महीने तक पानी न मिलने पर भी कोई खेद न करते थे।

३. सर्दी की परीषह—भयानक सर्दी पड़ रही हो, हम अङ्गीठी जला कर, किवाड़ बन्द करके लिहाफ आदि ओढ़कर भी सर्दी-सर्दी पुकारते हों, पोह-माह की ऐसी अन्धेरी रात्रियों में नदियोंके किनारे ठण्डी हवा में वर्द्धमान महावीर नग्नशरीर तप में लीन रहते थे। और कड़ाके की सर्दी को वेदनीय कर्म का फल जान कर सरल स्वभाव से सहन करते थे।

---

१. भगवान महावीर का आदर्श जीवन, पृ० ३३१।

४. गर्मी की परीषह—गर्म लू चल रही हो, जमीन अङ्गारे के समान तप रही हो, दरिया का पानी तक सूख गया हो हम ठण्डे तहखानों में पङ्खों के नीचे खसखस की टट्टियों में बर्फ के ठण्डे और मीठे शर्बत पी कर भी गर्मी-गर्मी चिल्लाते हों, उस समय भी श्री वर्द्धमान सूरज की तेज किरणों में आग के समान तपते हुये पर्वतों की चोटियों पर नग्न शरीर बिना आहर पानी के चरित्र मोहिनीय कर्म को नष्ट करने के हेतु महाघोर तप करते थे।

५. डांस व मच्छर आदि की परीषह—जहां हम मच्छरों तक से बचने के लिये मशहरी लगाकर जालीदार कमरों में सोते हैं, यदि खटमल, मक्खी, मच्छर, कीड़ी तक काट ले तो हा-हा कार करके पृथ्वी सिर पर उठा लेते हैं, वहां वर्द्धमान महावीर सांप, बिच्छु, कानखजूरे, शेर, भगेरे तक की परवाह न करके भयानक वन में अकेले तप करते थे। महाविष भरे सर्पों ने काटा, शिकारी कुत्तों ने शरीर को नोच दिया, शेर, मस्त हाथी आदि महाभयानक पशुओं ने दिल खोल कर सताया, परन्तु वेदनीय कर्म का फल जान कर महावीर स्वामी समस्त उपसर्ग को सहन करके ध्यान में लीन रहते थे।

६. नग्नता परीषह—जहां नष्ट होने वाले शरीर की शोभा तथा विकारों की चंचलता को छिपाने[1] के लिये हम अनेक

---

१. जब तक बालक रहता है उसमें लज्जा भाव उत्पन्न नहीं होता लेकिन जब बड़ा हो जाता है तो लज्जा का अनुभव करने लगता है। यह लज्जाभाव ही है कि जो मनुष्य को नग्न रहने से रोकता है कपड़ा पहिनने से हम अपना शरीर नहीं ढांपते बल्कि दोषों को ढांपते हैं। अगर कोई मनुष्य ऐसा वीर है कि अपनी इन्द्रिय की चंचलता को वश में रखे तो उसे कपड़ा पहिनने की आवश्यकता नहीं। दिगम्बर (नग्न) रहना शुद्ध आत्मा होने की दलील है।
—श्री पं० रामसिंह जी सहायक संपादक दैनिक हिन्दुस्तान नई देहली, हिन्दी जैन गजट २८ अक्तूबर १९४३ पृ० २२।

प्रकार के सुन्दर वस्त्र पहिनते हैं वहाँ श्री वर्द्धमान महावीर ने अपनी इन्द्रियों तथा मन पर इतना काबू पा रखा था कि उन्हें लङ्गोटी तक की भी आवश्यकता न थी[1]। चरित्र मोहनीय कर्म का नाश करने के हेतु वे कतई नग्न रहते थे[2]।

अत्यन्त रूपवती स्त्री को देखकर भी दिगम्बर निर्ग्रंथ मुनियों को विकार उत्पन्न नहीं होता[3]। बड़े-बड़े बाजोरों तक में सिंह के समान नग्न चलते फिरते हैं[4]। इनको बहुत ही सम्मान प्राप्त है[5]।

---

१. यूरपीन यात्री मार्को पोको (Marco Pole) दक्षिण भारत में दिगम्बर नग्न मुनि को देख कर अचम्भे में रह गया, उसने नंगे रहने का कारण पूछा, उत्तर में मुनिराज ने कहा, हम दुनिया में नंगे ही आए हैं. इन्द्रिय विकार हमारे हृदय में उत्पन्न नहीं होता। संसार की समस्त स्त्रियां हमारी माताएँ, बहिनें और पुत्रियां हैं। जिस प्रकार एक बालक अपनी माता-बहिनों के सामने नग्न रहने में लज्जा नहीं मानता और जिस प्रकार तुम हाथ, चेहरा को नग्न रखने में लज्जा नहीं मानते, उसी प्रकार हम नग्न रहने में लज्जा नहीं करते।

—Marco Pole. Vol. II P. 366.

२ फुटनोट नं० १, पृ० ३०० ।

३. "Although the women reach them out of devaotion, you can not see in them (Jain Naked Sadhus) any sign of sensuality, but on the contrary you would say they are absorbed in abstraction."

—J. B. Tavernier's Travels, P. 291.

४. I have seen Jain Sadhus walking stark naked through a large town; Women and girls looking at them without any more emotion than may be created, wnen a hermit passes.

—Dr. Bernier's Travels in the Mogul Empire P. 317.

५. Jain naked saints held the highest honour. Every wealthy house is open to them even the apartments of the women. —McCrindle's Ancient India. P. 71.

ऋग्वेद[1], यजुर्वेद[2], उपनिषद[3], शिवपुराण[4], कूर्मपुराण[5], पद्मपुराण[6]
रामायण[7], विवेकचूड़ामणि[8], बौद्ध[9], सिख[10], मुसलमान[11], ईसाई[12]

१. "मुनयो वातरशनाः पिशंगा वसते मलाः ।
वातस्यानुध्राजियन्ति यद्देवासो अविक्षित ॥,'
—ऋग्वेद मंडल १०, ११, १३६ ।

२. यजुर्वेद में भगवान् महावीर की उपासना, खण्ड १ पृ० ४२ ।

३. उपनिषद ने नग्न दिगम्बर त्यागियों के गुण, खण्ड १, पृष्ठ ४४ ।

४. "मयूरचन्द्रिका पुञ्जपिच्छकां धारयन् करे । —शिवपुराण, १०-८०-८२ ।

५. कूर्म पुराण उपरिभाग ३७-७ ।

६. पद्मपुराण-पाताल खण्ड ७२-३३ ।

७. बाल्मीक रामायण बाल काण्ड, स्वर्ग १४ श्लोक १२ ।

८. वस्त्रं क्षालय-शोषणादिरहितं दिग्वास्तु शय्या मही,
संचारो निगमान्तवीथिषुविदां क्रीड़ा परे ब्रह्मणि ॥
—शंकराचार्य विवेक चूड़ामणिः

९. Dr. Bimal Charan Law : Historical Gleanings. P. 93-95.

१०. Willson's "Religious Sects of the Hindus." P. 275.

११. (i) Abdul Kasim Gilani discarded even lion strip and remained 'Completely Naked'. —Religious Life & Attitude in Islam P. 203

(ii) Higher Saints of Islam called Abdals remained perfectly naked.—Mysticism and Magic in Turkey.

(iii) जलालुद्दीन रूमी : अइलामुल ऐ मनजुम पृ० २६४-३८४ ।

(iv) इसी ग्रन्थ का पृ० १०३, १०४ ।

(v) Jaurnal of Royal Asiatic Society Vol. IX. P. 232.

१२. बाइबिल (Bible) में लिखा है कि उसने अपने कपड़े उतार दिये थे और हजरत 'सैमुयल' (Samuel) को भी नङ्गा रहने की शिक्षा दी उनके बिलकुल नग्न होने और लङ्गोटी तक भी त्याग देने पर लोगों ने पूछा क्या ये भी पैगम्बर हैं ? —Samuel XIX P. 24.

यहूदियों[1], आदि[2] में भी इनका उल्लेख है। गांधीजी को नग्न स्वयं प्रिय था[3]। महाराजा भर्तृहरि जी नग्न होने की इच्छा रखते थे[4]। स्वामी रामकृष्ण परमहंस के सम्बन्ध में लिखा है कि वे बालक के समान दिगम्बर हैं[5]।

७. अरति परीषह—वर्द्धमान् महावीर इष्टवियोग और अनिष्ट संयोग को चारित्र मोहनीय का फल जान कर किसी से राग-द्वेष न रखते थे।

८. स्त्री परीषह—जहां किसी सुन्दर स्त्री को देख कर हमारे में विकार उत्पन्न होजाते हैं, परन्तु वीर स्वामी को स्वर्ग की महा सुन्दर देवाँगनाओं तक ने लुभाना चाहा, तो भी वे सुमेरु पर्वत के समान निश्चल रहे। सूरदास जो वीर थे जिन्होंने स्त्रियों को देखकर हृदय में चंचलता उत्पन्न होने के कारण अपनी दोनों आँखें नष्ट करलीं, परन्तु वीर वास्तव में महावीर थे कि जिन्होंने आँखें होने तथा अनेक निमित्त कारण मिलने पर भी मन में विकार तक न आने दिया।

९. चर्या परीषह—जहाँ हम चार कदम चलने के लिये सवारी ढूँढते हैं, वहाँ सोने की पालकी में चलने वाले और मखमलों के गद्दों में निवास करने वाले वर्द्धमान महावीर पथरीले और कांटों-दार मार्ग तक में तथा आग के समान तपती हुई पृथ्वी पर नंगे पाँव पैदल ही विहार करते थे।

---

१. यहूदियों में भी मैंराज का विश्वास करने वाले जो पहाड़ों पर आबाद हो गये थे लंगोटी तक त्याग कर बिलकुल नग्न रहते थे।

—Ascention of Ishaih. P. 32.

२. Lecky's History of European Monks. Chapter IV.

३. जैन शासन (भारतीय ज्ञानपीठ काशी) पृ० १००।

४. महाराजा भर्तृहरि की दिगम्बर होने की भावना, खण्ड १ पृ० ७०।

५ Reminiscences of Ramkrishna" Vol I. P 310.

१०. आसन परीषह—जहां हम एक आसन थोड़ी देर भी सरलता से नहीं बैठ सकते, भगवान महावीर महीनों-महीनों एक आसन एक ही स्थान पर तप में लीन रहते थे। जिस समय तक की प्रतिज्ञा कर लेते थे अधिक से अधिक उपसर्ग और कष्ट आजाने पर भी वे आसन से न डिगते थे।

११. शय्या परीषह—जहां हम पलङ्ग के जरा भी ऊँचे-नीचे हो जाने पर व्याकुल हो जाते हैं। सोने-चांदी के पलँगों, रेशमी और मखमली गद्दों तथा सुगन्धित पुष्पों की सेज पर सोने वाले वर्द्धमान महावीर कठोर भूमि पर बिना किसी वस्त्र तथा सेजों आदि के नग्न शरीर वेदनीय कर्म को नष्ट करने के हेतु रात्रि को भी ध्यान में मग्न रहते थे।

१२. आक्रोश परीषह—जहां हम साधारण बातों पर क्रोधित होजाते हैं, वहां बिना किसी कारण के फबतियां उड़ाये जाने और कठोर शब्द सुनने पर भी वर्द्धमान महावीर किसी प्रकार का खेद तक न करते थे।

१३. वध परीषह—दुष्टों ने अज्ञानता, ईर्षा तथा उनके तप की परीक्षा के वश श्री वर्द्धमान महावीर को लोहे की जंजीरों से जकड़ दिया[1], लाठियों से मार-पीट की[2], उनके दोनों पांवों के बीच में चुल्हे के समान अग्नि जलाकर खीर पकाई[3], दोनों कानों में कीलें ठोक दीं[4], परन्तु श्री वर्द्धमान महावीर इतने दयालु और क्षमावान् थे कि तप के प्रभाव से इतनी ऋद्धियां प्राप्त हो जाने पर भी कि वे इन सब कष्टों को सहज ही में नष्ट करदें, वेदनीय कर्मों की निर्जरा के हेतु, समस्त उपसर्गों को वे सरल हृदय से सहन करते थे।

१-२. उर्दू मिलाप, महावीर एडिशन (२६ अक्तूबर १२४०) पृ० ११, ४६, ५३।

३-४. जैन ग्रन्थमाला (रामस्वरूप जैन स्कूल नाभा) भा० १ पृ० ५७।

१४. याचना परीषह—अधिक से अधिक कष्ट, भूख प्यास होने पर भी श्री वर्द्धमान महावीर किसी से कोई पदार्थ, मांगना तो एक बड़ी बात है, मांगने की इच्छा तक भी न करते थे।

१५. अलाभ परीषह—अनेक बार नगरी में आहार निमित्त जाने पर भी भोजनादि का लाभ विधि-अनुसार न हुआ तो अन्तराय कर्म रूपी कर्जे की अदायगी जान कर खेद तक न करते थे।

१६. रोग परीषह—जहां हम थोड़े से भी रोग हो जाने पर महा दुःखी हो जाते हैं। श्री वर्द्धमान जी महाभयानक रोग उत्पन्न हो जाने पर भी उसे वेदनीय कर्म का फल जान कर औषधि की इच्छा तक न करते थे।

१७. तृणस्पर्श परीषह—नंगे पाँव चलते हुए कङ्कर या कांटादि भी चुभ जाय तो श्री वर्द्धमान महावीर उसे भी शान्तिचित्त सहन करते थे।

१८. मल परीषह—शरीर पर धूल लग जाने या किसी ने राख, मिट्टी, रेत आदि उन के शरीर पर डाल दिया तो भी उसका खेद न करके श्री वर्द्धमान तप में लीन रहते थे।

१९. अविनय परीषह—जहां हम संसारी जीव थोड़ा सा भी आदर सत्कार में कमी रह जाने पर महा दुःखी होते हैं, वीर स्वामी चार ज्ञान के धारी महा ज्ञानवान्, महाधर्मात्मा तथा महातपस्वी और ऋद्धियों के स्वामी होने पर भी कोई उन का सत्कार न करे तो चारित्र मोहनीय कर्म का फल जान कर वे किसी प्रकार का खेद न करते थे।

२० प्रज्ञा परीषह—जहां हम थोड़ी सी बात पर भी अधिक मान कर बैठते हैं वहां महाज्ञानवान्, महातपस्वी, महाउत्तम कुल

के शिरोमणी, होने पर भी श्री महावीर स्वामी किसी प्रकार का मान न करते थे।

२१. **अज्ञान परीषह**—वर्षों तक कठोर तपस्या करने पर भी केवल ज्ञान (Omniscience) की प्राप्ति न होने से वे इस की प्राप्ति में शंका न करते थे बल्कि यह विश्वास रखते हुए कि मेरा ज्ञाना-वर्णी कर्मरूपी इंधन इतना अधिक है कि यह कठोर तपस्या भी उसको अभी तक भस्म न कर सकी, अपने कर्मों की निर्जरा के लिये और अधिक कठोर तप करते थे।

२२. **अदर्शन परीषह**—जहां हम थोड़ा सा भी धर्म पालने से अधिक संसारी सुखों की अभिलाषा करते हैं और उन की तुरन्त प्राप्ति न होने पर उस में शंका करने लगते हैं, वहां श्री वर्द्धमान महावीर बारह वर्ष तक सच्चा सुख न मिलने से धर्म के महत्व में शंका न करते थे। उन्हें विश्वास था कि कर्मों का नाश हो जाने पर अविनाशक सुखों की प्राप्ति आप से आप अवश्य हो जायेगी।

वीर-उपवास

भगवान महावीर ने बारह वर्ष से भी अधिक महाकठिन तप किया। इस दीर्घकाल में उन्होंने केवल ३४६ दिन ही पारण किया तथा सभी उपवास निर्जल ही थे।

पं० अनूपशर्मा : वर्द्धमान (ज्ञानपीठ काशी) पृ० ३०।

वीर स्वामी ने सांसारिक पदार्थों का राग-द्वेष और मोह-ममता तो त्याग ही दी थी, परन्तु उन्होंने शरीर का मोह भी इतना त्याग दिया था कि आहार तक से भी अधिक रुचि न थी। आहार के लिए नगरी में जाने से पहले ऐसी प्रतिज्ञा[1] कर लेते थे कि यदि अमुक विधि से आहार पानी मिला तो ग्रहण करेंगे वरन्

---

१. वृत्तिपरिसंख्यान नाम का तीसरा बहिरङ्ग तप।

नहीं। वे अपनी इस कठिन प्रतिज्ञा को किसी के सन्मुख भी न करते थे। अनेक बार ऐसा हुआ कि तीन-तीन, चार-चार दिन के बाद आहार को उठे और राजा, प्रजा सभी महास्वादिष्ट भोजन कराने को उनकी प्रतीक्षा में अपने दरवाजों पर खड़े रहे परन्तु विधिपूर्वक आहार न मिलने पर वह बिना आहार जल लिए जङ्गल में वापस लौट आये। ऐसे अवसरों पर अपने अन्तराय कर्म का फल जान कर हृदय में खेद किये बिना ही वह फिर तप में लीन हो जाया करते थे।

एक बार कोशाम्बरी[1] के जङ्गल में महावीर स्वामी तप कर रहे थे कि उन्होंने प्रतिज्ञा की—आहार किसी राज कन्या के हाथ से लूंगा, उस राज कन्या का सिर मुंडा हुआ हो, वे दासी की अवस्था में कैद हो और आहार में कोदों के दाने[2] दे। देखिये श्री वर्द्धमान महावीर की प्रतिज्ञा कितनी कठोर हैं। कन्या राजकुमारी हो परन्तु उसकी अवस्था दासी की हो और सिर मुंडा हो, यदि किसी एक बात की भी कमी रह गई तो आहार-पानी दोनों का त्याग। वीर स्वामी अनेक बार आहार को उठे परन्तु विधि पूर्वक आहार न हो सका। यहां तक कि आहार-पानी लिये उन्हें छः मास हो गये।

चन्दना-उद्धार

विशाली के राजा चेटक की एक पुत्री चन्दना देवी नाम की अपनी सखियों के साथ बागीचे में क्रीड़ा कर रही थी। उसकी सुन्दरता को देख, एक विद्याधर उसे जबर्दस्ती उठा कर लेगया और अपने साथ विवाह करना चाहा। शीलवती चन्दना जी उसके वश में न आई तो उसने उसे एक *भयानक जङ्गल में छोड़ दिया जहाँ*

---

१. इलाहाबाद का प्राचीन नाम।

२. °० परमानन्द शास्त्री।

'एक व्यापारी का काफला पड़ा था । चन्दनाजी ने उस व्यापारी से वैशाली का रास्ता पूछा । व्यापारी वैशाली के बहाने उनको अपने घर ले गया और उनके मनोहर रूप पर मोहित होकर उनसे विवाह कराने को कहा । चन्दना जी महाशीलवती थी वह कब किसी के बहकावे में आ सकती थी ? व्यापारी आसानी से अपना कार्य सिद्ध होता न देख कर जबरदस्ती करने लगा, चन्दना देवी ने उसे डाटा । व्यापारी ने कहा कि क्या तुम भूल रही हो कि यह मेरा मकान है, यहां तुम्हारी कौन सहायता करेगा ? चन्दनाजी ने चोट खाये हुए शेर के समान दहाड़ते हुए कहा कि जरा भी बुरी निगाह से देखा तो तुम्हारी दोनों आँखें निकाल लूंगी । व्यापारी चन्दना जी पर जबरदस्ती करने को उठा ही था कि चन्दना जी के शीलव्रत के प्रभाव से एक भयानक देव प्रकट हुआ'[1] । उसने व्यापारी की गर्दन पकड़ली और कहा, जालिम ! अकेली स्त्री पर इतना अत्याचार ? बता तुझे अब क्या दण्ड दूं ? व्यापारी देव के चरणों में गिर पड़ा और गिड़गिड़ाकर क्षमा मांगने लगा। देव ने कहा, "तूने हमारा कुछ नहीं बिगाड़ा तो हमसे क्षमा कैसी ? जिस शीलवन्ती को तू सता रहा था उसी से क्षमा माँग" ! व्यापारी चन्दना जी के चरणों में गिर पड़ा और बोला, बहन ! मैं न पहिचान सका कि आप इतनी महान् शीलवती हो । मुझे क्षमा करो । मैं अभी आपको वैशाली छोड़ कर आता हूं । व्यापारी आखिर व्यापारी ही था, देव के भय से वह चन्दना जी को लेकर वैशाली की ओर तो चल दिया, परंतु रास्ते में विचार किया कि जब यह अनमोल रत्न मेरे हाथों से जा ही रहा है, तो बेचकर इसके दाम क्यों न उठाऊँ ? वैशाली के बजाय वह कौशाम्बी नाम के नगर में पहुंचा । उस समय दास-दासियों की अधिक खरीद-बेच होती

---

१. विस्तार के लिए श्री चन्दना चरित्र, देखिये ।

थी। चौराहे पर लाकर चन्दना जी को नीलाम करना शुरू कर दिया। इनके रूप और जवानी को देख कर एक वेश्या ने चन्दना जी को अपने काम की वस्तु जान कर दो हजार अशर्फियों[1] में मोल ले ली। जन्दना जी ने पूछा, माता जी आप कौन हैं ? मुझ दुखिया को इतना अधिक मूल्य देकर क्यों खरीदा ? वेश्या ने उत्तर दिया—"चन्दना ! तू चिन्ता न कर, अब तेरी मुसीबतों के दिन समाप्त होगए। मैं तुझे सर से पांवों तक सोने और हीरे जवाहरातों से लाद दूंगी। स्वादिष्ट भोजन और सुन्दर वस्त्र पहनने को दूंगी।" चन्दना जी उसकी बातों को परख गई और उसके साथ जाने से इन्कार कर दिया। वेश्या जबरदस्ती चन्दना जी को घसीटने लगी, कि तू मेरी दासी है, मैंने तुझे दो हजार अशर्फियों में खरीदा है। इस खींचातानी में अनेक लोगों की भीड़ वहां हो गई। उसी भीड़ में से एक नौजवान आगे बढ़ा और वेश्या को अशर्फियों की दो थेलियां देकर बोला—"खबरदार ! इस महासती के अपने नापाक हाथ मत लगाना"। और बड़े मीठे शब्दों में चन्दना जी से कहा कि तुम मेरी धर्म की पुत्री हो, मेरे साथ मेरे मकान पर चलो।

ये उपकारी नौजवान कौशाम्बी नगरी के प्रसिद्ध सेठ वृषभसेन थे, जो बड़े धर्मात्मा और सज्जन थे। सेठ जी दूसरी दासियों से अधिक चन्दना जी का ध्यान रखते थे। चन्दना जी सेठ जी की स्त्री से भी अधिक रूपवती, गुणवती और बुद्धिमती थी। यह देख कर उनकी स्त्री ईर्ष्याग्नि से जलने लगी और झूठा कलंक लगाकर उसके अतिसुन्दर, काली नागिन के समान बालों को कटवा कर सिर मुंडवा दिया और बन्दीखाने में डाल दिया। खाने को कोदों के दाने देने लगी। ऐसी दुखी दशा को भी चंदना

१. जैन वीराङ्गनाएँ, (कामताप्रसाद) पृ० १२।

वीर-आहार :: चन्दना-उद्धार

होते ही चन्दना जी को भगवान महावीर के दर्शन।
कट गईं खुदबखुद बेड़ियाँ और गुलामी के बन्धन॥
—प्रो० जगदीशचन्द्र जोश

जी पहले पाप कर्मों का फल जान कर बिना किसी खेद के प्रसन्न चित्त होकर सहन करती थी और विचार करती थी कि संसार में कुरूप स्त्रियां अपने आपको भाग्यहीन समझती हैं, परन्तु मैं तो यह अनुभव कर रही हूँ कि यह रूप महादुखों की खान है। जिस के कारण मैं अपने माता पिता से जुदा हुई और यह कष्ट उठा रही हूँ।

सारा देश महादुःख अनुभव कर रहा था कि छः मास होगये श्री वर्द्धमान महावीर का आहार-जल नहीं हुआ, चन्दना जी रह-रह कर विचारती थी कि यदि मैं स्वतन्त्र होती तो अवश्य उनके आहार का यत्न करती, मैं बड़ी अभागिनी हूं कि मेरे इस नगर में होते हुए वीर स्वामी जैसे महामुनि छः महीने तक बिना आहार-जल के रहें ? चन्दना जी को वही कोदों के दाने भोजन के लिए मिले तो उन्होंने यह कह कर कि जब श्री वीर स्वामी को आहार नहीं हुआ तो मैं क्यों करूं ? उन को रखने के लिये आंगन में आई तो वीर स्वामी की जय जयकार के शब्द सुने, दरवाजे की तरफ लपकी तो वीर स्वामी को सामने आते देख कर पडघाहने को खड़ी हो गई, भगवान् को भरे नयन देख, भूल गई वह इस बात को कि मैं दासी हूं और उसने भगवान को पडघाह ही लिया। पुण्य के प्रभाव से कोदों के दाने खीर[1] हो गये, निरन्तराय आहार हुआ। स्वर्ग के देवों ने पंचाश्चर्य करके हर्ष मनाया। लोगों ने कहा, "धन्य है पतितपावन भगवान महावीर को जिन्होंने दलित कुमारी का उद्धार किया। धन्य है सेठ वृषभसेन को जिन्होंने बावजूद इस प्रधानता के कि किसी दूसरे घर में जबरदस्ती रही हुई स्त्री को आश्रय न दो, कुरीतियों से न दब कर उन्होंने चन्दना जी को शरण दी और वे लोकमूढता में नहीं बहे।"

---

१ सो वह तत्र कोदवन वोद, तन्दुल खीर भयो अनुमोद।
माटीपात्र हेममय सोय, धरम तनें फल कहा न होय ॥२६६॥—वर्द्धमानपुराण

राजा तथा बड़े बड़े सेठ और सेठ वृषभसेन स्वयं महीनों से ललचाई आंखों से वीर स्वामी के आहार के निमित्त पडगाहने को खड़े रहे, परन्तु भगवान् तो लोककल्याण के लिये योगी हुए थे। उन्होंने अपने उदाहरण से लोक को यह पाठ पढ़ाया कि वह पतित से घृणा न करे[1], जो अपनी कमजोरी तथा जबरदस्ती करने से धर्मपद तक से गिर गये हों, उन को भी दोबारा धर्म पर लगाना जैन धर्म की मुख्यता है[2]।

सत्य की विजय हुई। चन्दना जी का शीलव्रत कब खाली जा सकता था? महारानी मृगावती ने सुना तो वह महाभाग्य चन्दना जी को बधाई देने आई। बन्धन में पड़ी हुई दासी का यह सौभाग्य? यह तो लोक के लिये ईर्ष्या की वस्तु थी। क्योंकि लोक तो उसे दासी ही जानता था। भगवान महावीर ने मुंह से नहीं, बल्कि अपने चरित्र से चन्दना का उद्धार करके दास-दासी अथवा गुलामी का अन्त करने का आदर्श उपस्थित किया[3]। महारानी मृगावती ने उसे देखा तो उसे अपनी आंखों पर विश्वास न आया वह तो उसकी छोटी बहन थी, उसकी प्रसन्नता का पार न था वह चन्दना जी को अपने साथ राजमहल में ले गई। माता पिता के पास दूत भेजा वे सब वर्षों से बिछड़ी हुई चन्दना जी से मिल कर बहुत खुश हुये। चन्दना जी ने अपने उद्धार पर संतोष की सांस ली जरूर, परन्तु उसने संसार की ओर देखा तो दुनिया में उस जैसी दुखिया बहुत दिखाई पड़ीं। आखिरकार जब भगवान् महावीर को केवल ज्ञान प्राप्त होगया तो चन्दना जी ने स्त्री जाति को संसारी दुःखों से निकाल कर मोक्ष मार्ग पर लगाने तथा अपने आत्मिक कल्याण के लिये जिन दीक्षा लेली[4]।

१-२ सम्यग्दर्शन के आठ अङ्गों में से स्थितिकरण नामक छठा अङ्ग।

३. कामताप्रसाद : भगवान् महावीर, पृ० ६७।

४. वीरसङ्घ, खण्ड २।

वीर-तप

तप से कर्म कटते हैं, पापों का नाश होता है। राज्य-सुख और इन्द्र-पद तो साधारण बात है, तप से तो संसारी आत्मा, परमात्मा तक हो जाती है। तप बिना मनुष्य-जन्म निष्फल है।

—लौकान्तिकदेव : वर्द्धमान पुराण, पृ० ६० ।

कर्मों की निर्जरा के हेतु श्री वर्द्धमान महावीर छः प्रकार का वाह्य तथा छः प्रकार का अन्तरङ्ग, १२ प्रकार का तप[1] करते थे:—

१. **अनशन**—कषायों और इच्छाओं को घटाने के लिये भोजन का त्याग करके मर्यादा रूप धर्म ध्यान में लीन रहना।

२. **अवमौदर्य**—इन्द्रियों की लोलुपता, प्रमाद और निद्रा को कम करने के लिये भूख से कम आहार लेना।

३. **वृत्तिपरिसंख्यान**—भोजन के लिये जाते हुए कोई प्रतिज्ञा ले लेना और उसे किसी को न बताते हुए उस के अनुसार विधि मिलने पर भोजन करना, नहीं तो उपवास रखना।

४. **रसपरित्याग**—स्वाद को घटाने और रसों से मोह हटाने के लिये मीठा, घी, दूध, दही, तेल, नमक इन छः रसों में से एक या अनेक का मर्यादा रूप त्याग करना।

५. **विविक्त शय्यासन**—स्वाध्याय, सामायिक तथा धर्म ध्यान के लिये पर्वत, गुफा, श्मशान आदि एकान्त में रहना।

६. **कायक्लेश**—शरीर की मोह-ममता कम करने के लिए, शरीरी दुःखों का भय न करके महाघोर तप करना।

७. **प्रायश्चित**—प्रमाद व अज्ञानता से दोष होने पर दण्डलेना।

८. **विनय**—सम्यग्दर्शी साधुओं, त्यागियों और निर्ग्रंथ मुनियों

---

१. विस्तार के लिए आत्म दर्शन (सूरत) व जैनधर्म प्रकाश, पृ० ११७।

का आदर-सत्कार करना।

९. वैय्यावृत्य—बिना किसी स्वार्थ के आचार्यों, उपाध्यायों, तपस्वियों तथा साधुओं की सेवा करना।

१०. स्वाध्याय—आत्मा के गुणों को विश्वास पूर्वक जानने तथा धर्म की बुद्धि के लिये शास्त्रों का मनन करना।

११. व्युतसर्ग—२४ प्रकार की परिग्रहों से ममता त्यागना।

१२. ध्यान—चार प्रकार के होते हैं:—

(१) आर्त—स्त्री-पुत्रादि के वियोग पर शोक करना, अनिष्ट सम्बन्ध का खेद करना, रोग होने पर दुःखी होना, आगामी भोगों की इच्छा करना।

(२) रौद्र—हिंसा करने, कराने व सुनने में आनन्द मानना। असत्य बोलकर, बुलवाकर, बोला हुआ सुनकर खुशी होना। चोरी करके, कराकर, सुनकर हर्षित होना। परिग्रह बढ़ाकर, बढ़वा कर, बढ़ती हुई देखकर हर्ष मानना।

(३) धर्म—सात तत्वों को विचारना, अपने व दूसरों के अज्ञान को दूर करने का उपाय सोचना, पाप कर्मों के फल का स्वरूप विचारना, यह विचारना कि मैं कौन हूँ ? संसार क्या है ? मेरा कर्त्तव्य क्या है ? तथा बारह भावनाएँ भाना।

(४) शुक्ल—शुद्ध आत्मा के गुणों का बार-बार चिन्तवन करते हुए उसी के स्वरूप में लीन रहना।

आर्त्त और रौद्र तो पाप बंध का कारण हैं। धर्म व शुक्ल में जितनी अधिक वीतरागता होती है उतनी ही अधिक कर्मों की निर्जरा होती है और जितना शुभ राग होता है उतना अधिक पुण्य वन्ध का कारण है। श्री भगवान् महावीर आर्त्त और रौद्र ध्यान का त्याग करके मन वचन काय से धर्म-ध्यान तथा शुक्ल-ध्यान में लीन रहते थे।

शीत-तप नदी के किनारे,
वीर थे जब कर रहे।
हिरण उनके रगड़ तन को
खाज अपनी हर रहे॥
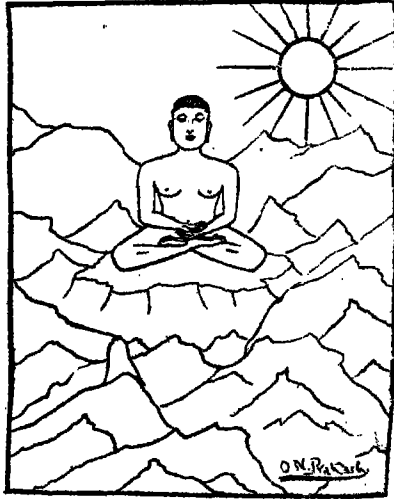
गगन से रवि आग
जब बरसा रहा था।
तप्त गिरि पर वीर का
तप छा रहा था।

प्रबल झंझा के झकोरे,
बरसता था अमित जल।
वृक्ष टप-टप टपकता था,
वीर थे तप में अचल ॥

क्षीर-सागर के कमल पर,
ऊर्ध्व पाण्डुकवन शिलापर
वीर पार्थिवीधारणा में—
लीन थे शुचि साधनाकर

विषधर सर्प :: अमृतधर देव

श्री वर्द्धमान महावीर एक भयानक जङ्गल की ओर सिंह के समान निर्भय होकर विहार कर रहे थे, कि कुछ लोगों ने कहा—"यहां से थोड़ी दूर झाड़ियों में चण्डकौशिक नाम का एक बहुत भयानक नागराज रहता है। उसकी एक ही फुङ्कार से दूर दूर के जीव मर जाते हैं, इस लिये इस ओर न जाइये"। वे न रुके और चण्डकौशिक के स्थान पर ही ध्यान लगा दिया। चण्ड-कौशिक फुङ्कार मारता हुआ बाहर आया तो जहाँ दूर-दूर के वृक्ष तक उसकी फुङ्कार से सूख गए वीर स्वामी पर कुछ प्रभाव होता न देख कर चण्डकौशिक आश्चर्य करने लगा और अपनी कमजोरी पर क्रोध खाकर उनकी तरफ फना करके सम्पूर्ण शक्ति से फुङ्कार मारी, परन्तु वीर स्वामी बदस्तूर ध्यान में मग्न खड़े रहे। चण्डकौशिक अपनी जबरदस्त हार को अनुभव करके क्रोध से तिलमिला उठा और पूरे जोर से वीर स्वामी के पैर में डङ्क मारा। वीर स्वामी के चरणों से दूध जैसी सफेद धारा निकली, परन्तु वह ध्यान में लीन खड़े रहे। चण्डकौशिक हैरान था कि मुझ से भी बलवान् आज मेरी शक्ति का इम्तिहान करने मेरे ही स्थान पर कौन आया है? वह वीर स्वामी के चेहरे की ओर देखने लगा, उनकी शान्त मुद्रा और वीतरागता का चण्डकौशिक पर इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि उसके हृदय में एक प्रकार की हल-चल सी मच गई। वह सोच में पड़ गया कि इन्होंने मेरा क्या बिगाड़ किया, जो ऐसे महातपस्वी को भी कष्ट दिया। मैंने अपने एक जीवन में लाखों नहीं, करोड़ों के जीवन नष्ट कर दिये। मैं बड़ा अपराधी हूँ, दुष्ट हूं, पापी हूं। ऐसा विचार करते करते उसका हृदय कांप उठा और श्रद्धा से अपना मस्तक वीर स्वामी के चरणों में टेकता हुआ बोला—"प्रभो! क्षमा कीजिये, मैंने आपको

पहिचाना न अपने आप को" । वीर स्वामी तो पर्वत के समान निश्चल, समुद्र के समान गम्भीर, पृथ्वी के समान क्षमावान थे, उपसर्गों को पाप कर्मों का फल जान कर सरल स्वभाव से सहन करते थे और उपसर्ग करने वालों को कर्मों की निर्जरा करनेवाला महामित्र समझते थे। चण्डकौशिक के उपसर्ग का उनको न खेद था न क्षमा मांगने का हर्ष। उनकी उदारता से प्रभावित होकर नागराज ने प्रतिज्ञा करली कि मैं किसी को बाधा न दूंगा। उस का जीवन बिलकुल बदल चुका था। जहर की जगह अमृत ने ले ली थी। लोग हैरान थे कि जिस चण्डकौशिक को जान से मारने के लिये देश दीवाना होरहा था, वह आज उसको दूध पिला रहा है। यह तो है श्री वर्द्धमान महावीर के जीवन का केवल एक दृष्टान्त, उन्होंने ऐसे अनेकों पापियों का उद्धार किया[१]।

ग्वाले का उपसर्ग

वर्द्धमान महावीर जङ्गल में तप कर रहे थे, उसी जगह एक ग्वाला बैलों को चरा रहा था। साधारण पुरुष जान कर ग्वाले ने कहा कि मैं अभी आता हूं, तुम मेरे बैलों को देखते रहना। उन के कुछ उत्तर न देने पर भी ग्वाला बैलों को उनके भरोसे पर छोड़ कर चला गया। थोड़ी देर बाद वापस लौटा तो बैलों को वहां न पाया। वे चरते चरते कुछ दूर निकल गये थे। उसने महावीर स्वामी से पूछा कि मेरे बैल कहां हैं? प्रभु तो ध्यान में मग्न थे, बैलों को वहां न देख कर ग्वाला पहले से ही जोश में आरहा था, वीर स्वामी का कोई उत्तर न पाकर उसे और भी अधिक क्रोध उपजा और दुर्वचन कहते हुए बोला कि क्या तुझे सुनाई नहीं देता जो हमारी बात का जवाब तक भी नहीं दिया। आ, आज तेरे दोनों कान खोल दूं। उस पापी ने भाव देखा न ताव दो लकड़ी

१. भगवान् महावीर का आदर्श जीवन, पृ० २१७।

के मोटे किल्ले महावीर स्वामी के कानों में ठोक दिये । जब हमारे एक सुई चुभने से महान् दुःख होता है तो वीर स्वामी को कितना कष्ट हुआ होगा ? नारायण पद में शैयापाल के कानों में गर्म गर्म शीशा भरवाया था तो आज शैयापाल के जीव ने ग्वाले की योनि में अपना पिछला कर्जा चुकाया । सत्य है तीर्थंकरों तक को भी कर्मों का फल भोगना पड़ता है ।

देवों द्वारा वीर-तप की परीक्षा

श्री वर्द्धमान महावीर की कठोर तपस्या से केवल मर्त्यलोक के जीव ही नहीं, वल्कि स्वर्गलोक के देवी-देवता भी दाँतों तले अंगुली दबाते थे । एक दिन इन्द्र महाराज की सभा में वीर स्वामी की तपस्या की प्रशंसा हो रही थी, कि भव नाम के एक रुद्र देव को विश्वास न हुआ कि पृथ्वी के मनुष्यों में इतनी अधिक शक्ति, शान्ति, स्वभाव-गम्भीरता हो । उसने इन्द्र महाराज से कहा कि जितनी शक्ति आपने वीर स्वामी में बताई है, उतनी तो हम स्वर्ग के देवताओं में भी नहीं । यदि आज्ञा दो तो परीक्षा करके अपना भ्रम मिटा लूं । इन्द्र महाराज ने स्वीकारता दे दी ।

श्री वर्द्धमान महावीर उज्जैन नगरी के बाहर अतिमुक्तक नाम की श्मशान भूमि में प्रतिमा योग धारण किये नदी के किनारे तप में मग्न थे । रुद्र ने अपने अवधि ज्ञान से विचार करके कि महावीर स्वामी इस समय कहाँ हैं ? उसी श्मशान भूमि में आ गया । रात्रि का समय, सुनसान और भयानक स्थान, सर्दी की ऋतु, नदी के किनारे प्रसन्न मुख श्री महावीर स्वामी को तप में लीन देख कर रुद्र आश्चर्य में पड़ गया । उसने अपनी देव-शक्ति से श्मशान भूमि को अधिक भयानक बना कर अपने दांत बाहर निकाल, माथे पर सींग लगा, आंखें लाल कर बहुत भयानक

देवों द्वारा वीर-तप की परीक्षा

रुद्र देव आया वीर का लेने को इम्तहान,
सरदी की रात्रि और उज्जैन का श्मशान।
मायामयी के राक्षसों से उपसर्ग कराया घोर,
पर डिगा न सका वह महावीर का ध्यान।

शब्दों में इतना शोर किया कि मनुष्य तो क्या पशु तक भी काँप उठे। वीर स्वामी पर अपना कुछ प्रभाव न देख कर उसने इतनी शक्ति से चिल्लाना, चिंघाड़ना और गरजना आरम्भ कर दिया कि दूर-दूर के जीव भयभीत होकर भागने लगे।

अपना कार्य सिद्ध न होता देख कर रुद्र ने अपनी मायामयी शक्ति से महा भयानक भीलों की फौज बनाई जो नङ्गी तलवारें हाथ में लेकर डराती और धमकाती हुई वीर स्वामी के चारों तरफ ऊधम मचाने लगी। इस पर भी वीर स्वामी को चलायमान होता न देख, उसने महाभयानक शेरों, चित्तों और मगेरों की डरावनी सेना से इतना अधिक घमसान मिचवाया कि समस्त श्मशान भूमि दहल गई। परन्तु फिर भी वीर स्वामी को बिना किसी खेद के प्रसन्न मुख ध्यान में मग्न देख कर रुद्र के छक्के छूट गए। उसने हिम्मत बांध कर इस कदर गर्द गुब्बार और मिट्टी बरसाई कि वीर स्वामी नीचे से ऊपर तक मिट्टी में दब गए। वीर स्वामी को फिर भी ध्यान से न हटा देख इतनी वर्षा बरसाई कि तमाम श्मशान पानी ही पानी होगया और ऐसी तेज हवा चलाई कि वृक्ष तक जड़ से उखड़ कर गिरने लगे। वीर स्वामी को विशाल पर्वत के समान निरन्तर तप में लीन देख, वह आश्चर्य करने लगा कि यह मनुष्य है या देवता ? अपनी कमजोरी पर क्रोध करते हुए रुद्र ने मायामयी से अनेक विष भरे सर्प, बिच्छू, कानखजूरे आदि उनके नग्न शरीर से चिपटा दिये, परन्तु वीर स्वामी ने तो पहले से ही अपने शरीर से मोह हटा रखा था, जब चण्डकौशिक जैसा भयानक अजगरों का सम्राट ही उनके तप को न डिगा सका तो भला इन सर्पों, बिच्छुओं, कानखजूरों में क्या शक्ति थी कि वे वीर स्वामी के ध्यान को भङ्ग कर सकें ? वीर तो महावीर थे, रुद्र इतने भयानक उपसर्गों पर

देवताओं द्वारा वीर-परीक्षा

श्री वीर स्वामी की धीरता, गम्भीरता, वीरता, शान्त मुद्रा और सहनशक्ति को देख कर विचार करने लगा कि वीर स्वामी में मेरी मायामयी शक्ति को पछाड़ने की अद्भुत शक्ति होने पर भी मुझे परीक्षा का पूरा अवसर दिया। मनुष्य ता क्या देवताओं की भी मजाल न थी कि मेरे अत्याचारों के सामने ठहर सकें। मैंने ऐसे महान् तपस्वी और आत्मिक वीर को बिना कारण कष्ट देकर अपनी नरक की आयु बांध ली, उसने विनयपूर्वक भक्ति से वीर स्वामी को नमस्कार किया और कहा कि इन्द्र महाराज के शब्द वास्तव में सत्य हैं। वीर स्वामी वीर ही नहीं, बल्कि 'अतिवीर' हैं"।

देवाङ्गनाओं द्वारा वीर की परीक्षा

हर प्रकार की जांच में पूरा उतरने पर रुद्र ने श्री वर्द्धमान महावीर के तप की स्वर्ग लोक में बड़ी प्रशंसा की तो देवाङ्गनाएं कहने लगीं—"आपने वीर स्वामी पर रेत, मिट्टी आग, पानी बरसा कर अनेक प्रकार के ऐसे महा भयानक उपसर्ग किये कि जिन को सहन करने वाले का तो कहना ही क्या? सुनने वाले का हृदय भी कांप जाये, परन्तु आपने यह विचार नहीं किया कि तपस्वी अपने शरीर से मोह-ममता नहीं रखते। तप के प्रभाव से उपसर्ग के समय उनका हृदय बज्र के समान कठोर हो जाता है और अपने पिछले पाप कर्मों का फल जान कर उनकी निर्जरा के लिये वे अधिक से अधिक भयानक उपसर्गों को भी आनन्द के साथ सहन कर लेते हैं। ऐसे महान् तपस्वो तो केवल काम वासना

---

१. Rudra caused all sort of sufferings to Mahavira, which He bore with unflinching courage, peace of mind and immense love. His forbearance appealed to Rudra, who fell in His feet, begged pardon for his misdeed and called Him by name ATIVIRA. —Jai Dhawle, 96. P. 72.

के ही वश में आ सकने हैं। आपको याद होगा कि कौशिक जैसे तपस्वी का तप मेनका नाम की अप्सरा ने थोड़ी सी देर में नाच-कूद कर भङ्ग कर दिया था, जिस से भोग-विलास करने पर शकुन्तला नाम की लड़की उत्पन्न हुई। चलो हम देखते हैं, वे कैसे वीर हैं, जो तप से नहीं डिगते"।

स्वर्ग की अनेक महान सुन्दरी, नवयुवती, कोमल शरीर देवाङ्गनाएँ रङ्ग बिरंगे चमकीले वस्त्रों और अमूल्य रत्नों से झिलमिलाते हुए आभूषणों में सज-धज कर, बड़े मधुर शब्दों में प्रेम भरे गीत गाकर वीर स्वामी के चारों तरफ नाचने लगीं। अधिक देर तक इसका कोई प्रभाव वीर स्वामी पर न देख, वे कहने लगीं—"आपके प्रभावशाली और उत्तम तप से प्रसन्न होकर इन्द्र महाराज ने हमें आपकी सेवा में भेजा है। जिनकी अभिलाषा के लिये बड़े-बड़े चक्रवर्ती सम्राट एड़ियां रगड़ते हुए मर गए और जिनकी प्राप्ति महा-भयानक युद्ध, कठोर तपस्या, तन्त्र-मन्त्र आदि पर भी दुर्लभ है, धन्य है! वीर प्रभु, आपको कि वे आज आपकी आज्ञा का पालन करने के लिए स्वयं आपके द्वार पर खड़ी हैं"। श्री वर्द्धमान महावीर का कोई उत्तर न पाकर उन्होंने अपनी मायामयी शक्ति से वीर स्वामी के मन को चंचल कर देने और काम चेष्टा को उभारने के अनेक साधन जुटा दिये[1]। परन्तु वृक्षों को उखाड़ देने वाली तेज हवा वर्द्धमान महावीर के तप रूपी पर्वत को न डिगा सकी। अपने सारे दांव-पेंच खाली जाते देख कर वे सब वीर स्वामी के चरणों में झुक कर गिड़गिड़ाने लगीं, "वीर प्रभु! आप तो बड़े दयालु हो, हमने तो सुन रखा था कि आप किसी का हृदय किसी प्रकार भी नहीं दुखाते, परन्तु हम तो आज यह अनुभव कर रही हैं कि आप वज्र-

---

१. भगवान् महावीर का आदर्श जीवन, पृ० ३०१।

देवाङ्गनाओं द्वारा वीर-परीक्षा

हृदय हो। महान् तपस्वियों का तप भी तो स्वर्ग के विषय-भोगों की लालसा के कारण ही होता है, तो फिर आप कैसे तपस्वी हो जो स्वर्ग की देवाङ्गनाओं तक को भी अङ्गीकार नहीं करते"। इस पर भी श्री वर्द्धमान महावीर का मन जरा भी चलायमान होता न देख, स्वर्ग की देवाङ्गनाएँ आश्चर्य में पड़ गईं। उन्होंने बड़ी विनय और भक्ति के साथ श्री वर्द्धमान महावीर स्वामी को नमस्कार करके कहा कि यदि संसार में कोई सच्चा 'सुवीर' और परम तपस्वी है तो महावीर स्वामी आप ही हैं।

वीर-सर्वज्ञता

Outside the town Jrmbhika-Grama, on the Northern bank of the river Rajupalika in the field of the house holder Samaga, under a Sala tree, in deep meditation, Lord Mahavira reached the complete and full, the unobstructed, unimpeded, infinite and Supreme, best knowledge and ntuitation, called KEVALA.

—Dr. Bool Chand : Lord Mahavira. (JCRS. 2) p. 44.

विहार प्रान्त के जृम्भकग्राम[1] के निकट ऋजुकूला नदी के किनारे शाल के वृक्ष के नीचे एक पत्थर की चट्टान पर पद्मासन से वर्द्धमान महावीर शुक्ल ध्यान में लीन थे। १२ वर्ष ५ महीने और १५ दिन[2] के कठोर तप से उनके ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, मोहनीय और अन्तराय चारों घातिया कर्म इस तरह से नष्ट होगये,

---

१. वर्तमान खोज से यह स्थान समेद शिखर से २५-३० मील दूर आज कल झरिया नगर के निकट होना अनुमानित किया गया। झरिया जृम्भक है और बाराकर नदी वीर समय की ऋजुकूला नदी है।

—कामताप्रसाद : म० महावीर पृ० १०८।

२. पं० कैलाशचन्द : जैनधर्म (दि० जैन सङ्घ चोरासी), पृ० २३।

जिस तरह भट्टी में तपने से सोने का खोट नष्ट होजाता है, जिससे हजरत ईसामसीह से ५५७ वर्ष पहले वैशाख सुदि दशमी[१] के तीसरे प्रहर[२] महावीर स्वामी केवल ज्ञान प्राप्त कर सर्वज्ञ[३] होकर आत्मा से परमात्मा[४] होगये। अब वे संपूर्ण ज्ञान के धारी थे। तीनों लोक और तीनों काल के समस्त पदार्थ तथा उनकी अवस्थाएँ उनके ज्ञान में दर्पण के समान स्पष्ट झलकती थीं।

निस्संदेह 'केवलज्ञान' प्राप्त करना अथवा सर्वज्ञ होना मनुष्य जीवन में एक अनुपम और अद्वितीय घटना है। इस घटना के महत्व को साधारण बुद्धिवाले शायद न भी समझें, परन्तु ज्ञानी और तत्वदर्शी इसके मूल्य को ठीक परख सकते हैं[५]। ज्ञानके कारण ही मनुष्य और पशु में इतना अन्तर है और जिसने केवल ज्ञान प्राप्त कर लिया, इससे अनोखी और उत्तम बात मनुष्य जीवन में क्या हो सकती है? यह अवश्य ही जैन धर्म की विशेषता है कि जिसने साधारण मनुष्य को परमात्मा पद प्राप्त करने की विधि

१-२. श्री पूज्यपाद जी : निर्वाण भक्ति श्लोक १०-११-१२।

३. Mahavira attained the highest Knowledge and intuition called Kevala, which is infinite, supreme, unobstructed, unimpeded, complete, full, omniscient, all-seeing and all-knowing. —Amar Chand : Mahavira (J. Mission Society Banglore) P. 11.

४. Of all Indian cults it was Jainism which had developed a thorough Psychological Technique for the Spiritual development of the human being from manhood to Godhood —Dr. Felix Valyi : Hindustan Times, (Oct. 3. 1950) P. 10.

५. A Scientific Interpretation of Christianity P. 44-45.

बताई[१]। मनुष्यत्व का ध्येय ही सर्वज्ञता है और यह गुण वीरस्वामी ने अपने मनुष्य जीवन में अपने पुरुषार्थ से स्वयं प्राप्त करके संसार को बता दिया कि वह भी सर्वज्ञता प्राप्त कर सकते हैं[२]। महात्मा बुद्ध, महावीर भगवान् के समकालीन थे। बावजूद प्रतिद्वंदी नेता (Rival Reformer) होने के, उन्होंने भी वीर स्वामी का सर्वज्ञ और सर्वदर्शी होना स्वीकार किया है[३]। मज्झिमनिकाय और न्यायविन्दु नाम के प्रसिद्ध बौद्ध ग्रन्थों में भी श्री वर्द्धमान महावीर को सर्वज्ञ, स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है[४]। जिनके बीच में महावीर स्वामी रह रहे थे, वे महात्मा बुद्ध से आकर कहते थे कि भगवान् महावीर सर्वज्ञ[५], सर्वदर्शी[६] और एक अनुपम नेता हैं[७], वे अनुभवी मार्ग प्रदर्शक[८] हैं, बहुप्रख्यात[९] हैं, तत्ववेत्ता[१०] हैं, जनता द्वारा सम्मानित[११] हैं और साथ ही महात्मा बुद्ध से पूछते थे कि आपको भी क्या सर्वज्ञ और सर्वदर्शी कहा जा सकता है[१२]? महात्मा बुद्ध ने कहा कि मुझे सर्वज्ञ कहना सत्य नहीं है[१३]। मैं

---

१. Jainism raises man to Godhood. This conception is more rational and scientific than ideal of extra cosmic God siting on thigh and guiding human affairs.

—Prof. Dr. M. Hafiz Syed : VOA. Vol III P. 9.

२. No other religion is in a position to furnish a list of men, who have attained to God-hood by following its teachings, than Jainism. —Change of Heart P. 21.

३. Nattaputra (Lord Mahavira) is all-knowing and all seeing possessing an infinite Knowledge.

—Majhima Nikaya, I. P. 92 93.

४. इसी ग्रन्थ का पृ० ४८।

५-६. अंगुत्तर निकाय (P T. S.) भा० १ पृ० १२०।

७-८. संयुक्त निकाय, भा० १ पृ० ६१-६४।

९-११. Diologue of Buddha, P. 66.

१०-१२. Life of Buddha. P. 15.

तीन ज्ञान का धारी हूं। मेरी सर्वज्ञता हर समय मेरे निकट नहीं रहती। भगवान् महावीर की सर्वज्ञता अनन्त है[१], वे सोते, जागते, उठते, बैठते हर समय सर्वज्ञ हैं[२]।

ब्राह्मणों के ग्रन्थों में भी महावीर स्वामी को सर्वज्ञ कहा है[३]। आज कल के ऐतिहासिक विद्वान भी भगवान् महावीर को सर्वज्ञ स्वीकार करते हैं[४]।

केवलज्ञान की प्राप्ति एक ऐसी बड़ी और मुख्य घटना थी कि जिसका जनता पर प्रभाव हुए बिना नहीं रह सकता था[५]। कौन ऐसा है जो सर्वज्ञ भगवान् को साक्षात् अपने सम्मुख पाकर आनंद में मग्न न होजाय[६]। मनुष्य ही नहीं देवों के हृदय भी प्रसन्न होगये[७]। श्रद्धा और भक्ति के कारण उनके दर्शन करने के लिए वे स्वर्गलोक से जृम्भकग्राम में दौड़े आये[८] देवों और मनुष्यों ने उत्सव मनाया, ज्योतिषी देवों के इन्द्रने मानों त्यागधर्म का महत्व प्रकट करने के लिये ही महावीर स्वामी के समवशरण की ऐसी विशाल रचना

१-२. मज्झिम निकाय, भा० १, पृ० २३८-४८२।

३. (a) S. B. E. Series Vol II P.270-287 and Vol.XX.P 313.
(b) Indian Antiquary, Vol. VIII. P. 313

४. (a) डा० विमलचरण ला : भगवान् महावीर का आदर्श जीवन, पृ० ३३।
(b) डा० ताराचन्द : अहले हिन्द की मुख्तसर तारीख।
(c) Dr H. S. Bhattacharya : Jain Antiquary. XV. P. 14.
(d) M.McKay : Mahavira Commemoration Vol.I P.143.
(e) Prof. G. Brahmappa : Voice of Ahinsa, Vol III.P. 4.
(f) सुमेरुचन्द्र दिवाकर : जैन शासन पृ० ४२-५२।
(g) P. Joseph May (Germany) : Mahavira's Adrash Jiwan P. 17.
(h) Some Historical Jain Kings & Heroes (Delhi) P. 80.

५-६. संक्षिप्त जैन इतिहास, भा० २, खण्ड १, पृष्ठ ७९।

७-८. श्री कामताप्रसाद : भगवान् महावीर पृ० ११०।

की कि जिसको देख कर कहना पड़ता था कि यदि कोई स्वर्ग पृथ्वी पर है तो यही है, यही है, यही है।

तीर्थंकर भगवान् के समवशरण की यह विशेषता है कि उसका द्वार गरीब-अमीर, छोटा-बड़ा, पापी-धर्मात्मा, सब के लिये खुला होता है[1]। पशु-पक्षी तक भी बिना रोक-टोक के समवशरण में धर्मोपदेश सुनने के लिये आते हैं[2]। जात-पाँत, छूत-छात और ऊँच-नीच का यहाँ कोई भेद नहीं होता। राजा हो या रङ्क, ब्राह्मण हो या चाण्डाल सब मनुष्य एक ही जाति के हैं और वे सब एक ही कोठे में बैठ कर आपस में ऐसे अधिक प्रेम के साथ धर्म सुनते हैं, मानों सब एक ही पिता की सन्तान हैं[3]।

भगवान के दर्शनों से बैर भाव इस तरह नष्ट होजाते हैं, जिस तरह सूर्य के दर्शनों से अंधकार। तीर्थंकर भगवान की शान्त मुद्रा और वीतरागता का प्रभाव केवल मनुष्यों पर ही नहीं, किन्तु क्रूर स्वभाव वाले पशु-पक्षी तक अपने बैर भाव को सम्पूर्ण रूप से भूल जाते हैं[4]। नेवला-साँप, बिल्ली-चूहा, शेर-बकरी भी परं शान्त-चित्त होकर आपस में प्रेम के साथ मिल-जुल कर धर्मोपदेश सुनते हैं और उनका जातीय विरोध तक नष्ट हो जाता है[5]। यह सब भगवान महावीर के योगबल का माहात्म्य था। उनकी आत्मा में अहिंसा की पूरी प्रतिष्ठा होचुकी थी, इसलिये उनके सन्मुख किसी का भी वैर स्थिर नहीं रह सकता था[6]।

१-२. अनेकान्त वर्ष ११, पृ० ६७।

३-६. "अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः"। ३५।

—महर्षि पातञ्जलि : योगदर्शन

अर्थात्—अहिंसा के प्रभाव से क्रूर स्वभाव वाले पशु-पक्षी तक भी अपनी शत्रुता को भूल कर आपस में प्रेम-व्यवहार करने लगते हैं।

इन्द्रभूति पर वीर-प्रभाव

जब लोग एक पैसे की मिट्टी की हंडिया को भी ठोक बजा कर खरीदते हैं, तो अपने जीवन के सुधार और बिगाड वाले मसले को बिना परीक्षा किये क्यों आंख मीच कर ग्रहण करना चाहिये? इन्द्रभूति गौतम आदि अनेक महापंडितों ने तर्क और न्याय की कसौटी पर भगवान महावीर के उपदिष्ट ज्ञान को कसा और जब उसे सौ टंच सोना समान निखिल सत्य पाया तो वे उनकी शरण में आये।

—श्री कामताप्रसाद : भगवान महावीर पृ १३८।

श्री वर्द्धमान महावीर के सर्वज्ञ हो जाने पर उनकी दिव्य ध्वनि[१] न खिरी तो सौधर्म नाम के प्रथम स्वर्ग के इन्द्र ने अपने ज्ञान से गणधर की आवश्यकता समझ कर उसकी खोज में चल दिया। उस समय ब्राह्मणों का बड़ा जोर था। चारों वेदों के महा ज्ञाता और माने हुए विद्वान् इन्द्रभूति थे। इन्द्र ब्राह्मण का वेष धारण कर उनके पास गया और उनसे कहा, "कि मेरे गुरु ने इस समय मौन धारण कर रखा है, इस लिये आप ही उसका मतलब बताने का कष्ट उठावें।" इंद्रभूति गौतम बहुत विद्वान् थे, उन्होंने कहा—"मतलब तो मैं बताऊँगा मगर तुमको मेरा शिष्य बनना पड़ेगा"। इन्द्र ने कहा, "मुझे यह शर्त मंजूर है परन्तु आप उस का मतलब न बता सके तो आप को मेरे गुरु का शिष्य होना पड़ेगा"। इन्द्रभूति को तो अपने ज्ञान पर पूरा विश्वास

---

१. Mahavira's message was in deed to all livings, and so the language he used was understood by beasts and birds as well as by men.
Mr. Alfred Master I.C.S.; C.I.E, Vir Nirvan Day in Landon (World Jain Mission, Aliganj. 24) P. 6.

था, उस ने कहा, "तुम अपने श्लोक बताओ, हमें तुम्हारी शर्त मंजूर है।" इस पर इंद्र ने श्लोक कहा:—

"त्रैकाल्यं द्रव्यषट्कं नव पदसहितं जीवषट्कायलेश्या ।
पञ्चान्ये चास्तिकाया व्रतसमितिगतिज्ञानचारित्रभेदाः ॥
इत्येतन्मोक्षमूलं त्रिभुवनमहितैः प्रोक्तमर्हद्भिरीशैः ।
प्रत्येति श्रद्दधाति स्पृशति च मतिमान्यः सवै शुद्धदृष्टिः[1]" ॥

श्लोक को सुन कर इन्द्रभूति गौतम हैरान होगये और दिल ही दिल में विचार करने लगे कि मैंने तो समस्त वेद और पुराण पढ़ लिए किन्तु वहाँ तो छः द्रव्य, नौ पदार्थ और तीन काल का कोई कथन नहीं है। इस श्लोक का उत्तर तो वही दे सकता है जो सर्वज्ञ हो और जिसे समस्त पदार्थों का पूरा ज्ञान हो। इन्द्रभूति ने अपनी कमजोरी को छिपाते हुए कहा कि तुम्हें क्या, चलो। तुम्हारे गुरु को ही इसका अर्थ बताता हूं। उनके दोनों भाई और पाँचसौ शिष्य उनके साथ चल दिये। जब उन्होंने समवशरण के निकट, मानस्तम्भ देखा तो उनका मान खुद-बखुद इस तरह नष्ट होगया जिस तरह सूर्य को देख कर अंधकार नष्ट हो जाता है। ज्यों-ज्यों वह आगे बढ़ते थे त्यों-त्यों अधिक शान्ति और वीतरागता अनुभव करते थे। समवशरण की महिमा को देख कर वह चकित रह गये। महावीर भगवान् की वीतरागता से प्रभावित होकर बड़ी विनय के साथ उनको नमस्कार किया। इसके दोनों भाई और पांचसौ चेलों ने जो इन्द्रभूति से भी अधिक प्रभावित हो चुके थे अपने गुरु को नमस्कार करते देख कर उन सभी ने भगवान महावीर को नमस्कार किया। इन्द्रभूति गौतम ने बड़ी विनय के साथ भगवान् महावीर से पूछा कि इस विशाल मण्डप की रचना मनुष्य के तो वश का कार्य नहीं है, फिर इसको किस ने

---

१. जैन धर्म प्रकाश, (ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद जी) पृ० १६५।

वीर-समवशरण और इन्द्रभूति गौतम गणधर

वीर-केवल-ज्ञान सुन, सुर देव रचते समवशरण ।
इन्द्र गौतम संग जाता, वीर - दर्शन को तत्क्षण ॥

—'प्रफुल्लित'

रचा[1] ? उत्तर में उन्होंने सुना कि ज्योतिष देवों के इन्द्र चन्द्रमा[2] ने अपने अवधिज्ञान से भ० महावीर का केवल ज्ञान जान कर अपने सब देवताओं की सहायता से यह समवशरण रचा है। गौतम स्वामी ने पूछा, चन्द्रमा कौन था ? और किस पुण्य के कारण वह चन्द्रमा नाम का देवता हुआ ? उत्तर में उन्होंने सुना कि श्रावस्ती नाम के नगर में अङ्कित नाम का एक साहूकार रहता था। तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ भगवान् के उपदेश से प्रभावित होकर वह जैन मुनि हो गया और उसने घोर तप किया, जिसके फल से वह आज स्वर्ग में चन्द्रमा नाम का देव हुआ। वहां से वह विदेह क्षेत्र में जन्म लेकर मोक्ष प्राप्त करेगा। भगवान् के इतने जबरदस्त ज्ञान को देख कर कट्टर ब्राह्मण इन्द्रभूति पर बड़ा प्रभाव पड़ा और उसका तथा उसके भाईयों का मिथ्यात्व रूपी अंधेरा नष्ट होगया। वह बार-बार उस बूढ़े ब्राह्मण को धन्यवाद देते थे कि जिन की बदौलत आज उनको सच्चे धर्म और सच्चे ज्ञान का वह अनुपम मार्ग मिला कि जिसको ढूंढने के लिये उन्होंने वर्षों से घर बार छोड़ रखा था। भगवान् महावीर के तेज और अनुपम ज्ञान से प्रभावित हो कर इन्द्रभूति गौतम अपने दोनों भाईयों और पांच सौ चेलों सहित जैन साधु हो गए[3]।

इन्द्रभूति गौतम बुद्धिमान् तो थे ही, सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो जाने से वे इतने ऊंचे उठे कि बहुत जल्दी भगवान् महावीर के सबसे बड़े गणधर (Chief Pontiff) बन गये। उसके भाई और चेले भी उस समय के माने हुए विद्वान् थे। चुनांचे इन्द्रभूति, उस के दोनों भाई अग्निभूति और वायुभूति तथा पांच सौ चेलों में से सुधर्म, मौर्य, मौण्ड, पुत्र, मैत्रेय, अकंपन, अधवेल तथा प्रभास ये ११ भी भगवान् महावीर के गणधर बन गये।

१-३, बत्तीस स्तोत्र, पृ० ६२।

भगवान् महावीर को केवल ज्ञान तो ईस्वीय सन् से ५५७ वर्ष पहले वैशाख सुदी दशमी[1] को प्राप्त होगया, परन्तु उन की दिव्यध्वनि ६६[2] दिन बाद खिरने के कारण उनका पहला धर्म उपदेश श्रावण कृष्णा प्रतिपदा को हुआ था। जिसकी वीर शासन जयन्ती आज तक मनाई जाती है।

वीर-उपदेश

"I request you to understand the teachings of Lord Mahavira, think over them and translate them into action".

—Father of the Nation, Shri Mahatma Gandhi[3].

"जिस प्रकार वृक्षों के समूह को वन, सिपाहियों के समूह को फौज और स्त्री-पुरुषों के समूह को भीड़ कहते हैं, उसी प्रकार जीव[4] और अजीव के समूह को संसार अथवा जगत (universe)

---

१. जैन शासन, पृ० २६५ तथा अनेकान्त वर्ष ११, पृ० ६६-६६।

२. हरिवंश पुराण, सर्ग २, श्लोक ६१-६२।

३. A Public Holiday on Lord Mahavira's Birthday (Mahavira Jain Sabha Mandavla, Bishangarh, Marwar). P. 3.

४. Is there a Soul? If so what is its proof? After elaborate investigations for years togather, the scientists have also come to the conclussion that the conscious element in man may be identified with what is termed as 'soul'. Prof. S. H. Hodgson (Time and Space P. 155) has established its existence. We have to take the existence of the 'Knower' or thinker for granted; for it is not possible to go a step farward without accepting this self—evident truth. If there is no thinker or 'Knower' then who is it that thinks or knows? Shri Shankaracharya says:—"The self is not contigent in

कहते हैं[१]। अजीव के पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल, आकाश पाँच भेद हैं[२]। इसलिये जीव, पुद्गल[३],

---

the case of any person; for it is self—evident. The self is not established by the proofs of the existence of self. Nor it is possible to deny such reality, for it is the very essence of him who would deny it".

In order to know soul, one should first believe in one's own existence. cogito ergosum—"I think, therefore I am". declared Descartes. "I am. therefore I think", said Maxmuller. One can not think unless one has existence. The question, "do I exist" ? does not arise, because it is against the proof of that which has been accepted as a postulate and which is self- evident truth.

—C.S.Mallinathan, Sarvartha Siddhi (Intro).P XV XIV.

१-२. The entire universe is composed of two substances: living and non-living. The latter comprises five substances known as Matter, Space, Time and Media of Motion and Rest. These six Substances pervade the whole universe".—Ishwar Dutt A.R.C S. (London Hons) : J H. M. (January' 1937) P. 1.

३. 'Pudgala' (matter) is a common and indestructible element which is present in all substances like earth, wood, human body, metal, air. gas, water. fire, light. sound, elecltricity, xray etc. It is found by scientists that every atom of an element consist of two or more packets of forces (Shakti) which they have called proton and electron indentified as positive and negative electricity respectively The different properties of the element of gold, iron, oxygen, Hydrogen etc. They have proved consists of different numbers of electrons

धर्म[१], अधर्म[२], काल[३], आकाश[४] इन छः द्रव्यों (Substances) के समूह से 'जगत्' कोई भिन्न पदार्थ नहीं है।

---

each element is made up of. According to this theory one element could be converted into another. This theory establishes the truth of Jain Metaphysics beyound any doubt. —K B. Jinaraja Hegde M.L.A. Anekant. Vol II. P. 87.

१. 'Dharma' according to Jainism is a medium of motion. Sound can not travel without the medium of air. Fish can not float without the medium of liquid. Birds can not fly without the medium of air. Magnetic waves travel long distances, even in areas where there is no air, it travels through water mountains, metal screens and even up to stars and sun. Air is not a medium for those magnetic waves. The Scientists could not explain that medium, though they were definite that there must be a medium. This they call 'ether' which satisfies all the attributes of 'Dharma' as explained by Jain Metaphysicists. —K. B. Jinaraja Hegde. Abid. P. 87.

२. 'Adharma' is a medium necessary for things to remain at rest or static. It ia not the character of anything in this Universe to remain either in static or in motion If there should be a medium for motion we could easily conceive that there may be a medinm of rest. Abid.P.87.

३. 'Kala' is time. Sun, stars, earth, vegetation, human beings animals all undergo change every second. What is its cause ? The cause of such nature which brings changes is called by Jain Metaphysicist as Kala. Abid P. 88.

४. 'Akasa' is space. It gives room for all other five

मृत्यु से आत्मा की पर्याय (शरीर) का परिवर्तन होता है, आत्मा नष्ट नहीं होती[1] । कर्मानुसार[2] दूसरा चोला बदल[3] लेती है। जैसे सोने का कड़ा तुड़वा कर हार बनवाया, हार तुड़वा कर डली बनवाई, कड़ा और हार की अवस्था तो बदल गई परन्तु द्रव्य की अपेक्षा से सोने का नाश नहीं हुआ। तीनों अवस्थाओं में सोना मौजूद[4] रहा, वैसे ही द्रव्य की अवस्था चाहे बदल जावे, परन्तु किसी द्रव्य का नाश नहीं होता[5] और जब द्रव्य नित्य और अनादि है तो द्रव्यों का समूह यह जगत भी अनादि[6]

elements named above. Without Akasa nothing can exist independently of one another. It is due to Akasa that every thing finds its own place.

—K.B.Jinaraja Hegde, M.L.A: Anekanta Vol.II.P 88.

१ Death had no power the immortal soul to stay.
That when its present body turnst o clay,
Seeks a fresh home and with unlessened might,
Inspires another frame with life and light

—ड्रायडनका : जैन शासन, पृ० २२ ।

२-३. 'Is Death the End of Life' ? This book's P. 189.

४. A Scientific Interpretation of Christianity, P. 44-45.

५. Nothing is destroyed altogather and nothing new is created. Birth and decay is not of the real substance but of their modifications. —J.H.M. (Nov. 1924) P.7.

६. (१) ऋग्वेद—"त्रिनाभि चक्रम जरम भवनम्" ।

—ऋ० मण्डल १. सूक्त १६४ मन्त्र २ ।

अर्थ—यह त्रिनाभि रूप चक्रवाला सूर्य अजर, अमर और अविनाशी है।

(२) अथर्ववेद—"सन्तु देव न शीर्यते सेनाभि मन्त्र" ।

—अथर्ववेद काण्ड १२ सू० १-६१ ।

(३) उपनिषद—"अर्ध्वमूलोऽवाक् शाख एषो श्वत्थः सनातनः" ।

—कठोपनिषद ३-२-१ ।

और अकृत्रिम' है।

संसार में यह जीव कर्मानुसार भ्रमण कर रहा है। अनन्तानंत

अर्थ—संसार रूपी वृक्ष सनातन है।

(४) गीता— 'ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।' —गीता अ० १५-१।

अर्थ—यह अर्ध्वमूल और अधः शाख वाला संसार रूपी वृक्ष अव्यय (सनातन) नित्य है।

(५) महाभारत—"सदापर्णः सदा पुष्पः शुभाशुभ फलोदयः।
आजीव्य सर्वभूतानां ब्रह्मवृक्षः सनातनः॥
—अश्वमेध पर्व, अ० ३५-३७-१४।

अर्थ—यह जगत रूपी वृक्ष, चांद, तारे आदि पुष्पों और फलों से सदा प्रफुल्लित रहता है। यह सनातन है, न कभी बना है और न कभी बिगड़ेगा।

(६) The Soul being incorporeal is simple; since thus it is both uncompound and indivisible into parts, so the soul is immortal.
—Ante Nicene Christian Library. XX. 115.

(७) For non-jain references, Anekant', Vol.VII.P.39.

(८) Soul is simple, eternal, deathless and immortal:-
(a) English Psychologist. William McGougall.
(b) English Thinker. Prof. Bowne' Metaphysics.
(c) Haeckel : The Riddle of the Universe, P. 18.
(d) Prof. Dr. M. Hafiz Syed :VOA.Vol III P.10.
(e) Lokamania B.G. Tilk: Kaisri, 13th Dec. 1910.
(f) Prof. Ghasi Ram: Cosmology Old & New.
(g) हिन्दी तथा अंग्रेजी जैनग्रन्थ त्रिलोकसार, गोमटसार, द्रव्य संग्रह।

१. (१) जब ईश्वर प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देता तो उसके होने का प्रमाण क्या? जब हम एक मकान को देखते हैं तो निश्चित् रूप से यह समझ लेते हैं कि इसके बनाने वाला जरूर कोई कारीगर है क्योंकि हमने हमेशा मकान को कारीगरों द्वारा बनते देखा है, लेकिन कुदरती बातों को हमने

वर्षों तक यह निगोद में रहा जहाँ एक श्वास में १८

ईश्वर द्वारा होते नहीं देखा। ऐसे दृष्टान्त से ईश्वर को कर्त्ता-हर्त्ता कैसे सिद्ध किया जा सकता है ? —यूरोप के प्रसिद्ध दार्शनिक ह्यूम : ईश्वर मीमांसा, (दि० जैन संघ) पृ० ७१३ ।

(२) "How can it be that Brahma,
Would make a world, and keep it miserable,
Since, if all-powerful, he leaves it so,
He is no god, and if not powerful,
He is not Good". —Arnold : Light of Asia.

(३) Who and what rules the Universe ? So for as you can see, rules itself and indeed the whole anology with a country and its ruler is false.Julian Huxley.

(४) Can this world full of miseries, inequalities, cruelties and barbarities be the handi work of a good, just and true God ?
—Shair-i-Punjab Lala Lajpat Rai,Marhatta,1933.

(५) The Jainas denied that God, in the sense of the Creator and Sustainer of the universe, existed. "If God created the universe" asks Jinasen Acarya, "Where was he before creating it ? If he was not in space, where did he localise the universe ? How could a formless or immaterial substance like God creat the world of matter ? If the material is to be taken as always existing, why not take the world itself as 'unbegun' ? If the creature was uncreated, why not suppose the world to be itself self-existing" ? Then he continues, "Is God selfsufficient ? If he is, he need not have created the world. If he is not, like an ordinary potter, he would be incapable

बार[१] जन्म-मरण के महा दुःख सहे। जिस प्रकार एक भड़बूजे की

of the task, sinee, by hypothesis, only a perfect being conld produce it. If God created the world as a mere play of his will, it would be making God childish. If God is benevolent and if he has created the world out of his grace, he would not have brought into existence misery as well as felicity". Hence, the conclusion of the Jainas as was in the words of Subhachandra, "Locka (world) was not created, nor is it supposed by any being of the name of Hari or Hara and is in a sense eternal".

—cf. Bandarkar, op. cit. P 113.

(६) Man is said to have been created by God, but the broad and bold truth is that God has been created by men as a scape goat.

—J. H. M. (Dec. 1934) P. 3.

(७) For detailed arguements and sound reasons that the world has not been created by Cod, see:—

(a) Bhagwat Gita, V. 14-15. This books P 117.
(b) Confluence of Opposities P. 291.
(c) Jain Shasan (Gianpitha Kashi). P, 25-41.
(d) Dr. Beni Madho Barva : —History of pre-Buddhistic Indian Philosophy.
(e) Prof Mallinathan : Sarvartha Siddhi (Intro.) Mahavira Atishay Committee, P. XII.
(f) Mr. Herbert Warren : Digamber Jain (Surat) Vol. IX P 48.

१. एक घड़ी ४८ मिनट की होती है जिसमें ३७७३ श्वास होते हैं। जब एक श्वास में १८ बार जन्म-मरण हुआ तो पाठक स्वयं विचार कर सकते हैं कि

भट्टीसे कोई दाना किसी प्रकार तिड़ककर बाहर निकल पड़ता है उसी प्रकार बड़ी कठिनाईयों से यह जीव निगोद से निकला तो एकइन्द्रीय स्थावर[1], जीव हुआ। जैसे चिन्तामणी रत्न बड़ी कठिनाई से मिलता है उसी प्रकार त्रस[2] जीवों का शरीर पाना बड़ा दुर्लभ है। इस जीव ने किड़ी, भौंरा, भिरड़, आदि शरीरों को बार बार धारण करके महा दुःख सहा। कभी यह बिना मन का पशु हुआ, कभी मन सहित शक्तिशाली सिंह, भौंरा आदि पाँच इन्द्रिय पशु हुआ। तब भी उसने कमजोर पशुओं को मार-मार कर खाया और हिंसा के पाप-फल को भोगता रहा और जब यह जीव स्वयं निर्बल हुआ तो अपने से प्रबल जीवों द्वारा बाँधे जाने, छिदा जाने, भेदा जाने, मारा पीटा जाने, अति बोझ उठाने तथा भूख-प्यास आदि के ऐसे महादुःख पशु पर्याय में सहन करने पड़े, जो करोड़ों जबानों से भी वर्णन न किये जा सकें और जब खेद से मरा तो नरक में आ पड़ा, जहाँ कि भूमि को छूने से ही इतना दुःख होता है जो हजारों सर्पों और बिच्छुओं के काटने पर भी नहीं होता। नरक में नारकीय एक दूसरे को मोटे डन्डों से मारते हैं, बरछियों से छेदते हैं और तलवारों से शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर देते हैं। नारकीयों का शरीर पारे का होता है, फिर जुड़ जाता है, इस लिये फिर वही मार काट। इस प्रकार हजारों साल तक नरक के महा दुःख भोगे।

यदि किसी शुभ कर्म से मनुष्य पर्याय भी मिल गई तो यहाँ माता के पेट में बिना किसी हलन-चलन के सिकुड़े हुए नौ महीनों तक उल्टा लटकना पड़ा। दरिद्रता में पैसा न होने और अमीरता में तृष्णा का दुःख। कभी स्त्री तथा संतान न होने का खेद।

एक दिन में इस जीव को कितनी बार जन्म-मरण करना पड़ता है।

—छः ढाला (जैना वाच कम्पनी देहली ७) पृ० ३।

१-२. विस्तार के लिये छः ढाला व रत्नकरण्ड श्रावकाचार देखिये।

यदि यह दोनों वस्तु प्राप्त भी हो गई तो नारी के कलहारी और संतान के आज्ञाकारी न होने का दुःख। कभी रोगी शरीर होने की परिषय, तो कभी इष्ट-वियोग तथा अनिष्ट-संयोग के दुःख। बड़े से बड़ा सम्राट, प्रधान मन्त्री आदि जिसको हम प्रत्यक्ष में सुखी समझते हैं, शत्रुओं के भय तथा रोग-शोक आदि महा दुःखों से पीड़ित है।

स्वर्ग को तो सुखों की खान बताया जाता है। यह जीव स्वर्ग में भी अनेक बार गया, परन्तु जितनी इन्द्रियों की पूर्ति होती गई उतनी ही अधिक इच्छाओं की उत्पत्ति के कारण वहां भी यह व्याकुल रहा, दूसरे देवों की अपने से अधिक शक्ति और ऋद्धि को देख कर ईर्षा भाव से कुढ़ता रहा। इस प्रकार यह संसारी जीव अपनी आत्मा के स्वरूप को भूल कर देव, मनुष्य, पशु, नरक, चारों गतियों की चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करते हुये कषायों को अपनी आत्मा का स्वभाव जान कर उनमें आनन्द मानता रहा। स्वर्ग में गया तो अपने को देव, पशु, गति में अपने को पशु तथा नरक में अपने को नारकीय समझता रहा। मनुष्य गति में भी राजा, सेठ, वकील, डाक्टर, जज, इञ्जीनीयर जो भी पदवी पाता रहा उसी को अपना स्वरूप मानता रहा। क्षण भर भी यह विचार नहीं किया कि मैं कौन हूँ? मेरा असली स्वरूप क्या है? मेरा कर्तव्य क्या है? यह संसार क्या है? मैं इसमें क्यों भ्रमण कर रहा हूं? इस आवागमन के चक्कर से मुक्त होने का उपाय क्या हो सकता है?

देव हो या नारकीय, मनुष्य हो या पशु, राजा हो या रङ्क, हाथी हो या कीड़ी, आत्मा हर जीव में एक समान है[1]। शरीर

---

१. (i) कोई भी पशु-पक्षी ऐसा नहीं जो तुम्हारे (मनुष्य) के समान न हो।

Koran. P. VI.

आत्मा से भिन्न है। जब यह शरीर ही अपना नहीं और जीव निकल जाने पर यहीं पड़ा रह जाता है, तो स्त्री-पुत्र, धन-सम्पत्ति आदि जो प्रत्यक्ष में अपनी आत्मा से भिन्न हैं, अपनी कैसे हो सकती हैं ? संसारी पदार्थों की अधिक मोह-ममता के कारण ही अज्ञानी जीव निज-पर का भेद न जान कर अपने से भिन्न पदार्थों को अपनी मान बैठता है।

इस विश्वास का कि पर-द्रव्य मेरे हैं, मैं उनका बुरा या भला कर सकता हूं, यह अर्थ है कि जगत में जो अनन्त पर-द्रव्य हैं, उनको पराधीन माना। पर द्रव्य मेरा कुछ कर सकता है, इसका मतलब यह है कि अपने स्वभाव को पराधीन माना। इस मान्यता से जगत के अनन्त पदार्थों और अपने अनन्त स्वभावों की स्वाधीनता की हत्या हुई। इसलिये इसमें अनन्त हिंसा का पाप है।

जगत के पदार्थों को स्वाधीन की जगह पराधीन मानना तथा जो अपना स्वरूप नहीं, उसको अपना स्वरूप मानना अनन्त झूठ है।

जिसने अनंत पर-पदार्थ को अपना माना उसने अनन्त चोरी का पाप किया। "एक द्रव्य दूसरे का कुछ कर सकता है" ऐसा मानने वाले ने अनन्त द्रव्यों के साथ एकता रूप व्यभिचार करके अनन्त मैथुन सेवन का महापाप किया है। जो अपना न होने पर भी जगत के पर पदार्थों को अपना मानता है, वह अनन्त परिग्रहों का महापाप करता है। इसलिये पर पदार्थों को अपना जानना और यह विश्वास करना कि मैं पर का भला-बुरा कर सकता हूँ या वह मेरा भला-बुरा कर सकते हैं, जगत का सब से बड़ा महापाप और मिथ्यात्व है।

(ii) हम सब खुदा के बेटे हैं। Sabia.

(iii) 'Souls are equal'. Ante Nicene Christian Library, XII. 362.

तीन लोक के नाथ श्री तीर्थंकर भगवान कहते हैं "मेरा और तेरा आत्मा एक ही जाति का है'। मेरे स्वभाव और गुण वैसे ही हैं जैसे तेरे स्वभाव और गुण। अर्हन्त अथवा केवल ज्ञान दशा प्रगट हुई वह कहीं बाहर से नहीं आगई। जिस प्रकार मोर के छोटे से अंडे में साढ़े तीन हाथ का मोर होने का स्वभाव भरा है उसी प्रकार तेरी आत्मा में परमात्म पद प्रगट करने की शक्ति है। जिस तरह अंडे में बड़े-बड़े जहरीले सर्प निगल जाने की शक्ति है उसी तरह तेरी आत्मा में मिथ्यात्व रूपी विष को दूर करके अर्हन्त पद अथवा केवल ज्ञान प्रगट करने की शक्ति है। परन्तु जैसे यह शङ्का करके कि छोटे से अंडे में इतना लम्बा मोर कैसे हो सकता है उसे हिलाये-जुलाये तो उसका रस सूख जाता है और उससे मोर की उत्पत्ति नहीं होती, वैसे ही आत्मा के स्वभाव पर विश्वास न करने तथा यह शंका करने से कि मेरा यह संसारी आत्मा सर्वज्ञ भगवान के समान कैसे हो सकता है, तो ऐसी मिथ्यात्व रूपी शङ्का करने से सम्यग्दर्शन नहीं होता।

सम्यग्दर्शन अनुपम सुखों का भण्डार है, सर्व कल्याण का बीज है, पाप रूपी वृक्ष को काटने के लिये कुल्हाड़ी के तथा संसार रूपी सागर से पार उतरने के लिये जहाज के समान है, मिथ्यात्व रूपी अंधेरे को दूर करने के लिये सूर्य और कर्म रूपी ईन्धन को भस्म करने के लिये अग्नि है। जो क्रोध, मान, लोभ, इच्छा,

---

१ (i) "Because as he is, so are we in this world" John IV. 17.

(ii) ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। गीता अ० १८, श्लोक ६१।

(iii) सर्वं विश्वात्मकं विष्णुम्' —नारद पुराण प्रथम खण्ड स० ३१।

(iv) 'आसीनः सर्वभूतेषु' —बाराह पुराण अ० ६४।

(vi) 'ईश्वरः सर्वभूतस्थः' याज्ञवल्क्य स्मृति श्लोक १०८।

राग-द्वेष आदि कषायों से पीड़ित तथा इष्ट-वियोग और अनिष्ट-संयोग से मूर्छित हैं, उन के लिये सम्यग्दर्शन से अधिक कल्याणकारी और कोई औषधि नहीं। जो ज्ञान और चारित्र के पालने में प्रसिद्ध हुए हैं, वे भी सम्यग्दर्शन के बिना मोक्ष प्राप्त नहीं कर सके? सम्यग्दर्शन के भाव से पशु भी मानव है और उस के अभाव से मानव भी पशु है। जितने समय सम्यग्दर्शन रहता है उतने समय कर्मों का बंध नहीं हो सकता। सम्यग्दर्शन रूपी भूमि में सुख का बीज तो बिना बोये ही उग जाता है, परन्तु जैसे बंजर भूमि में बीज गिरने पर भी फल की प्राप्ति नहीं होती, उसी प्रकार सम्यग्दर्शन रूपी भूमि पर दुःख का बीज गिर जाने पर भी कदाचित् फल नहीं दे सकता। यदि एक क्षण मात्र भी सम्यग्दर्शन प्रगट कर लिया जाय तो मुक्ति हुए बिना नहीं रह सकती। सम्यग्दर्शन वाले जीव का ज्ञान सम्यग्ज्ञान, चारित्र सम्यग्चारित्र स्वयं हो जाता है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र तीनों का समूह रत्नत्रय है और रत्नत्रय मोक्ष मार्ग है। इस लिये सम्यग्दर्शन एक बार भी धारण हो जाये तो इच्छा न होने पर भी यदि हो सका, तो उसी भव में; अन्यथा अधिक से अधिक १५ भव में मोक्ष अवश्य प्राप्त कर लेता है[1]।

पदार्थ के समस्त अङ्गों को सम्पूर्णरूप से जानने के लिये जीव का अनेकान्तवादी अथवा स्याद्वादी और आत्मा के स्वाभाविक-गुणों को ढकनेवाले कर्मरूपी परदे को हटाने के लिये अहिंसावादी होना जरूरी है, अहिंसा को पूर्णरूप से संसारी पदार्थों और उनकी मोह-ममता के त्यागी निर्ग्रंथ नग्न साधु ही भली भांति पाल सकते हैं। इसलिये जो अपनी आत्मा के गुणों को प्रगट करने तथा अविनाशी सुख-शान्ति की प्राप्ति के अभिलाषी हैं, उन्हें अवश्य निज

---

१. सम्यग्दर्शन जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट (सोनागढ़ सौराष्ट्र) भा० १, पृ० १० ।

और पर का भेद-विज्ञान विश्वासपूर्वक जान कर मुनि-धर्म का पालन करना उचित है, परन्तु जो जीव संसारी पदार्थों की मोह-ममता अनादि काल से करते रहने की आदत के कारण एकदम निर्ग्रंथ साधु होने की शक्ति नहीं रखते, वे गृहस्थ में रहते हुए ही संसारी पदार्थों की मोह-ममता कम करने का अभ्यास करने के लिये सप्तव्यसन[1] का त्याग करके आठ मूल गुण[2] श्रावक के बारह व्रत[3] अवश्य धारण करें। जैसे जल बिना बावड़ी, कमल बिना तालाब और दांत बिना हाथी शोभित नहीं वैसे ही तप-त्याग शील संयम आदि के बिना मनुष्य जन्म शोभा नहीं देता। जितनी अधिक श्रद्धा और रुचि इनमें बढ़ेगी, उतनी ही अधिक शान्ति, संतोष और वीतरागता उत्पन्न होगी। इस प्रकार धीरे-धीरे ११ प्रतिमाएँ[4] पालते हुये जिन-दीक्षा लेकर निर्ग्रन्थ मुनि-धर्म पालने का यत्न करना चाहिये।

संसारी पदार्थों में सुख मानने वाला लोभी जीव स्वर्ग प्राप्ति की अभिलाषा करता है, परन्तु स्वर्गों में सच्चा सुख कहाँ? जिस प्रकार क्षीर सागर का मीठा और निर्मल जल पीने वाले को खारी बावड़ी का जल स्वादिष्ट नहीं लगता, उसी प्रकार मोक्ष के अविनाशी तथा सच्चे सुखों का स्वाद चखने वालों को संसारी तथा स्वर्ग के सुख आनन्ददायक नहीं होते। इसलिये सम्यग्दृष्टि देव तथा देवों के भी देव इन्द्र तक मनुष्य जन्म पाने की अभिलाषा करते हैं कि कब स्वर्ग की आयु समाप्त होकर हमें मनुष्य जीवन मिले और हम तप करके कर्मों को काट कर मोक्ष रूपी अविनाशी सुख प्राप्त कर सकें। कर्म बाँधने के लिये तो चौरासीलाख योनियाँ[5] हैं, परन्तु कर्म काटने के लिये केवल एक मनुष्य-पर्याय ही है। मनुष्य जन्म मिलना बड़ा दुर्लभ है। निगोद[6] से निकलने के बाद

१-६. श्रावक-धर्म-संग्रह (वीरसेवामन्दिर सरसावा मू० १।) पृ० ७७-२५३।

अरबों-खरबों वर्षों में अधिक से अधिक सोलह बार मनुष्य जन्म मिलता है और यदि इनमें मोक्ष की प्राप्ति न हुई तो नियमानुसार यह जीव फिर निगोद में अवश्य चला जाता है, जहाँ से फिर निकल कर आना इतना दुर्लभ है जितना चिन्तामणि रत्न को अपार सागर में फेंक कर फिर उसको पाने की इच्छा करना। जिस प्रकार मूर्ख पारस पथरी की कीमत न जान कर उसे फेंक देता है, उसी प्रकार धर्म पालने पर नौकरी नहीं लगी, मुकद्मा नहीं जीता गया, सन्तान नहीं हुई, बीमारी नहीं गई, धन नहीं मिला तो धर्म छोड़ना पारस पथरी फेंकने के समान है। धर्म अवश्य अपना सुन्दर फल देगा, यह तो पहले पाप-कर्मों की तीव्रता है जो धर्म पालने पर भी तुरन्त संसारी सुख नहीं मिलते। इसमें धर्म का दोष नहीं। श्रावक-धर्म[1] पालने से धन-सम्पत्ति, सुन्दर स्त्रियां, आज्ञाकारी पुत्र, निरोग शरीर तथा राज-सुख, चक्रवर्ती पद और स्वर्ग की विभूतियां बिना मांगे आप से आप ही मिल जाती है और मुनि-धर्म[2] पालने से समस्त संसारी दुःखों से मुक्त होकर यही संसारी जीवात्मा सच्चा आनन्द, अविनाशी सुख और आत्मिक शान्ति का धारी सर्वज्ञ, सर्वदृष्टा तथा सर्वशक्तिमान परमात्मा तथा मोक्ष प्राप्ति की सिद्धि अवश्य हो जाती है।[3]

---

१ i House Holder's Dharama -/12/- Jain Parishad Delhi.
ii उर्दू जैन मतसार /8/- J. Mitar Mandel, Delhi.
iii रत्नकरण्ड श्रावकाचार II1) उग्रसैन एडवोकेट, रोहतक

२ Sannyas Dharam and Practical Dharam 1-8 each from *Jain Parishad, Dariba Kala, Delhi*

३. The Salient feature of Jainism is real existence of individual soul having capacity of rising to Godhood.

—Prof. Prithvi Raj : VOA. Vol. I. Part 6. P. 11.

वीर-शासन

जिन-शासन सकल पापों का वर्जनहारा और तिहुं लोक में अति निर्मल तथा उपमारहित है।

—महाराजा दशरथ : पद्मपुराण, पर्व ३१, पृ० २६६।

अहिंसावाद

"True world peace could be won only through the aplication of sipirtual and moral values—not by the most terrifying instruments of destruction"[1]

— President Eisenhower, Washington

पिछले दो महा भयानक युद्धों के अनुभव ने संसार को बता दिया कि हिंसा से चाहे थोड़ी देर के लिये शत्रु दब जाये, परन्तु शत्रुता का नाश नहीं होता, इसलिये युद्ध और हिंसा में विश्वास रखने वाले देश भी तलवार से अधिक अहिंसा की शक्ति को स्वीकार करने लगे हैं[२] और भारत से विश्वशान्ति की आशा करते हैं[३]।

यह विचार करना कि आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पहले श्री वर्द्धमान महावीर या महात्मा बुद्ध ने अहिंसा की स्थापना की, ठीक नहीं है। अहिंसा एक अत्यन्त प्राचीन संस्कृति है, जिसकी महिमा का प्राचीन से प्राचीन ग्रन्थों में भी बड़ा सुन्दर कथन है। 'मनुस्मृति' में महर्षि मनु जी ने बताया कि हजारों साल तक अश्व-

---

१-२. A. B. Patrika, Northern Edition (24th Nov. 1953) P.5.

३. *"I regard India as the most hopeful factor at present* for world peace."

—Honble Mr. Fenner Brockway, M.P. House of Common, Lon'daon. VOA. II. 143.

मेध यज्ञ करने से भी वह लाभ नहीं, जो अहिंसा धर्म के पालने से होता है[1]। भागवत् पुराण में हर प्रकार के यज्ञ और तप करने से भी अधिक अहिंसा का फल बताया है[2]। 'रामायण' में अहिंसा को धर्म का मूल स्वीकार किया है[3]। शिवपुराण[4] वाराहपुराण[5], स्कन्धपुराण[6], रुद्रपुराण[7] में भी अहिंसा की महिमा का कथन है। महाभारत में ब्राह्मणों को हजारों गउवों के दान से भी अधिक उत्तम अहिंसा को बताया है[8]। श्रीकृष्ण जी ने तो यहाँ तक स्पष्ट कर दिया है कि वहीं धर्म है जहाँ अहिंसा है[9] और कहा है :—

अहिंसा परमो धर्मस्तथाऽहिंसा परो दमः।
अहिंसा परमं दानमहिंसा परमं तपः॥
अहिंसा परमो यज्ञस्तथाऽहिंसा पर फलम्।
अहिंसा परमं मित्रमहिंसा परमं सुखम्॥

—महाभारत अनुशासन पर्व

---

१. वर्षे वर्षेऽश्वमेधेन यो जयेत शतं समाः।
मांसानि न च खादेत तयो पुण्यफलं समम्॥—मनुस्मृति अ० ५, श्लोक ५३।

२. सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च तपो दानानि चानघ।
जीवाभयप्रदानस्य न कुर्वीरन् कलामपि॥—भागवत स्क० ३, अ० ७, श्लो० १३

३. दया धर्म का मूल है पाप मूल अभिमान।
'तुलसी' दया न छोड़िये जब तक घट में प्रान॥—तुलसीदास : रामचरित

४. अहिंसा परमो धर्मः पापमात्मप्रपीडनम्।—शिवपुराण

५. अहिंसा परमो धर्मो ह्यहिंसा परमं सुखम्।—गरुड़पुराण

६. अहिंसा परमोधर्मः।—स्कन्धपुराण

७. सर्वे तनुभृतस्तुल्या यदि बुद्धया विचार्यते।
इदं निश्चित्य केनापि न हिंस्यः कोऽपि कुत्रचित्॥—रुद्रपुराण

८. कपिलानां सहस्राणि यो द्विजेभ्यः प्रयच्छति।
एकस्य जीवितं दद्यात् स च तुल्यं युधिष्ठिर!॥—महाभारत शान्तिपर्व

९. अहिंसा लक्षणो धर्मो ह्यधर्मं प्राणिनां वधः।
तस्माद् धर्मार्थिभिर्लोकैः कर्तव्या प्राणिनां दया॥—श्रीकृष्ण जी : महाभारत।

श्री व्यास जी के शब्दों में—हिन्दू धर्म के तो समस्त १८ पुराण अहिंसा की ही महिमा से भरपूर हैं[1]। वैदिक[2], बौद्ध[3], मुसलमान[4], सिक्ख[5], इसाई[6] पारसी[7] आदि धर्मों में भी अहिंसा को बड़ा उत्तम स्थान प्राप्त है।

डा० कालीदास नाग ने अहिंसा सिद्धान्त की खोज और प्राप्ति को संसार की समस्त खोजों और प्राप्तियों से महान् सिद्ध करते हुए न्यूटन के Law of Gravitation से भी अधिक बताया है[8]। डा० राजेन्द्रप्रसाद जी ने अहिंसा जैनियों की विशेष सम्पत्ति कही है[9]। सरदार पटेल के शब्दों में अहिंसा वीर पुरुषों का धर्म है[10]। भारत जैनियों की अहिंसा के कारण पराधीन नहीं हुआ[11] बल्कि स्वतन्त्र ही अहिंसा की बदौलत हुआ है[12]।

श्री महात्मा गाँधी जी अहिंसा के महान पुजारी थे, उन्होंने यह भाव भी जैन धर्म ही से प्राप्त किये थे[13]। महात्मा गाँधी जी जैसे महापुरुष स्वयं महावीर स्वामी को अहिंसा का अवतार मानते हैं[14]। चीन के विद्वान् प्र० तान युनशां ने अहिंसा का सब से पहला स्थापक जैन तीर्थंकरों को स्वीकार किया है[15]।

जैन धर्म के अनुसार राग द्वेषादि भावों का न होना अहिंसा है और उनका होना हिंसा है[16]। अहिंसा को विधिपूर्वक तो मुनि और साधु ही पाल सकते हैं, जिनके उत्तम क्षमा है, जो वैरागी हैं, जिनको कष्ट दिये जाने पर भी शोक नहीं होता। 'गृहस्थी को इस

---

१. अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्॥—व्यास जी : मारकण्डेयपुराण

२-११ इसी ग्रन्थ के पृ० ६६, ४८, ६४, ६७, ६०, ६३, ९९, ७८, ७६, ११०।

१२-१३ जैन धर्म और महात्मा गांधी, खण्ड ३।

१४-१५ इसी ग्रन्थ का पृष्ठ ७७, १७६।

१६ श्री अमृतचन्द्र आचार्यः पुरुषार्थसिद्ध्युपायः श्लोक ४२-४४।

आदर्श पर पहुँचना चाहिये' ऐसा ध्यान में रख कर गृहस्थी यथाशक्ति हिंसा का त्याग करते हैं। हिंसा के चार भेद हैं :—

(१) संकल्पी— जान बूझ कर इरादे से हिंसा करना— मांसाहार के लिये, धर्म के नाम पर हिंसक यज्ञ तथा शौक व फैशन के वश की जाने वाली हिंसा ।

(२) उद्यमी—असि (राज्य व देश-रक्षा), मसि (लिखना), कृषि (वाणिज्य व विद्या कर्म) में होनेवाली हिंसा।

(३) आरम्भी—मकान आदि के बनवाने, खान-पानादि कार्यों में होने वाली हिंसा।

(४) विरोधी—समझाये जाने पर भी न मानने वाले शत्रु के साथ युद्ध करने में होने वाली हिंसा।

गृहस्थी को अपने घरेलू कार्यों, देश-सेवा, अपनी तथा दूसरों की जान और सम्पत्ति की रक्षा के लिये उद्यमी, आरम्भी और विरोधी हिंसा तो करनी पड़ती ही है, इस लिये श्रावक के लिये यह ध्यान में रखते हुए कि हर प्रकार की हिंसा जहाँ तक हो सके कम से कम हो, केवल जान बूझ कर की जाने वाली सङ्कल्पी हिंसा का त्याग ही अहिंसा है। ज्यों ज्यों इसके परिणामों में शुद्धता आती जायगी त्यों त्यों अहिंसा व्रत में दृढता होते हुए एक दिन ऐसा आजाता है कि संसारी पदार्थों की मोह-ममता छूट कर वे मुनि होकर सम्पूर्ण रूप से अहिंसा को पालते हुए वे शत्रु और मित्र का भेद भूल कर शेर-भेड़िये, सांप और बिच्छू जैसे महा भयानक पशुओं तक से भी प्रेम करने लगता है, जिसके उत्तर में वे भयानक पशु भी न केवल उन महापुरुषों से बल्कि उनके सच्चे अहिंसामयी प्रभाव से अपने शत्रुओं तक से भी बैर भाव भूल जाते हैं[१]। यही कारण है कि तीर्थंकरों के समवशरण में एक दूसरे

१ महर्षि पातञ्जलि : योगदर्शन, साधनपाद, सूत्र ३५, श्लोक पृ० २३२।

के विरोधी पशु-पक्षी भी आपस में प्रेम के साथ एक ही स्थान पर मिल-जुल कर धर्म उपदेश सुनते हैं। पिछले जमाने की बात जाने दीजिये, आज के पंचम काल की बीसवीं सदी में जैनाचार्य श्री शान्तिसागर जी (जो आज कल भी जीवित हैं) के शरीर पर पाँच बार सर्प चढ़ा और अनेक बार तो दो दो घण्टे तक उनके शरीर पर अनेक प्रकार की लीला करता रहा। परन्तु वे ध्यान में लीन रहे और सर्प अपनी भक्ति और प्रेम की श्रद्धाँजलि भेंट करके बिना किसी प्रकार की बाधा पहुँचाये चला गया[1]।

जयपुर के दीवान श्री अमरचन्द व्रती श्रावक थे। उन्होंने मांस खाने और खिलाने का त्याग कर रखा था। चिड़ियाघर के शेर को मांस खिलाने के लिए खर्च की मंजूरी के कागजात उनके सामने आये तो उन्होंने मांस खिलाने की आज्ञा देने से इन्कार कर दिया। चिड़ियाघर के कर्मचारियों ने कहा कि शेर का भोजन तो मांस ही है, यदि नहीं दिया जायेगा तो वह भूखा मर जायेगा। दीवान साहब ने कहा कि भूख मिटाने के लिए उसे मिठाई खिलाओ। उन्होंने कहा कि शेर मिठाई नहीं खाता। दीवान अमर चन्द जैन ने कहा कि हम खिलावेंगे। वह मिठाई का थाल लेकर कई दिन के भूखे शेर के पिंजरे में भयरहित घुस गये और शेर से कहा कि यदि भूख शान्त करनी है तो यह मिठाई भी तेरे लिये उपयोगी है, और यदि मांस ही खाना है तो मैं खड़ा हूं मेरा माँस खालो। शेर भी तो आखिर जीव ही था। दीवान साहब की निर्भयता और अहिंसामयी प्रेमवाणी का उस पर इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि उसने सबको चकित करते हुए शान्त भाव से मिठाई खाली।

श्री विवेकानन्द के मासिक पत्र "प्रबुद्ध भारत" का कथन है

---

१. आचार्य श्री शान्तिसागर महाराज का चरित्र, पृ० २३-२४।

कि एण्डरसन नाम का एक अंग्रेज जयदेवपुर के जंगल में शिकार खेलने गया, वहाँ एक शेर को देख कर उनका हाथी डरा, उसने साहब को नीचे गिरा दिया। एण्डरसन ने शेर पर दो तीन गोलियां चलाईं किन्तु निशाना चूक गया। अपने प्राणों की रक्षा के हेतु शेर ने साहब पर हमला कर दिया। साहब प्राण बचाने को भाग कर पास की एक झोंपड़ी में घुस गये। वहाँ एक दिगम्बर साधु विराजमान थे। शेर भी शिकारी का पीछा करते हुए वहां आया परन्तु दिगम्बर साधु को देख वह शान्त होगया। शिकारीको कुछ न कह, वह थोड़ी देर वहाँ चुपचाप बैठकर वापस चला आया तो एण्डरसन ने जैन साधु से इस आश्चर्य का कारण पूछा तब नग्न मुनी ने कहा—"जिसके चित्त में हिंसा के विचार नहीं उसे शेर या सांप आदि कोई भी हानि नहीं पहुंचाता, जंगली जानवरों से तुम्हारे हिंसक भाव हैं इसलिये वे तुम्हारे ऊपर हमला करते हैं[1]"। मुनिराज की इस अहिंसामई वाणी का इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि उसी रोज से उस अंगरेज ने हमेशा के लिये शिकार खेलने का त्याग कर दिया और सदा के लिये शाकाहारी बन गया। चटागांव में एण्डरसन के इस परिवर्तन को लोगों ने प्रत्यक्ष देखा है[2]।

"एक अंग्रेज विद्वान् मिस्टर पाल्वृन्टन का कथन है कि महर्षि रमण तप में लीन थे। रात्रि में उन्होंने एक शेर देखा जो भक्ति-पूर्वक रमण के पांव चूम रहा था व बिना कोई हानि पहुँचाये सुबह होने से पहले वहां से चला गया। एक दिन उन्होंने रमण महाराज के आश्रम में एक काला सांप फुंकारें मारता हुआ दिखाई पड़ा

१-२. "One, who has no Hinsa, is never injured by tigers or sanakes, because you have feelings of Hinsa in your mind, you are attacked by wild animals."

—Jain Saint:- Prabuddha Bharata (1934) P. 125-126.

जिसे देखते ही उन्होंने चीख मारी, जिसे सुन कर रमण का एक शिष्य वहां आगया, और उस जहरीले काले सांप को हाथों में लेकर उसके फणों से प्यार करने लगा। अंग्रेज ने आश्चर्य से पूछा कि क्या तुम्हें इससे भय नहीं लगता? उसने कहा, जब इसको हमसे भय नहीं तो हमें इससे भय कैसा? जहां अहिंसा और प्रेम होता है वहां भयानक पशु तक भी योग-शक्ति से प्रभावित होकर अपनी शत्रुता को भूलकर विरोधियों तक से प्रेमव्यवहार करने लगते हैं[1]"।

वास्तव में अहिंसा धर्म परम धर्म है और यदि जैन धर्म को विश्व धर्म होने का अवसर मिले तो अहिंसा धर्म को अपना कर यही दुःखभरा संसार अवश्य स्वर्ग हो जाये[2]।

अनेकान्तवाद तथा स्याद्वाद

"The Anekantvada or the Syadvada stands unique in the world's thought If followed in practice, it will spell the end of all the warring beliefs and bring harmony and peace to mankind."

Dr. M. B. Niyogi, Chief Justice Nagpur: Jain Shasan Int.

हर एक वस्तु में बहुत से गुण और स्वभाव होते हैं। ज्ञान में तो उन सब को एक साथ जानने की शक्ति है परन्तु वचनों में उन सब का कथन एक साथ करने की शक्ति नहीं। क्योंकि एक समय एक ही स्वभाव कहा जा सकता है। किसी पदार्थ के समस्त गुणों को एक साथ प्रकट करने के विज्ञान को जैन धर्म अनेकान्त अथवा स्याद्वाद के नाम से पुकारता है। यदि कोई पूछे कि संखिया जहर है या अमृत? तो स्याद्वादी यही उत्तर देगा कि जहर भी है अमृत भी तथा जहर और अमृत दोनों भी है।

---

१. उर्दू मासिक पत्र 'ओ३म्' (जून सन् १९५०) पृ० २०।

२. Prof. Dr. Charolotta Krause : This book's P. 110.

अज्ञानी इस सत्य की हँसी उड़ाते हैं कि एक ही वस्तु में दो विरुद्ध बातें कैसे ? किन्तु विचारपूर्वक देखा जाये तो संखिया से मर जाने वाले के लिए वह जहर है, दवाई के तौर पर खाकर अच्छा होने वाले रोगी के लिये अमृत है। इसलिये संखिये को केवल जहर या अमृत कह देना पूरा सत्य कैसे ? कोई पूछे, श्री लक्ष्मण जी महाराजा दशरथ के बड़े बेटे थे या छोटे ? श्री रामचन्द्र जी से वे छोटे थे और भरत जी से बड़े और दोनों की अपेक्षा से छोटे भी, बड़े भी !

कुछ अन्धों ने यह जानने के लिये कि हाथी कैसा होता है, उसे टटोलना शुरू कर दिया। एक ने पांव टटोल कर कहा कि हाथी खम्बे जैसा ही है, दूसरे ने कान टटोल कर कहा कि नहीं, छाज जैसा ही है, तीसरे ने सूंड टटोल कर कहा कि तुम दोनों नहीं समझे वह तो लाठी ही के समान है, चौथे ने कमर टटोल कर कहा कि तुम सब झूठ कहते हो हाथी तो तख्त के समान ही है। अपनी अपनी पपेक्षा में चारों को लड़ते देख कर सुजाखे ने समझाया कि इसमें झगड़ने की बात क्या है ? एक ही वस्तु के संबंध एक दूसरे के विरुद्ध कहते हुए भी अपनी २ अपेक्षा से तुम सब सच्चे हो, पांव की अपेक्षा से वह खम्बे के समान भी है, कानों की अपेक्षा से छाज के समान भी है, सूंड की अपेक्षा से वह लाठी के समान भी है और कमर की अपेक्षा से तख्त के समान भी है। स्याद्वाद सिद्धान्त ने ही उनके झगड़े को समाप्त किया।

अंगूठे और अंगुलियों में तकरार हो गया। हर एक अपने २ को ही बड़ा कहता था। अंगूठा कहता था मैं ही बड़ा हूँ, रुक्के-तमस्सुक पर मेरी वजह से ही रुपया मिलता है, गवाही के समय भी मेरी ही पूछ है। अंगूठे के बराबर वाली उंगली ने कहा कि हकूमत तो मेरी है, मैं सब को रास्ता बताती हूँ, इशारा मेरे से ही

होता है मैं ही बड़ी हूँ। तीसरी बीच वाली अंगुली बोली कि प्रत्यक्ष को प्रमाण क्या? तीनों बराबर खड़ी हो जाओ और देख लो, कि मैं ही बड़ी हूँ। चौथी ने कहा कि बड़ी तो मैं ही हूँ जो संसार के तमाम मंगलकारी काम करती हूँ। विवाह में तिलक मैं ही करती हूं, अंगूठी मुझे पहनाई जाती है, राजतिलक मैं ही करती हूं। पांचवी कन्नो अंगुली बोली कि तुम चारों मेरे आगे मस्तक झुकाती हो, खाना, कपड़े पहिनना, लिखना आदि कोई काम करो मेरे आगे झुके बग़ैर काम नहीं चलता। तुम्हें कोई मारे तो मैं बचाती हूं। किसी के मुक्का मारना हो तो सब से पहले मुझे याद किया जाता है। मैं ही बड़ी हूं। पाँचों का विरोध बढ़ गया तो स्याद्वादी ने ही उसे निबटाया कि अपनी २ अपेक्षा से तुम बड़ी भी हो, छोटी भी हो बड़ी तथा छोटी दोनों भी हो।

ऋग्वेद,[1] विष्णुपुराण[2] महाभारत[3] में भी स्याद्वाद का कथन है। महर्षि पातञ्जलि ने भी स्याद्वाद की मान्यता की है[4]। परन्तु "जैनधर्म में अहिंसा तत्व जितना रम्य है उससे कहीं अधिक सुन्दर स्याद्वाद-सिद्धान्त है"[5] "स्याद्वाद के बिना कोई वैज्ञानिक तथा दार्शनिक खोज सफल नहीं हो सकती[6]"। "यह तो जैनधर्म की महत्त्वपूर्ण घोषणा का फल है"[7]। "इससे सर्व सत्य का द्वार

---

१ इन्द्रं मित्रं वरुणमाग्नेमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥
—ऋग्वेद मंडल १ सूक्त १६४ मंत्र ४६।

२ वस्त्वेकमेव दुःखाय सुखायेर्ष्या जमाय च।
कोपाय च यतस्तस्माद् वस्तु वस्त्वात्मकं कुतः ॥—विष्णुपुराण

३ सर्वं संशयितमति स्याद्वादिनः सप्तभंगीन यथाः।
—महाभारत अ० २, पाद २ श्लोक ३३-३६।

४ 'मीमांसा श्लोकवार्तिक' पृष्ठ ६१९ श्लो० २१, २२, २३।

५ आचार्य आनन्दशङ्कर भव प्रोवाइसचांसलर हिन्दूयूनिवर्सिटी:जैनदर्शन वर्ष२ १८१

६-७ गंगाप्रसाद मेहता : जैनदर्शन वर्ष २, पृ० १८१।

खुल जाता है"[1] । "न्यायशास्त्रों में जैनधर्म का स्थान बहुत ऊँचा है"[2] । "स्याद्वाद तो बड़ा ही गम्भीर है"[3] "यह जैन धर्म का अभेद्य किला है, जिस के अन्दर वादी-प्रतिवादियों के मायामयी गोले प्रवेश नहीं कर सकते[4] । "सत्य के अनेक पहलुओं को एक साथ प्रकट करने की सुन्दर विधि है[5]" । "विरोधियों में भी प्रेम उत्पन्न करने का कारण है[6]" । "भिन्न-भिन्न धर्मों के भेद भावों को नष्ट करता है[7]" । "विस्तार से जानने के लिये आप्त-मीमांसा[8] अष्टसहस्री[9], स्याद्वाद मञ्जरी[10] आदि जैन ग्रन्थों के स्वाध्याय करने का कष्ट करें ।

---

१. Hirman Jacobi: Jain Darshan, vol. II P. 183.

२-३. Dr Thomas Chif Librarian, India Office Library, Londan : Jain Darshan P. 183.

४. महामहोपाध्याय आचार्य स्वामी राममिश्र : जैनधर्म महत्व, पृ० १५८ ।

५. Prof. ., C. Bhattacharya: Jain Antiquary, vol, IX P 1 to 14.

६. Anekantavad is philosophy of toleration, a rational exhortation and fervent appeal to realize truth in its manifoldness of broadening our views and saving from narrowness out- look. As such Jainism is rational catholicism.

—Satyamshu Mohan Mukhopadhyaya : (J.M. Mandal 52) P. 43.

७. Anekantvada is the master- key of opening the heart-locks of different religions. It is the main fountain of temporal and spiritual progrrss. It is the theory of CUMULATIVE truth.

—Miss Dappne Mc Dowall (Germany): The Jaina Religion & Literature, vol. I P. 160-176.

८-१०. दिगम्बर जैन पुस्तकालय सूरत से हिंदी और अंग्रेजी में मिल सकती हैं ।

Trees give furits, plants flowers, rivers water to anyone wether a man, beast or bird. They do not enjoy themselves, but for the benifit of others. Man is the highest creatute, his servieces to others must be with heart-love, without any regard of revenge, gain or reputation in the same spirit as mother's to her children. —Jainism A Key to True Happiness, P. 116.

जैनधर्म का तो एक-एक अङ्ग साम्यवाद से भरपूर है। हर प्रकार की शङ्का तथा भय को नष्ट करके दूसरों की सेवा करना 'निश्शंकित' नाम का पहला सम्यक्त्व अङ्ग है। संसारी भोगों की इच्छा न रखते हुए केवल मनुष्यों से ही नहीं बल्कि पशु पक्षी तक को अपने समान जान कर जग के सारे प्राणियों से वांछारहित प्रेम करना 'निःकांक्षित' नाम का दूसरा अङ्ग है। अधिक से अधिक धन, शक्ति और ज्ञान होने पर भी दुखी दरिद्री गलीच तक से भी घृणा न करना, 'निर्विचिकित्सा' नाम का तीसरा अङ्ग है। किसी के भय या लालसा से भी लोकमूढ़ता में न बह कर अपने कर्त्तव्य से न डिगना 'अमूढ़दृष्टि' नाम का चौथा अङ्ग है। अपने गुणों और दूसरों के दोषों को छिपाना 'उपगूहन' नाम का पाँचवा अङ्ग है। ज्ञान, श्रद्धान तथा चरित्र से डिगने वालों को भी छाती से लगा कर फिर धर्म में स्थिर करना 'स्थितिकरण' नाम का छठा अङ्ग है। महापुरुषों और धर्मात्माओं से ऐसा गाढ़ा अनुराग रखना जैसा गाय अपने बछड़े से करती है और विनयपूर्वक उनकी सेवा भक्ति करना 'वात्सल्य' नाम का सातवां अङ्ग है। तन, मन, धन से धर्म प्रभावना में उत्साहपूर्वक भाग लेना 'प्रभावना' नाम का आठवां अङ्ग है। जो मन, वचन और काय से इन आठों अङ्गों[1] का पालन करते हैं, वही सम्यग्दृष्टि जैनी और स्याद्वादी हैं।

१. आठों अङ्गों को विस्तार रूप से जानने के लिये श्रावक-धर्म-संग्रह, पृ० ४२-६४।

कर्मवाद

The theory of Karma as minutely discussed and analysed is quite peculiar to Jainism. It is its unique feature. —Prof. Dr. B. H. Kapadia: VOA.vol II P.228.

कोई अधिक मेहनत करने पर भी बड़ी मुश्किल से पेट भरता है और कोई बिना कुछ किये भी आनन्द लूटता है, कोई रोगी है कोई निरोगी। कुछ इस भेद का कारण भाग्य तथा कर्मों को बताते हैं तो कुछ इस सारे भार को ईश्वर के ही सर पर थोप देते हैं कि हम बेबश हैं, ईश्वर की मर्जी ऐसी ही थी। दयालु ईश्वर को हम से ऐसी क्या दुश्मनी कि उसकी भक्ति करने पर भी वह हमें दुःख और जो उसका नाम तक भी नहीं लेते, हिंसा तथा अन्याय करते हैं उनको सुख दे?

जैन धर्म ईश्वर की हस्ती से इन्कार नहीं करता, वह कहता है कि यदि उस को संसारी झंझटों में पड़ कर कर्म तथा भाग्य का बनाने या उसका फल देने वाला स्वीकार कर लिया जावे तो उसके अनेक गुणों में दोष आजाता है और यह संसारी जीव केवल भाग्य के भरोसे बैठ कर प्रमादी हो जाये। कर्म भी अपने आप आत्मा से चिपटते नहीं फिरते। हम खुद अपने प्रमाद से कर्म-बन्ध करते और उनका फल भोगते हैं। अपने ही पुरुषार्थ से कर्मबन्धन से मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं, परन्तु हम तो स्त्री, पुत्र, तथा धन के मोह में इतने अधिक फंसे हुए हैं कि क्षण भर भी यह विचार नहीं करते कि कर्म क्या हैं? क्यों आते हैं? और कैसे इनसे मुक्ति हो कर अविनाशी सुख प्राप्त हो सकता है?

बड़ी खोज और खुद तजरबा करने के बाद जैन तीर्थंकरों ने यह सिद्ध कर दिया कि राग-द्वेष के कारण हम जिस प्रकार का संकल्प-विकल्प करते हैं, उसी जाति के अच्छे या बुरे कार्माण-

वर्गणाएँ (Karmic Molecules) योग शक्ति से आत्मा में खिंच कर आजाती हैं। श्रीकृष्ण जी ने भी गीता[1] में यही बात कही है कि जब जैसा संकल्प किया जावे वैसा ही उसका सूक्ष्म व स्थूल शरीर बन जाता है और जैसा स्थूल, सूक्ष्म शरीर होता है उसी प्रकार का उसके आस-पास का वायु मण्डल होता है। वैज्ञानिक दृष्टि से भी यह बात सिद्ध है कि आत्मा जैसा संकल्प करता है वैसा ही उस संकल्प का वायु मण्डल में चित्र उतर जाता है[2]। अमरीका के वैज्ञानिकों ने इन चित्रों के फोटू भी लिये हैं[3], इन चित्रों को जैन दर्शन की परिभाषा में कार्माणवर्गणाएँ कहते हैं[4]। जो पाँच प्रकार के मिथ्यात्व[5] बारह प्रकार के आव्रत[6], २५ प्रकार के कषाय[7], १५ प्रकार के योग[8], ५७ कारणों से आत्मा की ओर इस तरह खिंच कर आ जाते हैं जिस तरह लोहा चुम्बक की योग शक्ति से आप से आप खिंच आता है और जिस तरह चिकनी चीज पर गरद आसानी से चिपक जाती है, उसी तरह कषायरूपी आत्मा से कर्म रूपी गरद जल्दी से चिपट जाती है। कर्मों के इस तरह खिंच कर आने को जैन धर्म में "आस्रव" और चिपटने को बन्ध कहते हैं। केवल किसी कार्य के करने से ही कर्मों का आस्रव या बन्ध नहीं होता बल्कि पाप या पुण्य के जैसे विचार होते हैं उन से उसी प्रकार का अच्छा या बुरा आश्रव व बन्ध होता है।

---

१. ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृति विभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥

—गीता अ० ५, श्लोक ६२-६३

२-४. ईश्वर मीमांसा (दि० जैन संघ) पृ० ६१२।

५-८. "The way for man to become God." This book's voll.

९. विस्तार के लिये 'महाबन्ध' 'गोम्मटसार कर्मकाण्ड' आदि जैन ग्रंथ देखिये।

इस लिये जैन धर्म में कर्म के भावकर्म व द्रव्य कर्म नाम के दो भेद हैं। वैसे तो अनेक प्रकार के कर्म करने के कारण द्रव्य कर्म के ८४ लाख भेद हैं जिन के कारण यह जीव ८४ लाख योनियों में भटकता फिरता है (जिनका विस्तार 'महाबन्ध' व 'गोम्मटसार कर्मकाण्ड' आदि हिन्दी व अंग्रेजी में छपे हुए अनेक जैन ग्रन्थों में देखिये) परन्तु कर्मों के आठ मुख्य भेद इस प्रकार हैं—

१. **ज्ञानावरणी**—जो दूसरों के ज्ञान में बाधा डालते हैं, पुस्तकों या गुरुओं का अपमान करते हैं, अपनी विद्या का मान करते हैं, सच्चे शास्त्रों को दोष लगाते हैं और विद्वान् होने पर भी विद्या-दान नहीं देते, उन्हें ज्ञानावरणी कर्मों की उत्पत्ति होती है जिससे ज्ञान ढक जाते हैं और वे अगले जन्म में मूर्ख होते हैं। जो ज्ञान-दान देते हैं, विद्वानों का सत्कार करते हैं, सर्वज्ञ भगवान् के वचनों को पढ़ते-पढ़ाते, सुनते-सुनाते हैं, उनका ज्ञानावरणी कर्म ढीला पड़ कर ज्ञान बढ़ता है

२. **दर्शनावरणी**—जो किसी के देखने में रुकावट या आंखों में बाधा डालते हैं, अन्धों का मखौल उड़ाते हैं उन के दर्शनावरणी कर्म की उत्पत्ति होकर आंखों का रोगी होना पड़ता है। जो दूसरे के देखने की शक्ति बढ़ाने में सहायता देते हैं, उनका दर्शनावरणी कर्म कमजोर पड़ जाता है।

३. **मोहनीय**—मोह के कारण ही राग-द्वेष होता है जिस से क्रोध, मान, माया, लोभादि कषायों की उत्पत्ति होती है, जिसके वश हिंसा, झूठ, चोरी, परिग्रह और कुशीलता पांच महापाप होते हैं, इस लिये मोहनीय कर्म सब कर्मों का राजा और महादुःखदायक है। *अधिक मोह वाला मर कर मक्खी होता है, संसारी पदार्थों से* जितना मोह कम किया जाये उतना ही मोहनीय कर्म ढीले पड़

कर उतना ही अधिक सन्तोष, सुख और शान्ति की प्राप्ति होती है।

४. अन्तराय—जो दूसरों के लाभ को देख कर जलते हैं, दान देने में रुकावट डालते हैं, उन को अन्तराय कर्म की उत्पत्ति होती है। जिस के कारण वह महा दरिद्री और भाग्यहीन होते हैं। जो दूसरों को लाभ पहुंचाते हैं, दान करते कराते हैं, उन का अन्तरायकर्म ढीला पड़ कर उन को मन-वांछित सुख-सम्पत्ति की प्राप्ति बिना इच्छा के आप से आप हो जाती है।

५. आयुकर्म—जिस के कारण जीव देव, मनुष्य, पशु नरक चारों गतियां में से किसी एक के शरीर में किसी खास समय तक रुका रहता है। जो सच्चे धर्मात्मा, परोपकारी और महासन्तोषी होते हैं, वह देव आयु प्राप्त करते हैं। जो किसी को हानि नहीं पहुँचाते, मन्द कषाय होते हैं, हिंसा नहीं करते वह मनुष्य होते हैं। जो विश्वासघाती और धोखेबाज होते हैं पशुओं को अधिक बोझ लादते हैं, उनको पेट भर और समय पर खाना पीना नहीं देते, दूसरों की निन्दा और अपनी प्रशंसा करते हैं वह पशु होते हैं। जो महाक्रोधी, महालोभी, कुशील, होते हैं झूठ बोलते और बुलवाते हैं, चोरी और हिंसा में आनन्द मानते हैं, हर समय अपना भला और दूसरों का बुरा चाहते हैं, वह नरक आय का बन्ध करते हैं।

६. नामकर्म—जिस के कारण अच्छा या बुरा शरीर प्राप्त होता है। जो निर्ग्रंथ मुनियों और त्यागियों को विनयपूर्वक शुद्ध आहार कराते हैं, विद्या, औषधि तथा अभयदान देते हैं, मुनि-धर्म का पालन करते हैं, उनको शुभ नाम कर्म का बन्ध हो कर

चक्रवर्ती, कामदेव, इन्द्र आदि का महा सुन्दर और मजबूत शरीर प्राप्त होता है[१]। जो श्रावक-धर्म[२] पालते हैं वे निरोग और प्रबल शरीर के धारी होते हैं। जो निर्ग्रंथ मुनियों और त्यागियों को निन्दा करते हैं, वे कोढ़ी होते हैं, जो दूसरों की विभूति देख कर जलते हैं कषायों और हिंसा में आनन्द मानते हैं वे बदसूरत, अङ्गहीन, कमजोर और रोगी शरीर वाले होते हैं।

७. **गोत्रकर्म**—जो अपने रूप, धन, ज्ञान, बल, तप, जाति, कुल या अधिकार का मान करते हैं, धर्मात्माओं का मखौल उड़ाते हैं, वे नीच गोत्र पाते हैं और जो सन्तोषी शीलवान् होते हैं अर्हंतदेव, निर्ग्रंथ मुनि तथा त्यागियों और उनके वचनों का आदर करते हैं वे देव तथा क्षत्री, ब्राह्मण, वैश्य आदि उच्च गोत्र में जन्मते हैं।

८. **वेदनीयकर्म**—जो दूसरों को दुःख देते हैं, अपने दुःखों को शान्त परिणामों से सहन नहीं करते, दूसरों के लाभ और अपनी हानि पर खेद करते हैं, वह असाता वेदनीय कर्म का बन्ध करके महादुःख भोगते हैं और जो दूसरों के दुःखों को यथाशक्ति दूर करते हैं, अपने दुःखों को सरल स्वभाव से सहन करते हैं, सब का भला चाहते हैं, उन्हें साता वेदनीय कर्म का बन्ध होने के कारण अवश्य सुखों की प्राप्ति होती है।

इन आठ कर्मों में से पहले चार आत्मा के स्वभाव का घात करते हैं इस लिये 'घातिया' और बाकी चार से घात नहीं होता, इस लिये इन को 'अघातिया' कर्म कहते हैं।

पाँच समिति[३], पाँच महाव्रत[४], दश लाक्षण धर्म[५], तीन गुप्ति[६], बारह भावना[७] और २२ परीषहजय[८] के पालने से कर्मों के आस्रव का संवर होता है और बारह प्रकार के तप[९]

१-९. "The way for man to become God." This book's vol I.

तपने से पहले किये हुये चारों घातिया कर्मों का अपने पुरुषार्थ से, निर्जरा (नाश) करने पर आत्मा के कर्मों द्वारा छुपे हुये स्वाभाविक गुण प्रकट हो कर यही संसारी जीव-आत्मा अनन्तानन्त ज्ञान, दर्शन, बल और सुख-शान्ति का धारी परमात्मा हो जाता है और बाकी चारों अघातिया कर्मों से भी मुक्त होने पर मोक्ष (SALVATION) प्राप्त करके अविनाशी सुख-शान्ति के पालने वाला सिद्ध भगवान् हो जाता है।

वीर-विहार और धर्म-प्रचार

"भ० महावीर का यह विहार काल ही उनका तीर्थ प्रवचन काल है जिस के कारण वह तीर्थङ्कर[1] कहलाये"।

—श्री स्वामी समन्तभद्राचार्य : स्वयंभूस्तोत्र

मगधदेश की राजधानी राजग्रह में भगवान् महावीर का समवशरण कई बार आया, जहां के महाराजा श्रेणिक बिम्बसार ने बड़े उत्साह से भक्तिपूर्वक उनका स्वागत किया। महाशतक और विजय आदि अनेकों ने श्रावक व्रत लिये, अभयकुमार और इस के मित्र आद्रिक (Idrik) ने जो ईरान के राजकुमार थे, भगवान् महावीर के उपदेश से प्रभावित होकर जैन मुनि हो गये थे[२]। लगभग ५०० यवन भी वीर प्रेमी हो गये थे[३]। फणिक (Phoenecia) देश के वाणिक नाम के सेठ ने तो जैन मुनि होकर[४] उसी जन्म से मोक्ष प्राप्त किया[५]।

---

१. Tirth is a fordable passage accross a sea. Because the Tirthankaras discover and establish such passaga accross the sea of 'Sansar'. They are given title of Tirthankara.

—What is Jainism ? P. 47.

२. Dictionary of Jain Byography (Arrah) P. 11 & 92.

३.५ भ० महावीर (कामताप्रसाद) पृ० १३५, १३० ।

विदेहदेश—राजगृह से भ० महावीर का समवशरण वैशाली आया, जहाँ के महाराजा चेटक उनके उपदेश से प्रभावित होकर सारा राज-पाट त्याग कर जैन साधु होगये थे[1] और इन के सेनापति सिंहभद्र ने श्रावक के व्रत ग्रहण किये थे[2]।

वाणिज्यग्राम में जो वैशाली के निकट था भ० महावीर का समवशरण आया तो वहां के सेठ आनन्द और इनकी स्त्री शिवानन्दा आदि ने उन से श्रावक के व्रत लिये थे[3]।

अङ्गदेश की राजधानी चम्पापुरी (भागलपुर) में भ० महावीर का समवशरण आया तो वहां के राजा कुणिक ने बड़ा उत्साह मनाया[4]। वहां के कामदेव नाम के नगरसेठ ने उन से श्रावक के १२ व्रत लिये। सेठ सुदर्शन भी जैनी थे, रानी के शील का झूठा दोष लगाने पर राजा ने उनको शूली का हुक्म दे दिया तो सेठ सुदर्शन के ब्रह्मचर्य व्रत के फल से शूली सिंहासन बन गई, जिस से प्रभावित होकर राजा जैन मुनि हो गये[5]।

पोलासपुर में वीर-समवशरण आया तो वहाँ के राजा विजयसेन ने भ० महावीर का बड़ा स्वागत किया[6]। राजकुमार ऐवन्त तो उनके उपदेश से प्रभावित होकर जैन साधु हो गए थे[7], और शब्दालपुत्र नाम के कुम्हार ने श्रावक के व्रत लिये[8]।

कौशलदेश की राजधानी श्रावस्ती (जिले गोंडे का सहट-महट) में वीर समवशरण पहुँचा तो वहां के राजा प्रसेनजित (अग्निदत्त) ने भक्तिपूर्वक भगवान् का अभिनन्दन किया[9]। लोग भाग्य भरोसे रहने के कारण साहस को खो बैठे थे, भ० महावीर के

१-९. भ० महावीर (कामताप्रसाद) पृ० १३०-१३२।

दिव्योपदेश से उनका अज्ञान रूपी अन्धकार जाता रहा और वे धर्म पुरुषार्थी बन गये[1]।

वत्सदेश की राजधानी कौशाम्बी (इलाहाबाद) में वीर समवशरण आया तो वहाँ के राजा शतानीक वीर उपदेश से प्रभावित होकर जैन मुनि होगये[2]।

कलिंगदेश (उड़ीसा) में समवशरण आया तो वहां के राजा जितशत्रु ने बड़ा आनन्द मनाया[3] और सारा राज-पाट त्याग कर जैन साधु होगये थे[4]। इस ओर के पुण्ड्र, बङ्ग, ताम्रलिप्ति आदि देशों में भी वीर-विहार हुआ था[5], जिस से वहां के लोग अहिंसा के उपासक बन गये थे[6]।

हेमाङ्गदेश—(मैसूर) में वीर-समवशरण पहुँचा तो वहाँ के राजा जीवन्धर भगवान् के उपदेश से प्रभावित हो, संसार त्याग कर जैन साधु हो गये थे[7]।

अश्मकदेश की राजधानी पोदनपुर में वीर समवशरण आया तो वहां का राजा विद्रदाज उनका भक्त होगया[8]।

राजपूताने में वीर समवशरण के प्रभाव से वहां के राजा व राणा अहिंसा प्रेमी बन गये[9]। यह भ० महावीर के प्रचार का ही फल है कि अपनी जान जोखिम में डाल कर देश की रक्षा करने वाले आशाशाह और भामाशाह जैसे जैन सूरवीर योद्धा वहां हुए[10]।

मालवादेश की राजधानी उज्जैन में वीर समवशरण पहुँचा तो वहां के सम्राट चन्द्रप्रद्योत ने बड़ा उत्साह मनाया था[11]।

सिन्धु सौवीर प्रदेश की राजधानी रोरूकनगर में वीर-समव-

१-११. भ० महावीर (कामताप्रसाद) पृ० १३३-१३४।

शरण पहुंचा तो वहाँ के राजा उद्यन भ० महावीर के उपदेश से प्रभावित होकर राज छोड़ कर जैन मुनि हो गये थे[1]।

दशार्ण देश में भ० महावीर का विहार हुआ तो वहाँ के राजा दशरथ ने उनका स्वागत किया[2]।

पाञ्चाल देश की राजधानी कम्पिला में भ० महावीर पधारे तो वहां का राजा "जय" उनसे प्रभावित होकर संसार त्याग कर जैन साधु हो गया था[3]।

सौर देश की राजधानी मथुरा में भ० महावीर का शुभागमन हुआ तो वहां के राजा उदितोदय ने उनका स्वागत किया और उसका राजसेठ जैन धर्म का दृढ़ उपासक था, उसने भगवान् के निकट श्रावक के व्रत धारण किये थे[4]।

गांधार देश की राजधानी तक्षशिला तथा काश्मीर में भी भ० महावीर का विहार हुआ था[5]।

तिब्बत में भी जैन धर्म प्रचार हुआ था[6]।

विदेशों में भी भ० महावीर का विहार हुआ था[7]। श्रवण बेल्गोल के मान्य पण्डिताचार्य श्री चारुकीर्त्ति जी तथा पंडित गोपालदास जी जैसे विद्वानों का कथन है कि दक्षिण भारत में

१-५ कामताप्रसाद : भ० महावीर पृ० १३४-१३५।

६. The well-known Tibetan Scholar Dr. Tucci found distinct traces of Jain religion in Tibet. —Alfred Master, I. C. S., C. I. E : Vir Nirvanday in London, (World. J. Mission Aliganj, Eta) P. 5.

७. महावीर स्मृतिग्रन्थ (आगरा) पृ० १२३, ज्ञानोदय (अप्रैल १९५१) जैन सिद्धान्त भास्कर भा० ११, पृ० १४५, जैन होस्टल मेगजीन (जनवरी १९३१) पृ० ३, जैन धर्म महत्व (सूरत) पृ० १६६-१७७, इसी ग्रंथ का भा० १।

लगभग डेढ हजार वर्ष पहले बहुत से जैनी अरब से आ कर आबाद हुए थे[१]। यदि भगवान् महावीर का प्रचार वहाँ न हुआ होता तो वहाँ इतनी बड़ी संख्या जैनियों की कैसे हो सकती थी[२]? श्री जिनसेनाचार्य ने (हरिवंशपुराण पृ० १८) में जिन देशों में भ० महावीर का विहार होना लिखा है उनमें यवनश्रुति, क्वाथतोयं, सूमभीरू, तार्ण, कार्ण आदि देश अवश्य ही भारत से बाहर हैं[३]। यूनानी विद्वान् भ० महावीर के समय बैक्टिया में जैन मुनियों का होना सिद्ध करते हैं[४]। अबीसिनिया[५], ऐथुप्या[६], अरब[७] परस्या[८], अफगानिस्तान[९], यूनान[१०] में भी जैन धर्म का प्रचार अवश्य हुआ था।

विलफर्ड साहब ने 'शङ्कर प्रादुर्भव' नाम के वैदिक ग्रन्थ के आधार से जैनियों का उल्लेख किया है[११]। जिस में भगवान् पार्श्वनाथ और महावीर स्वामी दोनों तीर्थंकरों का कथन 'जिन' 'अर्हन्' 'महिमन' (महामान्य) रूप में करते हुए लिखा है[१२] कि 'अर्हन्' ने चारों तरफ विहार किया था और उनके चरणों के चिन्ह दूर दूर मिलते हैं। लंका, श्याम आदि देशों में महावीर के चरणों की पूजा भी होती है[१३]। परस्या, सिरिया और एशिया मध्य में 'महिमन' (महामान्य=महावीर) के स्मारक मिलते हैं[१४]। मिश्र

१-२. Sir William Johns : Asiatic Researches, Vol.IX. P.283.

३. संक्षिप्त जैन इतिहास भा० २, खण्ड १, पृ० १०३।

४. Magesthins and Aryans (1877) Vol II. P. 29.

५-६. Ancient Greek found Sramanas (Jain Monks) travelling the countries of Euthopia and Abyssinia. —Asiatic Resesarches Vol. III. P. 6.

७-१०. Existence of Jainism in Arbia, Persia and Afghanistan are available. —Cunningham, Ancient Geography of India (New Edn.) P. 671 and Jain Antq. VII, P. 21.

११-१४. Asiatic Researches, Vol. III P. 193-199.

(Egypt) में 'मेमनन' (Memnon) की प्रसिद्ध मूर्ति 'महिमन' (महामान्य) की पवित्र यादगार है[१]। इस प्रकार भगवान महावीर का विहार और धर्म- प्रचार न केवल भारत में बल्कि समस्त संसार में हुआ[२]।

महाराजा श्रेणिक पर वीर-प्रभाव

Mahavira visited Rajgrih, where He was most cordially welcomed. King Srenak Bimbisara himself came and paid the highest respect to Him and ever-after remained a great patron of Jainism.

—Mr. U. S. Tank : VOA. Vol. II. P. 68.

विपुलाचल पर्वत को एकदम दुलहन के समान सजा, सूखे वृक्षों को हरा-भरा[३] तथा जलहीन बावड़ियों को ठण्डे और मीठे जल से भरा[४] ऋतु न होने पर भी वहाँ ऋतु के हर प्रकार के फल फूलों से समस्त वृक्षों को लदा[५] हुआ देख कर वहाँ का वनमाली दङ्ग रह गया कि क्या मैं स्वप्न देख रहा हूँ या कोई जादू होगया ? वह थोड़ी दूर आगे बढ़ा तो उसके आश्चर्य की सीमा न रही। हर प्रकार के वैर भाव को छोड़ कर बिल्ली चूहे के साथ और नेवला सर्प के साथ आपस में प्रेम-व्यवहार कर रहे हैं[६]। हिरण का बच्चा सिंहनी के थनों को माता के समान चूस रहा है[७], शेर और बकरी प्रेम-भाव से एक घाट पर पानी पी रहे हैं[८]।

---

१. Asiatic Researches, Vol. III, P. P. 193-199.

२. Foot note No. 7 of P. 371

३-५. जब पूरण भक्त के बागीचे में आजाने से सूखे वृक्ष हरे तथा जलहीन बावड़ियां निर्मल जल से परिपूर्ण हो सकती हैं तो तीन लोक के पूज्य, सर्वज्ञ, अर्हन्तदेव, श्री वर्धमान महावीर के आगमन से ऐसा होने में क्या आश्चर्य की बात है ! —लेखक

६-८. All hostilities cease in the presence of one, who is established in Ahinsa. —Patanjali, Yoga Sutra, II. 35.

रंगबिरंगे फूल खिले हुये हैं, सर्वत्र आनन्द ही आनन्द छारहा है। बनमाली जरा आगे बढ़ा तो भगवान महावीर के जय जयकार के शब्दों से पर्वत गूञ्जता सुनाई पड़ा। एक ऊँचे महासुन्दर रत्नमयी सोने के सिंहासन पर भगवान महावीर विराजमान हैं। स्वर्ग के इन्द्र चंवर ढोल रहे हैं, हीरे जवाहरातों से सुशोभित तीन रत्नमयी सोने के छत्र मस्तक पर झूम रहे हैं। आकाश से कल्पवृक्षों के पुष्पों की वर्षा हो रही है, देवी-देवता बड़े उत्साह और भक्ति से भगवान की वन्दना और स्तुति कर रहे हैं। अब बनमाली समझ गया कि यह सब भगवान महावीर के शुभागमन का प्रताप है, जिनको नमस्कार करने के लिये समस्त वृक्ष फल-फूलों से झुक रहे हैं। बनमाली ने स्वयं भगवान महावीर को भक्तिपूर्वक नमस्कार किया और यह शुभ समाचार महाराज श्रेणिक को सुनाने के लिये, हर प्रकार के फल-फूलों की डाली सजा कर वह उनके दरबार की ओर चल दिया।

महाराजा श्रेणिक बिम्बसार सोने के ऊँचे सिंहासन पर विराजमान थे कि द्वारपाल ने खबर दी कि बनमाली आपसे मिलने की आज्ञा चाहता है। महाराजा की स्वीकृति पर बनमाली ने नमस्कार करते हुये उनको डाली भेंट की तो बिन ऋतु के फल-फूल देख कर राजा ने आश्चर्य से पूछा कि यह तुम कहां से लाये ? तो बनमाली बोला—"राजन्! आज विपुलाचल पर्वत पर भ० महावीर पधारे हैं"। यह समाचार सुनकर महाराजा श्रेणिक बहुत प्रसन्न हुये और तुरन्त राजसिंहासन छोड़, जिस दिशा में भगवान महावीर का समवशरण था उसी ओर सात कदम आगे बढ़ कर उन्होंने सात बार भगवान महावीर को नमस्कार किया, अपने सारे वस्त्र और आभूषण जो उस समय पहिने हुए थे, बनमाली को

---

१. पाण्डव पुराण, पृ० ११।

महाराजा श्रेणिक बिम्बसार का वीर-वन्दना के लिये गमन

इनाम में दे दिये और तत्काल ही सारे नगर में आनन्द-भेरी बजाने की आज्ञा दी और इतना दान किया कि उनके राज्य में कोई भी निर्धन नहीं रहा। भेरी के शब्द सुन कर प्रजा वीर-दर्शनों के लिये विपुलाचल पर्वत पर जाने के वास्ते राजमहल में इकट्ठी हो गई। चतुरङ्गिणी सेना, सजे हुए घोड़े, लम्बे दांतों वाले हाथी, सोने के रथ, भांति-भांति के बाजे, असंख्य योद्धा-प्यादे, और शाही ठाठ-बाट के साथ अपने राज परिवार सहित महाराज श्रेणिक बिम्बसार वीर भगवान् की वन्दना को चले।

जब समवशरण के निकट आये तो श्रेणिक ने राज-चिह्न छोड़ कर बड़ी विनय के साथ पैदल ही समवशरण में पहुंच कर भगवान् महावीर को भक्तिपूर्वक नमस्कार किया और उनकी स्तुति करके[1] अत्यन्त विनय के साथ पूछा—कि "राजसुख और भोग-उपभोग के समस्त पदार्थ पूर्ण रूप से प्राप्त होने पर भी हे वीर प्रभु! आप ऐसी भरी जवानी में क्यों जैन-साधु हुए"? उत्तर में सुना, "राजन्! लोक की यही तो भूल है कि जिस प्रकार कुत्ता हड्डी में सुख मानता है उसी प्रकार संसारी जीव क्षण भर के इन्द्रिय सुखों में आनन्द मानता है। यदि भोगों में सुख हो तो रोगी भी भोगों में आनन्द माने। वास्तव में सच्चा सुख भोग में नहीं बल्कि त्याग में है। इच्छाओं के त्यागने के लिये भी शक्ति की आवश्यकता है। शक्ति जवानी में ही अधिक होती है इस लिये विषय भोगों, इन्द्रियों और इच्छाओं को वश में करने के लिये जवानी में ही जिनदीक्षा लेनी उचित है"।

महाराजा श्रेणिक ने पूछा—कि रावण को मांसाहारी, हनुमान जी को बानर और श्री रामचन्द्र जी जैसे धर्मात्मा को हिरण का शिकार करने वाला कहा जाता है, यह कहां तक सत्य है? उत्तर

---

१. "महाराजा श्रेणिक की वीर-भक्ति" इसी ग्रन्थ का पृ० ७१।

में सुना—"रावण राक्षस व मांसाहारी न था बल्कि जिसने हिंसामयी यज्ञ करने का विचार भी किया तो युद्ध करके उसका मान भङ्ग कर दिया। हनुमान और सुग्रीव वास्तव में वानर न थे[1], वानर तो उनके वंश का नाम था। रामचन्द्र जी ने कभी हिरण का शिकार नहीं किया, वे तो अहिंसाधर्मी महापुरुष थे"।

श्रेणिक ने फिर पूछा, कि सीता जी को किस पाप के कारण रामचन्द्र जी ने घर से निकाला, और किस पुण्य के कारण स्वर्ग के देवों ने उनकी सहायता की? उत्तर में सुना, "सीता जी ने अपने पिछले जन्म में सुदर्शन नाम के एक जैन-मुनि की झूठी निन्दा की थी। जिसके कारण उसकी भी झूठी निन्दा हुई। बाद में अपनी भूल जान कर उन्होंने उन से क्षमा मांग ली थी जिसके पुण्य-फल से देवों ने सीता जी का अपवाद दूर कर के अग्नि कुण्ड जलमय बना दिया था।

श्रेणिक ने फिर प्रश्न किया कि युधिष्ठिर भीम और अर्जुन ऐसे योद्धा और वीर किस पुण्य के प्रताप से हुये और द्रौपदी पर पांच पुरुषों की स्त्री होने का कलङ्क किस पाप के कारण लगा? उत्तर में सुना- "चम्पापुर नगरी में सोमदेव नाम का एक बहुत गुणवान् ब्राह्मण था उसकी स्त्री का नाम सोमिला था उसके तीन पुत्र—सोमदत्त, समिण और सोमभूति थे। सोमिला के भाई

---

१. क्या सुग्रीव और हनुमान जी आदि सचमुच बन्दर थे? रामायण में इन को वानर कहा है। वानर का अर्थ है 'जो जङ्गली फलों को खाकर गुजारा करता है'। रामायण में इनके सलूक और अमल के मुताल्लिक जो ब्यान मिलते हैं वह भी इस ख्याल के विरुद्ध जाते हैं कि वह बहादुर लोग बन्दर थे, इस के बावजूद अगर इनको बन्दर भी मान लिया जावे तो रामायण एक परी-दास्तान से ज्यादा महत्व नहीं रख सकती जिस में पञ्चतन्त्र नामी एक ग्रन्थ की तरह हैवानों को इन्सान की बातें और अमल करते दिखाया गया है।
—डा० गोकलचन्द नारङ्ग: दैनिक उर्दू मिलाप (१८ अक्तूबर १९५२) पृ० १४

अग्निभूति के धनश्री, मित्रश्री और नागश्री नाम की तीन पुत्रियाँ थीं। सोमदेव के तीनों लड़कों का विवाह इन तीनों लड़कियों से हुआ। सोमदेव संसार को असार जान कर जैन मुनि हो गया था, तीनों लड़के और सोमिला श्रावक धर्म पालने लगी। धनश्री और मित्रश्री भी जैन धर्म में श्रद्धान रखती थी, परन्तु नागश्री को यह बात अच्छी न लगी। एक दिन धर्मरुचि नाम के योगी आहार के निमित्त सोमदत्त के घर आये, तो नागश्री ने मुनिराज को आहार में ज़हर दे दिया, जिसके पाप से नागश्री को कुष्ट रोग हो गया इस लोक के महादुःख भोग कर परलोक में भी पांचवें नरक के महा भयानक दुःख सहन करने पड़े। वहां से आकर सर्प हुई। विष भरे जीवन से छुटकारा मिला तो फिर नरक में गई वहां से आकर चम्पापुरी नगरी में एक चांडाल के घर पैदा हुई। एक रोज वह जङ्गल में जा रही थी कि समाजिगुप्त नाम के मुनीश्वर उस को मिल गए। वह चांडाल-पुत्री महादुखी थी उनकी शान्त मुद्रा को देख उनसे धर्म का उपदेश सुना, हमेशा के लिये मांस, शराब, शहद और पांच उदुम्बर का त्याग किया। मर कर धनी नाम के एक वैश्य सेठ के यहां दुर्गन्धा नाम की पुत्री हुई उस के शरीर से इतनी दुर्गन्ध आती थी कि कोई उस को अपने पास बिठाता तक न था, एक दिन तीन आर्यिकाएँ आहार के निमित्त आईं तो उस ने भक्ति भाव से उन को परघाह लिया। आहार करने के बाद उन्होंने उसको धर्म का स्वरूप बताया, जिसको सुन कर उसे वैराग्य आ गया और उनसे दीक्षा ले, आर्यिका हो कर तप करने लगी। एक दिन वसन्त-सेना नाम की वैश्या अपने पांच लम्पट पुरुषों के साथ क्रीड़ा करती हुई उसी वन में आ निकली कि जहाँ दुर्गन्धा तप कर रही थी। दुर्गन्धा के हृदय में उसको पांच पुरुषों के साथ क्रीड़ा करते देख एक क्षण के लिये वैसे ही भोग-विलास की भावना उत्पन्न होगई। परन्तु दूसरे ही

क्षण में इस बुरी भावना पर पश्चात्ताप करने लगी। अपने हृदय को दुत्कारा और शान्त मन करके समाधिमरण किया। अपने शुद्ध परिणामों तथा संयम, तप और त्याग के कारण वह सोलहवें स्वर्ग में सोमभूति नाम के देव की महासुखों को भोगने वाली पत्नी हुई। सोमदत्त का जीव युधिष्ठिर है इसका सोमिल नाम का भाई भीम है। सोमभूति का जीव अर्जुन है, धनश्री का जीव नकुल है, मित्रश्री का जीव सहदेव है, दुर्गंधा का जीव, जो पहले नागश्री था द्रोपदी है। संयम, तप, त्याग और आहार दान के कारण युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन आदि इतने बलवान् और योद्धा-वीर हुए हैं। तप के कारण द्रोपदी इतनी सुन्दर और भाग्यशाली है। चूँकि उसने वसन्त सेना के पांच पुरुषों के साथ भोग-विलास की अभिलाषा एक क्षणमात्र के लिए की थी, इस के कारण इस पर पांच पति होने का दोष लगा।

श्रेणिक बिम्बसार ने सम्मेदशिखर जी की यात्रा का फल पूछा तो उन्होंने वीर वाणी में सुना कि कोटाकोटी मुनियों के तप करने और वहां से निर्वाण (Salvation) प्राप्त कर लेने के कारण सम्मेदशिखर जी[1] इतनी पवित्र भूमि है कि जो जीव एक बार भी श्रद्धा और भक्ति से वहाँ की यात्रा कर लेता है तो वह तिरयञ्च, नरक या पशु गति में नहीं जा सकता। उस के भाव इतने निर्मल हो जाते हैं कि अधिक से अधिक ४९ जन्म धार कर ५० वें जन्म तक अवश्य मोक्ष (Salvation) प्राप्त कर लेता है[2]। श्रेणिक ने वहां की इतनी उत्तम महिमा जान कर बड़ी खोज के बाद चौबीसों तीर्थंकरों के पक्के टौंक स्थापित कराये[3]।

---

१. बिहार प्रान्त के इसरी नाम के रेलवे स्टैशन से १८ मील पक्की सड़क पर।

२. सम्मेद शिखर जी का महात्म्य, दिगम्बर जैन पुस्तकालय सूरत। मूल्य ॥)

३. "The Hindu Traveller's Account published in Asiatic Society's Journal for January 1824 reveals the fact, how

महाराजा श्रेणिक ने पूछा कि पञ्चम काल में मनुष्य कैसे होंगे ? उत्तर में सुना—"दुखमा नाम का पंचम काल २१ हजार वर्ष का है[१] । इस काल के आरम्भ में मनुष्य की आयु १२० वर्ष और शरीर सात हाथ का होगा, परन्तु घटते-घटते पंचम काल के अन्त में आयु २० साल की और शरीर २ हाथ का रह जायेगा[२] । इस काल में तीर्थंकर, चक्रवर्ती, नारायण आदि नहीं होंगे और न अतिशय के धारी मुनि होंगे, न पृथ्वी पर स्वर्गों के देवों का आगमन होगा और न केवल ज्ञान की उत्पत्ति होगी[३] । पंचमकाल के अन्त होने में तीन वर्ष साढ़े आठ महीने रह जायेंगे[४], तब तक मुनि, आर्यिकाएँ, श्रावकाएँ पाई जायेंगी । ये चारों भव्य जीव पांचवों या छठे गुणस्थान के भावलिंगी हैं तो भी प्रथम स्वर्ग में ही जायेंगे[५] । ऐसे मनुष्य भी अवश्य होंगे जो श्रावक व्रत को धारण करेंगे, जिस के फल से विदेह क्षेत्र में जन्म लेकर मोक्ष प्राप्त कर लेंगे[६]" ।

एक प्रभावशाली, बलवान और अत्यन्त सुन्दर नवयुवक को समवशरण में बैठा देख कर श्रेणिक ने पूछा कि यह महा तेजस्वी कौन है तो उन्होंने उत्तर में सुना—"यह विजयनगर के सम्राट मन्नूकुम्भ का राजकुमार आदिविजय है । पिछले जन्म में यह महा दरिद्री, रोगी और दुःखी था, जिस से तङ्ग आ कर इसने

Raja Sharenika of Magadha, contemporary of Mahavira Swami, had discovered the places of the Tirthankaras and established charan at Samedshikhara."

—Honble Justice T. D. Banerji of Patna High Court in the decision of Shri Samedshikhara ji case.

१, ६. वर्धमान पुराण (हाथ का लिखा हुआ, ला० जम्बूप्रसाद, सहारनपुर जैन मन्दिर) पृ० १४० ।

२-३. महावीरपुराण (कलकत्ता) पृष्ठ १७१ ।

४-५. पं० माणकचन्द : धर्म फल सिद्धान्त पृ० १८२ ।

चौदहवें तीर्थंकर श्री अनन्तनाथ जी को शान्ति प्राप्त करने की विधि पूछी तो उन्होंने इस को 'अनन्त चौदश' के व्रत देकर कहा कि भादों सुदि चौदश को हरसाल १४ साल तक उपवास रख कर चौदहवें तीर्थंकर का शुद्ध जल के चौदह कलशों से प्रक्षल कर के पूजन करो और चंवर, छत्र आदि १४ वस्तु, हर साल श्री जिनेन्द्र भगवान् की भेंट करो। इस ने चौदह साल तक ऐसा ही किया, जिस के पुण्य फल से यह इतना बुद्धिमान्, धनवान्, रूपवान और बलवान हुआ है।

श्रेणिक ने श्री वीर भगवान् से पूछा कि रक्षाबन्धन का त्योंहार क्यों मनाया जाता है? तो भगवान् की दिव्य ध्वनि से जाना कि बली, प्रह्लाद, नेमूचि और भरतपति नाम के चार मंत्रियों ने हस्तिनागपुर में नरयज्ञ के बहाने आचार्य श्री अकम्पन और इन के सङ्घ के सात सौ जैन मुनियों को भस्म करने के लिये अग्नि जला दी तो श्रावण सुदि पूर्णमाशी के दिन उनकी रक्षा विष्णु जी नाम के मुनि द्वारा हुई थी इस लिये उन की रक्षा की यादगार मनाने के लिये उस दिन हर साल रक्षाबन्धन का त्योहार मनाया जाता है[1]।

महाराजा श्रेणिक ने फिर पूछा कि यज्ञ में जीव घात कब से और क्यों होने लगा? उत्तर में उन्होंने सुना—"अयोध्या नगरी में क्षीरकदम्ब नाम के उपाध्याय के पास पर्वत और नारद नाम के दो विद्यार्थी भी पढ़ते थे। एक दिन शास्त्र-चर्चा में पूजा का कथन आया। नारद ने कहा कि पूजा का नाम यज्ञ है "अजैर्यष्टव्यम्" जिसमें अज यानी बोने से न उगने वाले शालि धान यव (जौ) से होम करना बताया है। पर्वत ने कहा, जिस में अज यानी छेला (बकरा) अलंभन हो उसका नाम यज्ञ है। पर्वत न माना उसने कहा

---

१. विस्तार के लिये रक्षाबन्धन कथा (दिं० जैन पुस्तकालय, सूरत) मू० ।)

कि हमारा न्याय यहां का राजा वसु करेगा और जो झूठा होगा उस की जीभ छेदन कर दी जायेगी। यह तय करके पर्वत अपनी माता स्वस्तिमती के पास आया और नारद की बात कही, माता ने कहा कि नारद सच कहता है। जो बोई जाने पर न उगे ऐसी पुरानी शाली तथा पुराना यव (जौ) का नाम अज है छेले का नाम नहीं, तुमने गलत अर्थ बताया। यह सुन कर उस ने कहा कि कुछ उपाय करो वरन् मामला राजा के पास जायेगा और जिस को वह झूठा कह देगा उस की जीभ काट दी जावेगी, तुम मेरी माता हो सङ्कट के समय अवश्य मेरी सहायता करो। माता बेटे के मोह में राजा वसु के पास गई और उससे कहा कि तुम ने जो मुझे वचन दे रखे हैं, उन्हें आज पूरा करदो। राजा ने कहा माँगो क्या माँगती हो मैं अवश्य अपने वचन पूरे करूँगा। उस ने कहा मेरे बेटे पर्वत पर बड़ा सङ्कट आन पड़ा, कृपा करके उसको दूर करदो। राजा ने कहा कि बताओ उसको किसने सताया है ? मैं अवश्य उस की सहायता करूँगा।

उस ने कहा—"पर्वत ने मांस भक्षण के लोभ से अज का मतलब छैला (बकरा) बता कर बड़ा पाप किया। नारद ने उसे समझाया कि इसका मतलब न उगने वाले जौ से है परन्तु पर्वत अपनी बात पर यहां तक अड़ा कि उस ने कहा कि राजा वसु से न्याय कराऊँगा। वह जिस को झूठा कहेंगे उस की जीभ काट ली जावेगी। हे राजन्! यह सच है कि नारद सच्चा है, परन्तु मेरी सहायता करो, ऐसा न हो कि पर्वत की जीभ काट ली जाये। राजा यह सुन कर चिन्ता में पड़ गया कि भरी सभा में झूठ कैसे कहा जावेगा ? राजा को चुप देख, स्वस्तिमती ने कहा कि क्या अपने वचनों का भी भय नहीं ? राजा ने मजबूर होकर कहा कि अच्छा ! वचनों की पूर्ति होगी।

दूसरे दिन नारद और पर्वत राजा के दरबार में गये। नारद

ने अज का अर्थ शक्ति रहित शाली तथा जौ और पर्वत ने छैला (बकरा) बतलाया। इस पर राजा ने कहा जैसे पर्वत कहे वैसे ही ठीक है। तब से यज्ञों में पशु होम होने की रीति प्रचलित हुई।

महाराजा श्रेणिक ने भगवान् महावीर से अपने पिछले जन्म के हाल पूछे तो भगवान् की वाणी खिरी जिस में उस ने सुना—"ऐ श्रेणिक! अब से तीसरे भव में तुम एक बहुत पापी और मांसाहारी भील थे। मुनि महाराज ने तुम्हें मांस के त्याग का उपदेश दिया परन्तु तुम सहमत न हुए तो उन्होंने कहा कि तुम ऐसे मांस के त्याग की प्रतिज्ञा करलो कि जिसको तुमने न कभी खाया है और न आइन्दा खाने की इच्छा हो इस में कोई हर्ज न जान कर आपने कौवे के मांस-भक्षण का त्याग जीवन भर के लिए कर दिया। अचानक आप बीमार हो गए, हकीमों ने कौवे का मांस दवा के रूप में बताया, परन्तु आपने इंकार कर दिया कि मैंने एक जैन साधु से जीवन भर के लिये कौवे के मांस के त्याग का सङ्कल्प लिया हुआ है। मर जाना मंजूर है मगर प्रतिज्ञा भङ्ग नहीं करूंगा। सब ने समझाया कि बीमारी में प्राणों की रक्षा के कारण दवाई के तौर पर थोड़ा सा खा लेने में कुछ हर्ज नहीं, परन्तु आप ने प्रतिज्ञा को भंग करने से स्पष्ट इन्कार कर दिया। जिस के पुण्य-फल से मर कर स्वर्ग में देव हुए और वहां के सुख भोग कर भारत के इतने प्रतापी सम्राट हुये।"

महाराजा श्रेणिक ने एक देव के मुकुट में मेंढक का चिन्ह देखकर आश्चर्य से पूछा कि इस के मुकुट में मेंढक का चिन्ह क्यों है? उत्तर में सुना—"हे राजन्! यह नियम है कि जो मायाचारी करता है वह अवश्य पशुगति के दुःख भोगता है। तुम्हारे नगर राजगृह में नागदत्त नाम के एक सेठ थे, चंचल लक्ष्मी के लोभ में वे छल-कपट अधिक किया करते थे जिस के कारण मर कर अपने ही घर की बावड़ी में मेंढक होगये। उसी बावड़ी में से एक कमल

का फूल मुख में दबा कर वह यहां समवशरण में आ रहा था कि रास्ते में तुम्हारे हाथी के पांव के नीचे आकर उसकी मृत्यु होगई। उस के भाव जिनेन्द्र भक्ति के थे जिस के पुण्य फल से वह मेंढक स्वर्ग में देव हुआ, स्वर्ग के देव जन्म से ही अवधिज्ञानी होते हैं, अवधि-ज्ञान से पिछले हाल को जानकर वह अपने संकल्प को पूरा करने के लिये यहां आया है। मेंढक के जन्म से उस का उत्थान हुआ है इस लिये उस ने अपने मुकुट में मेंढक का चिन्ह बना रखा है"।

श्रेणिक ने वीर वाणी में जिनेन्द्र भक्ति का महात्म सुना तो उसे जिनेन्द्र भक्ति में दृढ़ विश्वास हो गया[१] और उस ने अन्य जैन मन्दिर बनवाए[२]। राजगृह के पुराने खंडरों में उस समय की मूर्तियाँ आदि मिली हैं[३]। सम्मेदशिखर पर्वत पर जिन निषधिकायें बनवाईं[४]। उसने अपनी शङ्काओं को दूर करने के लिये भगवान् महावीर से ६० हजार प्रश्न पूछे[५] जिन का विस्तार आदिपुराण[६], पद्मपुराण[७], हरिवंशपुराण[८], पाण्डवपुराण[९] आदि अनेक जैन

---

१. The literary and legendry traditions of the Jainas about Shrenika are so varied and so well recorded that they are eloquent witnesses to the high respect wit hwhich the Jainas held by one of their greatest royal patrons, whose historicity fortunately is past all doubts.

—Jainism in Northern India, P. 116-118

२.३. कामताप्रसाद: भ० महावीर पृष्ठ १५२।

४. Asiatic Society Journal, January 1824.

५. Shrenika Bimbisara has been credited by putting thousands of questions to Mahavira.

—Some Historical Jain Kings & Heroes. P. 13

६-६. यह सब ग्रन्थ हिन्दी में दि० जैन पुस्तकालय, सूरत से मिल सकते हैं।

ग्रंथों से खोजा जा सकता है इस प्रकार जैन धर्म को खूब अच्छी तरह से परख कर उनका मिथ्यात्व नष्ट होकर महाराजा श्रेणिक बिम्बसार ऐसे पक्के सम्यग्दृष्टि जैनी होगये[1], कि स्वर्ग के देव भी उन के सम्यग्दर्शन की परीक्षा करने के लिये राजगृह आये[2] और उसे पूरा पाकर उनकी बड़ी प्रशंसा की[3]। यह भ० महावीर की भक्ति और श्रद्धा का ही फल है कि आने वाले उत्सर्पिणी युग में महाराजा श्रेणिक 'पद्मनाभ' नाम के प्रथम तीर्थंकर होंगे[4]।

राजकुमार मेघकुमार पर वीर प्रभाव

Megakumar, a son of Shrenaka was ordained a member of the order of Mahavira.

—Mr. V S. Tank ; VOA. II. P. 68.

वीर वाणी के मीठे रस को पीकर महाराजा श्रेणिक के पुत्र मेघकुमार भगवान् महावीर के निकट जैन साधु होगये, परन्तु राजसुखों के आनन्द भोगने वालों का चंचल हृदय एक दम कठोर तपस्या में कैसे लगे ? पिछले भोगविलास की याद आने से वह घर जाने की आज्ञा मांगने के लिये भ० महावीर के निकट आया ? इस से पहले कि वह कुछ कहे, भ० महावीर की दिव्य-ध्वनि खिरी जिस में उसने सुना—"मेघकुमार तुम्हें याद नहीं कि अब से तीसरे भाव में तुम एक हाथी थे एक दिन तुम पानी पीने के लिये तालाब पर गये तो दलदल में फँस गये। तुम्हारे शत्रुओं ने

---

१. Shrenika Bimbisara was a Jain King:—

a, Smith's Early History of India, P. 45.

b, Oxford Histary of India, P. 33,

c, Dr. Ishwari Pd: Bharat ka Itihas Vol I P. 54.

d, Monthly SARASWATI, Allahabad (April) 1931) P.233.

e, Modern Review (Oct. 1930) 438. VOA. Vol I ii-P.15.

२-४. भ० महावीर (कामताप्रसाद) पृष्ठ १६२, १६५।

उचित अवसर जानकर इतना मार-पीट की कि तुम्हारी मृत्यु होगई। क्या तपस्या की वेदना उससे भी अधिक है ? दूसरे जन्म में फिर हाथी हुए। दावानल से जान बचाने के लिये उचित स्थान पर पहुँचे तो वहां पहले ही बहुत पशु मौजूद थे, बड़ी कठिनाई से सुकड़ कर खड़े होगये। शरीर खुजलाने के लिये तुमने अपना पांव उठाया तो उस जगह एक खरगोश अपनी जान बचाने को आ गया, जिसे देखकर केवल इस लिये कि खरगोश मर न जाय अपने उस पैर को ऊपर उठाये रखा। जब दावानल शान्त हुआ और तुम वहाँ से निकले तो निरन्तर तीन दिन तक तीन टाँगों से खड़ा रहने से तुम्हारा सारा शरीर जकड़ गया था, आप धड़ाम से नीचे गिर पड़े, जिससे इतनी अधिक चोट आई कि तुम्हारी मृत्यु हो गई। जब पशुगति में तुम इतने धीर, वीर और सहन-शक्ति के स्वामी रहे हो तो क्या अब मनुष्य जन्म में श्रमण अवस्था से घबरा गये हो ? अनेक शूरमा शत्रुओं को युद्ध में पिछाड़ देने वाले शूरवीर होकर साधना की पराक्रम भूमि में आकर कर्मरूपी शत्रुओं से युद्ध करने में भय मान रहे हो।

वीर-उपदेशरूपी जल से मेघकुमार की मोहरूपी अग्नि शान्त हो गई। विश्वासपूर्वक संयम धार कर आत्मिक सुखों का आनन्द लूटने के लिये वह आत्मिक ध्यान में दृढ़ता से लीन रहने लगे।

अभयकुमार पर वीर प्रभाव

Prince Abhaya Kumar sdopted the life of a Jain-Monk.—Some Historical Jain Kings & Heroes, P. 9.

महाराजा श्रेणिक के पुत्र अभयकुमार ने भ० महावीर से अपने पूर्व-जन्म पूछे, तो वीर-दिव्य-ध्वनि में उसने सुना "अब से तीसरे भव में अभयकुमार तुम एक बड़े विद्वान् ब्राह्मण थे परन्तु जात-पांत और छूत-छात के भेदों में इतने फंसे हुए थे कि शूद्र

की छाया पड़ने से भी तुम अपने आपको अपवित्र समझ बैठते थे। एक दिन आपकी भेंट एक श्रावक से हो गई। उसने आपको समझाया कि 'धर्म का सम्बन्ध जाति या शरीर से नहीं बल्कि आत्मा से है। आत्मा शरीर से भिन्न है, ऊँच हो या नीच, मनुष्य हो या पशु, ब्राह्मण हो या चाण्डाल, आत्मिक उन्नति करने की शक्ति सब में एक समान है। जिससे प्रभावित होकर जाति-पांति विरोध त्याग कर आप श्रावक होगये और विश्वासपूर्वक जैनधर्म पालने के कारण मर कर स्वर्ग में देव हुए और वहां से आकर श्रेणिक जैसे महाप्रतापी सम्राट् के भाग्यशाली राजकुमार हुए हो"।

भ० महावीर के उत्तर से अभयकुमार के हृदय के कपाट खुल गये। यह विचार करते-करते "जब श्रावक धर्म के पालने से इस लोक में राज्य सुख और परलोक में स्वर्गों के भोग बिना मांगे आप से आप मिल जाते हैं तो मुनिधर्म के पालने से मोक्ष के अविनाशी सुखों की प्राप्ति में क्या सन्देह हो सकता है? प्रत्यक्ष को प्रमाण क्या? भ० महावीर स्वयं हमारे जैसे पृथ्वी पर चलने-फिरने वाले मनुष्य ही तो थे, जो मुनिधर्म धारण करके हमारे देखते ही देखते लगभग १२ वर्ष की तपस्या से अनन्तानन्त दर्शन, ज्ञान, सुख और वीर्य के धारी परमात्मा होगये। मनुष्यजन्म बड़ा दुर्लभ है फिर मिले न मिले" वह भ० महावीर के निकट जैन साधु हो गये।

वारिषेण पर वीर प्रभाव

Amongst the sons of Shrenika Bimbisara, Varisena is famous for his piety and endurance of austerities. He was ordained as a naked saint by Mahavira and attained Liberation.

—Some Historical Jain Kings & Heroes P. 14.

सम्राट् श्रेणिक के पुत्र वारिषेण इतने पक्के व्रती श्रावक थे कि तप का अभ्यास करने के लिये वह रात्रि के समय श्मशान भूमि में

निःशङ्क होकर आत्म-ध्यान लगाया करते थे।

विद्युत नाम के चोर ने राजमहल से महारानी चेलना का रत्नमयी हार चुरा लिया। कोतवाल ने भांप लिया, चोर जान बचाने को श्मशान की तरफ भागा, कोतवाल ने पीछा किया तो हार को फेंक कर वह एक वृक्ष की ओट में छुप गया। जिस जगह हार गिरा था उसके पास वारिषेण आत्म-ध्यान में लीन थे। इनको ही चोर समझ कर कोतवाल ने हार समेत इनको राजा श्रेणिक के दरबार में पेश किया। राजा को विश्वास न था कि वारिषेण जैसा धर्मात्मा अपनी माता का हार चुराये, परन्तु चोरी का माल और चोर दोनों की मौजूदगी तथा कोतवाल की शहादत। यदि छोड़ा तो जनता कह देगी कि पुत्र के मोह में आकर इन्साफ का खून कर दिया, इस लिये उसने उसको प्राण दण्ड की सजा दे दी।

चाण्डाल हैरान था कि यह क्या ? वह वारिषेण को क़त्ल करने के लिये बारबार तलवार उठाये परन्तु उसका हाथ न चले। धर्मफल के प्रभाव से वनदेव ने चाण्डाल का हाथ कील दिया था। सारे राजगृह में शोर मच गया। राजा श्रेणिक भी आगये और उसको राजमहल में चलने के लिये बहुत जोर दिया परन्तु उनकी दृष्टि में तो संसार भयानक और दुखदायी दिखाई पड़ता था उन्होंने कहा कि क्षणिक संसारी सुखों की ममता में अविनाशी सुखों के अवसर को क्यों खोऊँ। वह भ० महावीर के समवशरण में जाकर जैन साधु होगये।

शालिभद्र पर वीर प्रभाव

राजगृह के सबसे बड़े व्यापारी शालिभद्र ने आनन्दभेरी सुनी तो भगवान् महावीर के आगमन को जान कर उसका हृदय आनन्द से गद्गद करने लगा और तुरन्त भ० वीर के दर्शन के लिये उनके समवशरण में पहुँचा और उनसे अपने पिछले जन्म

का हाल पूछा तो भगवान की दिव्य-ध्वनि खिरी जिसमें सुनाई दिया कि तुम पिछले जन्म में बहुत दरिद्री थे, पड़ौसी के घर खीर बनते हुए देखकर तुमने भी अपनी माता से खीर बनाने के लिये कहा मगर अधिक गरीब होने के कारण वह दूध आदि का प्रबन्ध न कर सकी। गांव के लोगों ने तुम्हारी जिद को देखकर खीर बनाने की सारी सामग्री जुटा दी। माता तुमको परोसनेवाली ही थी कि इतने में एक जैन साधु, आहार निमित्त उधर आगये। तुम भूल गये इस बात को कि बड़ी कठिनाईयों से अपने लिये खीर तैयार कराई थी। तुमने मुनिराज को परघाह लिया और उस सारी खीर का आहार उन को करा दिया और स्वयं भूखे रहे। मुनि-आहार के फल से इस जन्म में तुम इतने निरोगी और भाग्य-शाली हुए हो कि करोड़ों की सम्पत्ति तुम्हारी ठोकरों में फिरती है। शालिभद्र यह विचार करके कि थोड़े से त्याग से इतना अधिक संसारी सुख सम्पत्ति मिली तो इन संसारी क्षणिक सुखों के त्याग से मोक्ष का सच्चा सुख प्राप्त होने में क्या सन्देह हो सकता है? आप जैन मुनि होगये।

महाराजा श्रेणिक ने अपने राज्य के सबसे बड़े सौदागर को मुनि अवस्था में देखा तो उनसे पूछा कि आपने करोड़ों की सम्पत्ति एक क्षण में कैसे त्याग दी? मुनि शालिभद्र ने उत्तर दिया "अब तक मैंने जो सौदे किये उसका केवल इस एक ही जन्म में सुख प्राप्त हुआ, परन्तु जो सौदा आज किया है उसका सुख सदा के लिये प्राप्त होगा।

अर्जुनमाली पर वीर प्रभाव

राजगृह के नगरसेठ सुदर्शन वीरवन्दना को जानने लगे तो उन के पिता ने कहा, "अर्जुनमाली महादुष्ट है। छः पुरुष और एक स्त्री तो नियम से वह प्रत्येक दिन मार ही डालता है। तुम यहां से ही

भ० वीर को नमस्कार कर लो, वह तो सर्वज्ञ हैं, यहां से की हुई वन्दना को भी वह अपने ज्ञान से जान लेंगे" । सुदर्शन ने कहा मरना तो एक दिन है ही, फिर इसका भय क्या ?

सुदर्शन राजगृह से थोड़ी दूर ही बाहर निकला था कि अर्जुन माली भूखे शेर के समान झपटा और अपना मोटा मुद्गर मारने को उठाया, परन्तु वीर भगवान की भक्ति फलसे वनदेवने उसके हाथ कील दिये। अर्जुन बड़ा शक्तिशाली था उसने बहुत यत्न किये, परन्तु कुछ वश चलता न देखकर वह सुदर्शन के चरणों में गिर पड़ा। सुदर्शन ने कहा, "यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो तो मेरे साथ वीर-वन्दना के लिये चलो"। अर्जुन बोला, "वहां तो श्रेणिक जैसे सम्राट्, आनन्द जैसे सेठ और तुम्हारे जैसे भक्त जाते हैं, मुझ जैसे पापी और नीच जाति को कौन घुसने देगा" ? सुदर्शन ने कहा, "यही तो भ० महावीर की विशेषता है कि उनके समवशरण के दरवाजे पापी से भी पापी और नीच से भी नीच चाण्डाल तक के लिये खुले हैं. तुम्हारे लिये वहां वही स्थान है जो महाराजा श्रेणिक के लिये" । यह सुन कर अर्जुन भी सुदर्शन के साथ चल दिया। समवशरण के अहिंसामयी वातावरण और विरोधी पशुओं तक को आपस में प्रेम करते देखकर अर्जुन भूल गया कि मैं पापी हूँ। उसने विनयपूर्वक भ० महावीर को नमस्कार किया और उनके उपदेश से प्रभावित होकर जैन साधु हो गया। श्रेणिक आश्चर्य में पड़ गया कि जिस दुष्ट अर्जुन को लूटमार व कत्लगिरि के हजारों वाकात से सारा देश परेशान था, जिसके कारण उसको गिरफ्तार करने के लिये उसने हजारों रुपये का इनाम निकाल रक्खा था फिर भी किसी में इतना हौसला न था कि उसे पकड़ सकें, वे वीर-शिक्षा से इतना प्रभावित हुआ कि सारे दोषों को छोड़ कर एकदम जैनमुनि होगया[1] ।

१. विस्तार के लिये भ० महावीर का आदर्श जीवन पृ० ४२-४१८ ।

महाराजा चेटक पर वीर प्रभाव

वैशाली के राजा चेटक इक्ष्वाकु वंश के क्षत्रिय-रत्न थे। वह थे बड़े पराक्रमी और वीर योद्धा। सुभद्रा देवी इनकी रानी थी। वे दोनों इतने पक्के जैनी थे कि इन्होंने संकल्प कर रक्खा था कि अपनी पुत्रियों का विवाह अजैन से नहीं करेंगे। जिनेन्द्र भगवान की पूजा-भक्ति तो वह रणभूमि तक में नहीं भूलते थे। उनके धन, दत्तभद्र, उपेन्द्र, सुदत्त, सिंहभद्र, सुकुम्भोज, अकम्पन, सुपतंग, प्रभंजन और प्रभास नाम के दश पुत्र और त्रिशला-प्रियकारिणी, मृगावती, सुप्रभा, प्रभावती, चेलना, ज्येष्ठा और चन्दना नाम की सात पुत्रियाँ थीं। त्रिशला-प्रियकारिणी कुण्डपुर के राजा सिद्धार्थ से ब्याही थी और श्री वर्द्धमान महावीर जी की माता ही थी। मृगावती कौशाम्बी के राजा शतानीक की रानी थीं सुप्रभा दशार्ण देश के राजा दशरथ से ब्याही थी। प्रभावती सिंधु-सौवीर अथवा कच्छ देश के महाराजा उदयन की महारानी थीं। चेलना जी मगध के सम्राट श्रेणिक बिम्बसार की पटरानी थी कि जिनके प्रभाव से महाराजा श्रेणिक बौद्धधर्म छोड़कर जैनी होगया था। सति चन्दना देवी और ज्येष्ठा आजन्म ब्रह्मचारिणी रही थी। यह सारा परिवार जैनधर्मी था, ज्येष्ठा, चन्दना और चेलना तो भ० महावीर के सङ्घ में जैन साधुका होगई थी।

जब भ० महावीर का समवशरण वैशाली आया तो चेटक ने पूछा, मनुष्य बलवान अच्छा है या कमजोर ? वीरवाणी में उन्होंने सुना, "दयावान और न्यायवान का बलवान होना उचित है ताकि वह अपनी शक्ति से दूसरों की सहायता और रक्षा कर सके, परन्तु पापियों, अत्याचारियों और हिंसकों का कमजोर होना ही ठीक है ताकि वह दूसरों पर अत्याचार न कर सकें।" महाराजा चेटक पर भ० महावीर का इतना प्रभाव पड़ा कि वे समस्त राजसुखों को लातमार कर वह जैन साधु हो गये।

सेनापति सिंहभद्र पर वीर प्रभाव

सिंहनामक लिच्छवि सेनापति निगंठ नाठपुत्त (महावीर) के शिष्य थे ।
—बौद्धग्रन्थ महावग्ग (S. B E.) XVII. 116.

सिंहभद्र वैशाली के विशाल राजा चेटक के महायोद्धा सेनापति थे। जब भ० महावीर का समवशरण वैशाली में आया तो यह भी उनकी वन्दना को गये और भक्तिपूर्वक नमस्कार करके भ० महावीर से पूछा, कि क्या शासन चलाने वाले मेरे जैसे क्षत्रिय के लिये राष्ट्र रक्षा के लिये तलवार उठाना और अपराधियों को दण्ड देना अहिंसा धर्म के विरुद्ध है? भ० महावीर की वाणी खिरी, जिसमें उन्होंने सुना कि "देशरक्षा के लिए सैनिक धर्म तो श्रावक का प्रथम धर्म है। सैनिक धर्म के बिना अत्याचारों का अन्त नहीं होता और बिना अत्याचारों का अन्त किए देश में शान्ति की स्थापना नहीं हो सकती और बिना शांति के गृहस्थ धर्म का पालन नहीं हो सकता और बिना गृहस्थों के मुनिधर्म सम्पूर्णरूप से पालन नहीं हो सकता। इस लिए देश में शान्ति रखने तथा अत्याचारों को नष्ट करने के हेतु विरोधी शत्रुओं पर विजय प्राप्त करना और अपराधियों को न्यायपूर्वक दण्ड देना गृहस्थियों के लिए अहिंसा धर्म है"। सेनापति सिंहभद्र ने अहिंसा धर्म की इतनी विशालता वीरवाणी में सुनकर तुरन्त ही श्रावक धर्म के व्रत ले लिये।

आनन्द श्रावक पर वीर प्रभाव

सेठ आनन्द वाणिज्यग्राम के बड़े प्रसिद्ध साहूकार थे, चार करोड़ अशर्फियां उनके पास नक़द थीं। चार करोड़ अशर्फियां ब्याज पर और चार करोड़ अशर्फियां कारोबार में लगी हुई थीं। करोड़ों अशर्फियों की जमीन-जायदाद थी। चालीस हजार गाय, भैंस, घोड़े, बैल आदि पशुधन था। जब भ० महावीर का सम-

वशरण उनकी नगरी में आया तो आनन्द और उनकी पत्नी शिवनन्दा ने भ० वीर से श्रावक के व्रत लिए और यह प्रतिज्ञा कर ली थी कि जो हमारे पास है उससे अधिक अपने पास न रखेंगे। ब्याज पर चढ़े हुए चार करोड़ अशर्फियों का सूद ग्रहण करें तो सम्पत्ति बढ़ जाये, कारोबार में लाभ हो तो सम्पत्ति बढ़े। हर साल एक बच्चा हो तो चालीस हजार पशुधन से सालभर में चालीस हजार बच्चे बढ़ जावें, उनको बेचें तो नकदी बढ़ जावे इस लिए लोभ और मोह नष्ट होजाने से वह महासन्तोषी और इच्छा रहित होकर श्रावक व्रत धारने के कारण वह इस दुखी संसार में भी महासुखी थे।

राजकुमार एवन्त पर वीर प्रभाव

पोलसपुर के सम्राट् विक्रम के पुत्र एवन्तकुमार ने भ० महावीर के निकट दीक्षा ली। —श्रीचौथमल जी : भ० महावीर का आदर्श जीवन, पृ० ४१६।

पोलासपुर में वीर-समवशरण आया तो वहां के राजा विक्रम ने उनका स्वागत किया। शब्दालपुत्र नाम के कुम्हार ने जिसकी पाँचसौ दुकानें[1] मिट्टी के बर्तनों की चलती थीं और तीन करोड़ अशर्फियों का स्वामी था[2], वीर प्रभु से श्रावक के व्रतलिये[3]। वहां के राजकुमार एवन्त ने जैन साधु होने की ठान ली। माता-पिता से आज्ञा मांगी तो उन्होंने कहा कि अभी तुम बालक हो विधि अनुसार धर्म कैसे पाल सकोगे? राजकुमार ने कहा कि धर्म पालने की विशेषता आयु पर निर्भर नहीं, बल्कि श्रद्धा और विश्वास पर है। वैसे भी आयु का क्या भरोसा? मृत्यु के लिये बच्चा और बूढ़ा एक समान है। यदि जीवित भी रहा तो यह कैसे विश्वास कि सदा निरोगी रहूँगा, रोगी से धर्म पालन नहीं हो सकता। बुढ़ापे में तो धर्म साधन की शक्ति ही नहीं रहती। यह

१-३. भ० महावीर (कामताप्रसाद) पृ० १३४।

मनुष्य जन्म बार २ नहीं मिलता। वीरप्रभु के उपदेश से मुझे यह दृढ़ विश्वास हो गया है कि जिन विषय भोगों और इन्द्रियों की पूर्तियों को हम सुख समझते हैं वह वर्षों तक नरकों के महादुख सहने का कारण हैं। मात-पिता ! आप तो हमेशा मेरा हित चाहते रहे हो तो अविनाशी हित से क्यों रोकते हो ? राजा और रानी अपने बालक के प्रभावशाली वचन सुनकर सन्तुष्ट होगये और उसे जिनदीक्षा लेने की आज्ञा देदी। जिस प्रकार कैदी को बन्दीखाने से छूटने पर आनन्द आता है उसी प्रकार राजकुमार एवन्त आनन्द मानता हुआ सीधा भ० वीर के समवशरण में गया और उनके निकट जैन साधु होगया।

महाराजा उदयन पर वीर प्रभाव

Udayana the great king of Sindhu-Sauvira became the disciple of Lord Mahavira.

—Some Historical Jain Kings & Heroes P. 9.

प्राकृत कथा संग्रह में 'सिन्धु-सौवीर के सम्राट् उदयन को एक बहुत ही बड़ा महाराजा बताया है, कि जिनकी कई सौ मुकुट बन्द राजा सेवा किया करते थे'। रोरूकनगर उनकी राजधानी थी'। उनके राज्य में नर-नारी ही क्या पशु तक भी निर्भय थे इस लिये उनका राजनगर वीतभय के नाम से प्रसिद्ध था[२], प्रभावती उनकी पटरानी थी, जो महाराजा चेटक की पुत्री और भ० महावीर की मौसी थी[३]। महारानी प्रभावती पक्की जैनधर्मी थी[४], उनकी धर्मनिष्ठा ने ही राजा उदयन को जैनधर्मी बनाया था[५]। वह दोनों इतने वीर भक्त थे कि अपनी नगरी में एक सुन्दर जैन मन्दिर बनवाकर उसमें भ० महावीर की स्वर्ण-प्रतिमा विराजमान की थी[६]। वे जैनधर्म को भलीभांति पालने वाले आदर्श श्रावक थे[७]। जैन मुनियों की सेवा के लिये तो इतने प्रसिद्ध थे कि इस

१-७. भ० महावीर (कामताप्रसाद) पृष्ठ २५०-२५१।

लोक में तो क्या परलोक तक में उनकी धूम थी। स्वर्ग के देवताओं तक ने परीक्षा करके उनकी बड़ी प्रशंसा की है[1]।

भ० महावीर का समवशरण उनकी नगरी में आया तो उन्होंने बड़े शाही ठाठ-बाट से भगवान का स्वागत किया और परिवार सहित उनकी बन्दना को गये[2]। वीर-उपदेश से प्रभावित होकर जैन साधु होने के लिये अपने पुत्र के राजतिलक करने लगे तो उसने यह कहकर इन्कार कर दिया कि राजसुख तो क्षणिक है, मुझे भी अविनाशी सुखों के लुटने की आज्ञा देदो। मजबूर होकर राज्य अपने भाँजे केसीकुमार को दिया और वे दोनों भ० महावीर के निकट जैन साधु होगये[3]। महारानी प्रभावती भी चन्दना जी से दीक्षा लेकर जैन साधुका हो, वीर संघ में शामिल हो गई[4]।

वीर निर्वाण और दीपावली

That night, in which Lord Mahavira attained Nirvan, was lighted up by descending and ascending Gods and 18 confederate kings instituted an illumination to celebrate Moksha of the Lord. Since then the people make illumination and this in fact is the **'ORIGIN OF DIPAWALI'.**

—Prof. Prithvi Raj: VoA. Vol. I. Part. VI. P. 9.

सन् ईस्वी से ५२७[5] साल, विक्रमी स० से ४७०[6] वर्ष, राजा शक से ६०५ साल ५ महीने[7] पहिले कार्तिक वदी चौदश[8],

---

१-४. विस्तार के लिये भ० महावीर (कामताप्रसाद) पृ० २५३-२५८।

५. 527 B. C., the date of Mahavira's Nirvan, is a land mark in the Indian History. Accurate knowledge of history begins with Mahavira's Nirvan.

—A Chakravarti, I. E. S.: Jain Antiquary. Vol. IX. P. 76.

६. Prof. Dr. H S. Bhattacharya: Lord Mahavira. P. 37.

७-८. पं. जुगलकिशोर : भ० महावीर और उनका समय (वीरसेवामन्दिर) पृष्ठ ३१

सोमवार[1] और अमावस्या[2], मङ्गलवार[3] के बीच में प्रातःकाल[4] जब चौथे काल के समाप्त होने में तीन वर्ष साढ़े आठ महीने[5] बाकी रह गये थे, केवल ज्ञान के प्राप्त होने के २९ साल ५ महीने २० दिन बाद[6], ७१ वर्ष ३ महीने २५ दिन की आयु[7] में भगवान महावीर ने मल्लों की पावापुर[8] नगरी में निर्वाण प्राप्त किया[9]। स्वर्ग के देवताओं ने उस अन्धेरी रात्रि में रत्न बरसा कर रोशनी की[10]। जनता ने दीपक जला कर उत्साह मनाया[11]। राजाओं ने वीर निर्वाण की यादगार में कार्तिक वदी चौदश और अमावस दोनों रात्रियों को हरसाल दीपावली पर्व की स्थापना की[12] उस समय भ० महावीर की मान्यता ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारों वर्ण वाले करते थे, इसलिये दीपावली के त्योहार को आज तक चारों वर्णों वाले बड़े उत्साह के साथ मनाते हैं[13]।

आर्यसमाजी महर्षि स्वामी दयानन्द जी, सिक्ख छठे गुरु श्री हरगोबिन्द जी, हिन्दु श्री रामचन्द्र जी, जैनी वीरनिर्वाण और कुछ महाराजा अशोक की दिग्विजय को दीपावली का कारण बताते हैं। कुछ का विश्वास है कि राजा बलि की दानवीरता से प्रसन्न होकर विष्णु जी ने धनतेरस से तीन दिन का उत्सव मनाने के लिये दीपावली का त्योहार आरम्भ किया था और कुछ का

१-४. Lord Mahavira's Commemoration Vol. I. P. 91-100.

५. श्री जिनसेनाचार्यः हरिवंशपुराण, सर्ग ६६, श्लोक १५-१६।

६. वासाणुणतीसं पंच य मासे य वीसदिवसे य ।
चउविह अणगारेहिं बारहहि गणेहि विहरंतो ॥१॥ धवल ।

७ Anekant (Vir Seva Mandir, Sarsawa) Vol XI. P. 99.

८-९. Dr. H. Jacobi: Mahavira's Commemoration Vol. I. P. 45.

१०. श्री गुणभद्राचार्यः उत्तरपुराण, पर्व ११।

११-१२. जैन प्रचारक (अक्तूबर १९४०) पृष्ठ १३, जैनधर्म (दि० जैन संघ) पृष्ठ ३२४

कथन है कि यमराज ने वर मांगा था कि कार्तिक बदी तेरस से दोयज तक ५ दिन जो उत्सव मनायेंगे उनकी अकाल मृत्यु नहीं होगी। इसलिये दीपावली मनाई जाती है, परन्तु दीपावली एक प्राचीन त्योहार है। महर्षि स्वामी दयानन्द जी और छठे गुरु श्री हरगोविन्द जी से बहुत पहले से मनाया जाता है[1]। श्री रामचन्द्र जी के अयोध्या में लौटने की खुशी में दीवाली के आरम्भ होने का उल्लेख रामायण या किसी और प्राचीन हिन्दू ग्रन्थ में नहीं मिलता[2]। विष्णु जी तथा अशोक दिग्विजय के कारण दीपावली का होना किसी ऐतिहासिक प्रमाण से सिद्ध नहीं होता[3]। प्राचीन जैन ग्रन्थों में कथन अवश्य है कि: —

> "जिनेन्द्रवीरोऽपि विबोध्य संततं समंततो भव्यसमूहसंततिम्।
> प्रपद्य पावानगरीं गरीयसीं मनोहरोद्यानवने यदीयके ॥१५॥
> चतुर्थकालेऽर्धचतुर्थमासकैर्विहीनताविश्चतुरब्दशेषके।
> सकार्तिके स्वातिषु कृष्णभूतसुप्रभातसन्ध्यासमये स्वभावतः ॥१६॥
> अघातिकर्माणि निरुद्धयोगको विधूय घातीं घनवद्विबंधनम्।
> विबन्धनस्थानमवाप शंकरो निरन्तरायोरुसुखानुबन्धनम् ॥१७॥
> ज्वलत्प्रदीपालिकया प्रवृद्धया सुरासुरैर्दीपितया प्रदीप्तया।
> तदास्म पावानगरीं समन्ततः प्रदीपिताकाशतला प्रकाशते ॥१९॥
> ततस्तु लोकः प्रतिवर्षमादरात् प्रसिद्धदीपालिकयात्र भारते।
> समुद्यतः पूजयितुं जिनेश्वरं जिनेन्द्रनिर्वाणविभूति भक्तिभाक् ॥२०॥
>
> —श्री जिनसेनाचार्यः हरिवंशपुराण, सर्ग ६६

भावार्थ—"जब चौथे काल के समाप्त होने में तीन वर्ष साढ़े आठ महीने रह गये थे तो कार्तिक की अमावस्या के प्रातःकाल पावांपुर नगरी में भ० महावीर ने मोक्ष प्राप्त किया[4], जिसके उपलक्ष में चारों प्रकार के देवताओं ने बड़ा उत्सव मनाया और

१–३, जैन प्रचारक (अक्तूबर १९४०) पृ० १३

४. Going to Sakhya, Buddha himself witnessed the grand occurance of Lord Mahavira's attaining salvation at Pava. —J. H. M. (Nov, 1924) P. 44

जहां तहाँ दीपक जलाये। जिनकी रोशनी से सारा आकाश जगमगा उठा था। उसी दिन से आज तक श्री जिनेन्द्र महावीर के निर्वाण-कल्याण की भक्ति से प्रेरित होकर लोग हर साल भरत क्षेत्र में दिवाली का उत्साह मनाते हैं।

कार्तिक बदी चौदश और अमावस्या की रात्रि में भ० महावीर समस्त कर्मरूपी मल को दूर करके सिद्ध हुए, कर्म-मल से शुद्धि के स्थान पर हम उस रात्रि को कूड़ा निकाल कर घरों की शुद्धि करते हैं। उसी दिन भ० महावीर के प्रथम गणधर इन्द्रभूति गौतम जी ने केवल ज्ञानरूपी लक्ष्मी प्राप्त की थी, जिसकी पूजा देवों तक ने की थी, उसके स्थान पर चञ्चल लक्ष्मी तथा गणेश जी की पूजा होती है[1]। गणेश नाम गणधर का है[2]। वीर-समवशरण में मुनीश्वरों, कल्पवासी इन्द्राणियों, आर्यिकाओं व श्राविकाओं, ज्योतिषी देवाङ्गनाओं, व्यन्तर देवियों, प्रसाद निवासियों की पद्मावती इत्यादि देवियों, भवन निवासी देवों, व्यन्तर देवों, चन्द्र-सूर्य इत्यादि ज्योतिषी देवों, कल्प निवासी देवों, विद्याधरों व मनुष्यों, सिंह-हरिण इत्यादि पशु-पक्षियों व तिर्यंचों के बैठ कर धर्म उपदेश सुनने के लिये १२ सभाएँ होती हैं, उसके स्थान पर लीप-पोत कर लकीरें खींच कर कोठे बनाना और वहाँ मनुष्य और पशुओं आदि के खिलौने रखना, वीर-समवशरण का चित्र

१-२. As regards worship of 'Lakshmi' and 'Goanesha' the Jains have a convincing tradition that Indrabhuti, attained Omniscience few hours latter than the Liberation of Mahavira. The people in honour to his befitting memory began to worship Omniscience—the greatest wealth and Ghanesha was Goutama himself as he was the head of eleven Ganas of Mahavira—गणानां ईशः गणेशः।

—Prof. Prithvi Raj: VOA I- Part. VI. P. 9.

खींचने की चेष्टा करना है[१]। भ० महावीर वहां गन्धकुटी पर विराजमान होते हैं, उसके स्थान पर हम घरूखडी (हटडी) रखते हैं। वीर निर्वाण के उत्सव में देवों ने रत्न बरसाये थे, उसके स्थान पर हम खील पताशे बांटते हैं। उस समय के राजाओं-महाराजाओं ने वीर निर्वाणके उपलक्षमें दीपक जलाकर उत्सव मनाया था; उसके स्थान पर हम दीपावली मनाते हैं। यह हो सकता है कि अमावस्या की शुभ रात्रि में महर्षि स्वमी दयानन्द जी स्वर्ग पधारे, श्रीरामचंद्र जी अयोध्या लौटे या औरों के विश्वास के अनुसार और भी शुभ कार्य हुए हों, परन्तु इस पवित्र त्योहार पर होने वाली क्रियाओं और विचार पूर्वक खोज करने से यही सिद्ध होता है कि दीपावली वीर-निर्वाण से ही उनकी यादगार में आरम्भ होने वाला पर्व है[२], जैसे कि लोकमान्य पं० बालगङ्गाधर तिलक[३], डा० रवीन्द्रनाथ[४] टैगोर आदि अनेक ऐतिहासिक विद्वान् स्वीकार करते हैं[५]।

केवल दीपावली का त्योहार ही नहीं, बल्कि भ० महावीर की स्मृति में सिक्के ढाले गये[६]। वर्द्धमान नाम पर वर्धमान और वीर नाम पर वीर-भूमि नाम के नगर आज तक बङ्गाल में प्रसिद्ध हैं[७]। विदेह देश में भ० महावीर का अधिक विहार होने के कारण उस प्रान्त का नाम ही विहार प्रान्त पड़ गया[८]। भारत के

१-४. जैन प्रचारक (जैन यतीमखाना दरियागंज, देहली) अक्तूबर १६४० पृष्ठ १३।

५. i. Prof. Dr. H. S. Bhattacharyr: Lord Mahavira. P. 36.
   ii. Shri P. K. Gode: Mahavira's Commemoration Vol. I. P 49.
   iii. Steuvenson: Encyclopeadia of Religion & Ethics Vol. V. P. 825.

६. भ० महावीर (कामताप्रसाद जी) पृ० २३५, वीर. वर्ष ३, पृ० ४४३, ४६७।

७. श्री नगेन्द्रनाथ बोसः बङ्गाल विश्वकोष १६२१।

८, जैन मित्र (सूरत) वर्ष २३, पृ० ५४३।

ऐतिहासिक युग में सबसे पहला सम्वत्, जो वीर-निर्वाण से अगले दिन ही कार्तिक सुदी १ से चालू होता है, जिस दिन हम अपनी पुरानी बहियां बन्द करके नई चालू करते हैं, अवश्य भ० महावीर के सन्मुख भारत निवासियों की श्रद्धा और भक्ति प्रगट करने वाला वीर-सम्वत् है[1]। इस प्रकार न केवल जैनों पर ही किन्तु अजैनों पर भी श्री वर्द्धमान महावीर का गहरा प्रभाव पड़ा[2]।

वीर-संघ

Mahavira's order was so strongly organised that it has triumphed over every vicissitude. It has survived up to the present day and is still flourishing.

—Dr. Ferdinando Bellini-Fillippi, VOA. Vol I, ii. P. 5.

जैन धर्म अनादि है ही तो जैन संघ अनादि होने में क्या सन्देह ? इस अवसर्पिणी युग में खरबों वर्षों से भी अधिक हुआ कि श्री ऋषभदेव जी ने जैन धर्म स्थापित किया था। इतने लम्बे समय में लोग अनेक बार अपने कर्तव्य को भूल बैठे थे तो अनेक तीर्थङ्करों ने अपने-अपने समय में लोक-कल्याण के लिये फिर से जैन सङ्घ को दृढ़ किया, जिसके कारण उनके तीर्थकाल में जैन संघ का नाम उनके नाम पर ही लिया जाता रहा, इसी लिये वीर काल के जैन संघ को वीर-संघ कहते हैं।

भ० महावीर की शरण में किसी ने मुनिव्रत लिये तो किसी ने श्रावक व्रत ग्रहण किये, पशुओं तक ने अणुव्रत पाले। जो संसारी पदार्थों का मोह न छोड़ सके वह भगवान के भक्त हो गये थे। ऐसे असंख्य जीव घरों में रह कर ही धर्म प्रभावना करते थे; फिर भी वीर-संघ में महा विद्वान तथा सातों ऋद्धियों के धारी और इन्द्रों तक से पूजनीय, महाज्ञानी ११ गणधर थे,

१-२. पं० जयभगवान एडवोकेट: इतिहास में भ० महावीर का स्थान, पृ० ११।

जिनके प्रधान इन्द्रभूति थे, जिनके २१३० शिष्य थे। इनके भाई अग्निभूति गौतम व वायुभूति तथा शुचिदत्त, सौधर्म प्रत्येक के अलग २ २१३० शिष्य थे। मौण्ड और मौर्य को मिला कर ८५० और अकम्पन, अधवेल, मैत्रेय और प्रभास को मिला कर २५०० शिष्य थे इस प्रकार ११ गणधर, सात[1] गणों के १४००० शिष्यों की सार-संभाल करते थे[2] जिनमें से ७०० केवलज्ञानी अर्हन्त परमेष्ठी, ५०० मनः पर्यय ज्ञानी, १३ अवधिज्ञानी, ९०० विक्रिया ऋद्धि-धारी, ३०० ग्यारह अङ्ग चौदह पर्वोंके जानकार, ४०० अनुत्तरवादी, जिनके तर्क, न्याय और वक्तृत्व शक्ति के सामने कोई टिक नहीं सकता था, और ९९०० वास्तविक संयम के धारी शिक्षक मुनि थे। ऐसे महान तपस्वी और सम्पन्न लोकोद्धारक १४००० मुनीश्वर, ३६००० चन्दना, प्रभावती, चेतना, ज्येष्ठा आदि महासंयमी अर्यिकाएँ, जो गाढ़े कपड़े की एक सफेद साढ़ी में ही सर्दी-गर्मी की परीषह सहन करती थीं एक लाख श्रावक और तीन लाख श्राविकाएँ थीं[3] इस प्रकार मुनि, अर्यिका, श्रावक श्राविकाओं से शोभित, वीर-संघ चतुर्विधरूप था। श्वेताम्बरीय शास्त्रों में वीर-संघ का मुनि और अर्यिकाओं से युक्त बताया है[4], परन्तु स्वयं श्वेताम्बरीय 'कल्पसूत्र' (Js. Pt. I) में वीर-संघ के चार अङ्गों का उल्लेख है। श्वेताम्बराचार्य श्री हेमचन्द्र जी भी भ० महावीर का संघ चतुर्विध-रूप ही बताते हैं[5]। असंख्य देवी, देवता और सौभाग्यशील अनेक पशु-पक्षी, तिर्यंच भी वीर-संघ में से, इस

---

१. श्रवणबेलगोल का शिलालेख नं० १०५ (२५४)। जैन शिलालेख संग्रह, पृ० १९६।

२. श्री जिनसेनाचार्यः हरिवंश पुराण, पर्व ४०-४१।

३. श्री गुणभद्राचार्यः उत्तर पुराण, पर्व ७३, श्लोक ३७३-३७९।

४. "गिहिणो गिहिमज्झ वसन्ता"—उपासक दशासूत्र २। ११९।

५ "निषसाद तथा स्थाने संघस्तत्र चतुर्विधः" —परिशिष्ट पर्व १।

प्रकार भ० महावीर का संघ समस्त लोक-भुवनाश्रब ही था। इस वीर संघ का धार्मिक शासन गणधरों अथवा गणाचार्यों के आधीन था तथापि आर्यिका संघ का नेतृत्व सती चन्दना जी को ही प्राप्त था। संघ की व्यवस्था के लिये समुदार नियम बने हुये थे, जिनका रीत से पालन किया जाता था। वह केवल तत्वज्ञान की ही नहीं, बल्कि लौकिक जीवन की उलझी गुत्थियों को सुलझाने की भी चर्चा करते थे, वीर संघ केवल राजे-महाराजे, सेठ-साहूकारों के लिये ही न था बल्कि नीच से नीच अछूत चाण्डाल और अर्जुनमाली जैसे दुष्टों का भी उन्होंने सुधार किया। यही नहीं, बल्कि स्त्रियों, पशु-पक्षियों तक को अविनाशी सुख प्राप्त करने का अवसर प्रदान किया। उस समय के समस्त राजाओं पर अधिक वीरप्रभाव होने पर भी भ० महावीर ने किसी पर यह दबाव न डाला और न डलवाया कि जनता उनकी आज्ञा का पालन करे। उन्होंने तो सत्य की खोज करके और स्वयं उसे अपना कर संसार को प्रत्यक्ष दिखा दिया कि नीच से नीच आत्मा भी अपने पुरुषार्थ से परमात्मा तक बन सकती है। संसार ने वीर-वाणी को न्याय की कसौटी पर दिल खोल कर खूब रगड़ा और जब उनके सिद्धान्तों को सो फीसदी सत्य पाया तब अपनाया, यही कारण है कि बिना सड़क रेल, मोटर डाकखाना आदि साधनों के २९ वर्ष ५ महीने २० दिनों[1] के थोड़े से समय में अधर्म को धर्म, हिंसा को अहिंसा और पाप को पुण्य कहने वालों को अहिंसा, सत्य, अचौर्य, परिग्रह-प्रमाण और स्वयं स्त्री-सन्तुष्ट, श्रावक के पांच अणुव्रतों में दृढ़ करके पापी से पापी को भी आदर्श शहरी और मुनिव्रत की शिक्षा देकर धर्मात्मा बना कर समस्त संसारी प्राणियों का परम कल्याण किया।

भगवान महावीर के निर्वाण प्राप्त हो जाने पर उनके प्रधान गणधर इन्द्रभूति गोतम को केवल ज्ञान प्राप्त होगया था, उन्होंने

---

१. This book's foot-note No. 6 of P. 395.

१२ साल तक धर्म प्रचार किया। इनके मोक्ष होने पर इनके प्रधान शिष्य सुधर्माचार्य ने सर्वज्ञ हो, १२ वर्ष तक जिनवाणी की अमृत वर्षा की[१]। इनके मुक्ति प्राप्त कर लेने पर इनके प्रधान शिष्य जंबू स्वामी तीनों लोकों को समस्त रूप से जानने वाले अन्तिम केवल ज्ञानी ने ३८ साल तक संपूर्ण श्रुतज्ञान का अबाधितरूप से प्रचार किया[२]। इस प्रकार भ० महावीर के ६२ साल बाद तक सर्वज्ञ अर्हन्तों द्वारा जैन धर्म का प्रचार होता रहा[३]।

जंबूस्वामी के बाद विष्णुमुनि, नंदिमित्र, अपराजित, गोवर्धन और भद्रबाहु पांच महासाधु संपूर्ण श्रुतसमूह के पारगामी और द्वादशांग के पाठक श्रुतकेवली हुए जिन्होंने १०० वर्ष तक धर्मोपदेश दिया[६] प्रसिद्ध सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य इन्हीं भद्रबाहु जी के शिष्य थे। जिनके शासनकाल तक जैन संघ में दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदायों का कोई भेद न था[८]। इसीलिये दोनों सम्प्रदायों के शास्त्र भद्रबाहु जी को अन्तिम श्रुतकेवली मानने में एकमत हैं। उस समय मगध और उसके आस पास बारह वर्ष का अकाल पड़ गया था, जिसके कारण उत्तर भारत में अन्न-वस्त्र के लाले पड़ गये थे। भद्रबाहु स्वामी ने अपने ज्ञान से ऐसे दुष्काल को विचार कर, संघ सहित दक्षिण भारत की ओर विहार किया। सम्राट चन्द्रगुप्त भी जो उनके प्रभाव से जैन साधु हो गये थे, उनके संघ के साथ मैसूर प्रान्तर्गत कटवप्र पर्वत पर चले गये, जो उनके तप करने के कारण उनके नाम पर चन्द्रगिरि कहलाने लगा[९]। वहां से जब संघ लौटकर उत्तर भारत आया तो देखा कि दुष्काल की कठिनाइयों ने उत्तर भारत में रहे हुये निर्ग्रन्थ श्रमणों को शिथिलाचारी बना दिया[१०]—श्वेत वस्त्र धारण करने से उनका नाम

१-६. जैनाचार्य (सूरत) पृ० १-३।

७-६ जैन शिलालेख संग्रह श्रवणबेलगोल भूमिका।

१०. Cradually customs changed. The original practice

श्वेताम्बर पड़ गया। इस प्रकार भद्रबाहुजी के बाद **दिगम्बर और श्वेताम्बर दो भिन्न भिन्न सम्प्रदायें** मानी गईं[१]।

भद्रबाहु जी के बाद विशाखदत्त, प्रौष्ठिल, क्षत्रिय, जयसेन, नागसेन, सिद्धार्थ, धृतिषेण, विजयसेन, बुद्धिमान, गङ्गदेव और धर्मसेन नाम के ११ महात्मा ग्यारह अंग और दश पूर्व के धारक हुए जिन्होंने १८३ साल तक वीर वाणी का प्रचार किया। इन के बाद नक्षत्र, जयपाल पांडु, द्रुमसेन और कंसाचार्य ५ महात्माओं ने २२० साल ग्यारह अंग के अध्ययन को स्थिर रक्खा। इनके बाद सुभद्र, अभयभद्र, जयबाहु और लोहाचार्य पाँच मुनीश्वर आचारंग शास्त्र के महा विद्वान् हुए, जिन्होंने ११८ वर्ष अङ्ग-ज्ञान का प्रचार किया। इस तरह भ० महावीर के निर्वाण से (६२+१००+१८३+२२०+११८=६८३ वर्ष बाद (वीर संवत् ६८३) तथा सन् १५६ ई० तक अङ्गज्ञान का प्रचार रहा। इनके बाद विनयधर, श्रीदत्त, शिवदत्त और अर्हदत्त चार आरातीय मुनि चार अङ्ग पूर्व के कुछ भाग के ज्ञाता हुए. इनके बाद अर्हद्बलि नाम के महात्मा हुए जो अङ्गपूर्वदेश के एक भाग के ज्ञाता थे, जिन्होंने नन्दि, देव, सैन और भद्र नाम से चार संघों की स्थापना की। इनके बाद माघनन्दि नाम के महामुनि हुए, जो अङ्गपूर्वदेश के ज्ञाता थे। इनके बाद काठियावाड़ देश में श्री गिरनार जी की चन्द्रगुफा में निवास करने वाले महातपस्वी, अष्टांग महानिमित्त

---

going naked was abandoned. The ascetics began to wear the 'white robe'. It is much more likely, however, that the Swetambera Party originated about that time and not the Digambera.

—Miss. Stevenson· Heart of Jainism, P 35.

१. भ० महावीर (कामताप्रसाद) पृ० ११२-२२३।

के पारगामी श्री धरसैन जी नाम के महान् आचार्य हुए, कि जिनके श्री पुष्पदन्त और श्री भूतबलि नाम के शिष्य महाविद्वान् थे, जिन्होंने श्रुत विनष्ट होने के भय से धर्म प्रभृति को छः खण्डों में षट्खंडागम[1] नाम के राजग्रन्थ (धवल[2], जयधवल, महाधवल[3] इसकी टीकाएँ हैं) को वीर निर्वाण से ७२३ वर्ष बाद[4] (१९६ ई०) में रचा, जो जेठ सुदी पंचमी के दिन पूर्ण हुआ था, जिसके कारण वह दिन 'श्रुतपंचमी' कहलाता है। उस दिन सब संघों ने मिल कर जिनवाणी की पूजा की थी, जिसकी स्मृति में श्रावक आज भी उत्साह से जिनवाणी की पूजा करके श्रुतपंचमी का पर्व मनाते हैं[5]।

इनके बाद श्री कुन्दकुन्द, उमास्वामी, स्वामी समन्तभद्र, अकलङ्कदेव, पूज्यपाद नेमचन्द्र, शकटायन, जिनसेन, गुणभद्र, मातुङ्गाचार्य आदि अनेक ऐसे आदर्श मुनि हुए हैं, कि जिनका प्रभाव महान से महान सम्राट[6] से अधिक और ज्ञान कालीदास से भी बहुत अधिक था[7]। वीर-निर्वाण के हजारों साल बाद आज के पंचम काल में भी श्री शान्तिसागर जैसे तपस्वी नग्न मुनियों, श्री गणेशप्रसाद वर्णी जैसे क्षुल्लकों, श्री कांजीस्वामी जी जैसे त्यागियों और अनेक आर्यिकाओं का दृढ़ता के साथ जैन धर्म का पालन करते हुए अपने उत्तम आदर्श, प्रभावशाली उपदेश और अतिसुन्दर रचनाओं द्वारा समस्त जग के प्राणियों का बिना भेदभाव के कल्याण करना अवश्य वीरसंघ रूपी वृक्ष का ही मीठा फल है।

---

१. षट्खण्डागम (जैन साहित्योद्धारक फण्ड कार्यालय: अमरावती, पृ० ६४।

२. महाधवल भी महाबन्ध के नाम से छप चुका है, जिसके दोनों भाग २०) में भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस ५, से प्राप्त होसकते हैं।

३. पण्डित जुगलकिशोर: समन्तभद्र (वीरसेवा मन्दिर, सरसावा) पृ० १६१।

४-५. इसी ग्रन्थ के पृ० १६०, १९४-२००.

विश्वशान्ति के अग्रदूत श्री वर्द्धमान महावीर
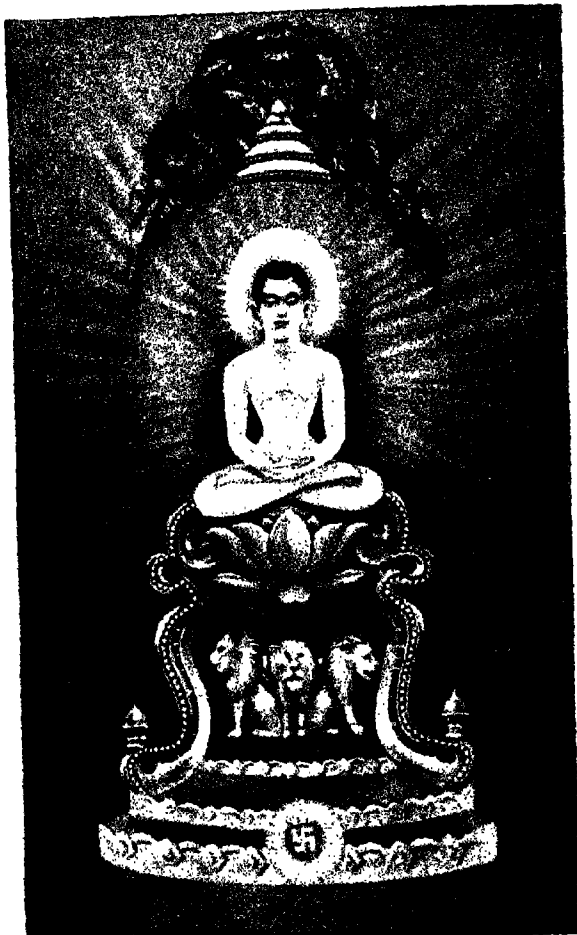
वीर के प्रभाव की छाप ऐसी लगी इतिहास पर।
नाम भारतवर्ष का दुनिया में रोशन हो गया॥

—चंचल, सहारनपुरी।

जैनधर्म और भारतवर्ष का इतिहास

जैनधर्म की प्राचीनता
और
आदिपुरुष श्री ऋषभदेव

संसार जीव अजीव आदि छः द्रव्यों का समूह है[1]। द्रव्य की अवस्था बदल तो सकती है, परन्तु इसका नाश नहीं होता[2]। जब द्रव्य अनादि है तो द्रव्यों का समूह (संसार) तथा जीव (Soul) को गुण अर्थात् धर्म (जैनधर्म) भी अनादि है[3]। जैनधर्म सदा से था, सदा से है और सदा तक रहेगा[4]। आर्य जाति ऋग्वेदादि का भारत में आकर निर्माण कर रही थी तब और उनके आने से पहले भी जैन धर्म का प्रचार था[5]। जिन्हें वेदनिन्दक नास्तिक और इतिहासकार द्राविड़ कहते थे. वे जैनी ही थे[6]। जैन धर्म तब से प्रचलित है जब से संसार में सृष्टि का आरम्भ हुआ[7]। जैन दर्शन वेदान्त आदि दर्शनों से पूर्व का है[8]। भ० महावीर या पार्श्वनाथ ने जैन धर्म की नींव नहीं डाली बल्कि उनके द्वारा तो इसका पुनः संजीवन हुआ है[9]।

उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी दोनों युगों में छः छः काल, जिनमें से तीन भोगभूमि और तीन कर्मभूमि के होते हैं। भोगभूमि में कल्पवृक्षों द्वारा आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाने के कारण, धर्म-कर्म की आवश्यकता नहीं रहती। इस मौजूदा अवसर्पिणी युग के तीसरे काल के अंत में कल्पवृक्षों की शक्ति नष्ट होगई तो चौथे काल के आरंभ में जीवों को उनका कर्त्तव्य (धर्म) बताने के लिये कुलकर नाभीराय के पुत्र प्रथम तीर्थङ्कर श्री ऋषभदेव ने जैन धर्म की स्थापना की[10]।

१-४ 'वीर-उपदेश' इसी ग्रन्थ का पृ० ३३८।

५-६ जैन सन्देश आगरा (२६ अप्रैल १९४५) पृ० १७।

७ १० इसी ग्रन्थ के पृ० १००, १०१, १०२ व Contributions of Jains.

श्री ऋषभदेव जी का जन्म अयोध्या नगरी में हुआ इस लिये वह पवित्र भूमि पूजनीय है। यहां और भी अनेक तीर्थङ्करों का जन्म होने के कारण जैन धर्मानुसार अयोध्या जी मुक्ति प्राप्त कराने का परम तीर्थ है, यही बात केवल हिन्दू ही नहीं बल्कि मुसलमान भी कहते हैं। "हिन्दूधर्म में मथुरा, काशी, पुरी आदि मुक्ति के देने वाले सातों तीर्थों में प्रथम तीर्थ अयोध्या को बताया है[१]"। "मुसलमान अयोध्या नगरी को क़ाबाशरीफ़ के समान पवित्र और सत्कार योग स्वीकार करते हैं[२]"

जैनधर्म में श्री ऋषभदेव के समारी व धार्मिक शिक्षा देने और खेती, बनज आदि व्यापार की विधि बताने वाले प्रथम महापुरुष, आदिनाथ, आदीश्वर, विष्णु ब्रह्मा तथा प्रथम तीर्थङ्कर कहा है[३] यही बात अथर्ववेद कहता है कि "सम्पूर्ण पापों से मुक्त तथा अहिंसक व्रतियों के प्रथम राजा आदित्यस्वरूप श्री ऋषभदेव हैं[४]"। "मैराजुलनबूत" नाम के ग्रन्थ में मुसलमान लेखक ने बाबा आदम का भारत में होना बताया है। बौद्धिक के शब्दों में ऋषभदेव ही बाबा आदम हैं[५]। ऋषभदेव के प्रतिबिम्ब पर जैन धर्मानुसार बैल (Bull) का चिन्ह होता है[६]। कुछ विद्वानों का मत है शिव जी (महादेव) के जिस नान्दिये बैल के सींगों पर संसार का कायम होना कहा जाता है, उसका मतलब श्री ऋषभदेव जी से है[७]।

१-२. दैनिक उर्दू मिलाप नई देहली, (१८ अक्तूबर १९५२) पृ० १३।

३. Prof. A. Chakravarti, I. C. S. Jain Antiquary, Vol IX P. 76.

४. अंहोमुचं वृषभं यज्ञियानां विराजन्तं प्रथममध्वराणाम्।
अपां नपातमश्विना हुवे धिय इन्द्रियेण इन्द्रियं दत्तमोजः॥
—अथर्ववेद कां० १९।४२।४

५. जैन प्रदीप (देववन्द) वर्ष १२ अङ्क ११।

६. तीर्थङ्करों के चिन्हों का रहस्य जानने के लिये 'अनेकान्त' वर्ष ६, पृ० ११६।

७. Modern Review, Calcutta (August 1932) PP. 156-159.

जैन धर्म ऋषभदेव को योगीश्वर, सर्वज्ञ, जिनेन्द्र और कैलाश पर्वत से शिव पद प्राप्त कर लेने वाले शिवजी बताता है। ऋग्वेद में इनको रुद्र[1], शिवजी[2] और ब्रह्मा[3], मिष्टभाषी[4], ज्ञानी[5] स्तुति योग्य[6], यज्ञ के देवताओं के स्वामी[7], उत्तमपूजक[8], नमस्कार-योग्य[9] समस्त प्राणियों के स्वामी[10] (कर्मरूपी) शत्रुओं को भगाने वाले[11], यजुर्वेद में धर्माचरण करने वालों में प्रधान[12], संसाररूपी सागर से पार तारने वाले[13]; भागवत् पुराण में दिगम्बर[14], नग्नस्वरूप[15], सर्वज्ञ[16], विष्णु[17], ब्रह्मा[18]; महाभारत में शिवजी[19], प्रभास पुराण में कैलाश पर्वत से मोक्ष प्राप्त करने

१-३. एव बभ्रो वृषभ चेकितान यथा देव न हृणीषे न हंसि।

—ऋग्वेद रुद्र सूक्त मण्डल २, सूक्त ३३, मन्त्र १५

४-६. अनर्वाणं वृषभं मन्द्र जिह्वं बृहस्पतिं वर्धया नव्यमर्कैः।

—ऋग्वेद मण्डल १, सूक्त १९०, मन्त्र १।

७. मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारिं दिव्यं शासनमिन्द्रम्।
विश्वासाहमवसे नूतनायोग्रं सहोदामिह तं हुवेम ॥११॥

—ऋग्वेद अ० ४, अ० ६ व ८ मन्त्र ६।

८-९ स मत्स्य प्रमंहसोऽग्रे वन्दे तव श्रियम्।
वृषभो द्युम्नवां असि समध्वरेष्विध्यसे ॥ —ऋग् अ० ४ अ० १ व २६।

१०-११. ऋषभं मा समानानां सपत्नानां विषासहिम्।
हन्तारं शत्रूणां कृधि विराजं गोपतिं गवाम् ॥

—ऋग्वेद अ० ८ अ० ८ व २४।

१२. स्तोकानामिन्दु प्रतिशूर इन्द्रो वृषायमाणो वृषभस्तुराषाट्।

—यजुर्वेद, अ० २० मन्त्र ४६।

१३. मरुत्वां इन्द्र वृषभो रणाय पिबा सोम मनुष्यधं मदाय।
आ सिञ्चस्व जठरे मध्व ऊर्मिं त्वं राजासि प्रदिवः सुतानाम् ॥

यजुर्वेद अ० ७, मन्त्र ३८।

१४-१८. श्रीमद्भागवत पुराण स्क० ३. अ० ९-११ और स्क० ५ अ० १।

१९. ऋषभस्त्वा पवित्राणां योगिनां निष्कलः शिवः।

—महाभारत अनुशासन पर्व अ० १४।

वाले शिवजी[1], जिनेश्वर[2], बौद्ध ग्रन्थों में सर्वज्ञ[3] और मनुस्मृति में उनकी पूजा से ६८ तीर्थों की यात्रा का फल बताया है[4]।

जैनधर्मानुसार श्री ऋषभदेव श्री अग्नीन्ध्र के पुत्र श्री नाभिराये जी के पुत्र हैं और इनकी माता का नाम मरुदेवी है, जो श्रीमद्भागवतपुराण भी स्वीकार करता है:—

"नाभेरसा वृषभ आसतु देव सूनुर्यो वैचचार समदृग् जडयोगचर्याम्।
यत् पारमहंसस्य ऋषयः पदमामनन्ति स्वस्थः प्रशान्तःकरण परिमुक्तसङ्गः" ॥१०॥

इसका अर्थ ज्वालाप्रसाद मिश्र ने इस प्रकार किया है:—

"ऋषभदेव अवतार कहे हैं कि ईश्वर अग्नीध्र के पुत्र नाभी से मरुदेवी पुत्र ऋषभदेव जी भये समानदृष्टा जड़ की नाईं योगाभ्यास करते भये जिन के पारमहंस्य पद को ऋषियों ने नमस्कार कीनो, स्वस्थ शान्त, इन्द्रिय सब संग त्यागे ऋषभदेव जी भये जिन से जैनमत प्रगट भयो" ॥ १० ॥

जैनधर्म ऋषभदेव जी के भरतादि सौ पुत्र बताता है और कहता है कि प्रथम चक्रवर्ती भरत जी जिनके नाम पर हमारा देश भारतवर्ष कहलाता है, इन्हीं प्रथम तीर्थङ्कर श्री ऋषभदेव के पुत्र थे, इसी बात को आग्नेय पुराण[5], कूर्मपुराण[6], स्कन्धपुराण[7], शिवपुराण[8], वायुमहापुराण[9], गरुड़पुराण[10] और विष्णुपुराण[11] आदि प्राचीन अजैन प्रामाणिक ग्रंथ भी स्वीकार करते हैं और कहते हैं—

> अग्नीध्रं सूनो नाभेस्तु ऋषभोऽभूत् सुतो द्विजः।
> ऋषभाद्भरतो जज्ञे वीरपुत्र शताद्वरः ॥ ३९ ॥
> सोभिषिच्यर्षभः पुत्रं महाप्राव्राज्यमास्थितः।
> तपस्तेपे महाभागः पुलहाश्रम संशयः ॥४०॥

१-२ कैलाशे विपुले रम्ये वृषभोऽयं जिनेश्वरः।
चकार स्वावतारं च सर्वज्ञः सर्वगः शिवः ॥५९॥ —प्रभास • पुराण

३ इसी ग्रंथ के पृ० ४८ का फुट नोट नं० २।

४ अष्टषष्टि तीर्थेषु यात्रायां यत्फलं भवेत्। श्रीआदिनाथदेवस्य स्मरणेनापि ॥ मनु० ५-१९. इसी ग्रन्थ के खण्ड २ में 'भरत और भारतवर्ष' के फुटनोट।

हिमाह्वं दक्षिणं वर्षं भरताय पिता ददौ।
तस्मात्तु भारतं वर्षं तस्य नाम्ना महात्मनः ॥४१ —मार्कण्डेय पुराण अ० ५०

भावार्थ अग्नीध्र के पुत्र नाभी और नाभी के पुत्र ऋषभ और ऋषभदेव के भरतादि सौ पुत्र थे, जिनको राज्य देकर श्री ऋषभदेव जी तप करने के लिये चले गये। भरत जी को हिमवान पर्वत के दक्षिण की तरफ का क्षेत्र दिया था, जिनके नाम पर यह क्षेत्र भारतवर्ष कहलाता है।

जन्मभूमि, निर्वाणभूमि, मात-पिता तथा पुत्रों के नाम, उनके गुणों और जीवन पर विचार पूर्वक ध्यान देने और शब्दकोष[1] में ऋषभदेव का अर्थ देखने से यह निश्चितरूप से स्पष्ट होजाता है कि वेदों, पुराणों आदि ग्रन्थों में जिनका कथन है, वही श्री ऋषभदेव इस युग में जैन धर्म के स्थापक प्रथम तीर्थङ्कर और इनके पुत्र श्री भरत जी प्रथम चक्रवर्ती सम्राट् हैं। आश्चर्य है कि समस्त संसार का कल्याण करने वाले ऐसे योगी महापुरुष को ऐतिहासिक महापुरुष स्वीकार करने में भी हम संकोच करते हैं। प्राचीन इतिहास के खोजी विद्वानों को अत्यन्त प्राचीन सामग्री प्राप्त करने के लिये उनकी जीवनी आदिपुराण अर्थात् महापुराण[2] का अवश्य स्वाध्याय करना चाहिये, जो Bandarkar जैसे विद्वानों के शब्दों में बहुत उत्तम Encyclopaedic work है[3]।

---

१. (क) हिन्दी विश्वकोष (कलकत्ता) ऋषभदेव = जैनियों के प्रथम तीर्थङ्कर।
(ख) हिन्दी शब्दसागर कोष (काशी) ऋषभदेव = जैनधर्म के आदि तीर्थंकर।
(ग) भास्कर ग्रन्थमाला संस्कृत हिन्दी कोष (मेरठ) ऋषभदेव = नाभी के पुत्र आदि तीर्थंकर।
(घ) शब्द कल्पद्रुम कोष—ऋषभ = आदि जिन।
(ङ) शब्दार्थ चिन्तामणि कोष—ऋषभदेव = तीर्थंकर।

२. महापुराण (दोनों भाग का मूल्य २०) रु०) भारतीय ज्ञानपीठ ४ दुर्गाकुण्ड बनारस से मँगाइये।

३. Foot Note No. 9 of this book's Page 199.

भरत और भारतवर्ष

"Brahmanical Puranic Records prove Rishbha to be the father to that BHARTA FROM WHOM INDIA TOOK ITS NAME BHARA I VARSHA."

—Rev. J. Stevenson: Kalpasutra, Introd. P. XVI.

कुछ विद्वानों का मत है कि हमारा देश चन्द्रवंशी राजा दुष्यन्त के पुत्र भरत के नाम पर भारतवर्ष कहलाता है[1] परन्तु यह भरत तो महाराजा पुरू की ३१ वीं पीढी में हुये हैं[2] और महाराजा पुरू स्वयं शकुन्तला के पुत्र जन्म से केवल १५०० साल पहले हुये[3] । वैदिककाल में भी इस देश का नाम भारतवर्ष था[4] और ऋग्वेद के अनुसार हमारा देश पुरू के समय भी भारतवर्ष कहलाता था[5] तो यह मानना पड़ेगा कि वे कोई दूसरे भरत थे कि जिनके नाम पर यह देश भारतवर्ष कहलाता है। 'शतपथ ब्राह्मण' नाम के प्रसिद्ध ब्राह्मण ग्रन्थ ने सूर्यवंशी बता कर इस भ्रम को बिल्कुल नष्ट कर दिया है कि चन्द्रवंशी दुष्यन्त के पुत्र भरत के नाम पर अपने देश का नाम भारतवर्ष पड़ा।

जैन धर्म के अनुसार प्रथम तीर्थङ्कर श्री ऋषभदेव जी के पुत्र प्रथम चक्रवर्ती सम्राट् भरत जी के नाम पर अपने देश का नाम भारतवर्ष पड़ा[6] । विष्णुपुराण,[7], शिवपुराण[8], वायुपुराण[9],

---

१. पं० जयचन्द जी विद्यालङ्कार: भारतीय इतिहास की रूपरेखा।

२-३. स्वामी कर्मानन्द जी: भारत का आदि सम्राट, पृ० १।

४. हिन्दुस्तान, नई दिल्ली, २० मार्च १९४९ और २५ सितम्बर १९४९।

५. "परिच्छिन्ना भरता अर्यकास"—ऋग्वेद मन्त्र १, सूक्त २३।

६. महापुराण, भारतीय ज्ञानपीठ (काशी) भाग १ पृष्ठ २७ (

७. ऋषभात् भरतो जज्ञे ज्येष्ठ: पुत्रशताग्रज: ।
तस्य राज्य स्वधर्मेण तथैष्ट' वा विविधान् मखान् ॥२८॥
ततश्च भारतं वर्षमेतल्लोकेषु गीयते ॥३२॥ —विष्णुपुराण अंश २ अ० १।

स्कंधपुराण, अग्निपुराण[1], नारदीय पुराण[2], कूर्मपुराण[3], गरुड़पुराण[4], ब्रह्माण्ड पुराण[5], वाराह पुराण[6], लिङ्गपुराण[7] आदि अनेक प्रामाणिक ग्रन्थ और ऐतिहासिक विद्वान भी जैन धर्म की पुष्टि करते हैं कि "प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव जी के पुत्र भरत के नाम पर ही इस देश को भारतवर्ष कहते हैं[8] तो कोई कारण नहीं कि संसार ऐतिहासिकरूपसे इस सत्य को स्वीकार न करे ?

२४ तीर्थङ्कर और भारत के महापुरुष

"The Message of Truth and Non-violence aasociated with the Jaina Thinkers is what the world needs today".

-Dr. S. Radhakrishnan: Glory of Gommateshvara P.IX.

१. **ऋषभदेव जी**—अयोध्या के राजा नाभीराय के पुत्र थे, जो इस वर्तमान युग में केवल जैनधर्म के संस्पापक ही न थे,

---

८. ऋषभस्वोर्वेरितानां हिताय ऋषिसत्तमाः ।
खण्डानि कल्पयामास नवान्यपि हिताय च ॥
तत्रापि भरते ज्येष्ठ खण्डेऽस्मिन् स्पृहणीयके ।
तन्नाम्ना चैव विख्यातं खण्डं च भारतं तदा ॥ —शिवपुराण अ० ५२ ।

९. ऋषभाद्भरतो यज्ञे वीरः पुत्रशताग्रजः ॥५१॥
तस्माद्भारतं वर्षं तस्य नाम्ना विदुर्बुधाः ॥५२॥ —वायुपुराण अ० ३७ ।

१. ऋषभो मेरुदेव्यां च ऋषभाद्भरतोऽभवत् ॥११॥
भरताद्भारतं वर्षं भरतात्सुमतिस्त्वभवत् ॥१२॥ —आग्नेय पुराण १० १० ।

२. आसीत्पुरा मुनिश्रेष्ठो भरतो नाम भूपतिः ।
आर्षभो यस्य नामेदं भारतखण्डमुच्यते ॥५॥ —नारदीय पु. ख. अ. ४८ ।

३-७. कूर्मपुराण अध्याय ४१ श्लोक ३७-३८ गरुड़ पुराण अ० १ श्लोक १३, ब्रह्माण्ड पुराण पूर्वार्धे अनुषङ्गपाद, अ० १४ श्लोक ५९-६२ । वाराह पुराण, अ० १४ (अथ नाभेः सर्गं कथयामि) तथा अ० १४ । लिङ्ग पुराण अ० ४७ श्लोक १९-२३ ।

८. कल्याण गोरखपुर, वर्ष २२, पृ० १५१ । भारत के प्राचीन राजवंश भा० २ पृ० १ । ज्ञानोदय वर्ष २ पृ० ४४७ व Jain Antiquary Vol. IX P 76

बल्कि सारे संसार के समस्त प्राणियों का कल्याण करने वाले कर्मभूमि के आदिपुरुष थे, जिन्होंने आजीविका के साधन के लिये संसार को असि (शस्त्र) मसि (लेखन) कृषि (वाणिज्य) शिल्प (विद्या) की विधि सिखाई और अपने अपने कर्तव्य का पालन करने के लिये क्षत्रियादि वर्णों की स्थापना की। भलि भाँति प्रबन्ध करने के हेतु इन्होंने ही आर्यखण्ड के सुकौशल, अवन्ती, अङ्ग, वङ्ग, काशी, कलिंग काश्मीर, वत्स, पंचाल, दशार्ण, मगध, विदेह, सिंधु, गांधार, बाल्हीक आदि अनेक देशों में बांटा था। यह इतने पूजनीक हुए हैं कि प्राचीन से प्राचीन ग्रन्थों, वेदों और पुराणों तक में इनकी भक्ति, वन्दना और स्तुति का कथन है।

एक आर्यखण्ड और पांच म्लेच्छखण्ड, छहों खण्डों के स्वामी चक्रवर्ती सम्राट भरत जी, कि जिनके नामपर हमारा देश भारतवर्ष कहलाता है, इन्हीं ऋषभदेव जी के ज्येष्ठ पुत्र थे। इनके छोटे भाई श्री बाहुबली जी भी बड़े योद्धा और प्रसिद्ध तपस्वी हुए हैं। इनकी साढ़े छप्पन फुट ऊँची विशाल मूर्त्ति श्रवणबेलगोल (मैसूर) में संस्थापित है, जिसको बड़े-बड़े विद्वान् wonder of the world स्वीकार करते हैं। भरत जी और बाहुबलि जी दोनों श्री ऋषभदेव जी के निकट जैन साधु हो गये थे। भीमबली नाम का पहला रुद्र इनके ही तीर्थकाल में हुआ है।

२. अजितनाथ जी—अयोध्या के राजा जितशत्रु के पुत्र थे। यह भी इतने प्रभावशाली हुए हैं कि डा० राधाकृष्णन के शब्दों में यजुर्वेद में भी इनका कथन है[१] इनके केवल ज्ञान की पूजा दूसरे चक्रवर्ती सम्राट सागर ने की थी, जिस को डा० ताराचन्द भी एक बहुत बड़ा सम्राट स्वीकार करते हैं[२]। श्री अजितनाथ जी के प्रभाव से राज्य अपने पुत्र भागीरथ को देकर

१. Dr. Radhakrishnan: Indian Philosophy vol. I P, 287.
२. डा० ताराचन्द: अहले हिन्द की मुख्तसर तारीख।

यह जैन साधु होगये थे[1]। कुछ समय बाद भागीरथ भी जैन साधु होकर कैलाश पर्वत पर गङ्गा के किनारे तप करने लगे[2]। यह इतने महान् तपस्वी थे कि इनका कैलाश पर्वत पर देवों ने अभिषेक किया[3], जिस का जल गङ्गा जी में मिलने के कारण गङ्गा जी को आजतक पवित्र माना जाता है[4] और उन जैन मुनि के नाम पर गङ्गाजी का नाम 'भागीरथीजी' पड़ गया[5]। जितशत्रु नाम के दूसरे रुद्र इनके ही समय में हुए हैं।

३. **श्री संभवनाथ जी** श्रावस्ती के राजा जितगिरि के पुत्र थे।

४. **श्री अभिनन्दननाथ जी** अयोध्याके राजा संवर के पुत्र थे।

५. **श्री सुमतिनाथ जी** भी अयोध्या के राजा मेघप्रभु के पुत्र थे, जिनका कथन विष्णुपुराण में भी है[6]।

६. **श्री पद्मप्रभु जी** कौशाम्बी के राजा धरणनृप के पुत्र थे।

७. **श्री सुपार्श्वनाथ जी** बनारस के राजा सुप्रतिष्ठित के पुत्र थे।

८. **श्री चन्द्रप्रभु जी** चन्द्रपुरी के राजा महासेन के पुत्र थे।

९. **श्री पुष्पदन्त जी** काकन्दी के राजा सुग्रीव के पुत्र थे। रुद्र नाम का तीसरा रुद्र इन के ही समय में हुआ।

१०. **श्री शीतलनाथ जी** भद्रिकापुरी के राजा दृढ़रथ के पुत्र थे। विश्वानल नाम के चौथे रुद्र इन के ही तीर्थकाल में हुए थे।

११. **श्री श्रेयांसनाथ जी** सिंहपुरी के सम्राट् विष्णु नृप के पुत्र थे। तृपृष्ट नाम के प्रथम नारायण, अश्वग्रीव नाम के प्रीतनारायण, विजय नाम के बलभद्र और सुप्रतिष्ठ नाम के पांचों रुद्र इनके समय में हुए हैं।

१-५. Shri Kamta Pd: Bhugwan Mahavira (First Edition) P 31.
६. Indian Quaterly. Vol. IX P. 163.

१२. श्री वासुपूज्य जी चम्पापुरी (भागलपुर) के राजा वसुपूज्य के पुत्र थे। दूसरे नारायण द्विपृष्ठ, प्रीतनारायण, तारक, बलभद्र अचल और छठे रुद्र इनके समय में हुए हैं।

१३. श्री विमलनाथ जी कपिल के राजा कृतवर्मा के पुत्र थे। तीसरे नारायण स्वयंभू, प्रीतनारायण मधु, बलभद्र, सुधर्म और सातों रुद्र पुण्डरीक इनके ही जीवन काल में हुए।

१४. श्री अनन्तनाथ जी अयोध्या के राजा सिंहसेन के पुत्र थे। चौथे नारायण पुरुषात्तम, प्रतिनारायण मधुसूदन, बलभद्र सुप्रभ और आठवें रुद्र अजितधर इनके समय में हुए हैं।

१५. श्री धर्मनाथ जी रत्नपुरी के राजा भानुरूप के पुत्र थे। पुरुषसिंह नाम के पचवें नारायण, मधुकैटभ नाम के प्रतिनारायण, सुदर्शन नाम के बलभद्र, जितनाभी नाम के नौवें रुद्र इनके समय में और मघवा नामके तीसरे चक्रवर्ती सम्राट धर्मनाथ जी के मोक्ष जाने के बाद हुए। इनके बाद चौथे चक्रवर्ती सनत्कुमार भी धर्मनाथ जी के ही तीर्थकाल में हुए हैं।

१६. श्री शान्तिनाथ जी हस्तिनापुर के राजा विश्वसेन के पुत्र थे। अहिंसा धर्म के तीर्थङ्कर होने के बावजूद छहों खण्डों के विजयी पांचवें चक्रवर्ती सम्राट और बारहवें कामदेव हुए हैं। पीठ नाम के दसवें रुद्र भी इनके समय में ही हुए हैं।

१७. श्री कुन्थुनाथ जी भी हस्तनापुर के राजा सूरसेन के पुत्र थे। यह भी सारे संसार को युद्ध में जीतने वाले छठे चक्रवर्ती और तेरहवें कामदेव हुए हैं।

१८. श्री अरहनाथ जी भी हस्तनापुर के राजा सुदर्शन के पुत्र थे। जब तक गृहस्थ में रहे समस्त संसार के शत्रु को वश में रखने वाले सातवें चक्रवर्ती थे और जब जैन साधु

हुये तो कर्मरूपी शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाले मोक्षगामी हुए। इनके बाद सुभौम नाम के आठवें चक्रवर्ती अयोध्या नगरी में हुए।

१६. **श्री मल्लिनाथ जी** मिथिलापुरी के सम्राट् कुम्भनृप के पुत्र थे। सातवें नारायण दत्त, प्रीतनारायण बलिन्द, बलभद्र, नन्दीमित्र और नौवें चक्रवर्ती पद्म भी इन्हीं के तीर्थकाल में हुए हैं।

२०. **श्री मुनिसुव्रतनाथ जी** राजगृह के स्वामी हरिवंशी सम्राट् सुमित्र के पुत्र थे। आठवें नारायण लक्ष्मण जी, प्रीतनारायण रावण, बलभद्र, श्री रामचन्द्र जी, अठारवें कामदेव हनुमान जी और दशवें चक्रवर्ती हरिषेण जी भी इन्हीं के तीर्थकाल में हुए हैं।

२१. **श्री नेमिनाथ जी** मिथिलापुरी के राजा विजयरथ के पुत्र थे। ग्यारहवें चक्रवर्ती जयसेन इनके समय में हुए थे।

२२. **श्री अरिष्ठनेमि जी** द्वारिका जी के यदुवंशी नरेश समुद्र-विजय के पुत्र थे, जो श्रीकृष्ण जी के पिता श्री वसुदेव जी के बड़े भाई थे[1]। नवमें नारायण श्रीकृष्ण जी, प्रतिनारायण जरासिन्धु और बलभद्र बलदेव जी इन्हीं के जीवनकाल में हुए हैं। यह इतने पूजनीय हुए हैं कि ऋग्वेद में इनको संसार का कल्याण करने वाले[2] कर्मरूपी शत्रुओं को जीतने वाले[3] धर्मरूपी रथ को चलाने वाले[4] और स्तुतियोग्य[5], यजुर्वेद में आत्मस्वरूप[6], सर्वज्ञ[7],

---

1, Prof. Dr. H. S Bhattacharya: Lord Arishta Nemi (J. . Mandal Delhi) P. 3

२-५. तंवा रथं वयमद्याहुवेमस्तो मरस्चिना सुविताय नव्यं।
अरिष्टनेमिः परिव्रामियानं विद्यामेषं वृजनं जीरदानम्॥
—ऋग्वेद अ० २ अ० ४ व २४।

अथर्ववेद में पूजनीय[८], सामवेद में बन्दनीय[९] स्कन्धपुराण में शिवजी[१०], महाभारत में प्रशंसायोग्य स्वीकार किया है। विद्वानों का कथन है कि वेदों में जिन नेमिनाथ का कथन है वे जैन धर्म के २२ वें तीर्थङ्कर हैं[१२]।

जब श्री नेमिनाथ जी का समवशरण द्वारिका जी में आया तो श्रीकृष्ण जी परिवार सहित उनकी बन्दना को गये[१३]।

---

६ ७. वाजस्यनुप्रसव आभूवेमा च विश्वा भुवनानि सर्वतः।
स नेमि राजा परियाति विद्वान् प्रजां पुष्टि वर्धयमानो अस्मै स्वाहा॥
—यजुर्वेद अ० ६ मन्त्र २५।

८ त्यमू षु वाजिनं देवजूतं सहावानं तरुतारं रथानाम्।
अरिष्टनेमिः पृतनजिमाशुं स्वस्तये तार्क्ष्यमिहाहुवेम॥
—अथर्वेण काण्ड ७ अ० ८ सूक्त ८५।

९. स्वस्तिन इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्तिनः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्तिनो बृहस्पतिर्दधातु॥
—सामवेद प्रपा० ९ अर्ध ३।

१०. मनोभीष्टार्थ-सिद्ध्यर्थं ततः सिद्धिमवाप्तवान्।
नेमिनाथ शिवेत्येवं नामचक्रेशवामनः॥ —स्कन्धपुराण प्रभासखण्ड अ० १६

११. महाभारत वनपर्व अ० १८३ (छपी १६०७ सरतचन्द सोम) पृ० ८२७।

१२. i. Dr. S. Radhakrishnan: Indian Philosophy, vol. II. P. 287.
ii. Dr. B. C. Law: Historical Gleanings.
iii Prof. A. Chakravarti: Jain Antiquary. vol. IX P. 76. (77).

१३. "When the Samovasharna of Lord Arishta Nemi was reported to have come near Diwarka ji. Lord Krishna went to see him with his family. Lord Krishna bowed down to Lord Arishta Nemi."
—Dr. H. S Bhattacharya. Lord Arishta Nemi. P. 58.

श्री अरिष्टनेमि जी को इतिहासकार ऐतिहासिक पुरुष स्वीकार करते हैं[1]। ब्रह्मदत्त नाम के बारवें चक्रवर्ती इन्हीं के तीर्थकाल में हुए हैं।

२३. श्री पार्श्वनाथ जी—बनारस के राजा अश्वसेन के पुत्र थे, जिनका जन्म ८७७ और मोक्ष ७७७ पूर्व ईस्वी में हुआ[2]। इनको भी ऐतिहासिक पुरुष स्वीकार किया जाता है[3]।

२४. श्री वर्द्धमान महावीर जी—कुण्डग्राम के राजा सिद्धार्थ के पुत्र थे; जिनका भक्तिपूर्वक कथन ऋग्वेद, यजुर्वेद, बौद्ध-

---

१ i. Dr. Fuherer: Epigraphy Indica vol. I, P. 389.
ii. Dr. Paran Nath: Times of India dated 19th March 1935, P. 9.
iii. Dr. Thomas: Mediaeval Kshtrya Clans of India. Introd.
iv. Dr. Nagendra Nath Basu: Introd. Harivansa Purana P. 6,
v. For varions referenoes.—Jain Antiquary vol XVIII. P. 57,

२. Prof Ayanger: Studies in South Indian Jainism, vol. I. P. 2.

३. i. Dr. Jacobi: S. B. E. XLV. Intro XXI Ind. Ant. IX. P. 163.
ii. Dr. Guerinot: Essay on the Jain Bibliographp, Introd.
iii. Dr. Henry: Philosophies of India, P. 182-183.
iv. Harmsworth's History of the world. Vol. II. P. 1198
v. The Cambridge History of India. Vol. I. P. 123.
vi. Encyclopaedia of Religion & Ethics. Vol. VII
vii. Outlines of Indian Philosophy& also Jain Antiquary XVIII. 57.

ग्रन्थ[1] तथा महाभारत[2] आदि अनेक ग्रन्थों में प्रशंसायोग्य मिलता है। सात्यकी नाम के ११ वें रुद्र इन्हीं के तीर्थंकाल में हुए हैं। इनका अपने समय के राजाओं पर कितना प्रभाव था यह बात इसी ग्रन्थ के दूसरे खण्ड में प्रगट है। यह भी ऐतिहासिक महा-पुरुष हैं[3]। इनका धार्मिक, सामाजिक तथा ऐतिहासिक क्षेत्र में इतना अधिक प्रभाव रहा कि पिछले २३ तीर्थंकरों को भूल कर आज तक बहुत से विद्वान् इनको ही जैन धर्म का संस्थापक समझते हैं।

यह सब तीर्थङ्कर, चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण और रुद्र जैनधर्मी तथा ऐतिहासिक पुरुष हैं। एक तीर्थङ्कर से दूसरे का अन्तर समय तथा इन सबके हालात, स्थानाभाव से यहाँ संक्षिप्तरूप में भी नहीं दिये जा सके। यदि खोजी विद्वान चौबीसीपुराण, महापुराण, पद्मपुराण, हरिवंशपुराण आदि जैन ग्रंथों[4] के स्वाध्याय का कष्ट करें तो प्राचीन से प्राचीन भारत का इतिहास जानने के लिये बड़ी उपयोगी और विश्वासयोग्य सामग्री प्राप्त हो सकती है।

---

१. इसी ग्रन्थ के पृ० ४१, ४२, ४८।

२. वृषाही वृषभो विष्णुर्वृषपर्वा वृषोदरः।
वर्धनो वर्द्धमानश्च विविक्तः श्रुतिसागरः॥
—महाभारत महादेवसहस्र नाम अनुशासन पर्व अ० १४।

३. i. Rice: Kanarese Literature. P. 20.
ii. Religion of the Empire, P. 203 & E. R. E. Vol. VII P. 465.
iii Dr. Bool Chand: Lord Mahavira (JCRS. Banares) P. 15

४. यह सब छपे हुए ग्रन्थ हिन्दी में दि० जैनपुस्तकालय सूरत से प्राप्त होसकते हैं।

जैन धर्म और वीरता

जैन धर्म का नामकरण ही वीरता का संचालक है[१]। यह जीतने वालों का धर्म (Conquering Religion) है[२], जिसने मन और इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करली, जिसने मोह-ममता पर काबू पा लिया, जिसने कर्मरूपी शत्रुओं को जीत लिया ऐसे महाविजयी ही तो जिन (जिनेन्द्र) कहलाते हैं[३] और उनकी विजय-घोषणा ही जिन धर्म है[४]। जिसने संसारी भोग-विलास को वश कर लिया उससे बड़ा वीर संसार में कौन[५] ?

जैन धर्म तो जैनी मानता ही उसको है, जो सम्यग्दृष्टि हो; सम्यग्दृष्टि वह है जो निःशङ्क हो[६]; निःशङ्क वह है जो निर्भय हो[७] और जो धर्म मृत्यु तक से निर्भय होने की शिक्षा दे वह कायरों का धर्म कैसे कहा जा सकता है ? सरदार पटेल के शब्दों में—"जैन धर्म वीर पुरुषों का धर्म है"[८]।

कहा जाता है कि जो धर्म एक कीड़ी तक को मारना भी पाप बताता है वह वीरों का धर्म कैसे हो सकता है ? ऐसा कहने वालों ने जैन धर्म के अहिंसातत्त्व को भलीभाँति नहीं समझा। राग-द्वेष रूपी भावों का होना ही हिंसा है, चाहे वास्तव में किसी से उनको बाधा न पहुँच सके[९] जैसे मछियारा पानी में जाल डाल कर

१-५ 'Ahinsa and Virta' of contributions of Jains in Vol. 1.

६. शङ्का भी, साध्वसं भीतिर्भयमेकाभिधा अमी ।
तस्य निष्क्रान्तितो जातो भावो निःशंकितोऽर्थतः ॥२८१॥ —पञ्चाध्यायी

७. अत्रोत्तरं कुदृष्टिर्यः स सप्तभिर्भयैर्युतः ।
नापि स्पृष्टः सुदृष्टिर्यः स सप्तभिर्भयैर्मनाक् ॥४९४॥ —पंचाध्यायी

८. इसी ग्रन्थ का पृ० ७६ ।

९. व्युत्थानावस्थानां रागादीनां वशप्रवृत्तानाम् ।
म्रियतां जीवो मा वा धावत्यग्रे ध्रुवं हिंसा ॥४६॥ —पुरुषार्थसिद्ध्युपाय

मछलियां मारने का पापी है। और हिंसक भाव न होने पर किसी को बाधा भी हो तो वह अहिंसा है, जैसे डाक्टर जख्म को चीर कर महाकष्ट देने पर भी हिंसा का दोषी नहीं है। इस लिये जैन धर्म जहाँ राग द्वेष के वश होकर एक कीड़ी तक के मारने को पाप बताता है वहां देश-सेवा, परोपकारिता, अबला स्त्रियों की गुण्डों से रक्षा करने, अत्याचारों को मेटने, अपराधियों को दण्ड देने और देश को शत्रुओं से बचाने में लाखों तो क्या करोड़ों जीवों की हिंसा होजाय तो वह जैनधर्म के अनुसार एक गृहस्थी के लिये हिंसा नहीं है[1]। क्योंकि अत्याचारों को मेटते समय परिणाम कषायरूपी नहीं होते बल्कि अभयदान के अहिंसामय विचार होते हैं[2], अभय दान देना जैनधर्म में श्रावक का कर्त्तव्य है और कर्त्तव्य के पालने में जो हिंसा होती है वह हिंसा नहीं है बल्कि हिंसा को मेटने वाली अहिंसा है[3]।

अनेक विद्वानों को यह भ्रम है कि युद्ध लड़ना ही वीरता है और जैन धर्म युद्ध की शिक्षा नहीं देता यह कल्पना भी झूठी है क्योंकि ऋषभदेव जी ने सैनिक जैनियों के लिये न केवल मुख्य कर्त्तव्य बल्कि प्रथमधर्म बताया है[4]। जीवन और धन किसको प्यारा नहीं ? परन्तु जैनधर्म तो सच्चा जैनी उसे ही बताता है, "जो अवसर पड़ने पर धन और जीवन दोनों का बलिदान कर

---

१. अघ्नन्नपि भवेत्पापी निघ्नन्नपि न पापभाक्।
अभिध्यानात् विशेषेण यथा धीवरकर्षकौ ॥ —यशस्तिलकचम्पू।

२. दीनाभ्युद्धरणे बुद्धिः कारुण्यं करुणात्मनाम्। —यशस्तिलकचम्पू।

३. निरर्थकवधत्यागेन क्षत्रिया व्रतिनो मताः। —जैनाचार्य श्री सोमदेव।

४. असिर्मषिः कृषिर्विद्या वाणिज्यं शिल्पमेव च।
कर्माणीमानि षोढाः स्युः प्रजाजीवन हेतवे ॥
—जैनाचार्य श्री जिनसेन जी, आदिपुराण पर्व १६।

है[1]"। "आपत्ति और अत्याचार को मेटने के लिये हर समय तैयार रहे[2]"। यह बात जरूर है कि जैन वीर अनाप-सनाप लड़ता नहीं फिरता। शत्रुओं को पहले समझाने का यत्न करता है और जब वे नहीं मानते तब ही शस्त्र उठाता है[3]। जैनधर्म की शिक्षा है– "जो शत्रु युद्ध करने से ही वश में आ सकता है उसके लिये और कोई उपाय करना आगमें घी डालने के समान है[4]"। "सच्चा अहिंसा-धर्मी जब तक उसमें शरीर, मन्त्र, तलवार तथा धन की शक्ति है, आपत्तियों, बाधाओं और अत्याचारों को सहन करना तो बड़ी बात है, उनको देख और सुन भी नहीं सकता[5]"। जैनधर्म में स्पष्ट रूप से आज्ञा है कि—"जो युद्ध करने पर खड़ा हो, किसी के माल या आबरू को नष्ट करने को तैयार हो या देश की स्वतन्त्रता को जोखों में डालता हो, ऐसे देशद्रोही से युद्ध करना अहिंसाधर्म है[6]।

कहा जाता है कि प्राचीन समय में जैनधर्म क्षत्रिय पालते थे, यह वीरों का धर्म था, परन्तु आज तो केवल वैश्य वर्ण (जैनियों) का धर्म रह गया है। इसलिये जैन धर्म अब वीरों का धर्म नहीं है, यह कल्पना भी झूठी है। यदि जैन धर्म वीरता की शिक्षा न देता तो क्षत्रिय जैन धर्म को धारण न करते और यदि करते भी तो जैन धर्म की आज्ञानुसार चलने के कारण उन की वीरता का गुण नष्ट हो जाता और वह वीरयोद्धा न होते।

---

१. जीविउ कासु न वल्लहउं धणु पुणु कासन इट्ठु।
दोण्णिवि अवसर निवडि आंइ तिणसम गणइ विसिट्ठु॥ —प्राकृत व्याकरण

२. "सत्सु घोरोपसर्गेषु तत्परः स्यात् तदत्यये" ॥८०८ —पंचाध्यायी।

३. 'बुद्धियुद्धेन परं जेतुमशक्तः शस्त्रयुद्धमुपक्रमेत्' ॥७॥ —नीतिवाक्यामृत।

४. "दण्डसाध्ये रिपावुपायान्तरमग्नावाहुति प्रदानमिव" ॥३९॥ —नीतिवाक्यामृत

५. यद्वा नचात्मसामर्थ्यं यावन्मन्त्रासिकोशकम्।
तावद्द्रष्टुञ्च श्रोतुं च तद्बाधां सहते न सः ॥८०९॥ —पञ्चाध्यायी

६. यः शस्त्रवृत्तिः समरे रिपुः स्यात्, यः कण्टको वा निजमंडलस्य।
अस्त्राणि तत्रैव नृपाः क्षिपन्तः, न दीनकानीन शुभाशयेषु ॥३०॥ —यशस्तिलक

जैन वीरों की देश भक्ति

"Jainism teaches a man to be fearless and there is no instance of a Jain having deserted the battle-field or turned his back to the enemy. While Jaina Kings ruled, no foreign invader was allowed to obtain a foot hold in the sacred land of Bharatvarsha'[1].'

—Elisabeth Fraser,

भगवान महावीर के समय भारतवर्ष स्वाधीन था[2]। यूनानी लेखकों के शब्दों में उनके समय तक कोई विदेशी हमलावर भारत के लोह-कपाट न खोल सका[3]। ईसा से लगभग ५०० वर्ष पहले ईरानियों ने कन्धार पर चढ़ाई की तो वहां के राजा ने अपने को कमजोर जानकर मगध देश के जैन सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार को सहायता के लिये दूत भेजा[4]। एक जैन-वीर अभयदान से कैसे इन्कार कर सकता था ? उसने तुरन्त जैन सेनापति जम्बूकुमार को कन्धार की रक्षा के लिये भेज दिया। जो इस वीरता से लड़े कि ईरानियों को कन्धार छोड़कर भागना पड़ा।

---

१ Some Jaina Historical Kings & Heroes, P ii. & 108.
२. जैन सिद्धान्त भास्कर भाग ६ पृ० ७२।
३. McCrindle: Ancient India. P. 33.
४. Modern Review. Calcutta (Oct. 1930) P. 438.

बिम्बसार की मृत्यु और उसके सेनापति जम्बूकुमार के जैन साधु हो जाने पर ईरानियों ने ईस्वी सन् से ४२५ साल पहले फिर भारत पर आक्रमण करके उसके पश्चिमी देश जीतने लगे तो जैन सम्राट् नन्दीवर्धन उनसे इस वीरता से लड़े कि ईरानियों को रणभूमि छोड़ कर भारत से लौटना पड़ा[१]। पारस्यानृप ने तक्षशिला के पास अपना पाँव जमा लिया था परन्तु इसी अहिंसाधर्मी नन्दीवर्धन ने उसका भी अन्त करके भारत को स्वाधीन रखा।

ईस्वी सन् से ३५० साल पहले यूनानी सेनापति शैल्यूकस ने भारत पर हमला कर दिया और पंजाब में घुसा चला आया तो अन्तिम श्रुतकेवलि जैनाचार्य श्री भद्रबाहु जी के शिष्य जैन सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य इस वीरता से लड़ा कि हरात, काबुल, कन्धार और बिलोचिस्तान चारों प्रान्त देकर शैल्यूकस को चन्द्रगुप्त से सन्धि करनी पड़ी[२]। सिकन्दर महान् अनेक हिन्दू राजाओं को जीतता हुआ भारत में घुस आया तो उसको रोकने वाले भी यही जैन सम्राट् चन्द्रगुप्त थे[३]।

ईस्वी सन् से १८४ साल पहले यूनानी बादशाह दमत्रयस (Greek King Demetrius) अनेक राजाओं को जीतता हुआ मथुरा तक घुस आया और सम्राट् पुष्यमित्र उससे सन्धि करने गया तो जैन सम्राट् खारवेल से अपना देश पराधीन होते न देखा गया, तुरन्त मुक़ाबले को आ डटा और इस वीरता से लड़ा कि उन्हें भारत छोड़कर उलटे पाँव भागना पड़ा[४]। विद्वानों का कथन है कि ऐसे भयानक समयमें भारत की स्वतन्त्रता को स्थिर रखने वाले जैन सम्राट् खारवेल ही थे[५], जो इस महा विजय के कारण भारत नेपोलियन के नाम से प्रसिद्ध हुए।

---

१. Journal of Bihar & Orissa Research Society. Vol. P. 77.

२-३. Smith: Early History of India, PP. 45.

४. Journal of B. & O. Research Society. Vol. XIII P. 228.

५-६. वीर, वर्ष ११ पृ० ६२ व संक्षिप्त जैन इतिहास भा० २ खण्ड २ पृ० ३६-५६।

जैन-योद्धा चामुण्डराय

गङ्गवंशी नरेश राचमल्ल के सेनापति चामुंडराय जैनाचार्य नेमिचन्द्रजी के शिष्य थे[1]। श्रवणबेलगोल में बहुत से जैन मन्दिर और जैन तपस्वी बाहुबली जी की साढ़े-छप्पन फुट ऊँची विशाल मूर्ति जिसको देख कर संसार आश्चर्य करता है, इन्हीं की धर्म प्रभावनाका फल है। यह बड़े सुन्दर कवि और प्राकृत संस्कृत आदि अनेक भाषाओं के विद्वान् भी थे। जैन धर्म पर इन्होंने चामुण्डपुराण नाम का अनुपम ग्रन्थ लिखा है[2]। यह धर्मवीर और कर्मवीर के साथ युद्धवीर भी थे[3]। इस जैन वीर ने अपने देश की कितनी सेवा की इस बात का अन्दाजा इनकी पदवियों से लगाया जा सकता है:—

१. 'वीर-धुरन्धर' जो बजुलदेव को विजय करने पर मिली।

२. 'धीर-मार्तण्ड' जो कोलम्बो युद्ध जीतने पर मिली।

३. 'रणराजसिंह' उच्छङ्गी के किले में राजादित्यको हरानेपर मिली।

१-३. Prof. S. R. Sharma Jainism & Karnatka Culture. P. 19.

४. 'वैरीकुलकाल-दण्ड' बारापुर के किले में त्रिभवन वीर को मारने में मिली।

५. 'भुज-मार्तण्ड' राजा काम के किले में युद्ध करके डाँवराजा, बास, सीवर और कुनकादि पर विजय प्राप्त करने पर मिली।

६ 'समर-परशुराम' जो महायोद्धा गङ्गभट्ट को मारने पर मिली।

७. 'सत्य-युधिष्ठर' हँसी में भी झूठ न बोलने के कारण मिली[1]।

होयसल नरेश विष्णुवर्द्धन के महायोद्धा सेनापति गङ्गराज जैन थे। इन्होंने चोलों को हराया, गगनमण्डल को वश किया। चालुक्या सेना को जीता और तलकाड़, कोंगु, चोगिरी आदि को विजय किया। श्रवणबेलगोल के शिलालेख नं० ४५(१११७ ई०) से सिद्ध है कि जब इन की फौज चारो तरफ से घिर गई और रसद आने का रास्ता टूट जाने पर सेना भूखी मरने लगी तो जैन वीर गङ्गराज 'आने दो' कहते हुये जान की परवाह न करके घोड़े पर चढ़ रात को ही सरपट दौड़े हुए शत्रुओं की सेना में नंगी तलवार लेकर घुस गये और इकी बकी सेना को भयभीत बना कर उनको सारी रसद लाकर अपने सम्राट को भेंट कर दी। सम्राट बड़े खुश हुए और कहा कि मांग क्या मांगता है? वीर गङ्गराज ने अपना स्वार्थ नहीं साधा, बल्कि परमार्थ सिद्धि के लिये जिन मंदिर में पूजा के लिये गांवों का दान कराया[2]।

गुजरात के बघेलवंशी के सम्राट् 'वीरधवल' के सेनापति वस्तुपाल थे। तेजपाल इनके भाई थे। ये दोनों तलवार के धनी जैन धर्मी थे[3]। संग्रामसिंह ने खम्बात पर चढ़ाई कर दी तो ये दोनों अहिंसाधर्मी वीर इस वीरता से लड़े कि संग्रामसिंह को रणभूमि से भागना कठिन हो गया। देवगिरी के यादववंशी राजा सिंहन ने

---

१. हमारा पतन, पृ० १०६। मद्रास व मैसूर के जैन स्मारक पृ० २४०।

२ वीर (जैन वीरांक) वर्ष ११, पृ० ८७। जैन शिलालेख संग्रह पृ० १४५।

३. अयोध्याप्रसाद गोयलीय : हमारा पतन पृ० १२७-१२८।

गुजरात पर हमला किया तो इन दोनों ने घमसान युद्ध करके उस पर विजय प्राप्त की। देहली के बादशाह अल्तमश ने गुजरात पर हमला करने का इरादा ही किया था कि इन्होंने उसके दांत खट्टे कर दिये। संसार को चकित करने वाले आबू पर्वत पर करोड़ों रुपयों की लागत के अत्यन्त सुन्दर जैन मन्दिर इन्होंने ही बनवाये हैं।

मुसलमानों ने गुजरात पर आक्रमण कर दिया। वहाँ के सेनापति आबू व्रती श्रावक थे, जो नितनेम प्रतिक्रमण करते थे। शत्रुओं से लड़ते २ उनके प्रतिक्रमण का समय होगया, जिस के लिए उन्होंने एकान्त स्थान पर जाना चाहा, मुसलमानों की जबर्दस्त सेना के सामने अपनी मुट्ठी भर फौज के पांव उखड़ते देख कर राष्ट्रीय सेवा के कारण रणभूमि को छोड़ना उचित न जाना और दोनों हाथों में तलवार लिये होदे पर बैठे हुए ही युद्ध भूमि में प्रतिक्रमण आरम्भ कर दिया, जिस में आये हुए 'जेमे जीवा विराहिया एगिंदिया बेइं-दिया' आदि शब्दों को सुन कर सेना के सरदार चौंक उठे कि देखिये "सेनापति जी-रणभूमि में भी जहां तलवारों की खनाखनी और मारों मारों के भयानक शब्दों के सिवाय कुछ सुनाई नहीं देता, एकेन्द्रिय दो इन्द्रिय जीवों तक से क्षमा चाह रहे हैं। ये नरम नरम हलुवा खाने वाले जैनी क्या वीरता दिखा सकते हैं"? प्रतिक्रमण समाप्त होने पर सेनापति ने शत्रुओं के सरदार को ललकारा:—

आ इधर आ, हाथ में तलवार ले, खांडा सँभाल।
वीरता अपनी दिखा, होश कर, मन की निकाल॥
धर्म का पालन किया हो, तो धर्म की शक्ति दिखा।
वरन् अपनी जां बचा कर फौरन यहां से भागजा॥

शत्रुओं का सरदार उत्तर भी देने न पाया था कि जैन सेनापति आबू ने इस वीरता और योग्यता से हमला किया कि शत्रुओं के

छक्के छूट गये और मुसलमान सेनापति को मैदान छोड़कर भाग
ना पड़ा, फिर क्या था ? गुजरात का बच्चा २ आबू की वीरता के
गीत गाने लगा। इसको अभिनन्दन-पत्र देते हुए रानी ने हँसी में
कहा कि सेनापति जी जब युद्ध में एक-इन्द्रिय दो इन्द्रिय जीवों तक
से क्षमा मांग रहे थे तो हमारी फौज घबरा उठी थी कि एकेन्द्रिय
जीव तक से क्षमा मांगने वाला पञ्चेन्द्रिय मनुष्य को युद्ध में कैसे
मार सकेगा ? इस पर व्रती श्रावक आबू ने उत्तर दिया कि महारानी
जी, मेरे अहिंसा व्रत का सम्बन्ध मेरी आत्मा के साथ है, एकेन्द्रिय
दो इन्द्रिय जीवों तक को बाधा न पहुँचाने का जो नियम मैंने ले
रखा है वह मेरे व्यक्तिगत स्वार्थ की अपेक्षा से है। देश की सेवा
अथवा राज्य की आज्ञा के लिये यदि मुझे युद्ध अथवा हिंसा करने
की आवश्यकता पड़ती है तो ऐसा करना मैं अपना परम धर्म
समझता हूँ। क्योंकि मेरा यह शरीर राष्ट्रीय सम्पत्ति है, इसका
उपयोग राष्ट्र की आज्ञा और आवश्यकता के अनुसार ही होना
उचित है, परन्तु आत्मा और मन मेरी निजी सम्पत्ति है, इन दोनों
को हिंसा भाव से अलग रखना मेरे अहिंसा व्रत का लक्षण है[1]।

कोङ्कण प्रदेश पर मुसलमानों ने आक्रमण किया। विजयनगर
के राजा ने उनको मार भगाने के लिये अपने सेनापतियों के
सम्मुख पान का बीड़ा डाल दिया। तमाम योद्धाओं को परेशान
देखकर जैनवीर बैचप्प ने उठा कर उसे चबा लिया। उसका भाई
इरुगप्प भी महायोद्धा और जैनधर्मी था, ये दोनों युद्ध-शूर इस
वीरता से लड़े कि हिन्दू राजाओं ने इनकी वीरता की प्रशंसा
में वे वीररस भरे, शिलालेख[2] खुदवाये कि जिनको पढ़कर कायरों
की भुजायें भी फड़क उठती हैं[3]।

सन् १०३३ ई० में मुहम्मद के सेनापति सैयदसालार मसूद ने

---

१. हमारा पतन पृ० १४०-१४२ वे जैन हितैषी, भा० १५ अङ्क ६-१०।
२-३ श्रवणबेलगोल का शिलालेख नं० ६०।

भारत पर चढ़ाई कर दी। हिन्दू राजाओं ने देश की स्वतन्त्रता को स्थिर रखने के लिये उसके विरुद्ध मोर्चा लगाया। परन्तु उसने अपनी फौज के आगे गउओं के झुण्ड खड़े कर दिये[१]। कुटिल नदी के किनारे घमसान का युद्ध हुआ, किन्तु मालूम यह होता है कि जिस समय हिन्दू सरदार गउओं के कारण असमंजस में पड़े हुए मन्त्रणा कर रहे थे उस समय मुसलमानों ने उनको चारों तरफ से घेर कर आक्रमण कर दिया[२] जिस से हिन्दू हार गये[३]। श्रावस्ती (जिला गोण्डे के सहेट-महेट) के जैन सम्राट्[४] सुहिल देवराय से अपना देश पराधीन होता न देखा गया वह जिन मन्दिर में गये[५] और तीसरे तीर्थङ्कर श्री सम्भवनाथ जी की दिव्यमूर्ति के सम्मुख देश और धर्म की रक्षा के लिये प्रण किया कि वह अत्याचारियों को देश से निकाल कर ही जिनेन्द्र के दर्शन करेंगे। उनकी प्रतिज्ञा को सभी सैनिकों ने दुहराया[६]।

'महावीर की जय' घोषणा के साथ उन्होंने दूर से ही गउओं के झुण्ड पर तीर चला कर उनको तितर-बितर कर दिया[७]। मुसलमानों की सेना में अव्यवस्था फैल गई। कई दिनों तक घोर युद्ध हुआ। मुसलमानों के बहुत से योद्धा मारे गये। स्वयं सालार मसूद भी इस युद्ध में काम आया[८]। जैनवीर सुहिलदेव का प्रण पूरा हुआ। उन्होंने भारत मां की पवित्र भूमि का स्वाधीन ध्वज ऊँचा रक्खा[९]। मुल्ला मुहम्मद गजनवी नाम के लेखक ने जो सालारमसूद के साथ था 'तवारीखे मुहम्मदी' नाम की एक पुस्तक लिखी थी, जिसके आधार से जहांगीर के शासन काल में अब्दुल-

---

१-३. श्रावस्ती और उसके नरेश सुहिलदेवराय (वर्ल्ड जैन मिशन) पृ० १०-६५।

४. Smith: Journal of Royal Assistic Society (1900) P. 1.

५. Hoey: Journal of the Asciatic Society, Bangal (1892) P. 84

६-९. श्रावस्ती और उसके नरेश सुहिलदेव पृ० ६५।

रहमान चिश्ती ने "मीराते मसऊदी" में लिखा है:—

"मसूद की सेना बहरायच में १७ वीं शावान को ४२३ हिजरी (१०३३ ई०) में पहुंची थी, उसने हिंदुओं को परास्त किया था इसके बाद सुहिलदेव ने युद्ध का संचालन अपने हाथ में लेकर मुसलमानों का मुँह मोड़ा। मुसलमान हार कर भाग खड़े हुए। सुहिलदेव ने उन्हें उनके पड़ाव बहरायच में आ घेरा। यहां रज्जबुल मुरज्जकी १८ वीं तारीख को ४२४ हिजरी (१०३४) में मसऊद अपनी सारी सेना सहित मारा गया[२]"।

मेवाड़ के हकदार महाराणा उदय सिंह थे। उनके बालक होने के कारण बनवीर को उनकी तरफ से गद्दी पर बैठा दिया। इस भय से कि बड़ा होकर उदयसिंह अपने राज्य को वापस न लेले वे इस रोड़े को बीच में से निकालने के लिये, तलवार लेकर महल में आये। पन्ना नाम की धाय ने भांप लिया उदयसिंह को पालने में से उठाकर उनकी जगह अपने बच्चे को लेटा दिया। बनवीर ने पूछा कि उदयसिंह कहां है? तो उसने पालने की तरफ इशारा कर दिया। बनवीर ने धाय के बच्चे को उदयसिंह समझकर मार दिया परन्तु वीर धाय ने अपने सामने अपने इकलौते बालक को कत्ल होते हुये देखकर भी उफ न की और उदयसिंह को एक टोकरे में बैठा कर चुपके से निकल पड़ी और मेवाड़ के अनेक सरदारों और जागीरदारों को महाराणा मेवाड़ की रक्षा के लिये कहा परन्तु बनवीर के भय से सबने जवाब दे दिया तो वह आशाशाह के पास गई[३] और उन्हें उदयसिंह के अभयदान के लिये कहा। वे बनवीर

---

१. सरस्वती. भा० ३४ सं० १ पृ० ३०-३१।

२. "सौलाते मसऊदी, तवारीखे सुबक्तगीन. मीराते मसऊदी तवारीखे मुहम्मदी तथा Journal of Asiatic Society of Bengal (Special Number 1892) and Journal of Asiatic Society, Bombay, Special Number 1892."

३. राजपूताने के जैन वीर पृ० ७४-७६ and Todd's Rajisthan

की शक्ति से बेखबर न थे परन्तु एक जैन वीर शरण में आये हुए को अभय दान देने से केसे इन्कार कर सकता है? उन्होंने पन्ना से कहा कि तू चिंता न कर जब तक मेरी जान में जान है महाराणा उदयसिंह का बाल भी बांका न होने दूंगा, यदि जैनवीर आशाशाह उदयसिंह के जीवन की रक्षा न करते और उनके बड़े होजाने पर बनवीर से युद्ध करके उनका राज्य न दिलवाते तो महाराणा प्रतापसिंह जैसे वीर कैसे उत्पन्न होते?

महाराणा प्रताप और भामाशाह जैन

जब मुग़ल फौज के बार बार आक्रमण करने से महाराणा प्रताप को भूखे बच्चों समेत चार-पाँच बार भागना पड़ा और घास की रोटी पकवाई, वह भी बिल्ली उठाकर लेगई तो महाराणा

प्रताप अकबर को सन्धि के लिये पत्र लिखने लगे। जैन धर्मी भामाशाह ने कहा कि जब तक हमारी-तुम्हारी भुजाओं में बल है तो क्या अपना देश पराधीन हो जायेगा? महाराणा प्रताप रो पड़े और कहा, "मेरे पास इस समय फौज के खर्च के लिये पैसा नहीं और बिना फौज के उससे कबतक युद्ध करूं"? भामाशाह ने तुरन्त ही अपनी वह अतुल सम्पत्ति जिसके कारण भाई भाई के खून का प्यासा होजाता है, महाराणा को भेंट करदी[1]। महाराणा ने लेने से इन्कार कर दिया और कहा कि राजपूत दिया हुआ धन वापस नही लिया करते। भामाशाह ने कहा "महाराणा! यह सम्पत्ति मैं आपको नही दे रहा हूं मेरी भूमि को आज इसकी आवश्यकता है, इसे मैं अपने देश को अर्पण कर रहा हूँ। आप फौज को इकट्ठा करें मैं स्वयं देश-रक्षा के लिए लडूँगा[2]"। टाड साहब के शब्दों में वह सम्पत्ति इतनी थी कि २५ हजार सेना के लिए १२ वर्ष को काफी हो[3]। महाराणा प्रताप ने फौज को इकट्ठा किया और भामाशाह अपने भाई ताराचन्द को लेकर मुगल सेना के साथ लड़ने के लिए चल दिये और २५ जून सन् १५७६ को हल्दी घाटी के मुकाम पर इस वीरता से लड़े कि मुग़ल फौज के छक्के छूट गये[4]। ऐतिहासिक विद्वानों का कथन है कि यदि भामाशाह जैन वीररत्न इतनी अधिक सम्पत्ति राष्ट्रीय सेवा के लिये अर्पण न करते और अपनी जान जोखम में डाल कर इस वीरता से न लड़ते तो आज राजपूताने का इतिहास और ही कुछ होता[5]।

पण्डित गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा के शब्दों में, "मुग़ल सेना ने मेवाड़ पर चढ़ाई कर दी तो महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय ने जैनवीर कोठारी को रणबाजखां के मुक़ाबले पर लड़ने को भेजा। राजपूत सरदारों ने हँसी में कह दिया, "कोठारी जी! यह रणभूमि

१-५. राजपुताने के जैन वीर, पृ० ८०-९९ and Todd's Rajisthan.

है, यहां आटा नहीं तोला जाता"। कोठारी जी बोले कि चिन्ता न करो देखना रणभूमि में भी किस प्रकार दोनों हाथों से आटा तोलता हूँ। लड़ाई का बिगुल बजा तो कोठारी जी सब से आगे थे उन्होंने घोड़े की लगाम को अपनी कमर से बांध रखा था और दोनों हाथों में तलवार लिये राजपूत सरदारों को ललकार रहे थे कि यदि तुम्हें मुझे आटा तोलते हुए देखना है तो आगे बढ़ो। महा-योद्धा कोठारी जी मुग़ल सेना पर टूट पड़े और दोनों हाथों से मुग़ल फौज की वह मार-काट की, कि राजपूत और मुग़ल दोनों सेनाएँ आश्चर्य करने लगी[१]।

जब औरङ्गजेब के अत्याचार बढ़ गये तो मेवाड़ के राणा राजसिंह के सेनापति दयालदास जैन से न देखा गया। उसने महाराणा से औरङ्गजेब को पत्र लिखवाया[२] कि ऐसे अत्याचार उचित नहीं। औरङ्गजेब पत्र पढ़ कर आगबबूला होगया और ३ दिसम्बर १६७६ ई० को मेवाड़ पर चढ़ाई कर दी। अत्याचारों को मेटने के लिए जैनधर्मी दयालदास स्वयं तलवार लेकर रणभूमि में गये और टाड साहब के शब्दों में, "वे इस वीरता से लड़े कि मुग़ल सेना को दुम दबा कर पीछे भागना पड़ा[३]"। बादशाह का पुत्र अजीमखाँ चित्तौड़ के नजदीक पड़ा हुआ था, दयालदास ने उस पर भी धावा बोल दिया और उस अहिंसाधर्मी ने ऐसा घमासान युद्ध किया कि उसकी सेना को मारकाट कर क़िले पर अपना कब्जा कर लिया[४]।

यही नहीं बल्कि स्कूल, कालिज, अस्पताल, यतीमखानें धर्मशालाएँ, शास्त्रभण्डार, कारखानें आदि अनेक उपयोगी संस्थाएँ खोल कर और अधिक से अधिक टैक्स, चन्दा, दान आदि देकर धार्मिक, सामाजिक हर क्षेत्र में तन, मन और धन से देश की सेवा करने वाले हजारों नहीं लाखों जैन देश भक्त हुए हैं और हैं।

१-४. राजपूताने के जैनवीर, पृ० १२१ व १०८।

जैन अहिंसा और भारत का पतन

कुछ लोगों को भ्रम है कि जैनियों की अहिंसा ने भारत-वासियों को ऐसा कायर बना दिया था कि वह अपनी स्वतन्त्रता को खो बैठे, परन्तु यह कल्पना झूठी है। वास्तव में भारत का पतन आपस की फूट, खुदगर्जी और विश्वासघात के कारण हुआ[१]।

सिकन्दर ने भारत पर चढ़ाई की तो इसकी मुठभेड़ सबसे पहले अश्वक क्षत्रियों से हुई। पंजाब के लोगों ने भी एक हजार योद्धा उनकी सहायता के लिये भेजे लेकिन यूनानियों के संगठित आक्रमण के आगे वह न ठहर सके[२]। यदि तक्षशिला के हिन्दू राजा ने उनका साथ दिया होता तो इस संग्राम का यह रूप न होता। वह अपने स्वार्थ में बह गया और सिकन्दर के साथ होकर भारत के विरुद्ध लड़ा[३]। पुष्कलावती का दुर्ग भी दो भारती सरदारों के विश्वासघात के कारण सिकन्दर के हाथ लगा[४]। आरन्स (Aornos) के दुर्ग का मार्ग भी एक बूढ़े हिन्दू ने ही बताया था[५]। शशिगुप्त नाम के एक क्षत्रिय ने भी सिकन्दर को सहायता दी थी, जिसके कारण सिकन्दर ने आरन दुर्ग की हकूमत शशिगुप्त को प्रदान कर दी थी[६]। सिकन्दर के साथ पौरुष (Poros) वास्तव में बहादुरी से लड़ा, लेकिन खुद इसका भतीजा और दूसरे रिश्तेदार अपने-अपने स्वार्थ के कारण सिकन्दर से जा मिले, जिसको देख कर पौरुष ने भी सिकन्दर के आगे घुटने टेक दिये। यही नहीं, बल्कि कई हिन्दू राजाओं ने लड़ाई में सहायता दी। ऐम्फीसरेस ने भी देश के साथ ऐसा ही विश्वास-घात किया। इस तरह स्वयं हिन्दुओं की सहायता से भारत में

---

१. जैन सिद्धान्त भास्कर, वर्ष ६ पृ० ७६।

२-४. Cambridge History of India, Vol. I P. 331-350.

५-६. McCrindle: Ancient India, P. 72,197, 73. 114, 112.

यूनानी अधिकार बन गया और यह जैनवीर चन्द्रगुप्त ही था कि जिसने सिकन्दर को मार भगाया[१]।

यूनानियों के बाद शकों ने भारत पर हमला किया, तो शक राजा अन्तिरक्ष की मदद सौभाग्यसेन नाम के एक भारतीय हिन्दू सरदार ने की[२] और जब हूणों ने हमला किया तब उत्तर भारत के राजा भानुगुप्त के दोनों भाई धन्यविष्णु और मातृविष्णु हूणों में जा मिले, जिसके कारण उन्होंने इन दोनों को राजा बना दिया[३]। इन दोनों हिन्दू राजाओं की बदौलत हूणों का राज्य भारत में हुआ[४]।

मोहम्मद गजनवी ने भारत पर हमला किया तो मुल्तान का हिन्दू राजा सङ्कटपाल ग़ज़नवी से मिल गया, जिसने उसे मुसलमान बनाकर वहां का राज्य फिर उसे दे दिया[५]। इसी तरह बरन का राजा अपने दो हजार साथियों के साथ मुसलमान होगया[६]। कन्नौज के राजा राजपाल ने भी चुपचाप ग़ज़नवी को बादशाह स्वीकार कर लिया। यह सब निजी स्वार्थ में बह गये। राष्ट्र के मान-अपमान का जरा ध्यान न किया[७]। राजा इन्द्रपाल के पिता ने भारत की स्वाधीनता के लिये अपने अनमोल प्राण न्यौछावर कर दिये और खुद इन्द्रपाल ने भी युद्ध करके मोहम्मद ग़ज़नवी के छक्के छुड़ा दिये थे, परन्तु बाद में वह झांसे में आगया और उसको भारत के विजय कराने में सहायता दी[८]।

इसी प्रकार जब शक्तिसिंह और मानसिंह अपने स्वार्थ के लिये देश के शत्रुओं का पक्ष लेकर अपने भाई महाराणा प्रताप से लड़े और पृथ्वीराज से दुश्मनी निकालने के लिये जयचन्द मोहम्मद गौरी को अपने देश पर चढ़ाई करने को बुलावे तो इसमें जैनियों और इनकी हिंसा का क्या दोष ?

१-८. Indian Historical Quaterly, Vol. XIII P. 636-639.

जैनधर्म और भारत के सम्राट्

श्री वर्द्धमान महावीर के समय (६०० ई० पू०) से ऐतिहासिक काल का आरम्भ होना स्वीकार किया जाता है। ऐतिहासिक काल से पहले जैन राजाओं का कथन "२४ तीर्थंङ्कर और भारत के महापुरुष" में और वीर समय के कुछ जैन राजाओं पर जैनधर्म का प्रभाव "वीर विहार और धर्म प्रचार" में आचुका है। यहां ऐतिहासिक काल के कुछ राजाओं पर जैनधर्म का प्रभाव देखिये:—

शिशुनागवंशी सम्राट् **श्रेणिक बिम्भसार** थे। ये महाराजा उपश्रेणिक के पुत्र थे, इनकी पटरानी 'चेलना' जैनधर्मी थी, जिसके प्रभाव से ये बौद्धधर्म को छोड़ कर जैनधर्म अनुरागी होगये थे[1]। अपना भ्रम मिटाने के लिये इन्होंने भ० महावीर से हजारों प्रश्न किये जिसके उत्तर से इनकी रहीसही शङ्कायें भी दूर हो गई थीं और ये सम्यग्दृष्टि जैनी होगये थे[2]। इनके पुत्र **अभयकुमार** वीर-प्रभाव से जैन साधु होगये तो श्रेणिक के दूसरे पुत्र **अजातशत्रु** मगध के युवराज होगये थे परन्तु अङ्गदेश विजय करने के कारण श्रेणिक ने इनको वहाँ का राज्य दे दिया था। भागलपुर के निकट चम्पापुरी इनकी राजधानी थी इस लिये इनको चम्पापुरी-नरेश कहा जाता था। ये बहुत बड़े सम्राट् और व्रती जैन श्रावक थे[3]। हेमाङ्गदेश के प्रसिद्ध सम्राट् महाराजा जीवनधर भी जैनधर्मी थे, जो मनुष्य तो क्या पशुओं तक के कल्याण में आनन्द मानते थे। एक कुत्ते को दुःखी देखा तो उसे णमोकारमन्त्र सुनाया, जिसके प्रभाव से

---

१. Through the efforts of Chelana "Shrenika was converted to Jainism from Buddhism.–Some H. J. K & H. P. 12.

२. इसी ग्रन्थ के पृ० ३७३—३८४

३. "Ajatshatru was a great monarch and petron of Jainas. He took vows of a Jaina householder".
—Cambridge History of Ancient India. Vol. I. P. 261.

कुत्ता स्वर्ग में देव हुआ। यह भ० महावीर के निकट जैन साधु होगये थे[1]।

श्री महात्मा बुद्ध

शांक्यावंशी, कपिलवस्तु के राजा शुद्धोधन के राजकुमार **महात्मा बुद्ध** भगवान महावीर के समकालीन थे। Bhandarkar के शब्दों में महात्मा बुद्ध कुछ समय जैन साधु भी रहे[2]। जैनाचार्य श्री देवसेन जी ने दर्शनसार में बताया कि बुद्ध-कीर्त्ति नाम के जैन-मुनि जैन-धर्म त्यागकर बौद्धधर्मी होगये थे:—

"सिरिपासणाहतित्थे सरयूतीरे पलासणयरत्थो ।
पिहिया सवस्स सिस्सो महासुदो बुद्धकित्तिमुणी ॥६॥
तिमिपूरणा सणेहिं अहिगय पवज्जाओ परिब्भदो ।
रत्तंबरं धरित्ता पवट्टियं तेण एदांतं ॥७॥
मंसस्स णत्थि जीवो जहाफले दहिय-दुद्ध-सक्करए ।
तम्हा तं वंछित्ता तं भक्खंतो ण पतिट्ठो" ॥८॥ —दर्शनसार

जैनधर्म की चर्या को ग्रहण करना स्वयं महात्मा बुद्ध स्वीकार करते हैं—

"वहां सारिपुत्र ! मेरी यह तपस्विता थी—अचेलक (नग्न) था ! मुक्ताचार, हस्तावलेखन (हथचट्टा), नष्ट हिमादन्तिक (बुलाई भिक्षा का त्यागी), न तिष्ट-भदन्तिक (ठहरिये कह, दी गई भिक्षा को). न अपने उद्देश्य से किए गए को और न निमन्त्रण को खाता था। ...... न मछली, न मांस, न सुरा पीता था। ......शाकाहारी था। ......केश दाढ़ी नोचनेवाला था।"—मज्झिम०नि०, १।२।२ (हिन्दी) पृ० ४८-४६

१. "Jivandhara became disciple of Mahavira and lived according to his precepts."—Some H. J. K. & H., P 9.
२. "Mahatma Buddha was a Jain monk for some time."
Prof. Bhandarkar: J. H. M, Allahabad (Feb. 1925), P 25

ये सब बिल्कुल जैन-साधु की चर्या के अनुसार हैं। जिससे स्पष्ट है कि म० बुद्ध जैनधर्म ग्रहण करके जैन-साधु होगये थे[1], परन्तु कठोर तपस्या से घबरा कर जैन-मुनि पद को छोड़ दिया और अपना मध्यमार्ग "बौद्धधर्म" स्थापित किया[2]। जैन तपस्या को कठोर समझते हुए महात्मा बुद्ध कहते हैं—

"निगण्ठा उब्भट्टका आसनपटिक्खित्ता, ओपक्कमिका दुक्खा तिप्पा कुटका. वेदना वेदियथाति। एवं वुत्ते, महानाम, ते निगण्ठा मं एतदवोचुं, निगण्ठो,आवुसो नाठपुत्तो सब्बञ्ञु, सब्बदस्सावी अपरिसेसं ञान दस्सनं परिजानातिः चरतो च मे तिट्ठतो च सुत्तस्स च जागरस्स च सततं समितं ञानदस्सनं पच्चुपट्ठितंति .. .. इति पुराणानं कम्मानं तपसा व्यन्तिभावा नवानं कम्मानं अकरणा आयतिं अनवस्सवो, आयतिं अनवस्सवा कम्मक्खयो, कम्मक्खया दुक्खक्खयो, दुक्खक्खया वेदनाक्खयो वेदनाक्खया सब्बं दुक्खं निज्जिण्णं भविस्सति तं च पन् अम्हाक रुच्चति चेव खमति च तेन च आम्हा अत्तमना ति"। —मज्झिमनि० P. T. S. I. PP. 92-93.

भावार्थ—"ऐसी घोर तपस्या की वेदना को क्यों सहन कर रहे हो"? मैंने निर्ग्रन्थों (जैन साधुओं) से पूछा तो उन्होंने कहा, "निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र महावीर सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं उन्होंने बताया है कि कठोर तप करने से कर्म कटकर दुख क्षय होता है"। इस पर बुद्ध कहते हैं, "यह कथन हमारे लिये रुचिकर प्रतीत होता है और हमारे मन को ठीक जँचता है"।

महात्मा बुद्ध का ईश्वर को कर्त्ता-हर्त्ता न मानना[3], पशु-वलि और जीव-हिंसा का विरोध[4], कर्म-सिद्धान्त[5] और मोक्ष में

१-२. In fact Buddha being inspired by the teachings of Lord Mahavira became Jain Saint, but having been unable to stand the hard life of a Jain monk, he founded the Norm Path.—J. H. M. (Feb. 1925) P. 26

३-४. Kamata Pd: Bhugwan Mahavir (2nd Editien) P. 369.

५. Karma theory of Jains is an original and integral part of their system. They (Buddhists) must have borrowed the term (Asrava) from Jains.
—Encyclopaedia of Religion & Ethics, Vol. VII. P. 472.

विश्वास[1] अवश्य भ० महावीर के प्रभाव का फल है। यही कारण है कि दूसरा मत स्थापित करने पर भी महात्मा बुद्ध ने भ० महावीर की सर्वज्ञता (omniscience) को स्वीकार किया[2] और बौद्ध-ग्रन्थों में उनका प्रशंसारूप कथन है[3]। निश्चितरूप से म० बुद्ध पर भ० महावीर का अधिक प्रभाव पड़ा, जिसके कारण वीर-प्रचार के समय म० बुद्ध की घटनाओं का हाल नहीं के बराबर (Almost Blank) मिलता है[4] और महात्मा बुद्ध ने इतनी बातें जैनधर्म से लीं[5], कि डा० जैकोबी को जैनधर्म, बौद्धधर्म की माता[6] और लोकमान्य पं० बालगङ्गाधर तिलक को म० बुद्ध भ० महावीर के शिष्य[7] स्वीकार करना पड़ा। विद्वानों का कथन है कि जैनधर्म बौद्ध धर्म से नहीं बल्कि बौद्धधर्म जैनधर्म से निकला है[8]।

नन्दवंशी सम्राट नन्दिवर्द्धन (४४६-४०६ ई.पू.) बड़े योद्धा और जैनधर्मी थे[9] इन्होंने अनेक देश विजय किये। इनके समान ही

---

१. "Nirvan is the highest Happiness".—Dhammapade. 204.

२-३. इसी ग्रन्थ का पृ० ४८ वें फुटनोट नं० ३ से १३ पृ० ३३१।

४. K. J. Sounderson : Gotma Buddha. P. 54.

५. "He (Budddha) must have borrowed Jain doctrines." Prof. Sil : J.H.M. (Nov 1926) P. 2.

६. "Jainism is mother of Buddhism". Dr. H. Jacobi: Dig. Jain (Surat) Vol. X P. 48.

७. जैनधर्म महत्व भा० १ (सूरत) पृ० ८३।

८. "Authorities like Colebrooke and Dr. E. Thomas held that it was Buddhism which was derived from and was an off-shoot of Jainism".
Shri Joti Pd : Jain Antiquary. Vol. XVIII P. 56

९. i. Cambridge History of India. Vol. I. P. 161.
ii. J.B. & O.R. Society, Vol. IV P. 163 & Vol. 13. P. 245.

महानन्द और महापद्म पराक्रमी सम्राट् हुए हैं। इनके बाद अन्तिम सम्राट् **नान्दराज** भी बड़े वीर और जैनधर्मी थे[1]।

मौर्य्य साम्राज्य के सम्राट् **चन्द्रगुप्त मौर्य्य** जैनधर्मी थे[2], जो अन्तिम केवली जैनाचार्य श्री भद्रबाहु के शिष्य थे[3] और इनके ही प्रभाव से वह जैन साधु होगये थे[4]। दक्षिण भारत के जिस पर्वत पर इन्होंने तप किया था, वह इनके नाम पर आज तक चन्द्रगिरि के नाम से प्रसिद्ध है। इनके पुत्र **बिन्दुसार** भी जैनधर्मी थे[5]। इनके पुत्र महाराजा **अशोक** को बौद्ध धर्मानुयायी बौद्ध ग्रन्थों के आधार पर प्रकट किया जाता है, परन्तु इनको मि० विंसेन्ट स्मिथ शेखचिल्ली की कहानियों से अधिक महत्व नहीं देते, यद्यपि वह अशोक को बौद्ध धर्मानुयायी मानते थे[6]। प्रो० भाण्डारकर भी बौद्ध कथानकों में ऐतिहासिक सत्य नहीं के बराबर मानते हैं[7]।

---

१. जैन वीरों का इतिहास (जैन मित्र मण्डल, धर्मपुरा, देहली) पृ० २६।
२. a. Smith's Early History of India (Revised) P. 154.
   b. Epigraphia Carnatica Vol. II. Introd. P. 36-40.
   c. Journal of Royal Asiatic Society. Vol. I. P. 176.
   d. Cambridge History of India Vol I P. 484.
   e. Journal of the Mythic Society. Vol. XVII. P. 272.
   f. Indian Antiquary, Vol. XXI. P. 50-60.
   g. Journal B & O. Research Society Vol. 13 P. 24.
३. "We shall have to come to the conclusion that Chandra-Gupta, the disciple of the sage Bhadrabhaw was none other than the celebrated Morya Emperor." Ep. Car II.
४. "I am now disposed to believe that Chandra Gupta really abdicated and became Jaina ascetic. Smith's Hist. P. 146.
५. विश्वकोष, भा० ७ पृ० १५७।
६. Ashoka. P. 19 and 23 quoted in जैनधर्म और सम्राट् अशोक, पृ० ७
७. भण्डारकर का अशोक पृ० ६६।

प्रो० कर्न का भी यही मत है[१]। इस अवस्था में केवल बौद्ध ग्रन्थों के आधार से अशोक को बौद्ध मान लेना ठीक नहीं[२]। डाक्टर फ्लीट[३], प्रो० मैकफैल[४], मि० मोनहन[५] और मि० हेरस[६] ने अशोक के बौद्धत्व का अस्वीकार किया है। डा० कर्न कहते हैं कि अशोक के शिलालेखों में कोई भी खास बात बौद्धधर्म की नहीं है[७]। अशोक ने श्रवणबेलगोल पर जैन मन्दिर बनवाये थे[८]। पशु-वध के लिये कड़े से कड़े नियम बनाये और ५६ दिन तो कानून के द्वारा पशु-वध बिल्कुल बन्द कर रक्खा था[९]। अशोक के नियम बौद्धों की निस्बत जैनियों से अधिक मिलते हैं[१०]।

शुरू उम्र में अशोक का जैनधर्मी होना तो Dr. Rice[११] व Dr. Thomas[१२] भी स्वीकार करते हैं, परन्तु उनकी अन्तिम (सातवें) शिलालेख से उनका अन्त तक जैनधर्मी होना सिद्ध है[१३],

---

१. Manual of Bhudhism, P. 110
२. जैनधर्म और सम्राट् अशोक (श्री आत्मानन्द जैन ट्रैक्ट सोसायटी) पृ० ७।
३. Journal of Royal Asiatic Society (1908) P 491-492.
४. Ashoka. P. 48.
५ Early History of Bengal. P. 214.
६. Journal Mythic Society, Vol. XVII, P. 271-273.
७. Manual of Buddhism. P. 112.
८. हिन्दीविश्वकोष भाग ७ पृ १५० ।
९. अशोक का पञ्चम स्तम्भलेख।
१०. "His (Ashoka's) ordinances agree much more closely with the ideas of the heretical Jains than those of the Buddhists. —Manual of Buddhism, P. 275.
११. Rice: Mysore & Coorg. P. 12-13.
१२. Thomas: JBB RAS. Vol IV. (January 1855) P. 150
१३. "It is obivious that Ashoka certainly prefessed Jainism and composed his religious code mainly based on Jain dogmas from begining to end. No doubt he seems to

राजतरिङ्गिणी में लिखा है, "अशोक ने कशमीर में जिनशासन का प्रचार किया"। 'जिन' शब्द जैन धर्म का नामकरण है। शब्दकोश भी 'जिन' का अर्थ 'जिनेन्द्र' ही बताते हैं[1]। अबुलफजल आइने-अकबरी में बताते हैं, "जिस प्रकार इनके पिता बिन्दुसार और पितामह चन्द्रगुप्त ने मगध में जैनधर्म का प्रचार किया था, उसी प्रकार अशोक ने कशमीर में जैन धर्म को सुदृढ़ बनाया"[2]। वास्तव में अशोक के हृदय पर जिनेन्द्र भगवान की शिक्षा का गहरा प्रभाव पड़ा[3]। यह जैनधर्मी थे[4] और इन का राज्य जैन-राज्य था[5]। Smith के शब्दों में महाराजा सम्प्रति ने जैन व्रतों को एक सच्चे वीर के समान पाले थे[6] और अनेक प्रकार

---

to be Jain at heart, when, he got inscribed his last pillar ediet.—J. Ant. Vol. VII. P. 21

१. हिन्दी विश्वकोश, संस्कृत हिन्दीकोश, शब्दकल्पद्रुमकोश, श्रीधर भाषाकोश।

२. Asoka supported Jainism in Kashmir, as his father Bindusara & grandfather Chandergupta through out Magadha Empire.—Abulfazal. Aina-i-Akbari, P. 29.

३. In fact Asoka was greatly influenced by the humane teachings of the JINAS.—Indian Antiquary X X.243. JRAS. IX. 155. J. Ant. V. & VI. SHJK & H.P. 21.

४. जैन धर्म और सम्राट अशोक, पृ० ४७।

५. In the Buddhists' period it was only Jainism, who condemned meat-dishis. Brahmans and Buddhists and others freely partake them, hence the statement of Asoka that in the end he abolished hinsa for his royal kitchen altogether betrays the influence of Jainism on him. Asoka's reign was TRULY A JAIN RAJY.—J. Ant. V. 53-60 & 81-88

६- Samprati established centres of Jaina culture in Arabia & Persia & himself practised Jain rule in his after life like a true hero and worked hard for the uplifting of Jainism in various ways"—Smith's Early History of India. P. 202-203

से जैन धर्म की खूब प्रभावना की थी। सम्प्रति जैनधर्मी[१] थे और जिनेन्द्र भगवान की पूजा के लिए इन्होंने हजारों जैन मन्दिर बनवाये और अधिक संख्या में तीर्थंकरों की मूर्तियाँ स्थापित कराईं। इन्होंने जैन धर्म के प्रचार के लिये विदेशों तक में प्रचारक और जैन साधु भेजे[२]। इन्हीं की भांति महाराजा सालिसूक जैनधर्मी सम्राट थे, जिन्होंने स्थान स्थान पर जैनधर्म का प्रचार किया[३]। मौर्यवंशीय अन्तिम सम्राट वृहद्रथ भी जैनधर्मी थे[४], जिन को इनके सेनापति पुष्यमित्र ने धोखे से मार डाला था[५] और स्वयं मगध का राजा बन बैठा था। ३२२ ई० पू० से १८५ ई० पू० १३७ साल तक मौर्य साम्राज्य में जैन धर्म का खूब प्रचार रहा।

कलिङ्ग राजवंशीय सम्राट महामेघवाहन खारवेल का जन्म २०७ ई०पू० में हुआ। यह बड़े बलवान और जैनधर्मी सम्राट थे[६]। पुष्यमित्र अश्वमेधयज्ञ के प्रबंध में था, इन्होंने रोका वह न माना तो मगधपर चढ़ाई करदी पुष्यमित्र हार मानकर खारवेल के चरणों में गिर पड़ा और उनकी पराधीनता स्वीकार करली। इन्होंने दिग्विजय की थी और भारत नेपोलियन कहलाते थे। यह भगवान

१-२. Samprati was a great Jain monarch and a staunch supporter of the faith. He erected thousands of Jain temples throughout the length & breadth of his empire and consecreted. large number of images. He sent Jain missionaries and ascetics abroad to preach Jainism in the distant countries and to spread the faith there —Epitome of Jainism, Jain Siddhanta Bhaskara. Vol. XVI. P. 114-117

३. "Salisuka preached Jainism far and wide."—J.B & O. Research Society. Vol. XVI. 29.

४-५ पं० अयोध्याप्रसाद गोयली : जैन वीरों का इतिहास और हमारा पतन पृ. ६७

६. (क) डा० ताराचन्द : अहले हिन्द की मुख्तसर तवारीख (१९३४) पृ० ८२

(ख) पं० भगवद्दत्त शर्मा: भारतवर्ष का इतिहास, भा० १ पृ० ५७

(ग) अनेकान्त वर्ष १ पृ० ३००, जैनहितैषि वर्ष १५ अंक २, हाथीगुफा शिलालेख

महावीर के दृढ़ उपासक थे[१] और कुमारी पर्वत पर इन्होंने जैनव्रत धारे थे। यह जिनेन्द्र भगवान में इतना अधिक अनुराग रखते थे कि इन्होंने जिनेन्द्रदेव की पूजा के लिते जैन मन्दिर और जैन साधुओं के लिये गुफायें बनवाई[२]। यही नहीं बल्कि १७२ ई० पू० में जैनधर्म की प्रभावना के लिये पञ्चकल्याणक पूजा कराई[३]।

मालवा के राजा गर्दभिल्ल के पुत्र विक्रमादित्य बड़े प्रसिद्ध सम्राट थे। शकों को इन्होंने ही हराया था। इनका विक्रमी सम्वत् भ० महावीर के निर्वाण के ४७० साल बाद ५७ ई० में चालू हुआ था। यह हिन्दूसंसार में प्रख्यात हैं। पहले यह शैव थे, परन्तु जैनधर्म के सत्यप्रभाव से यह जैनधर्म-भक्त होगये थे।[४] महाराजा विक्रमादित्य जैनधर्मी और आदर्श श्रावक थे[५]। जैन साहित्य में भी इन को एक ठोस स्थान प्राप्त है।

महाराजा विक्रमादित्य

१-३ Pushyamitra celebrated Ashvamedha Sacrifice. Kharavela reached Magadha to fight with him but Pushyamitra did homage instantly at the feet of Kharavela. He returned after taking the dignity of Emperor. Kharavela was a true *'upasaka'* of Mahavira He celebrated 5 Kalyanakas of *'Jinendra'* and built various caves and Jain temples. SHJK & Heroes.P.26,

४-५ जैनमित्र, सूरत (१६ दिसम्बर १९४३) वर्ष ४५ पृ० ७७ व मई १९४४, अन्तिम अङ्क। गुजराती मासिक 'जीवदया' बम्बई, अक्तूबर १९४३। संक्षिप्त जैन इतिहास भा० २ खण्ड २ पृ० ६६। वीर वर्ष ६ पृ० २५८।

पल्लववंशी राजाओं की राजधानी कांचीके राजा शिवकोटि विष्णुधर्मी थे, जिन का काञ्ची में भीमलिंग नाम का एक शिवालय था। जैनाचार्य स्वा० समन्तभद्र को भस्मव्याधि रोग होगया, जिससे मनों भोजन खा लेने पर भी इनकी तृप्ति न होती

श्री स्वामी समन्तभद्राचार्य

थी। यह विष्णु संन्यासी का वेश धारण कर के इसी शिवालय में आए। यहाँ सवामन प्रसाद शिवार्पण के लिये आया तो समन्तभद्र जी ने उससे अपनी क्षुधाग्नि शान्त की राजा• समझा कि इन्होंने सारे प्रसाद का शिवजी को भोग करा दिया है, वे शिवार्पण के लिये प्रतिदिन सवामन प्रसाद भेज दिया करते थे और ये खालिया

करते थे। कुछ लोगों ने राजा से शिकायत की, कि ये शिवजी की विनय-भक्ति नहीं करते और नाही प्रसाद शिवजी को अर्पण करते हैं बल्कि स्वयं खा लेते हैं। राजा को बड़ा क्रोध आया और उस ने समन्तभद्र जी से कहा कि मेरे सामने प्रसाद का भोग कराओ और शिवजी को नमस्कार करो। समन्तभद्र जी के लिये यह परीक्षा का समय था। ये सम्यग्दृष्टि थे इन की तो रग रग में जैन धर्म बसा हुआ था। इन्होंने चौबीस तीर्थङ्करों की स्तुति-रचना और उच्चारण करना आरम्भ कर दिया, जो आज तक 'स्वयंभूस्तोत्र' के नाम से प्रसिद्ध है। जिस समय ये आठवें तीर्थङ्कर श्री चन्द्रप्रभु जी का स्तोत्र पढ़ रहे थे तो शिवलिङ्ग में से श्री चन्द्रप्रभु की मूर्ति प्रगट हुई। इस अद्भुत घटना को देख कर सभी लोग चकित होगये। राजा शिवकोटि स्वा० समन्तभद्र के चरणों में गिर पड़े और अपने छोटे भाई **शिवायन** के सहित जैनधर्म में दीक्षित होगये[1]। उनके साथ ही उनकी प्रजा का बहुभाग भी जैनधर्मी होगया था[2]।

काञ्ची के पल्लववंशी सम्राट् **हिमशीतल** बौद्धधर्मी थे। इनकी रानी मदन सुन्दरी जैनधर्मी थी, जो जिनेन्द्र भगवान का रथ उत्सव निकालना चाहती थी, किन्तु राजा के गुरु भी बौद्धधर्मी थे उनका कहना था कि कोई भी जैन विद्वान् जब तक मुझे शास्त्रार्थ द्वारा विजित नहीं कर लेता तब तक जैन-रथ नहीं निकल सकता। गुरु के विरुद्ध राजा भी कुछ न कह सके। जैनाचार्य श्री अकलङ्कदेव को पता चला तो वे राजा हिमशीतल के दरबार में गये और बौद्ध गुरु से शास्त्रार्थ के लिए कहा। बौद्ध गुरु ने तारा नाम की देवी को सिद्ध कर रखा था इसलिए उन्हें अपने जीतने का पूरा विश्वास था। उन्होंने श्री अकलङ्कदेव से कहा कि यदि तुम हार गये तो

१-२ संक्षिप्त जैन इतिहास (सूरत) भाग ३ खण्ड १, पृ० १५१-१५२।

कोल्हू में पिडवा दिये जाओगे। अकलङ्कदेव ने कहा कि यदि तुम हार गये तो ? बौद्ध गुरु बोले कि हम देश-निकाला ले लेंगे। शास्त्रार्थ आरम्भ होगया। अकलङ्कदेव महाविद्वान् और स्याद्वादी थे। निरन्तर ६ माह तक वाद-विवाद होने पर भी विजय प्राप्त न हुई तो उन्हें ज्ञात हुआ कि बौद्धगुरु ने देवी सिद्ध कर रखी है और वह ही परदे में उनकी तरफ से उत्तर देती है। देवी एक बात को एक बार ही कहती थी। अकलङ्कदेव ने बौद्ध-गुरु से कहा कि मैं नहीं समझा दूसरी बार कहो; तो देवी चुप थी। बौद्ध-गुरु से जवाब बन न पड़ा और अकलङ्कदेव की विजय हुई। जिसके कारण बौद्धों को देश छोड़कर लंका आदि की तरफ़ जाना पड़ा।' जैन धर्म की अधिक प्रभावना हुई। राजा हिमशीतल ने जैनधर्म ग्रहण कर लिया और जनता भी बहुत बड़ी संख्या में जैनधर्मी होगई। चीनी यात्री ***Hieun Tsang*** ने यहाँ जैनियों तथा इन के मन्दिरों और जैन साधुओं के रहने की गुफाओं को अधिक संख्या में बताया है और यह लिखा है कि पल्लव-राज्य में जैन धर्म की खूब प्रभावना थी[२]।

कदम्बावंशी राजा ब्राह्मण धर्म के अनुयायी थे फिर भी वे जिनेन्द्र अथवा अर्हन्तदेव की भक्ति में दृढ़ विश्वास रखते थे[३]।

१-२. "Inscription at Sravanbelgola alludes that Aklanka-deva defeated Buddhist antagonists in a great religious controversy held at the court of the Buddhist King Himshitala of the Pallava dynasty, who ruled at Kanchi. The effect of this great victory was a decided augmentation of the prestige of the Jains while the Buddhists were excommunicated to Candy in Ceylon. Hieun Tsang, who visited Kanchi as early as 640 A.D. notices that Jainism enjoyed full toleration under the Pallava Govt." Digamber Jain. (Surat) Vol. IX P. 71.

३. Journal of the Mythic Society Vol. XXII P. 61.

महाराजा काकुस्थ वर्मा (३६०-३६० ई०) ने जैन धर्म की प्रभावना के लिये भूमि प्रदान की थी[1]। इनके पुत्र महाराजा शान्ति वर्मा (३६०-४२० ई०) भी जैनधर्म प्रेमी थे। रविवर्मा के दान पत्र में इनको सारे कर्नाटक देश का स्वामी बताया है[2]। इनके पुत्र मृगेश वर्मा (४२०-४४५) ने अर्हन्त भगवान के सन्मुख घी के दीपक जलाने तथा उनके अभिषेक आरती पूजा आदि के खर्चों के लिये जैन मन्दिरों को गाँव भेंट किये थे[3]। मृगेश वर्मा के हृदय पर जिनेन्द्र भगवान के विश्वास की छाप उनकी एक और भेंट से भी सिद्ध है, जिसमें उन्होंने कालवंगा नाम के ग्राम को तीन हिस्सों में बांट कर पहला श्री जिनेन्द्र भगवान को दूसरा जैन त्यागियों को और तीसरा जैन निर्ग्रंथ मुनियों को अर्पण किया[4]। इनके दोनों पुत्र महाराजा रवि वर्मा और भानु वर्मा भी अर्हन्त-भक्त थे और इन्होंने खूब दिल खोल कर अर्हन्त भगवान की

---

१. Fleet, Sanskrit and Old Canarese Inscriptions.
—Indian Antiquary Vol. VI. P. 24.

२. Santivarma has been described as the master of the entire Karnata region —cf. Dubreuil, Ancient Deccan. P. 74-75

३. "Mrgesvarma gave to the devine supreme *'Arhats'* fields at Vaijayanti for the purpose of the glory of sweeping Jain temple and anointing the idol with ghee and performing worship etc. entirely free from taxation." —Indian Antiquary Vol. VII P. 36-37.

४. Another grant of the same monarch (Mrgesvarma) bears the SEAL OF JINENDRA. He is said to have divided the village of Kalavanga into 3 parts. The first he gave to the *Great God Jinendra*, the *holy Arhat* and it was called *'the Hall of the Arhat,'* the second for the enjoyment of the sect of eminent ascetics of Svetapatha which was intent on practising the true religion declared by *Arhats* and the third to the sect of eminent ascetics called the *Nirgranthas*." —Indian Antiquary. Vol. VII. P. 38.

प्रभावना की[1]। महाराजा रविवर्मा (४६०-५०० ई०) जिनेन्द्र भगवान को अत्यन्त शक्तिमान और कदम्बावंशी आकाश का सूर्य स्वीकार करते थे[2]। यह न केवल स्वयं जिनेन्द्र भगवान के अनुरागी थे, बल्कि अपनी जनता तक को भी इन्होंने जिनेन्द्र-भक्ति और उनकी पूजा के लिये कहा। यही नहीं बल्कि जिनेन्द्रदेवमें विश्वास स्थिर करने के लिये उन्होंने जिनेन्द्र-भक्ति के लाभ बताते हुए आज्ञापत्र निकाला :—

"महाराजा रवि वर्मा की आज्ञानुसार जिनेन्द्रभगवान की प्रभावनाके लिये हरसाल कार्तिक की अठ्ठाइयों का पर्व निरन्तर आठ दिन तक सरकारी मालगुजारी से मनाया जाया करे और सरकारी खर्च पर ही चतुरमास के चारों महीनों में जैन साधुओं का वैयावृत्य हुआ करे। जनता को श्री जिनेन्द्र भगवान की निरन्तर पूजा करनी चाहिये। क्योंकि जहां सदैव जिनेन्द्र भगवान की पूजा विश्वासपूर्वक की जाती है, वहां अभिवृद्धि होती है, देश आपत्तियों और बीमारियों के भय से मुक्त रहता है और वहां के शासन करने वालों का यश और शक्ति बढ़ती है[3]"।

---

१. The grants of Ravivarma and Bhanuvarma manifest the growing influence of Jainism more clearly.
Indian Antiquary, Vol. VII P 36 & Vol VI P. 25-27.

२. "Another grant of Ravivarma to the GOD JINENDRA describes HIM as the mighty king, the sun of the sky to the mighty family of the Kadambas.'
—Indian Antiquary Vol. VI, Page 30.

३. The Lord Ravi established the Ordinance at the mighty City of Palasika that the glory of JINENDRA which lasts for 8 days, should be celebrated regularly EVERY YEAR on the full moon of 'Kartika' from the revenues of that village; that ascetics should be supported during the 4 months of rainy season; and that the WORSHIP OF JINENDRA SHOULD BE PERPETUALLY PERFORMED BY THE CITIZENS. *Wheresoever the worship of Jinendra is kept up there is increase of the country. and the cities are free from fear and the lords of those countries acquire strength. Reverence, reverence.*"

—Indian Antiquary Vol. VI, Page 27.

रविवर्मा के भाई महाराजा **भानुवर्मा** भी भ० जिनेन्द्र देव में दृढ़ विश्वास रखते थे[1] इन्होंने जिनेन्द्रदेव के अभिषेक के लिये टैक्स आदि हर प्रकार के भार से मुक्त भूमि प्रदान की थी। क्योंकि इन्हें विश्वास था कि जिनेन्द्र-प्रभावना से उन्नति होती है[2]। रवि वर्मा के पुत्र **हरिवर्मा** (५००-५२५ ई०) कदम्बावंश केअन्तिम सम्राट थे। यह भी जिनेन्द्र भगवान के अनुरागी थे। इन्होंने अर्हन्तदेव की आरती और पूजा आदि खर्चों के लिये गांवों भेंट किये थे[3]। गरजकि कदम्बावंशी राजाओं ने जैनधर्म की प्रभावना में इतना अधिक भाग लिया कि प्रसिद्ध विद्वान भी इनको जैनधर्मी समझ बैठे[4]।

गङ्गावंश के सबसे पहले सम्राट **कोङ्गणिवर्मा** प्रसिद्ध जैनाचार्य श्री सिंहनन्दी के शिष्य थे[5]। ये जैन धर्मानुरागी थे। इन्होंने जिनेन्द्र भगवान की भक्ति के लिये जैनमन्दिर बनवाए[6]। महा-

---

१-२ Bhanuvarma's devotion to Jainism is also attested by a grant, which mentions, "By him desirous of prosperity, this land was given to the Jains, in order that the ceremony of ablutions might always be performed *withont fail.* It was as usual given free from the gleaning-tax and all other burdens."
—Indian Antiquary Vol. VI P. 29

३. Harivarma's grant was made for providing annually at the great 8 days perpetual anointing with clarified butter for the temple of *Arhats*, which Mrgesavarma had caused to be built at Palasika."
—Indian Antiquary. VI. P. 31.

४. The numerous grants made to the Jainas led Dr. J.F. Fleet, Mr. K.B. Pathak and others to suppose that the Kadambas were of the Jaina persuasion.
—Fleet, op. cit. VII. P. 35-38.

५. Kudlur Plates of Marasimha, Mysore Archaeological Report (1921) P. 19-26.

६. Kongunivarma the founder of Ganga dynasty erected a Jaina Temple at Mandli near Shimoga.
—Some Historial Jain Kings & Heroes. P. 29-30.

राजा माधव द्वि० जैनधर्मी थे, इन्होंने जैनधर्म की प्रभावना के लिए जैनियों को बड़े बड़े दान दिये[१]। इनके पुत्र कोङ्गिणि द्वि० के उत्तराधिकारी महाराजा **अविनीत** भी निश्चितरूप से जैनधर्मी थे[२], ये जैनाचार्य श्री विजयनन्दी के शिष्य थे[३]। बचपन से ही इनको यह दृढ़ विश्वास था कि जो जिनेन्द्र भगवान की शरण ग्रहण कर लेता है वह हर प्रकार की बाधा और आपत्ति से मुक्त रहता है। एक समय उन्हें दरिया पार करने की आवश्यकता पड़ी। नाव का कुछ प्रबन्ध न था यह विश्वास करके कि यदि जिनेन्द्र भगवान् का छत्र साया होगा तो अथाह जल भी मेरा कुछ बिगाड़ नहीं कर सकता, वे जिनेन्द्र भगवान् की मूर्ति को अपने सिर पर रखकर दरिया में कूद पड़े और सबको चकित करते हुये बात की बात में गहरे जल को चीरते हुये दरिया को पार कर लिया[४]। इन्होंने जिनेन्द्र भगवान् की पूजा के लिये जैन मन्दिरों को बहुत से गाँव भेंट किये[५]। इनका पुत्र महाराजा **दुर्विनीत** जैनाचार्य श्री पूज्यपाद जी के शिष्य थे[६]। इनके पुत्र **मुष्कर** तो इतने सच्चे जैन धर्मी थे कि इनके समय जैन धर्म, **राज्यधर्म** ***(STATE RELIGION)*** था[७]। गंगावंशी सम्राट् **श्रीपुरुष** ने जैनधर्म की

१. Madho II, father of Konguni II is claimed to have been Jain. He made grants to Digambars.—Sheshagiri Rao. Studies in S.I.J. II. P 87.

२-४ Avinita was undoubtedly a Jain. Tradition mentions that while young Avinita once swam accross the Kaveri, when it was in full flood, with the image of a *'Jina'* on his head in all safety. He was brought up under the care of the Jain Sage Vijayanandi, who was his preceptor. —SHJK & Heroes. P. 30.

५. Avinita made a number of grants for Jain temples in Punnad and other places. SHJK & Heroes. P. 30.

६-७ Durvinita is described as the disciple of the famous Jaina teacher Pujyapada. Under his son Muskara Jainism is said to have become STATE RELIGION. -Ramaswami Aiyangar, Studies in S. I. J. Vol. I. P. 110.

प्रभावना के लिये दान दिये और इनके पुत्र **शिवमार** ने जैन मन्दिर बनवाये[१]। **राजमल्ल** प्र० ने जैन साधुओं के लिये गुफाएँ बनवाई[२]। इनके पुत्र **ऐरयगंग** तो अर्हन्त भट्टारक के चरणरूपी कमल के भौंरे थे[३]। इनके पुत्र **राचमल्ल** द्वि० ने ८८८ ई० में जैन मन्दिर को गांव भेंट किये[४]। और जैनधर्मी थे[५]। महाराजा **नीतिमार्ग** भी जैनधर्मी थे और इन्होंने सलेखना व्रत धारण किये थे[६]। महाराजा **बुटुग** जैन फिलास्फी के बड़े अच्छे विद्वान् थे[७]। इनके पुत्र **मारसिंह** (९६१-९७१ ई०) बड़े न्यायवान्, महायोद्धा, जैनधर्म के दृढ़ विश्वासी और जैनाचार्य श्री अजितसेन जी के शिष्य थे[८]। इन्होंने भी सलेखना व्रत धारण किये थे[९]। इनके भाई महाराजा **मरुलदेव** जिनेन्द्र भगवान् के सच्चे भक्त थे[१०]। मारसिंह के पुत्र **राचमल्ल** च० (९७७-९८५ ई०) भी जैनधर्मी थे[११] इनके राजमन्त्री और सेनापति चामुण्डराय बहुत ही दृढ़ जैनधर्मी

---

१. "Sivamara built a Jain Temple."—cf. Ep. Car. II. 43.
२. Madras Epigraphical Report (1889) No 91.
३. Ereganga is described as having a mind resembling a bee at the pair of lotus feet of the adorable Arhat Bhattarka. —Kudlur Plates.
४-५ "Racamalla II. made a grant for the Satyavakya Jinalaya in 888 A.D. He is described as a devout Jain" —EP. Car. I. P. 2.
६. Nitimarga died in 870 A.D. adopting the Jaina manner of 'Sallekhana.' —SHJK & Heroes. P. 38.
७. Butuga was well-versed in Jain Philosophy. —Some Historical Jain Kings & Heroes. Page 33.
८-९ Marasimha devoted his after life for religious observances at the feet of his preceptor Jain Sage Ajitasen and observed the vow of 'Sallekhana' in 974 A.D. —Ibid. Page 35.
१०. Marula's mind too was resumbling a bee at the lotus feet of *Jina*. —Kudler plates.
११. Rajmalla or Racamalla IV was promoter of Jain faith. —Prof. Sharma: Jainism & Karnataka Culture. P. 19.

थे[1] जो अनेक युद्धों के विजेता और बड़े विद्वान् थे[2]। ये जैनाचार्य श्री अजितसेन जी तथा सिद्धान्त चक्रवर्ती श्री नेमचन्द्राचार्य के शिष्य थे[3]। इन्होंने चामुण्डपुराण नाम का एक प्रसिद्ध जैनग्रन्थ लिखा, जिसमें २४ तीर्थंकरों, १२ चक्रवर्तियों, ६ नारायणों, प्रति-नारायणों बलभद्रआदि का सुन्दर कथन है और जो प्राचीन इति-हास के खोजियों के लिये प्रामाणिक सामग्री है[4]। अन्तिम सम्राट् **रक्कसगंग** (६८५-१०२४ ई०) जैनाचार्य श्री विजय के शिष्य थे। इन्होंने जैनधर्म को फैलाया और अपनी राजधानी में जैनमन्दिर बनवाया था[5]। गंगावंशी राज्य, जैनियों के लिये स्वर्ण समय (***Golden Age***) था। घोषाल के शब्दों में अनेक शिलालेखों से सिद्ध है कि गंगवंशी राजाओं ने जैन मन्दिर बनवाए, पूजा के लिये जिनेन्द्रदेव के प्रतिबिम्ब स्थापित कराये, जैन साधुओं के लिये गुफाएँ बनवाई और जैनधर्म की प्रभावना

१-४ Chamund Raya minister and Commander-in-Chief of Marasimha and his son Racamalla was a great warrior. For distinguished martial prowess for the glory of his king & country he won various titles—'Hero of Battles,' 'Lion of War' and 'Annihilator of Enimies' etc. etc. for his valiant fights. There was no battle in which he did not distinguish himself, nor was there any hero, who dared to challenge invincible Chamundraya. He was JAIN and wrote CHAMUNDRAYA PURANA containing History of Tirthankeras, Chakarvarties & Narayans etc. and is the oldest Kannada prose work, He was the diciple of Jain Acharyas Shri Ajitsena and Siddhanta Chakaravarti Shri Nemchandra, who were also gurus of King Racmalla.

—Prof. G. Brahmappa. VOA. Vol. III P. 4.

५ Rakkasa Ganga the last great King of Gangavadis encouraged Jain religion. He constructed a Jain temple. His guru was the Jaina saga Srivijaya.

Some H. J. K. & Heroes. P. 36.

के लिये बड़े २ दान दिये[1] । *Rice* के शब्दों में गंगवंशी राजाओं का परमात्मा श्री जिनेन्द्रदेव और इनका धर्म जैनमत था[2] ।

प्रारम्भिक चालुक्यवंशी सम्राट **जयसिंह** प्र० जैन धर्म के गाढ़े अनुरागी[3] और जैनाचार्य श्री गुणचन्द्र जी के परमभक्त थे[4] । इनके पुत्र **रणराग** जैनधर्म-प्रेमी थे, जिनके समय जिनेन्द्र भगवान की भक्ति के लिये जैनमन्दिरों को भेंट मिली[5] । इनके पुत्र **पुलिकेशी** प्र० (५५० ई०) अपने पिता व पितामह के समान जैनधर्मानुरागी थे[6] । इन्होंने जिनेन्द्र भगवान की वन्दना के लिये जैन मन्दिर बनवाये[7] । इनके उत्तराधिकारी महाराजा **कीर्ति वर्मा** प्र० (५६६-५६७ ई०) ने तो अखण्डित तण्डुल, पुष्प, धूप आदि सामग्री से जिनेन्द्र भगवान की पूजा करने के लिये भेंट दी[8] । **पुलिकेशी** द्वि० (६०६-६४२ ई०) बहुत ही प्रसिद्ध सम्राट हुए हैं । ये भी जैनधर्मानुरागी थे[9] । इन्होंने जैन कवि रविकीर्ति का अपने दरबार में बड़ा सम्मान किया था[10] । इन्होंने जिनेन्द्र भगवान की प्रभावना के लिए एक विशाल जैन मन्दिर बनवाया तो उनकी पूजा के लिये पुलिकेशी द्वि० ने गाँव भेंट किये[11] । इनके समय चीनी यात्री

---

१. Numerous inscriptions testify to the building of the Jaina temples, consecration of Jaina Images of the worship, hollowing out of caves for Jaina ascetics and grants to Jainas by the rulers of Ganga dynasty. —Ghosal, S. B J. I. Intro. P 19.

२. '*Jinendra*' as their God, '*Jainamata*' as their faith Dadiga and Madhava ruled over the earth."

—Rice. Mysore Gazetteer I. P. 310.

३ भोजबली: ज्ञानोदय, वर्ष १ पृ० ७०६.

४. Ep. Car. II. S.B 69 & Jain Shilalekh Singraha P.118

५-७ Fleet. S & O. C. Inscriptions. Ind. Ant VII. P. 110

८. "Kirtivarma I gave a grant to the temple of JINENDRA for providing the oblation and unbroken rice and perfumes and flowers etc."

—Fleet : Ind. Ant. XI. P. 72.

९-११. Pulakesin II was a paramount monarch. He had great

Hieun Tsang भारत में आये तो उन्होंने इनके राज्य में जैन धर्म की प्रभावना देखी[1]। महाराजा **विनयादित्य** (६८०-६९६ई.) और **विजयादित्य** (६९६-७३३ ई०) ने अर्हन्त देव की पूजा के लिये जैनमन्दिरों को दान दिये और जैनपुजारी श्री उदेदेव जी का सम्मान किया[2]! विजयादित्य के पुत्र **विक्रमादित्य द्वि०** (७३३-७४६ ई०) ने जैन मन्दिरों की मरम्मतें कराईं और जैनधर्म की प्रभावना के लिये दान दिये[3]। **अरिकेसरी** भी जैन धर्म के भक्त थे[4]। इनके सेनापति और राजमन्त्री प्रसिद्ध जैन कवि पम्प थे[5] जो आदि पम्प के नाम से भी प्रसिद्ध थे। इन्होंने ९४१ ई० में पम्प-रामायण रची थी। "आदिपुराण और भारत" भी इन्हीं की रचना है[6]।

पूर्वीय चालुक्यवंशी सम्राट् **विष्णुवर्द्धन तृ०** ने जैनाचार्य श्री कालीभद्र जी को जैन धर्म की प्रभावना के लिये दान दिये थे[7]। **कुब्ज विष्णुवर्द्धन** की रानी जैन धर्म में दृढ़ विश्वास रखती थी इसने जैन धर्म की प्रभावना के लिये गाँव भेंट कराये[8]। महाराजा **अम्म द्वि०** ने जैन मन्दिरों और जैन धर्म की प्रभावना के लिये दान दिये[9]। इनके सेनापति दुर्गराज इतने महायोद्धा थे कि उनकी तलवार देश-रक्षा के लिये हमेशा म्यान से बाहर रहती थी[10]। ये महायोद्धा इतने दृढ़ जैन धर्मी थे कि इनको जैन धर्म का स्तम्भ

---

leanings towards Jainism and patronised Jain poet Kavikirti. He constructed Jain temple at Alihole and Pulakesin II gave a grant for it. Some H.J.K. &HP 65

१. Jainism & Karnataka Culture. P. 21

२. Ind. Ant. XII. P. 112, Some H. J. K & Heroes P. 67.

३. Fleet, S & O. C. Inscription, Ind. Ant. VII. 111.

४-६. संक्षिप्त जैन इतिहास भाग ३ खण्ड ३ पृ० २६ व १५६.

७-९ Epigraphical Report Madras cited by Roa in Studies S I. J. II 20-25, Also Jainism & K. Culture. P. 27.

१०. Ep Ind. IX. 56, Some HJK & H. 68.

(***Pillar of Jainism***) कहा जाता था[1] । इन्होंने जिनेन्द्र भगवान की भक्ति के लिये जैन मन्दिर बनवाये और उनके खर्चे तथा प्रभावना के लिये अम्म द्वि० ने गांव भेंट किये[2] । महाराजा **विमलादित्य** (१०२२ ई०) त्रिकाला योगी सिद्धान्त श्री देशगनाचार्य के शिष्य[3] और जैन धर्म के भक्त थे[4] । इन्होंने जैन मन्दिरों को जिनेन्द्र भगवान की पूजा के लिए गाँव भेंट किये थे[5] ।

पश्चिमीय चालुक्य वंश के महाराजा **तैलप** द्वि० (६७३-६६७ ई०) जैन धर्म के दृढ विश्वासी थे[6] । जैनकवि श्री रन्न जी की रचनाओं से प्रसन्न होकर इन्होंने इनको 'कविरत्न', 'कवि-कुञ्जरांकुश, 'उभयभाषाकवि' आदि अनेक पदवियां प्रदान की थी[7] । ये राज्यमान्य कवि थे[8] । राजा की ओर से स्वर्णदण्ड, चंवर, छत्र, हाथी आदि उनके साथ चलते थे[9] । महाराजा तैलप के सेनापति मल्लप की पुत्री अतिमब्वे के लिये इन्होंने ६६३ ई० में अजितनाथ पुराण रचा था, जिस से प्रसन्न होकर तैलप ने उन्हें 'कवि चक्रवर्ती' (***King of Poets***) की पदवी प्रदान की थी[10] । अतिमब्वे जिनेन्द्र भगवान की भक्ति में इतना विश्वास रखती थी कि इसने जिनेन्द्र भगवान की हजारों सोने-चांदी की मूर्तियां स्थापित कराईं और जैन धर्म की प्रभावना के लिये इतने अधिक दान दिये कि वे 'दानचिन्तामणी' कहलाती थी[11] । तैलप के पुत्र **सत्याश्रय इरिववेडेना** (६६७-१००६) जैनगुरु श्री विमलचन्द्र पंडितदेव के

१-३ Ind. Hist. Quat. XI P. 40, Ep. Ind. IX P. 50, SHJK. & Heroes. P. 66.

४-५ संक्षिप्त जैन इतिहास, भा० ३ खण्ड ३ पृ० २७

६. "Tailapa II had a strong attachment for the religion of '*Jinas*'—SHJK& Heroes. P. 68. ज्ञानोदय वर्ष २ पृ० ७०६

७-११ सं० जैन इतिहास, भा० ३, खण्ड ३, पृ० १५७-१५८.

शिष्य थे[१]। इनके पुत्र जयसिंह तृ० (१०१८-१०४२ ई०) जैन धर्मानुरागी थे[२]। इन्होंने जिनेन्द्र भगवान की भक्ति के लिये जैन मन्दिर बनवाये[३]। जैन महाकवि श्री वादिराज सूरि के ज्ञान और विद्या पर तो जयसिंह मोहित ही थे। इनके दरबार में शास्त्रार्थ हुआ, जिसमें भिन्न भिन्न धर्मों के प्रसिद्ध प्रसिद्ध विद्वानों ने भाग लिया, परन्तु जैन महाकवि श्री वादिराजसूरि ने सबको हरा दिया। जिसके कारण महाराजा जयसिंह ने उन्हें 'जय-पत्र' और 'जगदेकमल्लवादी' (**World's Debator**) की पदवी प्रदान की[४] और सब विद्वानों को स्वीकार करना पड़ा :—

समदसि यदकलङ्ककीर्तने धर्मकीर्तिर्वचसि सुरपरोध न्यायवादेऽक्षपादः।
इति समयगुरू णामेकतः संगतानां प्रतिनिधिरिव देवो राजते वादिराजः"।

अर्थात्—वादिराजसूरि सभा में बोलने के लिये अकलङ्कदेव के समान, कीर्ति में धर्मकीर्ति के समान, वचनों में बृहस्पति के समान और न्यायवाद में गौतम गणधर के समान हैं। इस तरह वह जुदा २ धर्मगुरुओं के एकीभूत प्रतिनिधि के समान शोभित हैं।

कर्मों का फल तीर्थंकरों और मुनियों तक को भोगना पड़ता है। वादिराज को कुष्ट रोग होगया था। महाराजा जयसिंह को पता चला तो वे व्याकुल होगये। राजा को खुश करने के लिये एक दरबारी ने कहा, "महाराज, चिन्ता न करो यह खबर झूठी है"। राजा ने कहा कि कुछ भी हो मैं कल अवश्य उनके दर्शनों को जाऊँगा[५]। दरबारी घबराया कि मेरा झूठ प्रगट हो जायेगा और न मालूम क्या दण्ड मिले? वह भागा हुआ वादिराज जी के पास आया और उनके चरणों में गिर कर सारा हाल कह दिया।

१-३ Ep. Car. VIII. P. 142-143. SHJK & H. Page 68-69.
४-६ संक्षिप्त जैन इतिहास भा० ३ खण्ड ३ पृ० १४८-१५०

उन्होंने उसे शान्त किया और स्वयं जिनेन्द्र भगवान की भक्ति में 'एकीभाव स्तोत्र' रचने में तल्लीन होगये। अगले दिन महाराजा जयसिंह उनकी वन्दना को गये तो गुरु जी की काया स्वर्ण-समान सुन्दर देखकर प्रसन्न होगये। तुरन्त खबर देने वाले को बुलाकर असत्य कहने का कारण पूछा? आचार्य महाराज बोले, "हमने आपसे असत्य नहीं कहा, वास्तव में मुझे कुष्ट रोग होगया था, परन्तु 'जिनेन्द्र' भक्ति के प्रभाव से जाता रहा'[1]। जयसिंह के पुत्र **सोमेश्वर** प्र० (१०४२-१०६८ ई०) पक्के जैनधर्मी थे[2]। इन्होंने जैनधर्म की प्रभावना के लिये भूमि भेंट की और जैनाचार्य श्री अजितसेन जी से प्रभावित होकर उन्हें 'शब्द-चतुर्मुख' की पदवी प्रदान की[3]। इनके पुत्र **भुवनैकमल्ल सोमेश्वर** द्वि० (१०६८-१०७६ ई०) भी जैनधर्म के दृढ़ विश्वासी[4] और भव्य श्रावक थे[5] इन्होंने जैनधर्म की प्रभावना के लिये जैनाचार्य श्री कुलचन्द्रदेव को गाँव भेंट किये थे[6]। इनके छोटे भाई— **विक्रमादित्य द्वि०** (१०७६-११२६ ई०) बड़े वीर सम्राट् थे। ये जैनधर्म के भक्त थे[7]। इन्होंने जैन मन्दिरों को दान दिये जैनाचार्य श्री वासवचन्द्र जी भी इनके समय में हुये हैं[8]। महाकवि 'विल्हण' ने इन्हीं के समय अपना प्रसिद्ध काव्य 'विक्रमाङ्कदेव चरित' रचा था। महाराजा विक्रमादित्य महातपस्वी जैनाचार्य श्री अर्हन्तनन्दी के शिष्य थे[9]। इनके पुत्र **सोमेश्वर तृ०** (११२६—११३८ ई०) की एक उपाधि सर्वज्ञ (***All wise***) थी[10]। इनके बाद इनके छोटे भाई **जगदेकमल्ल** (११३८–११५० ई०) जैनधर्मी थे[11]। इनके महायोद्धा सेनापति नागवर्मा भी जैनधर्मी थे[12] इस प्रकार हर

---

१. संक्षिप्त जैन इतिहास भा० ३ ख० ३ पृ० १४८
२-५ Ep. Car. II No. 67 P. 30 Medieval Jainism P. 51, Some Historical Jain Lings & Heroes. Page 69.
६-१०. संक्षिप्त जैन इतिहास भा० ३ खण्ड ३ पृ० १२५-१२६.
११-१२ दिगम्बर जैन (सूरत) वर्ष ६ पृ० ७२ B.

तरह के चालुक्यवंशी राजाओं ने हर समय जैनधर्म की प्रभावना की[१] और *Smith* के शब्दों में वे निश्चित् रूप से जैनधर्म के बड़े अनुरागी रहे[२]।

राष्ट्रकूट वंशी नरेश बड़े योद्धा वीर और चन्द्रवंशी क्षत्रिय थे[३]। महाराजा दन्तिदुर्ग द्वि० (७४५—७५६ ई०) जैनधर्म प्रेमी थे[४]। इनके पुत्र कृष्णराज प्र० (७५६—७७५ ई०) पर जैन आचार्य श्री अकलङ्कदेव जी का गहरा प्रभाव था[५]। गोविन्दराज तृ० तो इतने योद्धा थे कि शत्रु उनके भय से कांपते थे। जिसके कारण ये 'शत्रु भयंकर' नाम से प्रसिद्ध थे[६]। ये जैन साधुओं का पक्का पक्ष करते थे[७]। इनके समय के जैनाचार्य श्री विमलचन्द्र जी इतने महाविद्वान् थे कि इन्होंने इनके महल पर नोटिस लगा दिया था कि यदि किसी भी धर्म का विद्वान् चाहे तो मुझसे शास्त्रार्थ करले[८]। इन्होंने जैन-मुनि श्री अरिकीर्त्ति जी को जैनधर्म की प्रभावना के लिये दान दिये थे[९]। इनके पुत्र अमोघवर्ष प्र० (८१५—८७७ ई०) जैनधर्मी[१०] और 'आदि पुराण' के लेखक जैनाचार्य श्री जिनसेन जी के शिष्य थे[११]। धवल व जयधवल आदि जैन-फिलौस्फी के प्रसिद्ध महान् ग्रन्थों की टीकाएँ इन्हीं के समय हुई थी[१२]। जैनाचार्य श्री उग्रादित्य ने भी अपने 'कल्याणकारक'

---

१. "The Chalukayas of whatever branch or age, were consistently patrons of Jainism."—Prof, Sharma : J & Karnataka Culture. P 29.

२. "The Chakukays were without doubt great supporters of Jainism"—Smith Early Hist, of India. P. 444.

३-४. Some Historical Jain Kings & Heroes. P. 40-43.

५. Hiralal, cat. of Mss. in C. P. & Berar. Int., J. & K. Culture P. 31.

६-९. EPCar. IX P. 43, Med, Jainism 36, SHJK& H 43-44

१०. Amoghavarsha was the greatest patron of Jainism and that he himself adopted the JAIN FAITH seems true"-Bom. Gag. I 88 P. 28 & Early History of Deccan. P. 95.

११-१२. Some Historical Jain Kings & Heroes P. 45-46.

नाम का प्रसिद्ध आयुर्वेदिक ग्रंथ *Medical Encyclopaedica* की रचना इन्हीं के समय की थी। अमोघवर्ष जिनेन्द्र भगवान के दृढ़ विश्वासी थे[१]। जैनधर्म की प्रभावना के लिये इन्होंने जैन मन्दिरों को खूब दिल खोलकर दान दिये[२]। अरबी लेखकों ने भी इनको जिनेन्द्र भगवान का पुजारी और सारे संसार के चौथे नम्बर का महान् सम्राट् स्वीकार किया है[३]। स्मिथ के शब्दों में इतने प्रसिद्ध महायोद्धा शहंशाह का जैनधर्म स्वीकार करना कोई साधारण बात नहीं थी[४]। ये जैनाचार्य श्री जिनसेन जी के चरणों में नमस्कार करके अपने आपको पवित्र मानते थे[५]। इनके ही प्रभाव से ये राज्य, अपने पुत्र कृष्णराज द्वि० को देकर स्वयं जैन साधु हो गये थे[६]। इन्होंने 'प्रश्नोत्तर-रत्नमाला' नाम का ऐसा सुन्दर जैन ग्रन्थ रचा कि जिसको कुछ लोग श्री शंकराचार्य जी की और कुछ श्वेताम्बरी महाचार्य की रचना बताते हैं,[७] परन्तु स्वयं इसी ग्रन्थ के प्रथम श्लोक से प्रगट है कि यह अमोघवर्ष की ही रचना है[८]। यह श्री वर्द्धमान महावीर जी के इतने परम भक्त थे

१-३ Amoghavarsha granted donations for Jain temples and wasa living ideal of Jain Ahinsa — Arab writers portray him as a *Worshipper of Jina* and one out of the 4 famous kings of the world. —Some Historical Jain Kings & Heroes P. 47.

४. दिगम्बर जैन (सुरत) वर्ष ६, पृ०७२।

५. Amoghavarsha prostrated himself before Jinasena and thought himself purified thereby".—Pathak: JBBRAS. Vol. XVIII. P. 224.

६. Amoghavarsha became a JAIN MONK towards the close of his career.—Smith: Hist. of India P. 429 Anekant Vol. V. P. 184. J. S. B. Vol. IX. P. 1. SHJK & Heroes. P. 42 & 46 जैन हितैषी वर्ष ११ पृ० ४५६.

७-८ अयोध्याप्रसाद गोयलीः जैन वीरों का इतिहास और हमारा पतन, पृ० ११५.

कि उनके शुभ नाम से ही अपने ग्रन्थ को आरम्भ करते हुये कहा:-

प्रणिपत्य वर्द्धमानं प्रश्नोत्तर रत्नमालिका वक्ष्ये ।
नाग नरामर वन्द्यं देवं देवाधियं वीरम् ॥
विवेकात्त्यक्तराज्येन राज्ञेयं रत्नमालिका ।
रचिताऽमोघ वर्षेण सुधियां सदलंकृति ॥

अर्थात्—श्री वर्द्धमान स्वामी को नमस्कार करके मैं राजा अमोघवर्ष, जिसने विवेक से राजपद त्याग दिया । प्रश्नोत्तर रत्नमाला नाम के ग्रन्थ की रचना करता हूँ ।

अमोघवर्ष के पुत्र **कृष्णराज द्वि०** ने जिनेन्द्र भगवान की प्रभावना के लिए जैन मन्दिर को दान दिये[१]। यह जैन धर्म के दृढ़ विश्वासी थे[२] और जैनाचार्य श्री गुणभद्र जी के शिष्य थे[३] । जिन्होंने उत्तरपुराण रचा था **इन्द्रराज तृ०** २४ फरवरी सन् ९१५ ई० को गद्दी पर बैठे । इन्होंने जैनधर्म की खूब प्रभावना की और धार्मिक कार्यों के लिये ४०० गांव दान दिये[४] । इनको विश्वास था कि जिनेन्द्र भगवान् की पूजा से इच्छाओं की स्वयं पूर्ति हो जाती है । इसलिये इन्होंने १६ वें तीर्थंकर श्री शान्तिनाथ जी के चरण स्थापित किये थे[५] । **कृष्णराज तृ०** ९४० ई० में गद्दी पर बैठे । ये इतने वीर थे कि चित्रकूट आदि अनेक किलों को विजित कर लिया था । जैनाचार्य श्री वादि घांघल भट्टा जी से प्रभावित होकर[६] इन्होंने जैनधर्म की

१-३ Krishna II was a devout Jain. His preceptor was Gunabhadracharya. He made a grant to a 'basadi' at Mulgand.—Altekar, loc. cit. P. 409.

४. JBBRAS. Vol. XVIII. P. 253 257 and 261.

५. Indra III made pedestal of Arhat *Shanti* in order that his own desires might be fulfilled.
—Some Historical Jaina Kings & Heroes. P. 48.

६. Krishna III was interested in Jainism. He had great regard for Jain guru Vadighangal Bhatta. Krishna patronised Ponna.— SHJK & Heroes. P. 48.

प्रभावना के अनेक कार्य किये । पुष्पदन्त नाम के ब्राह्मण कवि इन्हीं के समय में हुये हैं, जिन्होंने जैनधर्म ग्रहण कर लिया था। श्री कृष्णराज तृ० के राजमन्त्री भरत थे, जिनकी प्रार्थना पर इन्होंने 'महापुराण' नाम के ग्रन्थ की रचना की थी। 'हरिवंश' के रचयिता श्री धवल कवि भी इन्हीं के समय हुये थे। पोन्न नाम के प्रसिद्ध जैनकवि को कृष्णराज तृ० के दर्बार में बड़ा सम्मान प्राप्त था। महाराजा इन्द्रराज च० (९८२ ई०) पर तो जैनधर्म का इतना गाढ़ा रंग चढ़ा हुआ था कि जैन साधु होकर श्रवणबेलगोल पर्वत पर ऐसा कठोर तप किया, कि जिसे देखकर स्वर्ग के इन्द्र भी चकित रह गये[१]। इस प्रकार प्र० साधूराम शर्मा के शब्दों में राष्ट्रकूट-राज्य (७५४-९७४ ई०) जैनधर्म की प्रभावना का समय था[२]।

१२. राठौड़वंशी राजाओं ने हथूंड़ी (राजपुताना) में दशवीं शताब्दी में राज्य किया है, जिसके प्रथम सम्राट् हरिवर्मा थे। इनके पुत्र विदग्धराज (९१६) जैनधर्मी थे[३] जिन्होंने अपनी राजधानी में प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव जी का मन्दिर बनवाया था[४] और उनकी पूजा के लिये भूमि भेंट की थी[५]। इनके पुत्र महाराजा मम्मट (९३९) ने भी इस जैनमन्दिर को दान दिया था[६]। इनके पुत्र महाराजा धवल भी जैनधर्मी थे[७] इन्होंने जैनमन्दिर की मरम्मत कराई और हर प्रकार से जैनधर्म की प्रभावना में सहयोग दिया[८]। इन्होंने श्री

---

१. With an undisturbed mind performing Jain vows, Indraja gained the glory of the Kings of all Gods.
—Ep. car. XII. 27. P. 92.

२. The Age of Rastrakutas was a period of great activity among the Jains. —J & K Culture. P 29.

३-८ King Vidgdharaj was Jain. He built a temple of Rishabhadeva at Hathundi and made a gift of land to it. His son Mammata also made a grant for this temple. His son Dhaval was also a Jain. He renovated the Jain temple and helped in every way to glorify Jainism. —Reu. loc. cit. III. P. 91.

ऋषभदेव जी की मूर्ति की प्रतिष्ठा भी कराई थी[1]।

१३. **सोलंकीवंशी** नरेश **मूलराज** (९६१-९९६) ने चावड़ा वंशियों से गुजरात छीनकर अणहिलपाटन को अपनी राजधानी बनाली थी। यह जैनधर्म के भक्त थे[2] इन्होंने श्री जिनेन्द्र भगवान् की भक्ति के लिये एक बड़ा सुन्दर जैन मन्दिर बनवाया था[3]। इनके पुत्र **चामुंड** (९९७-१०१०) और इनके पुत्र **दुर्लभ** (१०१०-१०२२) तथा दुर्लभ के भतीजे **भीम** प्र० (१०२२-१०६४) ने जैन धर्म की प्रभावना के अनेक कार्य किये[4]। भीम प्र० के सेनापति विमलशाह जैनधर्मी और महायोद्धा थे। आबू का सरदार धन्धु बागी होगया था, तो उसे बश करने के लिये भीम ने इनको भेजा, इन्होंने बड़ी वीरता से उसपर विजय प्राप्त करली, जिससे खुश होकर भीम ने आबू की चित्रकूट पहाड़ी विमलशाह को देदी थी[5] जहाँ बिमलशाह ने लाखों रुपयों की लागत से बड़ा सुन्दर जैन मन्दिर बनवाया[6] जिसको विमलवस्ति कहते हैं[7]। महाराजा **कर्ण** (१०६४-१०९४) ने भी जैनधर्म की प्रभावना की। इनके उदय नाम के मन्त्री तो जिनेन्द्र-देव के इतने दृढ़ भक्त थे कि इन्होंने अहमदाबाद में उदयवराह नाम का जैन मन्दिर बनवाकर उसमें तीर्थंकरों की ७२ मूर्तियाँ स्थापित की थीं[8]। कर्ण का पुत्र **सिद्धराज जयसिंह** (१०९४-११४३) जैनधर्म के गाढ़े अनुरागी और श्रीवर्द्धमान महावीर के परम भक्त थे, जिनकी पूजा के लिये इन्होंने भ० महावीर का मन्दिर बनवाया। यह तीर्थ-यात्रा के इतने प्रेमी थे कि न केवल स्वयं, बल्कि दूसरों को भी

---

१. जैन वीरों का इतिहास और हमारा पतन, पृ० ११८
२-३ जैन वीरों का इतिहास और हमारा पतन पृ० ८५
४. जैन वीरों का इतिहास पृ० ४२
५-८ जैन वीरों का इतिहास और हमारा पतन पृ० ८७

यात्रा कराने के लिये यह शत्रुञ्जय जी तीर्थयात्रा को संघ लेगये थे और वहां के श्री आदिनाथ तीर्थंकर के मन्दिर को १२ गांव भेंट किये थे[१]। इनके दोनों राज्य-मन्त्री सांतु और मुँजाल जैनधर्मी थे[२]। सिद्धराज ने सोरठ देश को विजय करके सजन को वहाँ का अधिकारी बना दिया था, जिसने श्री गिरनार जी में श्री नेमनाथ २२ वें तीर्थंकर का बड़ा विशाल जैन मन्दिर बनवाया था[३]। कुमारपाल (११४३-११७४ ई०) बड़े प्रसिद्ध और महायोद्धा सम्राट् थे, जो श्वे० जैनाचार्य श्री हेमचन्द्रजी के शिष्य थे और इनके प्रभाव से जैनधर्मी हो गये थे[४]। इन्होंने मंगसिर सुदि दोयज सम्वत् १२१६ को श्रावक के व्रत ग्रहण किये थे[५]। इनको दूसरे तीर्थंकर श्री अजितनाथ जी में गाढ़ी श्रद्धा थी। युद्धों में अपनी विजय को यह इन्हीं की भक्ति का फल स्वीकार करते थे[६]। श्री तारंगाजी में इन्होंने करोड़ों रुपयों की लागत से श्री अजितनाथ जी का बड़ा विशाल मन्दिर बनवाया था[७]। इन्होंने शत्रुञ्जय जी, गिरनार जी आदि अनेक तीर्थ क्षेत्रों पर भी करोड़ों रुपयों की लागत के बड़े सुन्दर जैन मन्दिर बनवाये[८]। दृढ़ जैनी और अहिंसा धर्मी होने पर भी इन्होंने बड़े २ प्रसिद्ध युद्धों में विजय प्राप्त की। इन्होंने चित्तौड़ को जीता, मालवे के राजा को हराया, चन्द्रावती के सरदार विक्रमसिंह पर विजय पाई। पञ्जाब और सिन्ध में अपना

१-२ King Siddharaj Jay Singh showed deep regard for Jainism. He built a temple to Tirthankara Mahavira at Siddhapur. He took out a Sangha to Shatrunjaya and granted 12 villages for the Adihatha (First Jain Tirthanker's), temple of that holy place. His minsters Munjal and Santu were Jains
—Some Historical Jain Kings & Heroes. P. 88

३-४ जैन वीरो का इतिहास और हमारा पतन, पृ० ८८-८६।

५-८ 'श्री हेमचन्द्राचार्य' (आदर्श ग्रन्थमाला मुल्तान) पृ० २३-२५

झण्डा लहराया। दक्षिण में कोङ्कण प्रदेश जीतने के लिये अपने सेनापति अम्बड़ को भेजा, वह बलवान था इसके काबू में न आया तो स्वयं रणभूमि मेंजाकर अपनी तलवार के जौहर दिखाये। इस प्रकार दिग्विजय करके एक विशाल सलङ्की साम्राज्य स्थापित कर दिखाया[1]। प्रजा के दुखों को जानने और उनके दूर करने के भाव से वह वेश बदल कर रात्रि में घूमा करते थे। इनके राज्य में प्रजा बड़ी सुखी और खुशहाल थी इनकी राजधानी अनहिलपुर-पाटन में १८०० क्रोड़ाधिपति रहते थे[2]। इनके चरित्र में लिखा है:—

"महाराज कुमारपाल नें १५०० जैन मन्दिर बनवाये। १६००० मन्दिरों का जीर्णोद्धार किया, १४४४ नये जिन मंदिरों पर स्वर्ण कलश चढ़ाये। ९८ लाख रुपया अन्यान्य शुभदान कार्यों में खर्च किया। सातबार संघाधिपति होकर हजारों यात्रियों को साथ लें जैन तीर्थयात्रा की, पहली यात्रा में ही ९ लाख रुपये के नवरत्न श्री जिनेन्द्र भगवान की पूजा में चढ़ाये। ७२ लाख रुपया वार्षिक राज्य-कर श्रावकों को छोड़ा। धनहीन व्यक्तियों की सहायता के लिये एक करोड़ रुपया हर साल दिया। पुत्र हीन विधवाओं की सम्पत्ति राज्यभण्डार में जमा होने का कानून था, जिसमे लगभग ७२ लाख रुपया सालाना की आमदनी थी, जैन सम्राट कुमारपाल ने इसका लेना बन्द कर दियो था। इसने शिकार मांस भक्षण, मधुपान, वेश्या सेवन, आदि सप्तविसण्ण कानून द्वारा बन्द कर दिये थें। धर्म के नाम पर हर साल लाखों पशु मारे जाते थे इनको बन्द किया। जैनधर्म का विदेशों तक में प्रचार कराया। २१ महान ज्ञान भँडार स्थापित किये[3]। सैंकड़ों प्राचीन ग्रंथों की नकलें करवाई। यह निश्चित रुप मे सच्चे आदर्श जैनी थें[4]।"

---

१. जैन वीरों का इतिहास पृ० ४३

२-३. जैन वीरों का इतिहास और हमारा पतन पृ० ९५-९६

४. Kumarpal was without doubt a perfect model of Jain PURITY & PIETY—Tank: Some Distinguished Jains (Agra) P, 1-130.

गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के शब्दों में, कुमारपाल प्रतापी राजा और जैनधर्म के पोषक थे[1]। एक अंग्रेज विद्वान् के अनुसार "कुमारपाल ने जैनधर्म का बड़ी उत्कृष्टता से पालन किया और सारे गुजरात को आदर्श जैन राज्य बना दिया था[2]।

१४. **परिहार वंशी राजपूत** कन्नौज के स्वामी थे इस वंश का राजा **भोज** (८४०–८६०) महा योद्धा सम्राट और जैन गुरु श्री नप्पासूरिजी के प्रेमी थे[3]। महाराजा **कक्कुका** बड़े बलवान और जैन धर्मी थे[4]। इन्होंने जिनेन्द्र भगवान की भक्ति के लिए जैन मन्दिर बनवाया था।[5]

१५. **चौहान वंशी** राजाओं का राज्य नाडौल में ६६० से १२५२ ई० तक रहा। इस वंश के राजा **अश्वराज** जैन धर्म-प्रेमी थे[6]। इन्होंने अष्टमी, चतुर्दशी, दशलक्षण, अठाई पर्व के दिनों में हिंसा कानून द्वारा बंद कर रखी थी[7]। इनका महायोद्धा पुत्र **अल्हणदेव** तो जैन धर्म के बहुत ही गाढ़े अनुरागी थे[8]। इन्होंने भी जैनधर्म के पवित्र दिनों अर्थात् हर अष्टमी, हर इकादशी और हर चौदश के दिन हर प्रकार की हिंसा को राज-आज्ञा-पत्र द्वारा बन्द कर रखी थी[9]। यह श्री वर्द्धमान महावीर का परम भक्त थे। इन्होंने उनके

१. ओझा उदयपुर का इतिहास पृ० १४५

२. जैन वीरों का इतिहास और हमारा पतन, पृ० ६५

३. Some Historical Jain Kings & Heroes. P. 85.

४-५ Kakkuka was a follower of 'JAINISM'. He built a temple of 'JINENDRA'. —Ojha: loc. cit. P. 148.

६-६. Ashvaraja patronised Jains and gave commands for full observance of Ahinsa in his kingdom on certain days in the year. His son Alhandeva was also an ardent lover of Jainism and like his father issued commands for the stopping of 'Hinsa' on the 8th, 11th & 14th day of every lunar fortnight. —SHJK & Heroes P. 85.

वीर-मन्दिर को ११६२ में बहुत सी सम्पत्ति भेंट की थी[१]। अल्हणदेव राजपाट को त्याग कर जैनसाधु होगये थे। इनके इस दान के सम्बन्ध में टाड साहब को १२२८ ई० का लिखा हुआ एक ताम्रपत्र प्राप्त हुआ, जिसका कुछ अंश निम्न प्रकार है[२]:—

"सर्वशक्तिमान् जैन के ज्ञानकोश ने मनुष्य जाति की विषय-वासना और ग्रंथि मोचन कर दी। अहंकार, आत्मश्लाघा, भोगेच्छा, क्रोध और लोभ स्वर्ग, मर्त्य और पाताल को विभिन्न कर देते हैं महावीर (जैनधर्म के चौबीसवें तीर्थंकर) आपको सुख में रक्खें"। अति प्राचीनकाल में महान चौहानजाति समुद्र के तट तक राज्य करती और नादोल लक्ष्य द्वारा शासित होती थी उन्हीं को बारहवी पीढ़ी में उत्पन्न अलनदेव ने कुछ काल राज्य करके इस संसार को असार, शरीर को अपवित्र समझ कर अनेक धर्म शास्त्रों का अध्ययन करके वैराग्य ले लिया। इन्होंने ही श्रीमहावीर स्वामी के नाम पर मन्दिर उत्सर्ग किया और वृत्ति निर्द्धारित की और यह भी लिखा कि—"यह धन सुन्दरगाछा (ओसवाल जैनियों) वंशपरम्परा को बराबर मिलता रहे। जब तक सुन्दरगाछा लोगों के वंश में कोई जीवित रहेगा तबतक के लिये मैं नेयह वृत्ति निर्धारित की है। इसका जो कोई स्वामी होगा मैं उसका हाथ पकड़ कर कहता हूं कि यह वृत्ति वंशपरम्परा तक चली जावे। जो इस वृत्ति को दान करेगा वह साठसहस्त्र वर्ष तक स्वर्ग में बसेगा और जो इस वृत्ति को तोड़ेगा वह साठसहस्त्र वर्ष तक नर्क में रहेगा[३]।"

निश्चित रूप से लाखा बड़े योद्धा और देश भक्त थे। टाड साहब के शब्दों में, "महमूद गजनी अजमेर लूटने को आया तो इन चौहानों ने ही उसे युद्ध में घायल किया था[४] जिसके कारण वह नादौल की तरफ भाग गया था[५]। लाखा के पुत्र दादराव ने तो

---

१. In 1162 he (Alhandevea) made a grant in favour of the temple of Jina Mahavira, at Nadara Tank: "ictionary of Jain Biography (Arrah!) P. 43.

२-३. जैन वीरों का इतिहास और हमारा पतन 'पृ० ६८'.

४-५. टाड राजस्थान भा० २, अध्याय २७ पृ० ७४६।

६६२ ई० में जैनाचार्य श्री यशोभद्रजी के प्रभाव से जैन धर्म ग्रहण कर लिया था[1]। कल्हण, गजेसिंह और कुतिपाल भी जैन धर्म के प्रेमी थे[2]।

१६. अग्निकुल—हिन्दु मत के अनुसार परमार, परिहार, सोलंकी और चौहान अग्निकुल के राजपूत समझे जाते हैं, जो टाड साहब के कथनानुसार जैन धर्म में दीक्षित हुए थे[3]।

१७. चन्देले वंशी नरेश धङ्ग (६५०-६६६ ई०) के राज्य काल में जैनी उन्नति पर थे[4]। इन्हीं से आदर प्राप्त करने वाले सूर्यवंशी 'वीरपाहिल' ने ६५४ ई० में जैन मन्दिर को दान दिया था[5]। महाराजा कीर्तिवर्मा (१०४६—११००ई०) बड़े पराक्रमी और जैन धर्म-प्रेमी थे। आला और ऊदल जैसे महायोधा वीर इसी वंश के सम्राट थे। चन्देले वीर कुल से जैन धर्म का सम्पर्क रहा है[6]। इनकी राजधानी चन्देरी में इनके राजमहल के निकट आज भी अनेक जैन मूर्तियाँ देखने को मिलती हैं[7]।

१८. परमारवंशी मालवाके राजा थे, सिन्धु जैनधर्मी थे[8]। उज्जैन इनकी राजधानी थी। इनके कोई सन्तान न थी। एक दिन यह अपनी पटरानी रत्नावलि के साथ वन-क्रीडा को गये तो एक मुञ्ज (धान) के खेत में एक नन्हा बालक अँगूठा चूसते पड़ा पाया। रानी ने उसे उठा लिया और राजा से कहा कि इसको ही पुत्र समझो[9]। राजा ने वचन दे दिया कि मेरे बाद यही राज्य का

---

१. अयोध्याप्रसाद गोयली : जैन वीरों का इतिहास और हमारा पतन पृ० ६६।

२. जैन वीरों का इतिहास (जैन मित्र मंडल देहली) पृ० ५०।

३. टाडराजस्थान : खण्ड १ पृ० ४६ वे खण्ड २ अध्याय २६ पृ०७१३।

४-७. जैन वीरों का इतिहास (जैन मित्र मण्डल देहली) पृ० ४७-४८।

८-९ पं० विनोदीलाल: भक्ताम्बर टीका, श्लोक १३८, १७२, १६६

अधिकारी होगा। मुञ्ज के खेत से मिलने के कारण उन्होंने इसका नाम मुञ्ज रखा। कुछ समय बाद उसकी रानी रत्नावलि के भी एक पुत्र उत्पन्न हो गया, जिसका नाम उन्होंने सिन्धुलकुमार रखा, परन्तु बचनों के कारण इन्होंने राज्य मुञ्ज को ही दिया और अपने असली पुत्र सिन्धुल को युवराज्य बनाकर स्वयं जैनाचार्य श्री भावसरम जी से दीक्षा लेकर जैन साधु हो गये थे[२]। महाराजा मुञ्ज (९७४-९९५) बड़े प्रसिद्ध और जैनधर्मी सम्राट थे। जैनाचार्य श्री महासैन[३] और श्री अमितगती[४] तथा जैनकवि धनपाल का इन पर अधिक प्रभाव था[५] महाराजा सिंधुल (९९५-१०१८७ विश्वस्त रूप से जैन धर्मी थे[६]। इन्होंने जैनधर्म को खूब फैलाया और जैन मुनियों और जैन विद्वानों का बड़ा सन्मान किया, इनके शुभचन्द्र, भर्तृहरि और भोज नाम के तीन पुत्र थे[७] शुभचन्द्र तो जैनधर्म के इतने श्रद्धानी थे कि जैनाचार्य श्री धर्मधुरेन्द्र जी से दीक्षा ले बचपन में ही जैनसाधु होगये थे[८]। भर्तृहरिजी भी अहिंसा धर्मी थे।[९] परंतु रसायन की लालसा में यह जटाधारी साधु हो गये थे और कठोर तप से ऐसी रसायन बनाने की विद्या प्राप्त करली जिससे लोहा सोना बन जाय। अपने भाई को नग्न मुनि देखकर भर्तृहरि जी रसायन लेकर शुभचन्द्रजी के पास गये और कहा कि अब नग्न रहने एवं तपस्या करने की आवश्यकता नहीं है, मैंने ऐसी रसायन बनाली है जिस से लोहा सोना हो जाये। शुभचन्द्र जी ने कहा, "यदि स्वर्ण की आवश्यकता थी तो राज-पाट क्यों छोड़ा था? क्या वहां हीरे-जवाहरात स्वर्ण आदि की कुछ कमी थी? आत्मिक शान्ति और सच्चा सुख त्याग में है परिग्रह में नहीं"। उन्होंने अपने पांव का अंगूठा दबाया तो जिस पर्वत पर तप कर रहे थे वह

१-५ SHJK & Heroes. P. 87, Digamber Jain, vol. P. 72.
६-९ पं० विनोदीलाल : भक्ताम्बर टीका

सारा स्वर्णमयी होगया तब इन्होंने भर्तृहरि से कहा, "यदि तुम्हें स्वर्ण की ही आवश्यकता है तो यहां से उठाले, जितने स्वर्ण की तुम्हें आवश्यकता है"। यह अतिशय देखकर भर्तृहरि जी के हृदय के कपाट खुल गये और वह भी जैन साधु होगये[1] इन दोनों के दीक्षा ले लेने के कारण राज्य के अधिकारी इनके छोटे भाई महाराजा **भोज** (१०४८–१०६० ई०) हुये। यह जैन विद्वानों का बड़ा सन्मान करते थे[2]। जैनाचार्य श्री शान्तिसेन ने इनके दरबार में शास्त्रार्थ करके सैंकड़ों प्रसिद्ध अजैन विद्वानों पर जैनधर्म की गहरी छाप मारी[3]। जैनाचार्य श्री प्रभचन्द्र जी का तो महाराजा भोज पर इतना अधिक प्रभाव था कि भोज ने उनके चरणों में नमस्कार किया था[4]। जैनकवि धनपाल के प्रभाव से राजा भोज नें अहिंसाधर्म ग्रहण कर लिया था[5]। कवि धनञ्जय और जैनाचार्य श्री नेमिचन्द्र जी तथा श्री नयनन्दीजी ने भोज के राज्य समय जैनधर्म की प्रभावना के अनेक कार्य किये[6]। महाराजा भोज ने जिनेन्द्र-भक्ति के लिये जैन मन्दिर बनवाया था[7]। इनके सेनापति कुलचन्द्र भी जैनधर्मी थे[8]। श्री धनञ्जय जी ने भोजको मांस मदिरा

१. विनोदीलाल : भक्तामर स्तोत्र टीका।

२-३ Bhoj welcomed Jain Scholars. The great debator Shantisena graced his Darbar and held a successful debate with non-Jain scholars. SHJK & Heroes. P.87.

४. Jain Saint Prabhachandra also commanded respect from king Bhoja, who worshipped his feet.
—Ep. Car. II. Sr. No. 55.

५-६ Jain Poet Dhanpal possessed great influence and led the king to observe the teachings of Ahinsa. Kavi Dhananjya, acharyas Nemichandra & Nayanandi glorified JAINISM during his reign.
—Some Historical Jain King & Heroes. P. 87.

७. Annual Report of Archaelogical Survey of India. (1906—1907) P. 209.

८. विशेश्वरनाथ रेऊ, भारत के प्राचीन राज्यवंशीय (बम्बई) भा० १ पृ० ११५.

मधु, अभक्षण, बिनछनाजल, रात्रिभोजन और हिंसा आदि के त्याग की शिक्षा दी तो दरबारियों ने उनसे शास्त्रों के प्रमाण मांगे, जिस पर उन्होंने जैनग्रन्थों के हवाले न देकर केवल व्यास जी तथा केशव जी आदि अजैन महान् ऋषियों के प्रमाणों से अपने कथन की पुष्टि की[1]। महाकवि पं० विनोदीलालजी के शब्दों में, "भोज ने अपने दरबारियों के कहने से जैनाचार्य श्री मानतुङ्ग को लोहे की जञ्जीरों में जकड़कर २४ कालकोठों में बन्द करके ४८ मजबूत ताले लगवाकर नंगी तलवार का पहरा बिठा दिया। आचार्य महाराज ने पहले तीर्थंकर श्री ऋषभदेव जी की स्तुति आरम्भ करदी, जो आज तक **भक्तामर स्तोत्र** के नाम से प्रसिद्ध है। जिनेन्द्र-भक्ति के फल से लोहे की जञ्जीरें और ४८ ताले स्वयं टूटकर बन्दीखाने की २४ कोठरियों के किवाड़ आप से आप खुल गये[4]। उनको तीन बार बन्द किया और पहले से भी अधिक मजबूत ताले लगाये, परन्तु हर बार स्वयं ताले टूटकर जेलखाने के किवाड़ खुल जाते थे। जैनाचार्य श्री मानतुङ्ग जी के ज्ञान और अतिस्तोत्र से प्रभावित होकर राजा भोज मुनिराज के चरणों में गिर पड़े[5] और कहा:—

> मैं तुमको जान्यो नहीं मिथ्या संगत पाय।
> जैनधर्म मार्ग भलो ही सम्यक दृढि कराय ॥ ७०२ ॥
> तुम करुणा के सिंधु हो दीनानाथ दयाल।
> मोह श्रावक वृत दीजिये बहु विधि हो कृपाल ॥ ७०७ ॥
>
> —विनोदीलाल : भक्तामर स्तोत्र टीका

महाराजा भोज और इनके दरबारियों ने श्री मानतुङ्ग आचार्य से जैन धर्म ग्रहण कर लिया[6]। महाराजा **नरवर्मा देव** (११०४–११०७) महायोधा और जैनधर्म अनु रागी थे। जैनाचार्य

---

१. "अजैन दृष्टि में जैन मूलगुण" इसी पुस्तक का खण्ड ३।

२-४. पं० विनोदीलाल भक्तामर स्तोत्र टीका। जो श्रावण सुदि दशमी सम्वत् सत्रासो वटताल में औरङ्गजेब बादशाह के समय रची गई थी।

५-६. पं० विनोदीलाल : भक्तामर स्तोत्र टीका श्लोक ६६८-७५०।

श्री रत्नदेव जी के शास्त्रार्थ ने, जो इन्होंने श्री विद्याशिववादी जी से उज्जैन के महाकाली जी के मन्दिर में किया था, नरवमादेव के हृदय पर जैन धर्म का गहरा प्रभाव डाला था[1]। जैन गुरु श्री समुद्रघोष जी से धार्मिक चर्चा कर के यह बड़े प्रसन्न हुए[2]। जैन आचार्य श्री वल्लभसूरि जी से तो यह इतने अधिक प्रभावित थे कि इन्होंने उन के चरणों में सर झुकाया था[3]। इसके पुत्र **यशोवर्मादेव** ने जिनचन्द्र नाम के एक जैनी को गुजरात का गवर्नर बनाया था[4]। महाराजा **विन्धिया बर्मा** (११६५) ने श्री आशाधर आदि अनेक जैन विद्वानों का बड़ा सन्मान किया था[5]।

१६. **होयसलवंशी** सम्राट **विनयादित्य** (१०४७-११००) जैन धर्म के दृढ़ विश्वासी थे[6]। इन्होंने जिनेन्द्र भगवान की भक्ति और पूजा के लिये बहुत से जैन मन्दिर बनवाये[7]। ये जैनाचार्य श्री शान्तिदेव जी के शिष्य थे[8]। इनका पुत्र **ऐरयाङ्ग** जैन फिलोस्फी

१-३. Narvarmadeva, too, was fond of hearing religious discourses. Jainacharya Ratnadeva held a great debate with Shaiva Scholar Vidiya Shivavadi in the Mahakali temple of Ujjain to win the heart of the King and he cmae out successful in it. Narvarma was also pleased to hear the religious disconrse of Jain guru Samudraghosa as well and bowed his head at the feet of Jain teachar Vallabha Suri. Without douht he was greatly influenced by these teachers and the Jains enjoyed his royal patronage.
—SHJK & Heroes, P. 88.

४-५. Some Historical Jain Kings & Heroes P. 88.

६. Vinayaditya was an ardent follower of Jainism.
—Some Historical Jain Kings & Heroes, P. 77.

७-८. Epagraphic evidence points to Vinayaditya's construction of many temples. His Preceptor was Jain teacher Shantideva. —E.P. Car. II. S.B. 48 & 143.

के महाविद्वान् और जैन धर्म का अनुरागी थे[१]। इन्होंने जैन मन्दिरों की मरम्मत के लिये कई गांव भेंट किये थे[२]। ये जैनाचार्य श्री गोपनन्दी के शिष्य थे[३]। इनके बड़े पुत्र **बेलाल** प्र० (११००-११०६) जैनमुनि श्री चरुकीर्ति के शिष्य थे[४]।

बिट्टीदेव (११११-११४१) जैन धर्म के दृढ़ अनुयायी और जिनेन्द्र भगवान के पुजारी थे[५]। इनकी राजधानी में जिनेन्द्रदेव के ७०० जैन मन्दिर थे[६]। इनकी पुत्री बीमार होगई थी, जिस को विष्णु धर्म अनुयायी श्री रामनिज ने अच्छी कर दी थी, जिस से उसने इन्हें विष्णु धर्म में परिवर्तन कर लिया था जिस के कारण इनका नाम विष्णुवर्द्धन प्रसिद्ध होगया था, परन्तु फिर भी यह जैन आचार्यों में अनुराग रखते थे[७]। उनके रहने के लिये इन्होंने गुफाएँ बनवाईं[८] और मरम्मत के लिए गांव भेंट किये[९]। यही नहीं बल्कि जैन धर्म की प्रभावना के लिये जैन आचार्यों को भेंट देते रहे[१०]। २३वें तीर्थङ्कर श्री पार्श्वनाथ जी का नाम तो इन्होंने **विजय्या**

---

१. Ereyanga was great Jain logition and supporter of Jainism—Rice, vol. cit. P. 98.

२. Erayanaga granted Villages for the repairs of Jain temples. Ep. car. V. 190-191.

३-४. Some Historical Jain Kings & Heroes. P. 78-79.

५-६. Bittideva was ardent follower of the Jaina creed like his ancestors and worshipper of JINA. At his capital were 700 temples dedicated to that God.
—Buchanan: Travels. vol.II. P 80.

७. Inspite of his conversion, Vishnuvardhana continued to honour and Patronise JAIN GURUS.
—Saletore: loc. cit. P 78-79.

८-९ He (Nandivardhana) also built with devotion the Jaina abode and bestowed gifts for the repair of 'basadi' and for the maintenance of the Jaina rishis.—
EP. Car V. 149. P. 190-191.

१०. Cf Krishna Swami Aiyanger: Ancient India P. 239.

पार्श्वनाथ रखा था[१] क्योंकि इन्हें विश्वास था :—

"भ० पार्श्वनाथ के मन्दिर बनवाने के शुभ फल से मुझे युद्धों में विजय और पुत्र दोनों वस्तुएं प्राप्त हुई हैं और मेरा हृदय सुख और शान्ति से तृप्त होगया[२]।"

इनका सेनापति गङ्गराज महायोद्धा और जैनधर्मी था[३]। इसने पुराने जैन मन्दिरों की मरम्मतें करवाईं और नए जैन मन्दिर बनवाये[४]। इन्होंने जिनेन्द्रभगवान की मूर्तियों और इनके पुजारियों की रक्षा करना अपना कर्त्तव्य समझता था[५]। विष्णुवर्धन की रानी शान्तलादेवी जैन धर्म में दृढ़ विश्वास रखती थी[६]। इसने ११२३ ई० में एक बड़ा विशाल जैन मन्दिर बनवाया था[७]। ये व्रती श्राविका थी और इसने सल्लेखना के व्रत धारण किये थे[८]। विष्णु वर्द्धन के पुत्र महाराजा नरसिंह ने जैन मन्दिरों के लिये खूब दिल खोल कर दान दिए थे[९] और स्वयं जिनेन्द्र भगवान् के दर्शन-पूजा के लिए जैन-मन्दिरों में जाते थे[१०]। इनका सेनापति हुल्ल महा योद्धा और जैन धर्मी था,[११] जिस ने जैन धर्म की प्रभावना और जिनेन्द्र भक्ति के लिये बड़ा सुन्दर जैन मन्दिर बनवाया था[१२]। विष्णुवर्धन का पुत्र बल्लाल द्वि० (११७३-१२२० ई०)जैनाचार्य वासुपूज्य जी का शिष्य था[१३]। जिनेन्द्र भक्ति के लिये मन्दिरों में जाते थे और उनको दानदिये[१४]। नरसिंह तृ० (१२२०-१२५४) जैनधर्म में दृढ़ विश्वास रखते थे[१५]। इन्होंने जिनेन्द्र भगवान् की भक्ति की और जैन-मन्दिरों की

१-२ Visnuvardhana signified his respect saying, "By the merits of the consecration of Parsvanatha I obtained both a victory and the birth of a son and have been filled with joy." Thereupon he gave to the God name of VIJAYA-PARSVA".

EP. Car. V, Belur. 124.

३-५. "Gangraj his (Vishnuvardhana's) minister & general was considered one of the 3 pre-eminent promoters of Jainism. He endowed and repaired Jain temples and protected priests and images".

—Jainism & Karnataka Culture. P..41.

६-१५. Saletore: loc. cit. P. 81-82 & Some HJK&H. P.80-82.

मरम्मतें कराई[१]। जैनाचार्य श्री माघनन्दी सिद्धान्ता इनके गुरु थे और उनको जैनधर्म की प्रभावना के लिये दान दिये थे[२]। इनके भाई महाराजा रामनाथ (१२५४-१२९७ ई०) भी जैन धर्मी थे[३] इन्होंने २३वें तीर्थङ्कर श्री पार्श्वनाथ भगवान् को स्वर्ण भेंट किया था[४] शिलालेखों के अनुसार होयसलवंशी नरेश जैन धर्म के इतने प्रेमी थे कि इनकी शक्ति और प्रभाव को जैन धर्म की शक्ति और प्रभाव स्वीकार किया जाता था[५]।

२०. कलचूरि वंशी महायोधा विज्जलदेव (११५६-११६७) जैनधर्मी थे[६] जैनधर्म को दृढ़ बनाने में अधिक रुचि रखते थे[७]। जिनेन्द्र भगवान् की भक्ति के लिये इन्होंने बहुत से जैन मन्दिर बनवाये थे[८]। इनका पुत्र महाराजा सोमेश्वर भी जैनधर्म का अनुरागी था[९]। वास्तव में कलचूरि नरेश जैनधर्म के पोषक थे[१०]। यह जैन धर्म पालने में पक्के और यथेष्ट थे[११]।

२१. विजयनगर के नरेश हरिहर प्र० के समय उनकी राजधानी में १६ वें तीर्थंकर श्री शान्तिनाथ जी की मूर्ति की स्थापना हुई थी। कम्बड़हल्ली के दान-पत्र से प्रगट है "जैनियों का सभी गुणों से युक्त, लकुलीश्वरमत के अनुयायी और पाँच प्रकार की दीक्षा के संस्कारों को पालने के कारण सात करोड़ श्री रुद्रों ने

१-४ Saletore: loc. cit. P. 81-85. SHJK & Heroes P. 80-82

५. Inscriptions truly indicate the dynamic power of Hoysalas and their power meant also power of the Jaina religion patronised by them-J.&K.Culture. P.40.

६-९. Bijjala (1156-1167 A. D.) was himself a Jain and a great supporter of Jain sms. He took keen interest in safeguarding Jainism. He built many Jaina temples. His son Somesavra also was a supporter of Jainism. —Some Historical Jain Kings & Heroes. P. 73-75.

१०-११ प्रो० हीरालाल : राजपुताने के प्राचीन स्मारक, भूमिका।

एकत्रित होकर उस बस्ती (=जिनालय) का नाम 'एक्कोटि (=७ करोड़) जिनालय' रक्खा और पांच महा-शब्द का (भेरि आदि ५ प्रकार के बाजे बजाये जाने का जो उस समय सब से बड़ा सम्मान गिना जाता था) सन्मान भेंट किया था, और जो इस बात को स्वीकार न करे उसको 'शिवजी' का द्रोही निश्चित् किया जाता था'"। इस दान-पत्र का उल्लङ्घन और जैन दर्शनों का निरादर होने लगा तो जैनियों ने १३६८ में विजयनगर के महाराजा बुक्कराय प्र० के दरबार में शिकायत की । ये विष्णु धर्म के अनुयायी थे, फिर भी इन्होंने स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य, इस प्रकार डिग्री दी[२]:—

"जैन-दर्शन को पहले के समान पंच-महा-शब्दों और कलश का सम्मान प्राप्त रहेगा। कदाचित किसी प्रकार की हानि अथवा लाभ भक्तों (= जैनों को) होगा, तो वैष्णव उसे अपनी ही हानि अथवा लाभ समझेंगे। इस आशय का शासन लेख सभी बस्तियों (= जैन मन्दिरों) में लगवाया जावे। जब तक आकाश

---

१. An epigraphy dated about 1200 found at Kambadhalli registers the grant to Jains by SAIVAS. It states that possessors of all the ascetic qualities, followers of Lakulisvara doctrine, performers of the rites and the 5 kinds of DIKSHE or initiation, the 7 crores of Sʼiri Rudras having met together, granted to the basti name of EKKOTI (7 crores) Jinalaya and the privilege of the band of 5 chief instruments. He, who said, "this should not be" was to be looked upon as traitor to SIVA.

—Mysore Archaeological Report for 1915 P. 67.

२. Jaina-darsana is as before, entitled to the 5 great musical instruments and Kalasa , If loss or advancement should be caused to the Jaina-darsana through Baktas, the Vishnavas will kindly deem it as loss or advancement caused to their. The Sri Vaishanavas will to this effect, kindly set up a *sasana* in all the 'bastis' of the kingdom, *for as long as the sun and the*

में सूर्य और चन्द्रमा व्याप्त रहेंगे तब तक वैष्णव जैन दर्शन की निरन्तर रक्षा करेंगे। वैष्णव और जैनी दोनों एक ही हैं। इनको कदाचित् दो नहीं समझना चाहिए जो इस शासन का उल्लङ्घन करेगा वह राजा, सङ्घ (जैनियों) और समुदाय (वैष्णवों) का द्रोही समझा जावेगा"।

महाराजा देवराय प्र० की रानी विमा देवी जैनाचार्य श्री अभिनव चारुकीर्ति की शिष्या थी[१]। जिन्होंने १६ वें तीर्थंकर श्री शान्तिनाथ भगवान् की मूर्ति की स्थापना कराई थी[२]। हरिहर द्वि० का सेनापति इरुगप्पा जैनधर्म में दृढ़ विश्वास रखता था[३]। इसने उनकी राजधानी में १७ वें तीर्थंकर श्री कुन्थनाथ जी का जैन मन्दिर बनवाया[४] और रत्नमाला नाम का जैन ग्रन्थ लिखा था। इसके पुत्र भी जैन धर्मी थे और इन्होंने भी जैनधर्म की प्रभावना के अनेक कार्य किये[५]। राजकुमार उग्र जैनधर्म में दीक्षित हुये थे[६] हरिहर द्वि० के ही बैचप्प नाम के महायोद्धा

---

moon endure, the Vaishnavas creed will continue to protect the Jaina-darsana. The Vaishnavas and the Jainas are one, they must not be viewed as different. he who transgresses this rule, shall be a traitor to the king, to the '*Sanga*' and the *Samudaya.*

—The Glory of Gommatesvara P. 74.

१-२. Bimadevi queen of Devaraya I appears to have been a disciple of Jain teacher Abhinava Charukirti She set-up an image of Santinatha in Mangayi Basti. at Belgola — Ep. Car. II S.B. 377.

३-४ Irugapa the trusted General of Harihara II being a staunch Jaina erected Jaina temples of Kunthanatha.

—*Inscription on Lamp-Pillar of Ganagiti.*

५. His sons too seem to have *carried on the same policy* of Jaina cause. Ep. Ind. VIII, 22.

६. जैन वीरों का इतिहास (जै० मि० मं० ७८) पृ० ७५।

सेनापति जैनधर्मी थे, जिन्होंने देश रक्षा के लिये प्राणों की भेंट देदी, परन्तु रणभूमि को नहीं छोड़ा। देवराय द्वि० जो ब्राह्मणों के कल्पवृक्ष कहे जाते थे, निश्चित रूप से जैनधर्म प्रेमी थे[१]। इन्होंने जिनेन्द्र भगवान की पूजा के लिए जैन मन्दिरों को गाँव भेंट किये। यही नहीं, बल्कि इन्होंने इस विश्वास से कि जिनेन्द्र भगवान का मन्दिर बनवाने से देश के यश और उन्नति को चार चाँद लगते हैं, इन्होंने विजयनगर में २३ वें तीर्थङ्कर श्री पार्श्वनाथ का मन्दिर बनवाया[२]। कृष्णदेव (१५०६–१५२६ ई०) ने भी तीन लोक के नाथ जिनेन्द्र भगवान का मन्दिर बनवाया था[३]। विजयनगर के राजाओं के समय भी जैनधर्म सम्पूर्ण रूप में Protected Religion था[४]।

२१.—मैसूर के राजे जैनधर्म अनुरागी रहे हैं[५]। जैनतीर्थ श्रवणबेलगोल को अपने रहन से छोड़ देना और यह पाबन्दी लगा देना कि 'आइन्दा यह पवित्र भूमि कभी बेची या रहन नहीं रखी जावेगी' वास्तव में महाराजा मैसूर श्री चामराज ओडयर की जैनधर्म के लिये एक बड़ी सेवा है[६]। जैनगुरु श्री विशालकस जी का महाराजा श्री चिक्कदेवराय ओडेयर पर बड़ा प्रभाव

१-२ Devaraya II although is described as the tree of heaven to the Brahminas, undoubtedly patronised the Jains. In order that fame and merits might last as long as moon and stars, caused a temple to be built to **Arhant Parsvanatha.**

—Hultzach, S. I.I. Vol. I. P. 166.

३ Krishnadeva, well known for Brahmanical charities, also endowed Trailoky Natha Jinalaya.—Madras E.P. Rep. (1901) P. 188.

४ Under the rulers of Vijayanagara as well Jainism continued to be a **Protected Religion.** —J. & K. Culture. P. 46.

५-६ A like attitude towards the Jains has been maintained by the present ruling family. Two inscriptions of Sravana Belgola speak that of Chmaraja Wodeyar released Sravana Belgola from mortgage and also prohibited further alienation of it. This was certainly a great service to Jainism.—EP. Car. II. SB. 250, 352.

था[1]। महाराजा श्री कृष्णदेवराय औडयर जैनतीर्थ श्रवणबेलगोल की यात्रा को गये थे और इतने अधिक प्रभावित हुए कि वहाँ की श्री बाहुबली जी की जैनमूर्त्ति के लिये इन्होंने बहुत से गाँव भेंट किये थे[2]। मैसूर की राजकुमारी की प्रार्थना पर श्री देवचन्द्र ने १८३८ में 'राजवली कथा' नाम का बड़ा प्रभावशाली ग्रन्थ रचा था, जो E. P. Rice के शब्दों में जैन सिद्धान्त का सुन्दर इतिहास है[3]। महाराजा श्री कृष्णा राजिन्द्र औडयर भी जैनधर्म के बड़े प्रेमी थे। श्री बाहुबली जी के अभिषेक में स्वयं उत्साह पूर्वक भाग लेते थे[4]। इनके समान ही राजप्रमुख श्री जयचाम राजिन्द्र औडयर भी जैनधर्म-प्रेमी थे। यह भी श्री बाहुबली जी के अभिषेक उत्सव में शामिल होने के हेतु श्रवणबेलगोल की यात्रा को गये थे[5]।

२२-ग्वालियर के राजा सच्चे जैनभक्त थे[6], यहाँ के प्रसिद्ध सम्राट् माधो के पुत्र महाराजा महेन्द्रचन्द्र ने विक्रमी सं० १८८२ में ग्वालियर के पास सोहनिया नाम के नगर में कई लाख रुपये खर्च करके अर्हन्त भगवान की मूर्त्ति की प्रतिष्ठा कराई थी[7]। ये जैनधर्मानुयायी थे और २३ वें तीर्थङ्कर श्री पार्श्वनाथ के भक्त थे। श्री पार्श्वनाथ जी का जैन मन्दिर आज तक ग्वालियर के क़िले के अन्दर बना हुआ है[8]।

---

[1] Chikkadevaraya seems to have been greatly assisted by his Jaina teacher Visalaksa Pandita of Yalandur.
—Krishna Swami Aiyangar: Ancient India P. 84, 296-297.

[2] Krishnadevaraya himself visited Belgola and is said to have been so much impressed with the beauty of the colossus there that he granted many villages for its up keep and erected an alms-house in memory of his visit. —EP. Car. II. SB. 249.

[3] Rice (E. P.) Kanarese literature. P. 93.

[4-5] Glory of Gommatesvara by Mercury P. H., Madras-10.

[6-7] Journal of Royal Asiatic Society of Bangal Vol. XXXI. P. 399.

[8] The Jain temple of Parsva Nath built by them inside the fort Gwalior in 12th century may still be seen.
—Digambar Jain. (Surat) Vol. IX. P. 726 C.

२३—जयपुर को महाराजा जयसिंह ने १७२१ ई० में बसाया था। यह जैनधर्म अनुरागी थे[१]। इनके प्रधान मन्त्री विद्याधर जैनधर्मी थे[२]। जयपुर के दीवान अमरचन्द व्रती जैनधर्मी थे। रियासत जयपुर में ही भ० महावीर का अतिशयक्षेत्र चाँदनपुर है, जहाँ एक टीले पर खुद-बखुद गाय के स्थनों से दूध झरते देखकर ग्वाले ने आश्चर्यपूर्वक खोदा तो भ० महावीर की एक प्रभावशाली मूर्ति निकली[३], जो मनोकामना पूरा करने में प्रसिद्ध है[४]। यही कारण है कि इसको केवल जैन ही नहीं बल्कि अजैन गूजर और मीने भी बड़ी श्रद्धा के साथ पूजते हैं[५]। महाराजा जयपुर ने भी कई गाँव वीर-पूजा के लिये इस जैन मन्दिर को भेंट कर रखे हैं। भ० वीर का अतिशय इस पंचमकाल में भी साक्षात् आजमाने के लिये कम से कम एक बार अवश्य इस वीर अतिशय (Miracle Place of Mahavira) के दर्शन करके अपनी मनोकामना को पूरी करें[६]।

२४—भरतपुर के राजा ने अपने दीवान जोधराज को मृत्यु दण्ड का हुक्म दिया। उस ने भ० महावीर की आराधना और जयपुर राज्यके चाँदनपुरमें वीर स्वामीका विशाल मन्दिर बनवाने की प्रतिज्ञा की। उनको मारने के लिये तोप चलाई परन्तु गोला उनके चरणों को छूते ही ठण्डा हो गया। तीन बार तोप चलाई मगर हर बार ऐसा ही हुआ। इस अतिशय से प्रभावित होकर महाराजा भरतपुर ने उनको क्षमा कर दिया और भ० महावीर के मन्दिर बनवाने के लिये अपने पास से लाखों रुपया भेंट किया[७]।

२५—जोधपुर के राजाओं का जैनधर्म में गाढ़ा अनुराग रहा है। प्राचीन राठौरों ने तो जैनधर्म को खूब अपनाया। महाराजा

१-२ The Jains enjoyed his (Jaisingh's) peculiar estimation. Vidyadhar, his chief coadjutor was a Jain:
—Todd's Annals & Antiquities of Rajasthan. Vol. II. P. 339.

३-७ This book's PP. 135-136 & 201-204.

रायपालसिंह जैनधर्म प्रेमी थे। इनके पुत्र मोहन जी ने जैनाचार्य श्री शिवसेन जी के उपदेश से प्रभावित होकर जैनधर्म ग्रहण कर लिया था[1] और उनके पुत्र महाराजा सम्पत्तिसेन ने भी कार्तिक सुदी १३ सं० १३५१ में जैनधर्म स्वीकार किया था[2]।

२६–अजमेर के चौहान वंशी राजा पृथ्वीराज प्र० जैनधर्म अनुरागी थे। इन्होंने जैन साधु श्री अभयदेव जी से धार्मिक शिक्षा प्राप्त की थी[3]। श्री जिनेन्द्र भगवान में तो इनको इतना अधिक विश्वास था कि इन्होंने रणथम्भौरा के जैन मन्दिर जी के शिखर पर बड़ा अमूल्य स्वर्ण-कलश चढ़ाया था[4]। पृथ्वीराज द्वि० भी बड़े जैनधर्म प्रेमी थे[5]। जैन साधुओं का तो यह बहुत ही सम्मान करते थे। जिनेन्द्र भगवान की पूजा और जैनधर्म की प्रभावना के लिये इन्होंने जैन मन्दिर को गाँव भेंट किये थे[6]। इनके उत्तराधिकारी महाराजा सोमेश्वर प्रताप लंकेश्वर हुए हैं, यह जैनधर्म के अनुरागी[7] और २३ वें तीर्थङ्कर श्री पार्श्वनाथ जी के परम भक्त थे, जिनकी प्रभावना और भक्ति के लिये इन्होंने रेणुका नाम का गाँव श्री पार्श्वनाथ जी के मन्दिर जी को भेंट किया था[8]। इन्हीं के पुत्र महाराजा पृथ्वीराज तृ० थे, जो बड़े प्रसिद्ध तीरअन्दाज थे और जिन्होंने भारत की रक्षा के लिये शहाबुद्दीन

१-२ राजपूताने का जैनवीरों का इतिहास, पृ० १६५, १६६।

३-४ King Prithviraj 1st of Ajmer honoured Jain Saint Abhayadeva. He received instructions from him and constructed gold Pinnacle of the **Jain Temple** at Ranthambhora.
—Peterson's. Report IV. P. 87.

५-६ Prithviraj II was also a patron of Janism. He honoured the Jain Gurus of Bijaloya and bestowed the village of Morakuri for the up keep of the **Jain Temple**. SHJK & Heroes. P. 84.

७-८ Someshwara also patronised the Jains and made a gift of village Renuka to the **Parshvanatha** temple of Bijaloya. He was the illustrious father of Prithviraj III, who fought bravely with Shahabuddin Ghori.
--Reu ; loc. cit. 247-251 & Ojha; History of Rajputana. I. 363.

गौरी से महा घमासान का युद्ध किया था। महाराजा विजयसिंह के समय सन् १७८७ में मरहटों ने अजमेर पर चढ़ाई कर दी और मरहटा सरदार डी० बाइन ने अजमेर को चारों ओर से घेर लिया तो वहाँ के गवर्नर जैनधर्मानुयायी[1] धनराज सिन्धी ने इस वीरता से युद्ध किया कि उनके पाँव अजमेर में न जम सके[2]।

२७–राजपूताने के राजा तो जैनधर्म के इतने अधिक अनुरागी थे कि मेवाड़ राज्य में जब-जब भी किले की नींव रक्खी जाती थी, तब-तब ही राज्य की ओर से जैन मन्दिर बनवाये जाने की रीति थी[3]। ओझाजी के शब्दों में मेवाड़ राज्य में सूर्य छिपने के बाद अर्थात् रात्रि भोजन की आज्ञा न थी[4]। टाड साहब का कथन है, "कोई भी जैन यति उदयपुर में पधारे तो रानी महोदया आदरपूर्वक राज-महल में लाकर उनके ठहरने और आहार का प्रबन्ध करती थी"[5]। चौहान नरेश अल्हणदेव के बनवाये हुए जैन मन्दिरजी को भी इन्होंने श्री वर्द्धमान महावीर की पूजा और भक्ति के लिये दान दिये[6]। १६४६ ई० के आज्ञापत्र से प्रकट है कि बरसात में अधिक जीवों की उत्पत्ति होजाने के कारण इन्होंने चातुर्मास के निरन्तर चार महीनों तक तेल के कोल्हू, ईंटों के भट्टे, कुम्हार के पजावे और शराब की भट्टी आदि हिंसक कार्यों को क़ानून द्वारा बन्द कर दिया था[7]। चित्तौड़ में ७० फीट ऊँचा

१–२ जैनवीरों का इतिहास और हमारा पतन, पृ० २३४–२३५।

३ राजपूताने के जैनवीरों का इतिहास, पृ० ३३६–३४०।

४ ओझा जी द्वारा अनुदित टाड राजस्थान, जागीरी प्रथा, पृ० ११।

५ रा० रा० वासुदेव गोविन्द आप्टे: जैनधर्म महत्त्व (सूरत) भा. १, पृ. ३१

६ Digambar Jain (Surat) Vol. IX, P. 72 E.

७ Grant dated 1649 A. D. engraved on pillars of stones in the towns of Rasmi and Bakrole illustrate the scrupulous observances of the Rana's house towards **Jains**, where, in compliance with their peculiar, doctrine, the **Oil Mills** and the **Potter's Wheel** suspend their revolutions for the 4 months in the year (rainy season). —Digambar Jain, Vol. IX. P. 72 E.

स्तम्भ २३ वें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ जी की स्मृति में स्थापत्य होना[1] जैन तीर्थङ्करों के प्रति उनकी श्रद्धा और भक्ति को स्पष्टरूप से प्रकट करता है। महाराणा राजसिंह का तो यह आज्ञा पत्र था[2]:—

(१) "प्राचीन काल से जैनियों के मन्दिर और स्थानों को अधिकार मिला हुआ है, इस कारण कोई मनुष्य उनकी सीमा (हद) में जीव-वध न करे, यह उनका पुराना हक है।

(२) जो जीव नर हो या मादा, वध करने के लिए छाँट भी लिया हो, यदि जैनियों के स्थान से गुजर जाये तो वह अमर होजाता है, उसको फिर कोई मार नहीं सकता।

(३) राज-द्रोही, लुटेरे और जेलखाने से भागे हुए महा अपराधी को जो जैनियों के उपासरे में शरण ले, राज-कर्मचारी नहीं पकड़ेंगे।

(४) दान की हुई भूमि और अनेक नगरों में बनाई हुई उनकी संस्थाएँ कायम रहेंगी[3]।

महाराणा जसवन्तसिंह भी बड़े जैनधर्म-प्रेमी थे। उन्होंने मङ्गसिर बदी ७ सं० १८६३ को राज-आज्ञापत्र द्वारा जैन पवित्र

---

[1] There is an elaborately sculptured **Jain Pillars** at Chittore full 70 ft. high, which is dedicated to **Parsvanatha.** –Ibid. P. 72 E.

[२-३] Rana Raja Singh made to **Jains** grant, which runs as follows:–

a. From remote times the temples and the dwellings of the **Jains** have been athourized; let none therefore within their boundaries carry animals to slaughter—this is their ancient privilage.

b. Whatever life, whether man or animal, passes their abode for the purpose of being killed, is saved—(*amara*).

c. Traitors to the state, robbers, felons escaped confinement, who may fly for sactuary (*sirna*) to the dwelling of the *yaties* (**Jain priests**) shall not there be seized by the servants of the court.

d. The '*kunchi*' (grain) at harvest, the '*muti*' (handfull) of '*keranoh*', the charity land (doli) garlands and houses established by them in the various towns shall be maintained.

Samvat 1749, Mah Sud 5th. (By command)
A. D. 1693. SAH DAYAL (Minister).

दिनों अर्थात् प्रत्येक दोयज, पंचमी, अष्टमी, एकादशी और चतुर्दशी को तेल के कोल्हू, शराब की भट्टी आदि हिंसा के अनेक कार्यों को रोकने के क़ानून बनाये और इनका उल्लंघन करने वाले के लिये २५० रुपये जुर्माना निश्चित कर रखा था[१]। महाराणा उदयसिंह ने ३१ अगस्त १८५४ में राज-आज्ञापत्र द्वारा जैनियों के दशलाक्षणिक पर्व में भादों सुदी पञ्चमी से भादों सुदी चौदस तक हर प्रकार के हिंसामय कार्यों की बन्दी कर रखी थी[२]।

महाराणा कुम्भा ने मचींद दुर्ग में जिनेन्द्र भगवान की भक्ति के लिये एक बड़ा सुन्दर चैत्यालय बनवाया था[३]। जैन योद्धाओं ने गुजरात और मालवे के बादशाहों के साथ बड़ी वीरता से युद्ध किये, जिनकी स्मृति में महाराणा कुम्भा ने ही लाखों रुपये ख़र्च करके ९ मंज़िला जयकीर्ति-स्तम्भ बनवाया[४]।

महाराणा समरसिंह की माता जयतल्लदेवी जैन-धर्मी थी। उसने भी जिनेन्द्र भगवान की पूजा के लिये अनेक जैन मन्दिर बनवाये। ओझा जी के कथनानुसार चित्तौड़ में श्री पार्श्वनाथ भगवान का मन्दिर जयतल्लदेवी का ही बनवाया हुआ है[५]।

उदयपुर से ३९ मील दक्षिण में खैरवाड़े की सड़क के निकट धूलदेव नाम के नगर में पहले तीर्थंकर श्री ऋषभदेव का मन्दिर है, जिसमें केशर इतनी चढ़ती है कि उसका नाम 'केसरिया जी' अर्थात् 'केसरियानाथ' है, जिसको न केवल जैनी बल्कि शैव,

---

१–२ आज्ञापत्र की पूरी नक़ल के लिये 'जैन सिद्धान्त भास्कर', भाग १३, पृ० ११६, ११७, ११८।

३ राजपूताने के जैन वीरों का इतिहास, पृ० ३३८।

४ राजपूताने के जैन वीरों का इतिहास, पृ० ६७।

५ ओझा, राजपूताने का इतिहास पृ० ४७२।

वैष्णव आदि अजैन भी पूजते हैं[1]। ऋषभदेव जी की यह मूर्त्ति काले रंग की होने के कारण भील इनको कालाजी कह कर अपना इष्टदेव मानते हैं[2] और इतनी श्रद्धा रखते हैं कि उन पर चढ़ी हुई केशर को जल में घोल कर पी लेने पर कभी झूठ नहीं बोलते, चाहे उनकी जान चली जाये[3]। महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय ने श्री ऋषभदेव जी की पूजा के लिये उनके मन्दिर जी को गाँव भेंट किया था[4] और फतहसिंह तथा महाराणा भोपालसिंह ने भी श्री ऋषभदेव की मूर्त्ति को नमस्कार करके इनको लगभग अढाई लाख रुपये की भेंट दी थी[5]। इन्होंने जैन मुनि श्री चौथमल जी के उपदेश से प्रभावित होकर यहाँ पशु-हत्या होने पर पाबन्दी लगा दी थी[6]।

महाराणा साँगा ने चित्रकूट के स्थान पर जैनाचार्य श्री धर्मरत्न सूरि का हाथी, घोड़े, सेना और बाजे-गाजों से बड़ी भक्ति पूर्वक सत्कार किया था और उनके उपदेश से प्रभावित होकर शिकार आदि का त्याग कर दिया था[7]। मछेन्द्रगढ़ के राणा कुरशा के चारों पुत्रों समधर, वीरदास, हरिदास और उधरण ने जैनाचार्य श्री जिनेश्वर सूरि से श्रावक के व्रत लिये थे[8]। महाराणा उदयसिंह की रक्षा जैन वीर आशाशाह ने की थी और इन्होंने ही बनवीर से युद्ध करके उदयसिंह को राज वापिस दिलवाया था[9]। महाराणा प्रतापसिंह के राजमन्त्री तथा सेनापती भामाशाह जैनधर्मी थे[10], जिन्होंने देश-रक्षा के लिये स्वयं अनेक युद्ध किये, बल्कि महाराणा प्रताप को भी देश-सेवा के लिये उत्साहित किया और अकबर की आधीनता स्वीकार न करने दी[11]।

१– ६ राजपूताने के जैन वीरों का इतिहास, पृ० ४८, ६७, १६७।

७– ८ राजपूताने के जैन वीरों का इतिहास, पृ० ७१, २४५।

९–११ इसी ग्रन्थ के पृ० ४२६–४३१।

टाड साहब के शब्दों में न केवल भंडारी, राजमन्त्री, दण्ड-नायक ही जैनी थे, बल्कि वीर राजपूत राणाओं के सेनापति तक दायित्वपूर्ण और उच्च पदों पर परम्परा से जैनी नियुक्त किये जाते थे। वास्तव में जैन वीरों और राजपूतों का चाँद-चाँदनी जैसा सम्बन्ध रहा है और उनकी राजधानी चित्तौड़ में प्राचीन राजमहलों के निकट जैन मन्दिरों का होना स्वयं उनका अनुराग जैनधर्म में सिद्ध करता है[1]।

२८-सिक्खों के पूज्य गुरु श्री नानकदेव जी (१४६६-१५३६) अहिंसा के इतने अनुरागी थे कि उनका कहना था, "जब कपड़े पर खून की एक छींट लग जाने से वह अपवित्र हो जाता है तो जो खून से लिप्त मांस खाते हैं उनका हृदय कैसे शुद्ध और पवित्र रह सकता है[2]"। श्री गुरु गोविन्दसिंह जी की तलवार केवल दुखियों की रक्षा और हिंसा को मिटाने के लिये थी। महाराजा रणजीतसिंह ने क़ाबुल के प्रथम युद्ध के समय अंग्रेजों से जो अहदनामा किया था, उसमें इन्होंने अँग्रेजों से यह शर्त लिखवाई थी, "जहाँ सिक्खों और अँग्रेजों की फौज इकट्ठी रहेंगी वहाँ गौवध नहीं होगा"। महाराजा रणजीतसिंह के दरबारियों के शब्दों में सिक्ख गौ-भक्षक नहीं हो सकता[3]।

२६-मुस्लिम बादशाह दिगम्बर मुनियों के इतने अधिक संरक्षक थे कि जैनाचार्यों ने उनको "सूरित्राण" प्रकट किया है, जिसके बिगड़े हुए शब्द 'सुल्तान' के नाम से मुसलमान बादशाह आजतक प्रसिद्ध हैं[4]।

---

१ राजपूताने के जैन वीरों का इतिहास, पृ० ४२, ३४२।

२ इसी ग्रन्थ का पृ० ६७-६८।

३ दैनिक उर्दू वीरभारत (१६ मई १६४३) पृ० ३-५।

४ वीर (१ मार्च १६३२) भ० ६, पृ० १५३।

३०–गज़नी के सुल्तान सुबुक्तगीन (९७७–९९७ ई०) पर अहिंसा धर्म का इतना अधिक प्रभाव था कि उन्हें विश्वास था कि ग़ज़नी का राज्य ही उनको हरिणी के बच्चे पर अहिंसा करने से प्राप्त हुआ है। इनके पुत्र महमूद ग़ज़नी (९९७–१०३० ई०) अजमेर पर अधिकार जमाने को आये, तो टाड साहब के शब्दों में अहिंसा-धर्मानुयायी चौहानों ने ही उन्हें युद्ध में घायल किया था, जिसके कारण उन्हें नादोल की ओर भागना पड़ा[१]।

३१–ग़ौरीवंश के सुल्तान मोहम्मद ग़ौरी (११७५–१२०६ ई०) के समय में नग्न साधु अधिक संख्या में थे[२]। इन्होंने नग्न जैन साधुओं का सम्मान किया था, क्योंकि उनकी बेगम दिगम्बर जैनाचार्य के दर्शनों की अभिलाषिणी थी[३]।

३२–गुलामवंशी (१२०६-१२९० ई०) राज्य के समय मूलसङ्घ सेनगण के जैनाचार्य श्री दुर्लभसेन, अनेक दिगम्बर साधुओं सहित जैनधर्म की प्रभावना कर रहे थे[४]। इसी वंश के प्रथम सुल्तान कुतुबुद्दीन ने देहली में एक मीनार बनवाया था, जो आजतक 'कुतुबमीनार' के नाम से प्रसिद्ध है। तेरहवीं शताब्दी में यूरोपियन यात्री Morco Polo भारत में आये तो इन्हें जैन साधु मिले, जो नग्न अवस्था में बिना किसी रोक-टोक के बाजारों तक में चलते-फिरते थे[५]।

---

१ टाड राजस्थान भा० २, अध्याय २७, पृ० ७४८।

२ "It was the nudity of Jain Saints, whom Sultan found in a good number in India" —Elliot. loc. cit. P. 6.

३ It is said about Sultan Mohammad Ghori that he at least entertained one of them (**Jain Naked Saints**) since his wife desired to see the Chief of Digambaras".
—Ind. Ant. Vol. XXI, P, 361. quoted in New Ind. Ant. I, 517.

४ वीर, वर्ष ६, पृ० १५३।

५ Yule's Morco Polo, Vol. II, P. 366.

३३-ख़िलजीवंश (१२९०-१३२० ई०) का सुल्तान जलालुद्दीन तो इतना अहिंसा-प्रेमी था कि राज्य-विद्रोहियों तक को क्षमा कर देता था और भारियों तक पर भी हिंसा न करता था[1]। जैनाचार्य श्री महासेन जी ने अलाउद्दीन ख़िलजी से सम्मान प्राप्त किया था[2]। महासेन जी का इनके दरबार में धार्मिक शास्त्रार्थ हुआ था[3] और अलाउद्दीन बादशाह ने इनके ज्ञान और तप के सम्मुख अपना मस्तक झुकाया था[4]। १५३० ई० के शिलालेख से प्रकट है कि जैन मुनि विद्यानन्दि के गुरुपरम्परीण श्री आचार्य सिंहनन्दि ने इनके दरबार में बौद्ध आदि को वाद में हराया था[5]। वास्तव में अलाउद्दीन ख़िलजी के निकट दिगम्बर मुनियों को विशेष सम्मान प्राप्त था[6]। Dr. H V. Glasenapp के शब्दों में इन्होंने श्वेताम्बर जैनाचार्य श्री रामचन्द्र सूरि जी का भी बड़ा आदर-सत्कार किया था[7]।

३४-तुग़लकवंशी (१३२०-१४१३ ई०) राज्य में जैनियों को धार्मिक क्रियाओं के लिये पूरी स्वतन्त्रता प्राप्त थी[8]। इन्होंने जैन गुरुओं का सम्मान किया था[9]। सुल्तान ग़यासुद्दीन तुग़लक के 'सूरा' और 'वीरा' नाम के दो राज-मन्त्री जैनी थे[10]।

---

१ डा० ताराचन्द: अहले हिन्द की मुख़्तसर तवारीख़, भा० १, पृ० १९९

२ Studies in South Indian Jainism, Vol II, P. 132.

३-४ Mahasena appeared before Allauddin and held religious discussions with his adversaries. The Sultan bent his head before his profound learning and asceticism.
—J. S. Bhaskara, Vol. I, P. 109, New Ind. Ant. Vol. I, P. 517.

५-६ वीर (१ मार्च १९३२) वर्ष ९, पृ० १५४।

७ Dr. H. V. Glasenapp: Der Jainismus (Berlin) P. 66.

८-१० During the Tughalaq reign, the **Jainas** enjoyed much freedom, since more than one king of that line are reported to to have entertained the **Jaina Gurus**. 'Sura' and 'Vira' the two Jaina Chiefs of Pragvata clan, were the ministers of Ghayasuddin Tughalaq.
—Dr. Saletore: Karnataka Historical Review, Vol. IV. P. 86.

मोहम्मद तुग़लक ने दिगम्बर आचार्य श्री सिंहकीर्ति जी का सम्मान किया था[1]। फिरोज़शाह तुग़लक की बेगम को दिगम्बर मुनियों के दर्शन करने की बड़ी अभिलाषा थी, इसलिये स्वयं फिरोज़शाह ने अपने दरबार और महल में दिगम्बर मुनियों का स्वागत[2] और उनकी बेगम ने उनके दर्शन किये थे[3]। बादशाह ने उन्हें ३२ उपाधियाँ प्रदान की थीं[4]। रत्नशेखर नाम के जैन कवि का भी फिरोज़शाह ने बड़ा आदर-सत्कार किया था[5]।

३५–सैयदवंशी (१४१३–१४५१ ई०) राज्य में जैन नग्न साधुओं को विशेष सम्मान प्राप्त रहा है। बड़े-से-बड़ा घर भी इन के दर्शनों का अभिलाषी था और स्त्रियाँ तक उनके निकट बिना किसी प्रकार की रुकावट के आती थीं[6]।

३६–लोदीवंशी (१४५१–१५२६ ई०) राज्य में श्री कुमारसेन प्रतापसेन आदि अनेक दिगम्बर मुनि भारतवर्ष में विचर कर जन-कल्याण कर रहे थे[7]। सिकन्दर निज़ाम लोदी ने दिगम्बर मुनियों का आदर किया था[8]। दिगम्बराचार्य श्री विशालकीर्ति जी ने सिकन्दर के समक्ष वाद किया था[9]।

---

१ Padmavati Basti stone inscription of Humsa (Mysore) Saletore, loc. cit, P. 85.

२ Firozshah Tughalaq invited Digambara Jain Saints and entertained them at his Court, and Palace.
—New Indian Antiquary, Vol. I. P. 518.

३–४ वीर (१ मार्च १९३२) वर्ष ९, पृ० १५४।

५ "The Jain Poet Ratnasekhara was honoured also by Sultan Firozshah."
—Der Jainismus, P 66.

६ Jain Naked Saints held the highest honour. Every wealthy house was open to them even the apartments of women.
—McCrindle's Ancient India, P. 71.

७–८ वीर (१ मार्च १९३२) वर्ष ९, पृ० १५३–१५४।

९ मद्रास व मैसूर के जैन स्मारक, पृ० १६३, ३२२।

३७—मुग़लवंशी बाबर बादशाह (१५२६-१५३० ई०) अहिंसा के प्रेमी और मजहबी पक्षपात से पाक-साफ थे। इन्होंने मरते समय अपने पुत्र हुमायूँ को वसीयत की थी कि अपने हृदय को धार्मिक पक्षपात से शुद्ध रखना और गौ-हत्या से दूर रहना[1]। हुमायूँ (१५३०-१५४० ई०) के राज्य में जैनियों को धार्मिक कार्यों में किसी प्रकार की बाधा नहीं हुई। यह जीव-हिंसा और पशु-बलि को पसन्द नहीं करता था[2]।

३८—सूरिवंशी (१५४०-१५५५ ई०) राज्य में जैनधर्म खूब फूला-फला था[3]। मुग़ल और सूरि-राज्य के समय श्रीचन्द्र, माणिक्यचन्द्र, देवाचार्य, क्षेमकीर्ति आदि अनेक प्रसिद्ध दिगम्बर मुनि हुए हैं[4]। इसी समय फ्रेञ्च यात्री Bernier तथा Tavernier ने भारत में भ्रमण किया था। इन्होंने जैन नग्न साधुओं को बिना किसी रोक-टोक के बड़े-बड़े शहरों में चलते-फिरते पाया[5]। इनका कहना है, "नग्न जैन साधुओं के दर्शन न केवल पुरुष बल्कि नवयुवक तथा सुन्दर-से-सुन्दर स्त्रियाँ तक भी बड़ी श्रद्धा से करती थीं, परन्तु नग्न जैन साधुओं ने अपने मन और इन्द्रियों पर इतनी विजय प्राप्त कर रखी थी कि उनसे बात-चीत करके इनके हृदय में किसी प्रकार के विकार उत्पन्न नहीं होते थे[6]"। स्वयं शेरशाह सूरि के अफसर Mallik Mohd Jayasi ने अपने पद्मावत नाम के ग्रन्थ में दिगम्बर मुनियों का सूरि राज्य में होना स्वीकार किया है :—

"कोई ब्रह्माचारज पंथ लागे। कोई सुदिगम्बर आछा लागे[7]॥
—मलिक मुहम्मद जायसी : पद्मावत, २। ६०।

१–२ Romance of Cow (Bombay Humanitarian League) P. 27.

३–४ वीर (१ मार्च १९३२) वर्ष ९, पृ० १५५।

५–६ Foot notes Nos. 3 and 4 of this book's, P. 306.

७ New Indian Antiquary, (Nov. 1938) Vol. I, No. 8, P. 519.

अकबर बादशाह श्वेताम्बर जैन मुनि श्री हरिविजय सूरि का स्वागत कर रहे हैं

३६—अकबर (१५५६–१६०५ ई०) प्रो० रामस्वामी आयङ्गर के कथनानुसार अकबर जैनधर्म में श्रद्धा रखता था[१]। १५८२ ई० में इन्होंने अपना खास दूत गुजरात के सूबेदार साहब खाँ के पास श्वेताम्बर जैनाचार्य श्री हरिविजय सूरि को बुलाने के लिये भेजा।[२] राज्य-सवारी में न बैठ कर वह पैदल ही गुजरात से आगरा आये। अकबर उनकी इस धार्मिक दृढ़ता को देख कर आश्चर्य करने लगा और बड़ी धूम-धाम के साथ उनका स्वागत किया[३]। Bhandarkar Commemoration, Vol. I. P. 26 से स्पष्ट है, "श्री हरिविजय सूरि ने सम्राट अकबर को जैन बनाया था[४] और अकबर ने इनको जगद्गुरु की पदवी प्रदान की थी[५]

१ कृष्णलाल वर्मा: अकबर और जैनधर्म भूमिका पृ० 'क'।

२–५ अकबर और जैनधर्म (श्री आत्मानन्द जैन ट्रैक्ट सोसायटी, अम्बाला शहर) पृ० ८–१०।

१५८७ में अकबर ने शान्तिचन्द्र जी को जीवहिंसा बन्द करने के फ़रमान दिये थे[1]। अकबर ने श्री विजयसिंह सूरि को लाहौर बुलवाया, जहाँ इन्होंने ३६३ विद्वानों से इस विषय पर वाद-विवाद किया कि 'ईश्वर कर्ता-हर्ता नहीं है'। इनके सफल शास्त्रार्थ से प्रभावित होकर अकबर बहुत सन्तुष्ट हुआ और इसने उन्हें सवाई की पदवी दी[2]। जैन मुनि श्री शान्तिचन्द्र जी का भी अकबर पर बड़ा प्रभाव था। ईद से एक दिन पहले इन्होंने अकबर से कहा कि आज मैं यहाँ से जाऊँगा। बादशाह ने कारण पूछा तो उन्होंने कहा कि कल यहाँ हजारों नहीं बल्कि लाखों जीवों का वध होने वाला है। इन्होंने कुरानशरीफ़ की आयतों से सिद्ध किया कि कुर्बानी का मांस और खून खुदा को नहीं पहुँचता[3], बल्कि परहेजगारी पहुँचती है[4]। रोटी और शाक खाने ही से रोजे क़बूल होजाते हैं। इस पर उसने मुसल्मानों के मान्य धर्म-ग्रन्थ बहुत से उमरावों के सामने पढ़वाये और उनके दिल पर भी इसकी सचाई जमा दी पश्चात् उसने ढँढोरा पिटवा दिया कि कल ईद के दिन कोई किसी जीव को न मारे[5]।

अकबर के मस्तक में पीड़ा होरही थी। बहुत इलाज किये, परन्तु आराम न हुआ तो जैनाचार्य श्री भानुचन्द्र जी को बुला कर वेदना दूर करने को कहा। उन्होंने उत्तर दिया कि मैं वैद्य या हकीम नहीं। अकबर ने कहा, आपका वचन झूठा नहीं होता। केवल इतना कह दें कि दर्द जाता रहे। उन्होंने आश्वासन दिया और कहा कि अभी मिट जायेगा। बादशाह की श्रद्धा और श्री भानु-

---

१–२ अकबर और जैनधर्म, पृ० १०।

३–४ इसी ग्रन्थ के फुटनोट नं० ३–४ पृ० ६५।

५ श्री विद्याविजय जी : सूरीश्वर और सम्राट पृ० १४४, जिसका हवाला अकबर और जैनधर्म पृ० 'ख' पर है।

चन्द्र जी के चारित्र के प्रभाव से दर्द थोड़ी देर में मिट गया[1], जिसकी खुशी में इसके उमरावों ने कुर्बान करने के लिये ५०० गौएँ जमा कीं। अकबर को मालूम हुआ तो उसने हुक्म दिया, "मुझे सुख हो, इस खुशी में दूसरों को दुख हो, यह कैसे उचित है? इनको फौरन छोड़ दो[2]"। अबुलफज़ल के शब्दों में दिगम्बर जैन मुनियों का भी अधिक प्रभाव था[3]। अकबर की टकसाल का प्रबन्धक टोडरमल जैनधर्मी था[4]। अकबर ने राज-आज्ञापत्र द्वारा कश्मीर की झीलों से मछलियों का शिकार खेलना, जैन तीर्थों, पालीताना और शत्रुञ्जय की यात्रा करने वालों से कर का न लेना[5] प्रत्येक पञ्चमी, अष्टमी, चतुर्दशी, दशलक्षण-पर्व तथा कार्तिक, फाल्गुन और आषाढ़ के अन्त आठ दिनों अर्थात् अठाई-पर्व तथा जैन त्यौहार आदि सब मिलाकर साल भर में ६ मास जीवहिंसा को क़ानून द्वारा बन्द करना जैनियों के प्रभाव का ही फल था[6]। अकबर ने मांस भक्षण का निषेध करते हुए कहा है:—

"यह उचित नहीं है कि मनुष्य अपने उदर को पशुओं की कबर बनाये। मांस के सिवा और कोई भोजन न होने पर भी बाज को मांस-भक्षण का दण्ड अल्पायु मिलता है तो मनुष्यों को जिसका भोजन मांस नहीं, मांस-भक्षण का क्या दण्ड मिलेगा? कसाई आदि जीव-हिंसा करने वाले जब शहर से बाहर रहें तो मांस-भक्षण करने वालों को आबादी के अन्दर रहने का क्या अधिकार है! मेरे लिये कितने सुख की बात होती, यदि मेरा शरीर इतना बड़ा होता कि मांसाहारी केवल मेरे

१–२ सूरीश्वर और सम्राट्, पृ० १४६, अकबर और जैनधर्म पृ० 'ख' पर है।

३ Ayeen-i-Akbari (Lucknow) Vol. III, P. 87.

४ New Indian Antiquary. Vol. I, P. 519.

५ अकबर और जैनधर्म, पृ० ११।

६ Killing of animals and birds on certain days of the year was made **capital sentence** by Akbar for his contract with **Jains.**—Prof. S. N. Banerji's Religion of Akbar, P. 81.

शरीर ही को खा कर सन्तुष्ट होते और दूसरे जीवों की हिंसा न करते। जीव-हिंसा को रोकना बहुत आवश्यक है, इसीलिये मैंने स्वयं मांस खाना छोड़ दिया है[१]"।

V. A. Smith के शब्दों में "जैन साधुओं ने निःसन्देह अकबर को वर्षों तक शिक्षा दी, जिसके प्रभाव से उन्होंने अकबर से जैनधर्म के अनुसार इतने आचरण कराये कि लोग यह समझने लगे थे कि **अकबर बादशाह जैनी होगया**[२]। यही कारण है कि अकबर के राज्य समय पुर्तगीज पादरी Pinheiro भारत की यात्रा को आया तो उसने हर प्रकार से अकबर को जैनधर्मी पाया, इसीलिये इसने ३ सितम्बर १५६५ ई० को अपने बादशाह के पत्र में लिखा, "**अकबर 'जैनधर्म' का अनुयायी है**[३]"।

३६—जहाँगीर (१६०५–१६२७ ई०) जैन साधुओं का बड़ा आदर करते थे। इन्होंने जैनाचार्य श्री हरिविजय सूरि, श्री विजयसेन और श्री जिनचन्द्र जी का बड़ा सम्मान किया था[४]। श्री जिनचन्द्र जी के शिष्य श्री जिनसिंह जी को 'युग-प्रधान' की पदवी प्रदान की थी[५]। जैन तीर्थों के निकट जीवहिंसा की

---

१ Ayeen-i-Akbari, Vol. III, P. 330–400.

२ 'Jain holy men, undoubtedly gave Akbar prolonged instructions for years, which largely influenced his actions; and they secured his assent to their doctrines so far that he was reputed to have been converted to **Jainism**".

—Smith, Jain Teachers of Akbar, P. 335.

३ "He (Akbar) follows the sect of the **Jainas**"
—Pinheiro, quoted by Smith : Akbar, P. 262.

४–५ Jainacharyas were honoured also by Emperor Jehangir, who conferred the title of **'Yuga Pradhana'** on 'Jinasimha'.

—New Indian Antiquary, Vol. I, P. 520.

पाबन्दी के आज्ञापत्र निकले थे[1] और दशलाक्षण के जैन पर्व में तो निरन्तर १० दिन तक समस्त राज्य में हर प्रकार की हिंसा बन्द कर रखी थी[2]।

४०-शाहजहाँ (१६२७-१६५८ ई०) के समय आगरा में नग्न जैन साधुओं का आगमन हुआ था[3] और स्वयं शाहजहाँ ने दि० जैन कवि बनारसीदास जी का सम्मान किया था[4]। श्री जी. के. नारीमान, सम्पादक बॉम्बे क्रानिकल के शब्दों में अकबर और जहाँगीर के आज्ञापत्रों से भी अधिक जैनधर्म की प्रभावना और जीवहिंसा की जैन तीर्थ-स्थानों पर पाबन्दी के फर्मान शाहजहाँ ने जारी किये थे[5]।

४१-औरङ्गजेब (१६५८-१७०७ ई०) के समय आगरे के जैन कवि विनोदीलाल जी ने जैन मुनि श्री विश्वभूषण जी की भक्तामर मूल संस्कृत की टीका श्रावण शुक्ला दशमी सं० १७४६ को रविवार के दिन लिखी, जिसमें उन्होंने बताया कि औरङ्गजेब के राज्य में जैनियों को जिनेन्द्र-भक्ति आदि क्रियाओं की स्वतन्त्रता प्राप्त थी[6]। यह अपने इस्लाम धर्म का पक्का श्रद्धानी था, परन्तु

---

१ जी. के. नारीमान, सम्पादक बॉम्बे क्रानिकल: उर्दू दैनिक मिलाप, कृष्ण नं० अगस्त १९३९, पृ० ३६।

२ Jehangir forbidden hunting, fishing and other slaughter of animals in his reign during the ten days of pajjusan.
-Alfred Master I.C.S.: Vir Nirvan Day in London (W.J.M.) P.4.

३-४ वीर (१ मार्च १९३२) वर्ष ९, पृ० १५५।

५ उर्दू दैनिक मिलाप, कृष्ण नम्बर (अगस्त १९३९) पृ० ३६।

६ औरङ्गसाह बली को राज, पातसाह साहिब सिरताज।
सुभनिधान सकबन्ध नरेस, दिल्लीपति तप तेज दिनेस। ३१ ॥
जाके राज सुचैन सकल हम पाइयौ,
ईत भीत नहिं होय सुजिन गुन गाइयौ। ४४ ॥ —भक्तामर स्तोत्र।

फिर भी प्रो० रामस्वामी आयङ्गर के शब्दों में "जैन मुनियों का चारित्र, तप, विद्या और ज्ञान इतना अनुपम था कि उन्होंने अलाउद्दीन खिलजी और औरङ्गजेब जैसे पक्के मुसलमान बादशाहों से भी पर्याप्त सम्मान प्राप्त किया था[1]।

४२–मौहम्मदशाह (१७१६–१७४८ ई०) के मौलवियों ने श्री जी. के. नारीमान जी के शब्दों में फतवा दे रखा था कि "हदीस के अनुसार जीवहिंसा उचित नहीं है, इसलिये शहनशाह मौहम्मदशाह ने पशु-हत्या को बन्द कर दिया है[2]"।

४३–हैदरअली (१७६६–१७८२ ई०) ने श्रवणबेलगोल के जैन मन्दिरजी के लिये भूमि-दान दी थी[3]।

४४–नवाब हैदराबाद ने नग्न अवस्था में चलने-फिरने पर पाबन्दी लगा रखी थी, परन्तु नग्न जैन-मुनियों के लिये यह आज्ञा लागू न थी। उन्होंने अपने फर्मान मोर्रखा ६ रमजान १३५७ हिजरी द्वारा नग्न जैन साधुओं को मुस्तसना कर रखा था[4]।

४५–अंग्रेज़ी राज्य: Rev. Abbe J. A. Dubois मैसूर राज्य में पादरी थे। इन्होंने फ्रांसीसी भाषा की "भारतवर्ष के लोगों के स्वभाव, आचरण, रीतियों का और उनके धर्म तथा गृहस्थ सम्बन्धी कामों का वर्णन" नाम की पुस्तक में लिखा है:—

> "निःसन्देह जैनधर्म ही पृथ्वी पर एक सच्चा धर्म है और यही सर्व मनुष्यमात्र का प्राचीन धर्म है[5]"।

---

१ Jainacharyas by their character, attainment and scholarship command the respect of even Muhammaden Sovereigns like Allauddin and *Auranga Padusha* (Aurangzeb).
—Studies in South Indian Jainism Vol. II, P, 132.

२ उर्दू दैनिक मिलाप, कृष्ण नम्बर (अगस्त १६३१) पृ० ३६।

३ Even Hyder Ali, the bigoted Muslim King granted villages to the **Jaina Temples.** —New Ind. Ant. Vol. I, p. 521.

४ सदर आजम का निशान मुजारया नं० १६३, मौर्रखा ५ दिले १३४८ फ

५ जैनधर्म महत्त्व (सूरत) भा० १, पृ० ६३–११२, १६८–१६६।

१८०६ ई० में यह पुस्तक मैसूर के एकिंग रेजीडेण्ट Major Welke को मिली, जिन्होंने इसको बहुत प्रशंसा के साथ मद्रास के गवर्नर के पास भेजी। उक्त महोदय ने दो हजार पैगोडा (दक्षिण की एक मुद्रा का नाम है) में इसको खरीद कर २४ दिसम्बर १८०७ को इसे प्रकाशित करने के लिये East India Co. को दी, जिसको इन्होंने बहुत पसन्द किया और इसका फ्रांसीसी भाषा से अनुवाद करा कर १८१७ ई० में इसे अंग्रेजी भाषा में छपवाया। गवर्नर जनरल महोदय Lord William Bentinck (१८२८-१८३५ ई०) ने भी इस पुस्तक के कथन को सत्य स्वीकार करते हुए इसकी बहुत प्रशंसा की है।

भारत की सबसे प्रथम अंग्रेज सम्राज्ञी महारानी Victoria (१८३७–१६०१ ई०) ने राज्य-आज्ञापत्र द्वारा १ नवम्बर १८५८ को धार्मिक स्वतन्त्रता की घोषणा करते हुए स्पष्ट कहा था कि भारतीय प्रजा को अपने-अपने विश्वास के अनुसार धर्म पालने और धार्मिक क्रियाओं के करने का पूर्ण अधिकार है। १६ सितम्बर १८७१ ई० को लेफ्टिनेण्ट गवर्नर पञ्जाब तथा संयुक्त प्रान्त ने भी अपने भाषणों द्वारा इस राजकीय नियम का समर्थन किया था। Edward VII (१६०१–१६१० ई०) George V (१६१०-१६३६ ई०), Edward VIII (१६३६ ई०) और George VI (१६३६–१६४७ ई०) ने भी अपने राज्य समय इस धार्मिक स्वतन्त्रता के अधिकार को अपनाया था।

१८७६ ई० में जैन रथयात्रा खुर्जा में रोक दी गई, तो प्रान्तीय सरकार ने जैनियों के धार्मिक अधिकारों का अपहरण नहीं होने दिया। लाट साहब ने मेरठ के कमिश्नर को लिखकर उत्सव निकलवाया[१]।

---

१ Letter No. 811, dated 10th Nov. 1876, from Offg. Secy, Govt. N. W. P. to the Commissioner Meerut, which runs as follows.--

"Rath Yatra Procession already takes place in these provinces without any opposition, His Excellency therefore does not see how the Govt. can refuse to permit in Khurja".

देहली में जैन-रथ निकालना एक नियमित रिवाज न समझ कर (Never been customary at Delhi) राज्य कर्मचारी ने १८७७ ई० में जैनियों को रथ निकालने की आज्ञा न दी तो पंजाब के लाट सा० ने हुक्म दिया, "जैनियों का जुलूस इस प्रकार का नहीं है कि उसका विरोध किया जावे। इसकी मुखालफत केवल पक्षपात के कारण की जाती है, जो कदाचित् उचित नहीं है। जैनमूर्ति को अशिष्टतामय बताना गलत है, देहली के कमिश्नर ने स्वयं नग्न मूर्ति को देखा, परन्तु उसमें कोई ऐसी बात नहीं पाई जो विरोध के योग्य हो। लाट साहब महोदय कोई कारण नहीं समझते कि जैनियों को उनके धार्मिक कार्यों की रक्षा के लिये ब्रिटिश गवर्नमेण्ट का सहयोग क्यों प्राप्त न हो"[१]? १८७७ ई० में ही अम्बाला छावनी में जैन-रथ-यात्रा रोक दी गई तो Commanding Officer अम्बाला छावनी और पंजाब के लाट साहब ने खास प्रबन्ध कराकर उसे निकलवाया था[२]। १८८२ ई० में कोसी में जैन-रथयात्रा निकालने की वहाँ के कलक्टर ने आज्ञा न दी तो यू० पी० सरकार ने आगरे के कमिश्नर को कह कर जैन-रथ निकलवाया[३]। १८८८ में लखनऊ में भी जैन-रथ

---

१ Letter No. 2243 A. Dated Lahore, May 22, 1877 from Secretary Punjab Govt. to Commissioner Delhi. which runs as follows:—

"The Saraogi (Jain) procession is of such a character that the opposition is fanciful and only made in a spirit of intolerence and bigotry. The present Commissioner of Delhi has himself seen idol and there in nothing whatever to object on this ground. The Lt. Governor fails to see why Saraogi (Jain) sect should not have right to the protection of the British Government, in performance of their religious ceremonial.'

२ Letter No. 2483, Dated June 16, 1877 from Secretary Punjab Govt. to Commissioner Ambala.

३ Letter No 3976, Dated Nov. 13, 1882, from J. R. Reid Esqr. Offg. Secy. N.W.P.& Oudh Govt. to Comr. Agra, with the remark:

"The Govt. is not inclined to lay much stress on the mere fact that the procession is an innovation in Kosi".

के निकलने को रोक दिया गया तो यू० पी० के लाट साहब ने लखनऊ के कमिश्नर को लिखकर निकलवाया[१]। बङ्गाल गवर्नमेंट ने भी स्वीकार किया, जैन समाज भारत की Important Community है और इसको अपने धर्म की प्रभावना और प्रचार का पूरा अधिकार प्राप्त है[२]।

Privy Council ने क़ानूनी दृष्टि से भी धार्मिक जुलूसों के अधिकार को स्वीकार करते हुए निश्चित किया है, "पुजारी या मुल्ला यह कह कर कि इस समय आरती अथवा नमाज़ होरही है, जुलूस या उसके बाजों को नहीं रोक सकता[३]"। नग्न जैन मुनि तो अंग्रेजी राज्य में एक स्थान से दूसरे स्थान पर बिना किसी प्रकार की पाबन्दी के विहार करते ही थे[४]।

H.L.O. Garret I.E.S. और चौधरी अब्दुलहमीद खाँ ने अपनी 'हाई रोड्स ऑफ इण्डियन हिस्ट्री' में जैनधर्म को बौद्ध धर्म की शाखा और भगवान महावीर को जैनधर्म का संस्थापक लिख दिया था, जिसको जैनियों ने ऐतिहासिक प्रमाणों से गलत सिद्ध कर दिया तो Sir George Anderson डायरेक्टर तालीम ने इसका पढ़ाना मदरसों में बन्द कर दिया[५] और

---

१ Letter No I010 / III—278 A. 15 / 1888, Dated Auguast 4, 1888, from Secy. to Govt. N. W. P, & Oudh to Commissioner Lucknow.

२ Letter No. 5403 of Oct. 15, 1909, from Secy. Govt. Bengal to Digamber Jain Maha Sabha.

३ "The worshippers in a mosque or temple, which abutted on a high road, could not compel the processionists to internist their worship while passing the mosque or temple on the ground that there was a continuous worship their".

—Lord Dunendin : A. L. J. Vol. XXIII, P. 179.

४ Vir, Vol. IX (1st July 1932) P. P. 356-359.

५ Circular No. 5256 B. Dated April 23, 1925, from Sir George Anderson, Director, Public Instruction, Punjab to Divisional Inspectors of Schools Punjab:—

"Inform the Schools in your division that the High Roads of Indian History, Book II recommended for use is Schools vide my

पब्लिशर को हुक्म दिया कि अपनी हिस्ट्री को जैनियों के विरोध के अनुसार ठीक करें[१]।

१९३८ में Pigeon Shoot के नाम से Imperial Secretariate नई देहली में हजारों कबूतर मारे गये तो जैनियों को बड़ा दुख हुआ। अगले साल फिर २९ मार्च १९३९ को दूसरों की हजारों प्यारी जानों पर दिल बहलाने का दिन फिर निश्चित हुआ तो K. B. Jinraja Hegde, M. L. A. के कहने पर नई देहली के जैनियों ने श्री वायसराय महोदय से हजारों बेगुनाह कबूतरों के मारे जाने को बन्द करने के लिये प्रस्ताव भेजा[२], जिस पर Lord Linlithgow (१९३६-१९४३ ई०) ने तुरन्त सदा के लिये इस जीव-हिंसा को बन्द कर दिया। इस प्रकार जैनियों को ब्रिटिश शासन का सहयोग पूर्णरूप से प्राप्त रहा।

४६–भारत की स्वतन्त्रता: प्रथम महायुद्ध (१९१४-१९१८) के समय अंग्रेजों ने जब यह विश्वास दिलाया कि यदि भारत हमारी सहायता करे और हम जीत जायें तो भारत को 'होमरूल' देंगे, तो देश को एक बार फिर सदा के लिये स्वतन्त्र देखने की अभिलाषा से अपने भारतवासियों के साथ-साथ जैनियों ने थोड़ी संख्या में होने पर भी अधिक-से-अधिक रंगरूट भर्ती कराये और करोड़ों रुपये चन्दे और कर्जे में देश-सेवा के लिये अर्पण किये। इन्दौर के

Circular No. 1/2878 B. of Feb. 27, 1925, the chapter on **The Founder of Jainism Pages 12-15 Should not from part** of the school teachings, as it contains passages to which objection has been taken by the Jains". The Publishers have been asked to revise the chapter.

१ Letter No. 5258 B. of April 24, 1925, from Director P. I. Punjab to M/s. Uttar Chand Kapur & Sons Publishers, Lahore.

"**The Founder of Jainism**" contains passages objectionable to **Jain**, It has therefore been decided that these may be modified in the light of the criticisms made by Shri Atamanand Jain Sabha.

२ For full resolution, see Hindustan Times, New Delhi, Dated, March 27, 1939.

अकेले जैनवीर सेठ हुकमचन्द जी ने १० लाख रुपये War Relief Fund और पूरे एक करोड़ रुपये War Loan में दिये[1]। जीतने पर भी होमरूल न मिलने के कारण दूसरे महायुद्ध (१६३६-१६४५ ई०) के समय भारत ने अंग्रेजों को सहयोग देने से इंकार कर दिया, तो ये अहिंसा-प्रेमी वीर श्री महात्मा गांधी ही थे कि जिन्होंने संसार में सुख-शान्ति स्थापित करने के हेतु आपत्ति के समय अंग्रेजों की सहायता के लिये देश को तैयार किया। देश की आवाज पर जैनी कैसे पीछे रह सकते थे? न केवल रुपये से सहायता की, बल्कि Engineers, Scientists and Pilots आदि अनेक रूप में जैन नवयुवकों ने अपने भारत-वासियों के कन्धे-से-कन्धा मिला कर वह वीरता और योग्यता दिखाई कि युद्ध विजयपूर्वक समाप्त होगया। भारत को स्वतन्त्र करने के स्थान पर जब इसके नेताओं और देशभक्तों पर अत्याचार होने लगे, तो न केवल जैन-वीर बल्कि जैन-महिलाएँ भी आगे बढ़ीं। जैन-वीर और वीराङ्गनाएँ जेलों में गये, पुलिस के डण्डे खाये, जुर्माने अदा किये। यही नहीं, बल्कि जिनको जेल में ठूंस दिया जाता था, उनके पीछे उनके स्त्री-बच्चों को तङ्ग किया जाता था। जुर्माने की वसूलयाबी में उनके घर का जरूरी सामान और खाने-पीने की रसद तक कुर्क कर ली जाती थी। अनेक जैन-वीरों ने उनके जुर्माने अपने पास से भरे और उनके कुटुम्बियों को बिना किसी स्वार्थ के खाने-पीने का सामान और हर प्रकार का सहयोग दिया।

George Catlion के शब्दों में महात्मा गांधी जी की माता जैन-धर्म अनुरागी थीं और उनके हृदय पर जैन-साधु का

---

१ सर सेठ हुकमचन्द अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० १३१।

अधिक प्रभाव था[१]" । Roman Rollard के अनुसार "महात्मा गाँधी के माता-पिता जैनधर्मी थे[२] और उनके विलायत जाने से पहले उनकी माता ने उन्हें जैन साधु से मांस, शराब और पर-स्त्री सेवन के त्याग की तीन प्रतिज्ञाएँ दिलवाई थीं[३]"। Alfred Master, I. C. S., C. I. E. भी इसी बात की पुष्टि करते हुए कहते हैं, "म० गाँधी को तीनों प्रतिज्ञाएँ किसी ब्राह्मण से नहीं, बल्कि बेचर जी नाम के जैन-साधु से दिलवाई थीं[४]" । म० गाँधी जी अपनी 'आत्मकथा' में स्वयं स्वीकार करते हैं कि, "मुझे कई बार मांस-भक्षण और शराब पीने के लिये विलायत में मजबूर किया गया, परन्तु ऐसे अवसरों पर जैन-गुरु से ली हुई प्रतिज्ञा मेरे सम्मुख आ खड़ी होती थी, जिसके कारण मैं इन पापों से बचा रहा[५]" । आज का सारा संसार गाँधी जी को अहिंसा का सच्चा पुजारी स्वीकार करता है और वास्तव में वे अहिंसा के दृढ़ श्रद्धानी थे और इन्हीं के प्रभाव से देश ने अहिंसाको अपनाया, परन्तु गाँधी जी ने अहिंसा तत्व को कहाँ से प्राप्त किया ? इटली के विचारक Luciano Magrini के शब्दों में, "महात्मा जी ने अहिंसा सिद्धान्त को जैनधर्म से ही सीख कर इतनी ऊँची पदवी प्राप्त की है[६]" । Dr. Felix Valyi के अनुसार, "जैनगुरु

---

१ "M. K. Gandhi's mother was under Jain influence. Although she was a Vaishnava Hindu, she came much under the influence of **a Jain Monk**" —In the Path of Mahatma Gandhi, P. 20.

२-३ His (Gandhi's) parents were the followers of **Jains.** Before leaving India his mother made him take three **Vows** of **Jains**, which precribe abstention from meat, wine and sexual intercourse. —Roman Rollard: Mahatma Gandhi. P. 9, 11

४ Before the late Mahatma Gandhi left Rajkot for England as a youth, his mother persuaded him to vow to abstain from wine flesh and women, not before a Brahman, but before Pujya Bechar Ji, a well known **Jaina Sadhu.**
--Vir Nirvan Day in London (World Jain Mission) P. 6

५ महात्मा गाँधीः आत्मकथा भा० १ पृ० ३६ ।

६ "It is **Jain Religion** to which his (Gandhi's) relatives belonged, which taught him the principle of Ahinsa that governs the **whole** of his **apostleship.** —India, Brahma & Gandhi

के प्रभाव से गाँधी जी अहिंसा के दृढ़ विश्वासी हुए हैं[१]"। डा० पट्टाभि सीतारमैय्या ने इसलिये कहा, "इस सचाई से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि गाँधी जी ने अहिंसा-तत्व को जैनधर्म से प्राप्त किया है[२]"। कुमार स्वामीराजा के अनुसार "गाँधीवाद जैनधर्म का ही दूसरा रूप है[३]"। स्वयं महात्मा जी स्वीकार करते हैं, "यूरोप के तत्त्व ज्ञानियों में महात्मा टॉल्स्टाय को पहली श्रेणी और रास्किन को दूसरी श्रेणी का विद्वान् समझता हूँ, परन्तु जैन धर्मानुयायी श्रीमद् राजचन्द्र जी का अनुभव इन दोनों से बढ़ा-चढ़ा है[४]। इनके जीवन का प्रभाव मेरे जीवन पर इतना पड़ा है कि मैं वर्णन नहीं कर सकता[५]"। यही नहीं बल्कि उन्होंने बताया, "भगवान महावीर अहिंसा के अवतार थे। इनकी पवित्रता ने संसार को जीत लिया था। अहिंसा तत्त्व को यदि किसी ने अधिक से अधिक विकासित किया तो वह महावीर स्वामी थे[६]"। Dr. Herr Lothar Wendel के अनुसार, "अहिंसा के बिना भारत स्वप्न में भी स्वतन्त्र नहीं हो सकता था[७]"। जब ऐतिहासिक रूप से यह सिद्ध है कि जैन वीर महात्मा गाँधी ने जैन सिद्धान्त—अहिंसा द्वारा भारत को स्वतन्त्र कराया तो क्या **गाँधी जी की विजय जैन सिद्धान्त की विजय नहीं है ?**

---

१ "Gandhi ji himself was inspired by **Jain Guru**".-VOA. II.P.102

२-३ इसी ग्रन्थ के पृ० १७५, ८६, ७७।

४-६ M. Gandhi: Shri Rajchandra (Raichandra Jain Shashtramala, Kharakua, Johari Bazar, Bombay-2) Bhumika.

७ "Without non-violence the political independence of India would be un-thinkable." —VOA. Vol. I. ii. P. 31.

गणतन्त्र राज्यः आदि पुरुष श्री ऋषभदेव जी के पुत्र प्रथम चक्रवर्ती जैन सम्राट् भरत के नाम पर भारतवर्ष कहलाने वाला[1] हमारा पवित्र देश १५ अगस्त १९४७ को स्वतन्त्र और २६ जनवरी १९५० को Sovereign Democratic Republic हो गया है। इस राज्य की नियुक्ति ही अहिंसा सिद्धान्त पर स्थिर है। राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसादजी और प्रधान मन्त्री पं० जवाहरलालजी नेहरू ने इस सत्य की घोषणा भी कई बार की कि हम अहिंसा सिद्धान्त के विश्वासी महात्मा गाँधी जी के बताये हुए अहिंसा मार्ग पर चलेंगे।

जिस पक्षपात को मिटाने और ऊँच-नीच के भेद को नष्ट करने का यत्न भ० महावीर ने किया था, उसीको दूर करने के लिए भारत सरकार ने रायबहादुर, खानबहादुर आदि की पदवियों को समाप्त करके छोटे-बड़े सबके लिए एक शब्द 'श्री' निश्चित करके श्री महाराजा भोज और श्री गङ्गातेली में समानता की स्थापना करदी। अङ्गरेजी राज्य में सरकारी ऑफिसर और पुलिस जनता से मन-माना व्यवहार करते थे, हमारी सरकार ने आज्ञापत्र निकाल कर घोषणा कर दी, "बड़े से बड़ा कर्मचारी भी जनता का छोटा सा सेवक है, इस लिये किसी को नीच या छोटा न समझो, सबके साथ प्रेम व्यवहार करो"। इनके अहिंसामयी कार्यों का इतना प्रभाव पड़ा कि हिंसा में विश्वास रखने वाले भी अहिंसा को अपनाने लगे। Hydrogen Bombs के बनाने वाले अमेरिका के प्रेजीडेण्ट Eisenhower तक को स्वीकार करना पड़ा, "संसार में सुख और शान्ति भयानक हथियारों से नहीं बल्कि अहिंसा द्वारा प्राप्त हो सकती है[2]"। लन्दन के House of Commons के प्रसिद्ध मेम्बर Lord Fenner Brockway ने भारत को अहिंसा का दृढ़ श्रद्धानी

१–२ इसी ग्रन्थ का पृ० ४१०, ३५२।

जान कर स्पष्ट कह दिया, "वर्तमान हिंसामयी व्यवस्था में संसार भारत से ही विश्व-शान्ति की आशा करता है[1]"। भारत के अहिंसा तत्त्व से ही प्रभावित होकर, विश्वशान्ति को स्थिर रखने वाली सबसे बड़ी संस्था United Nations General Assembly का सभापति भारत वीराङ्गना श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित को चुना। हिंसामयी अनेक हथियार निष्फल रहने पर संसार ने हमारे ही प्रधान मन्त्री पं० जवाहरलालजी को कोरिया-युद्ध रोकने के लिये अहिंसा का अतिशय दिखाने को कहा तो इन्होंने अपने उस अहिंसा के हथियार से जो महात्मा गाँधी जी बतौर अमानत इनको सौंप गये थे, सारे संसार को चकित करते हुए कोरिया युद्ध को समाप्त कराने में सफल हो गये। क्या पण्डित जी की यह विजय महात्मा जी की विजय, अहिंसा की विजय, जैनधर्म की विजय तथा भारत की विजय नहीं है?

देश की उन्नति तथा बेकारी को दूर करने के लिये भारत सरकार ने पाँचसाला योजनाएँ बनाईं और देश को इसमें सहयोग देने को कहा तो जैनियों ने करोड़ों रुपये के सरकारी क़र्ज़े खरीदे। अकेले Sahu–Jain Ltd. और इनके अधिकारी कारखानों में आज तक लाखों करोड़ों रुपये भारत सरकार की Securities में लगा हुआ है। २५ अक्तूबर १६५२ को हमें स्वयं इनकी Rohtas Industries Ltd. देखने और इसके Guest House में ठहरने का अवसर मिला तो श्री V. Podder, वर्क मैनेजर से लेकर श्री बुधू मजदूर तक को अत्यन्त सन्तुष्ट पाकर इनके उत्तम प्रबन्ध की प्रशंसा करनी पड़ती है। यही कारण है कि हर प्रकार योग्य जानकर इनके Managing Director साहू शान्तिप्रसाद जी जैन को भारत के व्योपारियों ने अपनी सबसे बड़ी संस्था Fede-

१ इसी ग्रन्थ का पृ० ३५२।

ration of Indian Chambers of Commerce & Industries का सभापति नियुक्त किया और अपना Representative बना कर इनको विदेशों तक में भेजा। डालमिया नगर के जैन मन्दिर में इन्होंने भ० महावीर की इतनी विशाल, मनोहर और प्रभावशाली मूर्त्ति स्थापित कर रखी है कि घण्टों दर्शन करने पर भी हमारा हृदय तृप्त नहीं हुआ। श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा को जाने वालों के लिये रास्ते में दर्शन करने का यह बड़ा सुन्दर साधन है। **सेठ घनश्यामदास जी बिड़ला** भी बड़े अहिंसाप्रेमी हैं। इन्होंने धर्म प्रभावना और लोकसेवा के लिये न केवल स्थान २ पर मन्दिर और धर्मशालायें बनवाईं, बल्कि अहिंसा की शक्ति को दृढ़ करने के लिये इन्होंने महात्मा गाँधी जी को बड़े-बड़े दान दिये। संसार के प्रसिद्ध व्यापारी **सेठ हुकमचन्द जी**, जो बम्बई के स्पीकर Hon. K. S. Firodia के शब्दों में Merchant King[1] और मध्य भारत के मुख्यमन्त्री श्री तख्तमल जी के अनुसार Cotton Prince of India[2] हैं और जिन्होंने देश-उन्नति, समाज-सेवा तथा जैनधर्म की प्रभावना के लिये अनेक अवसरों पर ८० लाख रुपये दान दिये[3]। अपनी आवश्यकता के अनुसार द्रव्य रखकर समस्त व्यापार तथा अरबों रुपये की सम्पत्ति त्याग कर परिग्रह प्रमाण व्रत धारण कर लिया। यदि हमारे देश के सब ही पूञ्जीपति जैनधर्मी साहू शान्तिप्रसाद जी, सेठ हुकमचन्द जी तथा अहिंसाप्रेमी सेठ घनश्यामदास जी बिड़ला के समान देश तथा समाज-सेवा और धर्म प्रभावना के कार्य करें तो निश्चित रूप से हमारा देश स्वर्ग के समान सुख-शान्ति का स्थान बन जाये।

गणतन्त्र राज्य में भी नग्न जैन साधु बिना किसी प्रकार की रोक-टोक के मनवांछित स्थानों में विहार करते हैं। जैनियों ने

१—३ सेठ हुकमचन्द जी अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० २२०—२२१, १७५, १८८

अनेक नये जैनमन्दिर बनवाये, रथ उत्सव निकलवाये और पंच कल्याणक पूजायें कराईं। जैनियों के अनेक अनाथालय, कॉलिज, हस्पताल तथा कारखानें चल रहे हैं, जिनसे सारा देश लाभ उठा रहा है और लाखों नौजवान अपनी जीविका प्राप्त कर रहे हैं। इनसे ही प्रभावित होकर हमारे उत्तर-प्रदेश के प्रधानमन्त्री पं. गोविन्दवल्लभ पन्त जी ने कहा, "जैनियों ने लोक-सेवा की भावना से भारत में अपना एक अच्छा स्थान बना रखा है। उनके द्वारा देश में कला और उद्योग की काफी उन्नति हुई है। उनके धर्म और समाज सेवा के कार्य सार्वजनिक होने की भावना से ही होते रहे हैं और उनके कार्यों से जनता के सभी वर्णों ने लाभ उठाया है[1]"।

कुछ जैनियों को भ्रम हो गया था कि Constitution of India उनके धार्मिक कार्यों में बाधक है। २५ जनवरी १९५० को उनका एक डेपूटेशन प्रधानमन्त्री पं० जवाहरलाल जी से मिला तो उन्होंने कानून का मतलब स्पष्ट करते हुए विश्वास दिलाया, "जैनियों को अपने धर्म और समाज के सम्बन्ध में किसी प्रकार का भय करने का कोई कारण नहीं है, क्योंकि देश का क़ानून उनके किसी धार्मिक कार्य में बाधा नहीं डालता[2]"।

---

१ जैन सन्देश (१५–२–१९५१) पृ० २ व इसी ग्रन्थ का पृ० ८८।

२ Letter No. 23/94/50 P. M. S. New Delhi. dated 31-1-1950 from Shri A V. Pai, the Principal Private Secretary of the Prime Minister to Shri S. G. Patil, Representative of Jain Deputation, 10 Court Road, New Delhi:—"With reference to the deputation of certain representatives of the Jains, who met the Prime Minister on 25th January, I am desired to say that **there is no cause, whatever, for Jains to have any apprehension regarding the future of their religion and community.** Your deputation drew attention to article 25, Explanation II of the Constitution. This constitution only laydown a rule of constitution for limited purposes of the provision in the Article and as you will notiee, it mentions not only Jains but also Buddhists and Sikhs. It is clear that Buddhists are not Hindus. It is therefore, there is no reason for thinking that Jain are considered as Hindus. It is true that Jains are some ways closely aliked to Hindus and have many customs in common. but there is no doubt that they are a distinct religious community and the constitution does not in any way effect this well recognized position."

ऐतिहासिक काल के कुछ जैन सेनापति

"The JAINS used to enlist themselves in Army and distinguished on the battle-fields."
—Dr. Altekar : Rastrakuta & Their Times.

सेनापति	किस राजा के ?	जैनधर्मी होने का प्रमाण
१–सिंहभद्र	वैशाली के चेटक	इसी ग्रन्थ का पृ० ३६१
२–जम्बूकुमार	शिशुनागवंशी बिम्बसार	जम्बूस्वामी चरित्र
३–कल्पक	नन्दवंशी नन्दीवर्द्धन	वीर, वर्ष ११, पृ० ६८
४–चाणक्य	मौर्यवंशी सम्राट् चन्द्रगुप्त	Anekant Vol. II. P. 104 and Jain S. Bhaskar Vol. 17. P. 1.
५–मृगेश	कदम्बावंशी राजे	वीर, वर्ष ११, पृ० ६८
६–दुर्गराज	चालुक्य अम्प द्वि०	इसी ग्रन्थ का पृ० ४५५।
७–नागवर्मा	,, जगदेकमल्ल द्वि०	दि० जैन, वर्ष ६, पृ० ७२ B
८–चामुण्डराय	गङ्गावंशी राचमल	Rice. Ep. Car. Inser. Sr. P. 85 & SHJK and Heroes. PP. 96—100.
९–महादेव	,, एकरल द्वि०	Guirenot J. B. No. 431. Vir XI P. 70
१०–विजय	राष्ट्रकूट इन्द्र तृ०	Ep. Ind. X. PP. 149—150.
११–गङ्गराज	होय्सलवंशीय विष्णुवर्द्धन	Ep. Car. II 118. PP. 48—49.
१२–हुल्ल	,, नरसिंह प्र०	Saletore. Loc. Cit. 141—142.
१३–शान्त	,, सोमेश्वर	जैन शिलालेख संग्रह, ६८
१४–रविमय्य	,, बल्लाल	,, ,,
१५–बैचप्प	विजयनगर के हरिहर द्वि०	इसी ग्रन्थ का पृ० ४२७
१६–इरुगप्पा	,, ,,	,, ,,
१७–कुलचन्द्र	परमारवंशी सम्राट् भोज	Reu. loc. cit. Vol. I. P. 115-121 and Ball. loc. cit P. 207.
१८–बिमलशाह	सोलङ्की भीम प्र०	माधुरी २ फरवरी १६३६
१९–आभू	सोलङ्की भीमदेव द्वि०	हमारा पतन पृ० १४०-१४२
२०–वस्तुपाल	बघेलवंशी धवल	सं. जै. इ. भा. २ खं २ पृ. १३७
२१–तेजपाल	,, ,,	,, ,,
२२–दयालदास	महाराणा राजसिंह	रा.पू.के जैनवीरोंका इ. पृ ११३
२३–आशाशाह	महाराणा उदयसिंह	,, पृष्ठ ६०
२४–भामाशाह	महाराणा प्रतापसिंह	इसी ग्रन्थ का पृ. ४३०-४३१
२५–कोठारीजी	महाराणा संग्रामसिंह	,, पृ० ४३१-४३२
२६–इन्द्राज	अजमेर के विजयसिंह	हमारा पतन, पृ० १३७

अजैन दृष्टि से जैन अष्टमूल गुण

शुभ-विचार, प्रेम-व्यवहार, शुद्ध आहार और निरोगता के उपयोगी मार्ग

१–मांस का त्याग: International Commission के अनुसार मनुष्य का भोजन मांस नहीं है[१]। जिन पशुओं का भोजन मांस है वे जन्म से ही अपने बच्चों को मांस से पालते हैं, यदि मनुष्य अपने बच्चों को जन्म से मांस खिलाये तो वे जिन्दा नहीं रह सकते[२]। मनुष्य के दाँत, आँख, पञ्जा, नाखून, नसें, हाजमा और शरीर की बनावट, मांस खाने वाले पशुओं से बिलकुल विपरीत है[३]। मनुष्य का क़ुदरती भोजन निश्चित रूप से मांस नहीं है[४]।

Royal Commission के अनुसार मांस के लिये मारे जाने वाले पशुओं में आधे तपेदिक के रोगी होते हैं इस लिये उनके मांस भक्षण से मनुष्य को तपेदिक का रोग लग जाता है[५]। Science के अनुसार मांस को हज़्म करने के लिये सहकारी भोजन से चार गुणा हाज़मे की शक्ति की आवश्यकता है[६] इस लिये संसार के प्रसिद्ध डाक्टरों के शब्दों में बदहज़्मी, दर्दगुर्दा, अन्तड़ियों की बीमारी, जिगर की खराबी आदि अनेक भयानक रोग होजाते हैं[७]। Dr. Josiah Oldfield के अनुसार ६६%

---

१ Inter-Allied Food Commission Report London, July 8, 1918

२ Prof. Moodia: Bambay. H. League Publication No. XVII. P. 14.

३-४ Meat Eating A. Study (South I. H. League.)Vol. I PP. 3-5.

५ Royal Commission on T. B. reports that it is a cognisable fact about 50%of the cattle killed for food are tuberculous and T. B, is infeciitious. —Bombay H. League Tract No. 17. P. 19.

६ Science tells us that 4 times, as much energy has to be expended to assinilate meat than vegetable products. —Ibid P. 15

७ World-fame Medical Experts—Graham, O. S. Fyler, J. F. Newton, J. Smith etc. corroborate the fact that meat-eating causes various diseases such as Rheumatism, Paralysis, Cancer, Pulminary, *Tubercolisis, Consti pation, fever, Intestinal worms etc.*
—*Meat Eating A Study*, P. 15.

मृत्यु मांस भक्षण से उत्पन्न होने वाली बीमारियों के कारण होती हैं[१], इस लिये महात्मा गाँधी जी के शब्दों में मांस भक्षण अनेक भयानक बीमारियों की जड़ है[२]।

मांस से शक्ति नहीं बढ़ती। घोड़ा इतना शक्तिशाली जानवर है कि संसार के इंजनों की शक्ति को इसकी Horse Power से अनुभव किया जाता है। वह भूखा मर जायेगा, परन्तु मांस भक्षण नहीं करेगा। वैज्ञानिक खोज से यह सिद्ध है—"सब्जी में मांस से पाँचगुणा अधिक शक्ति है[३]"। Sir William Cooper C. I. E. के कथनानुसार घी, गेहूँ, चावल, फल आदि मांस से अधिक शक्ति उत्पन्न करने वाले हैं[४]। यह भी एक भ्रम ही है कि मांस-भक्षी वीरता से युद्ध लड़ सकता है। प्रो० राममूर्त्ति, महाराणा प्रताप, भीष्मपितामह, अर्जुन आदि योद्धा क्या मांसभक्षी थे?

मांस-भक्षण के लिये न मारा गया हो, स्वयं मर गया हो, ऐसे प्राणियों का मांस खाने में भी पाप है, क्योंकि मुर्दा मांस में उसी जाति के जीवों की हर समय उत्पत्ति होती रहती है जो दिखाई भी नहीं देते और वे जीव मांस भक्षण से मर जाते हैं। वनास्पति भी तो एक इन्द्रिय जीव है फिर अनेक प्रकार की सब्जियाँ खाकर अनेक जीवों की हिंसा करने की अपेक्षा तो एक बड़े पशु का वध

---

१ Flesh eating is one of the **most serious causes of diseases**, that carry 99%, of the people that are born". —Ibid. P. 15.

२ Mahatma Gandhi: Arogya Sadhan.

३ Many people erroneously think that there is more food value in meat. Scientists after careful investiagation have found more food value in one pound of peanuts than in 5 pounds of flesh food. —Health & Longevity (Oriental Watchman, Poona) P.35.

४

Food Stuff	**Strength**		
Almonds....	91%	Corn Flour....	86%
Grain	87%	Dried Fruits....	73%
Unpolished Rice	87%	Cream	69%
Butter & Ghee	87%	Meat	28%
Wheat Flour	..86%	Eggs	26%
		Fish	13%

—Meat Eating A Study (Suth Indian H. League, Madras) P. 22.

करना उचित है, ऐसा विचार करना भी ठीक नहीं है क्योंकि चल-फिर न सकने वाले एक इन्द्रीय स्थावर जीवों की अपेक्षा चलते-फिरते दो इन्द्रिय त्रस जीवों के वध में असंख्य गुणा पाप है और बकरी, गाय, भैंस, बैल आदि पंच इन्द्रिय जीवों का वध करना तो अनन्तानन्त असंख्य गुणा दोष है। अन्न-जल के बिना तो जीवन का निर्वाह असम्भव है, परन्तु जीवन की स्थिरता के लिये मांस की बिल्कुल आवश्यकता नहीं है।

विष्णुपुराण के अनुसार, "जो मनुष्य मांस खाते हैं वे थोड़ी आयु वाले, दरिद्री होते हैं[१]। महाभारत के अनुसार, "जो दूसरों के मांस से अपने शरीर को शक्तिशाली बनाना चाहते हैं, वे मर कर नीच कुल में जन्म लेते और महादुखी होते हैं[२]। पार्वती जी शिव जी से कहती हैं—"जो हमारे नाम पर पशुओं को मार कर उनके मांस और खून से हमारी पूजा करते हैं, उनको करोड़ों कल्प तक नरक के महादुख सहन करने पड़ेंगे[३]। महर्षि व्यास जी के कथनानुसार—"जीव-हत्या के बिना मांस की उत्पत्ति नहीं होती इस लिये मांसभक्षी जीव-हत्या का दोषी है[४]"। महर्षि मनु जी के शब्दों में, "जो अपने हाथ से जीव-हत्या करता है, मांस खाता है, बेचता है, पकाता है, खरीदता है या ऐसा करने की राय देता है

---

१ अल्पायुषो दरिद्राश्च परकर्मोपजीविनः ।
दुष्कुलेषु प्रजायन्ते ये नरा मांसभक्षकाः ॥ —विष्णुपुराण

२ स्वमांसं परमांसेन यो वर्द्धयितुमिच्छति ।
नास्ति क्षुद्रतरस्तस्मात् सनृशंसतरो नरः ॥ —अनु. पर्व, अध्याय ११६

३ मदर्थे शिव कुर्वन्ति तामसा जीवघातनम् ।
आकल्पकोटि नरके तेषां वासो न संशयः ॥ —पद्मपुराण शिवं प्रति दुर्गा

४ Meat is not produced from grass, wood or stone. Unless life is killed meat can not be obtained. Flesh-eating therefore is a great evil. —Mahabharata, Anusasan Parva. 110-13

वह सब जीव हिंसा के महापापी हैं[१]। भीष्मपितामह के शब्दों में, "मांस खाने वालों को नरक में गरम तेल के कढ़ाओं में वर्षों तक पकाया जाता है[२]"। श्रीकृष्ण जी के शब्दों में, "यह बड़े दुख की बात है कि फल, मिठाई आदि स्वादिष्ट भोजन छोड़ कर कुछ लोग मांस के पीछे पड़े हुए हैं"[३]। महर्षि दयानन्द जी ने भी मांस भक्षण में अत्यन्त दोष बताये हैं[४]। स्वामी विवेकानन्द जी के अनुसार, "मांस भक्षण तहजीब के विरुद्ध है[५]"। मौलाना रूमी के अनुसार, "हजारों खजाने दान देने, खुदा की याद में हजारों रात जागने और हजार सजदे करने और एक-एक सजदे में हजार बार नमाज पढ़ने को भी खुदा स्वीकार नहीं करता, यदि तुमने किसी तिर्यंच का भी हृदय दुखाया[६]। शेखसादी के अनुसार, "जब मुँह का एक दाँत निकालने से मनुष्य को अत्यन्त पीड़ा होती है तो विचार करो कि उस जीव को कितना कष्ट होता है जिसके शरीर से उसकी प्यारी जान निकाली जावे[७]। फिरदौसी के अनुसार, "कीड़ी को भी अपनी जान इतनी ही प्यारी है, जितनी हमें, इस लिये छोटे से छोटे प्राणी को भी कष्ट देना उचित नहीं है[८]"। हाफिज अलया-

---

१ Manu Ji : Manusmriti, *5–51*.

२ Meat eaters take repeated briths in various wombs and are put every time to un-natural death through forcible suffocation. After every death they go to 'Kumbhipaka Hell' where they are baked on fire like the Potter's vessel. —M.B. Anu 115-31

३ It is pity that wicked discarding sweetmeats and vegetable etc, pure food, hanker after meat like demons, —Ibid. 116-1-2

४ Urdu Daily Pratap, Arya Samaj Edition (Nov. 30. 1953,) p. 6.

५ "Meat eating is uncivilized" —Meat Eating A Study p. 8

६ هزار گنج عبادت- هزارگنج کرم- هزار طاعت شب‌ها- هزار بیداری
هزار سجده- و به هر سجده هزار نماز- قبول نیست گرطائیر بیازاری-

७ ندیده که چه سختی رشد بجان کسے- که از دهانش کند دندانے-
قیاس کن که چه حالش بود دوران ساعت- که از وجود عزیزش بدر کنند جانے

८ میازار مورے که دانه کش رست- که جان دارد وجان شرین خوش است

उलरहीम साहिब के अनुसार—"शराब पी, कुरानशरीफ को जला, काबा को आग लगा, बुतखाने में रह, लेकिन किसी भी जीव का दिल न दुखा"[१]। हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई तथा पारसी आदि सब ही धर्म मांस-भक्षण का निषेध करते हैं[२], इस लिये महाभारत के कथनानुसार सुख-शान्ति तथा Supreme Peace के अभिलाषियों को मांस का त्यागी होना उचित है[३]।

२—**शराब का त्याग:** शराब अनेक जीवों की योनि है जिसके पीने से वह मर जाते हैं, इस लिये इसका पीना निश्चितरूप से हिंसा है। Dr. A. C. Selman के अनुसार यह गलत है कि शराब से थकावट दूर होती है या शक्ति बढ़ती है[४]। फ्रान्स के Experts की खोज के अनुसार, "शराब पीने से बीबी-बच्चों तक से प्रेम-भाव नष्ट हो जाते हैं। मनुष्य अपने कर्तव्य को भूल जाता है, चोरी, डकैती आदि की आदत पड़ जाती है। देश का क़ानून भङ्ग करने से भी नहीं डरता, यही नहीं बल्कि पेट, जिगर, तपेदिक आदि अनेक भयानक बीमारियाँ लग जाती हैं[५]। इङ्गलैण्ड के

---

१ مے خور- مصحف بسوز وآتشی اندر کعبہ زن
ساکن بت خانہ باش، مردم آزاری مکن -آئنہ ہمدردی صفہ ۷۵

२ This book's PP.60-69.

३ "He, who desires to attain **Supreme-Peace** should on no acconnt eat meat". —Mahabharta, Anu. 115-55.

४ "Every class and kind of wine, whisky brandy, gin, beer or toddy all contain alcohal, which is not a food, but is a powerful poison. Thinking that it is a useful medicine, removes tiredness, helps to think or *increases strength* is **absolutely wrong.** It stupefies brain, destroys power, spoils health, shortens life and does not cure disease at all".

—Health & Longevity (Oriental Watchman P. H. Poona) P. 97-101.

५ "Wine causes to lose natural effection, renders inefficient in work and leads to steal and rob and makes an habitual lawbreaker. It is a prime cause of many serious diseases—Paralysis, inflammation, insanity, kidneys, tuberculosis etc."
I bid. P. 97.

भूतपूर्व प्रधानमंत्री Gladstone के शब्दों में युद्ध, काल और प्लेग की तीनों इकट्ठी महा-आपत्तियाँ भी इतनी बाधा नहीं पहुँचा सकतीं जितनी अकेली शराब पहुँचाती है[1]।

३—मधु का त्यागः शहद मक्खियों का उगाल है। वह बिना मक्खियों के छत्ते को उजाड़े प्राप्त नहीं होता इसीलिये महाभारत में कहा है, "सात गाँवों को जलाने से जो पाप होता है, वह शहद की एक बूँद खाने में है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि जो लोग सदा शहद खाते हैं, वे अवश्य नरक में जावेंगे[2]"। मनुस्मृति में भी इसके सर्वथा त्याग का कथन है[3], जिसके आधार पर महर्षि स्वामी दयानन्द जी ने भी सत्यार्थप्रकाश के समुल्लास ३ में शहद के त्याग की शिक्षा दी है। चाणक्य नीति में भी शहद को अपवित्र वस्तु कहा है[4] इसलिये मधु-सेवन उचित नहीं है।

४—अभक्ष्य का त्यागः जिस वृक्ष से दूध निकलता है उसे क्षीरवृक्ष या उदुम्बर कहते हैं। उदुम्बर फल त्रस जीवों की उत्पत्ति का स्थान है इस लिये अमरकोष में उदुम्बर का एक नाम 'जन्तु फल' भी कहा है और एक नाम 'हेमदुग्धक' है, इसलिये पीपल, गूलर, पिलखन, बड़ और काक ५ उदुम्बर के फलों को खाना त्रस अर्थात् चलते-फिरते जन्तुओं की संकल्प हिंसा है। गाजर, मूली, शलजम आदि कन्द-मूल में भी त्रस जीव होते हैं, शिवपुराण के अनुसार,

---

१ "The combined harm of three great scourges—war, famine and pestilence is not as terrible as wine drinking". I bid. P.97

२ सप्त ग्रामेषु दग्धेषु यत्पापं जायते नृणाम् ।
तत्पाप जायते पुंसां मधु बिन्द्वेक भक्षणात् ॥ —महाभारत

३ वर्जयेन्मधुमांसं च.........प्राणिनां चैव हिंसनम् । मनु. अ. २, श्लो. १७७

४ सुरां मत्स्यान् मधुमांसमासवं कृसरौदनम् ।
धूर्तैः प्रवर्तितं ह्येतत् नैतद् वेदेषु कल्पितम् ॥—चा. नीति अ. ४, श्लो. १६

"जिस घर में गाजर, मूली, शलजम आदि कन्दमूल पकाये जाते हैं वह घर मरघट के समान है। पितर भी उस घर में नहीं आते और जो कन्दमूल के साथ अन्न खाता है उसकी शुद्धि और प्रायश्चित सौ चान्द्रायण व्रतों से भी नहीं होता। जिसने अभक्षण का भक्षण किया उसने ऐसे तेज जहर का सेवन किया जिसके छूने से ही मनुष्य मर जाता है। बैङ्गन आदि अनन्तानन्त बीजों के पिण्ड के खाने से रौरव नाम के महा दुःखदायी नरक में दुःख भोगने पड़ते हैं[1]"। श्री कृष्ण जी के शब्दों में अचार, मुरब्बा आदि अभक्ष्य, आलू, शकरकन्द आदि कन्द और गाजर, मूली, गंठा आदि मूल खाने वाले को नरक की वेदना सहन करनी पड़ती है[2]।

---

१ यस्मिन् गृहे सदा नित्यं मूलकं पच्यते जनैः ।
श्मशान तुल्यं तद्वेश्म पितृभिः परिवर्जितम् ॥
मूलकेन समं चान्नं यस्तु भुंक्ते नराधमः ।
तस्य शुद्धिर्न विद्येत चान्द्रायण शतैरपि ॥
भुक्तं हलाहलं तेन कृतं चाभक्ष्यभक्षणम् ।
वृन्ताकभक्षणं चापि नरो याति च रौरवम् ॥ —शिवपुराण

२ चत्वारो नरकद्वारं प्रथमं रात्रिभोजनम् ।
परस्त्रीगमनं चैव संधानानन्तकाय ते ॥
ये रात्रौ सर्वदाहारं वर्जयन्ति सुमेधसः ।
तेषां पक्षोपवासस्य मासमेकेन जायते ॥
नोदकमपि पातव्यं रात्रावत्र युधिष्ठिरः ।
तपस्विनो विशेषेण गृहिणां च विवेकिनाम् ॥ —महाभारत

अर्थात्—श्रीकृष्ण जी ने युधिष्ठिर जी को नरक के जो (१) रात्रि भोजन, (२) परस्त्री-सेवन, (३) अचार-मुरब्बा आदि का भक्षण, (४) आलू, शकरकन्दी आदि कन्द अथवा गाजर, मूली, गंठा आदि मूल का खाना, यह चार द्वार बताये और कहा कि रात्रि भोजन के त्याग से १ महीने में १५ दिन के उपवास का फल स्वयं प्राप्त हो जाता है।

५—बिना छने जल का त्याग: जैनधर्म अनादि काल से कहता चला आया है कि वनस्पति, जल, अग्नि, वायु और पृथ्वी एक इन्द्रिय स्थावर जीव हैं परन्तु संसार न मानता था। डा० जगदीश-चन्द्र बोस ने वनस्पति को वैज्ञानिक रूप से जीव सिद्ध कर दिया तो
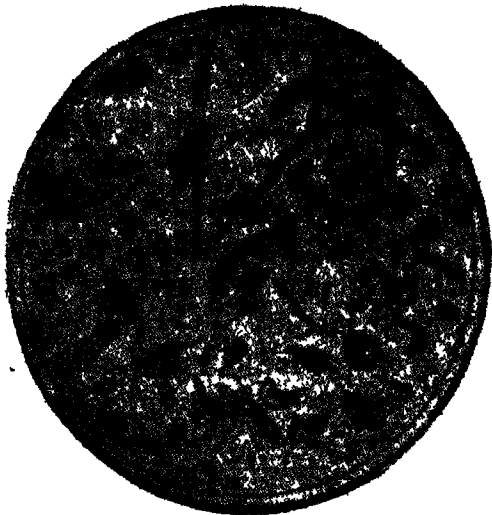
जल की एक छोटी सी बूँद में ३६४५० जीव

संसार को जैनधर्म की सच्चाई का पता चला। इसी प्रकार जल को जीव मानने से इन्कार किया जाता रहा तो कैप्टिन स्वयोर्सबी ने वैज्ञानिक खोज से पता लगाया कि पानी की एक छोटी सी बूँद में ३६४५० सूक्ष्म जन्तु होते हैं[1]। यदि छान कर पानी न पिया जावे तो यह सब जन्तु शरीर में पहुँच जावेंगे, जिससे हिंसा के अलावा अनेक बीमारियों के होने का भी भय है। मनुस्मृति में जल को वस्त्र से छान कर पीने की शिक्षा दी गई है[2], जिसके आधार पर महर्षि स्वामी दयानन्द जी ने भी सत्यार्थप्रकाश के दूसरे समुल्लास में जल को छान कर पीने के लिये कहा है।

---

१ 'सिद्धपदार्थ विज्ञान' यू० पी० गवर्नमेण्ट प्रेस, सरल जैनधर्म, पृ० ६५-६६

२ "दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत्"। —मनुस्मृति ६/४६

सूक्ष्म जन्तुओं को नष्ट करने और नजर न आने वाले जीवों की उत्पत्ति को रोकने का है। दीपक, हण्डे तथा बिजली की तेज रोशनी में भी यह शक्ति नहीं बल्कि इसके विरुद्ध बिजली आदि का स्वभाव मच्छर आदि जन्तुओं को अपनी तरफ खींचने का है, इस लिये तेज से तेज बनावटी रोशनी में भोजन करना वैज्ञानिक दृष्टि से भी अनेक रोगों की उत्पत्ति का कारण है[1]।

सूर्य की रोशनी में किया हुआ भोजन जल्दी हज़्म हो जाता है इस लिये आयुर्वेद के अनुसार भी भोजन का समय रात्रि नहीं बल्कि सुबह और शाम है[2]।

रात्रि को तो कबूतर और चिड़िया आदि तिर्यंच भी भोजन नहीं करते। महात्मा बुद्ध ने रात्रि भोजन की मनाही की है[3]। श्री कृष्ण जी ने युधिष्ठिर जी को नरक जाने के जो चार कारण बताये हैं, रात्रि भोजन उन सब में प्रथम कारण है[4]। उन्होंने यह भी बताया कि रात्रि भोजन का त्याग करने से १ महीने में १५ दिन के उपवास का फल प्राप्त होता है[5]। महर्षि मार्कण्डेय के शब्दों में रात्रि भोजन करना, मांस खाने और पानी पीना लहू पीने के समान

---

१ We can ward off diseases by judicious choice of food light. From our own laboratories experience, we observe that carbohydrates oxidized by air, *only in presence of light.* In a tropical country like India, the quality of food taken by an average individual is poor, but the **abundance of sunlight undoubtly compensates for this dietary deficiency.**
—Prof. N. R. Dhar D. Sc: J. H. M. (Nov. 1928) P. 28-31.

२ सायं प्रातर्मनुष्याणामशनं श्रुतिचोदितम् ।
नान्तरा भोजनं कुर्यादग्निहोत्रसमो विधिः ॥ —ऋषि सुश्रुत

३ मज्झिमनिकाय, लकुटिकोपम सुत्त, जिसका हवाला डा० जगदीशचन्द्र के महावीर वर्धमान (भ० जै० महामण्डल, वर्धा) पृ० १२ पर है।

४-५ इसी ग्रन्थ के पृ० ५१४ का फुटनोट नं० २।

महापाप है[1]। महाभारत के अनुसार, "रात्रि भोजन करने वाले का जप, तप, एकादशी व्रत, रात्रि जागरण, पुष्कर-यात्रा तथा चान्द्रायण व्रतादि निष्फल हैं[2]"। इस लिये वैज्ञानिक, आयुर्वैदिक, धार्मिक सब ही दृष्टि से रात्रि भोजन करना और कराना उचित नहीं है।

७-हिंसा का त्याग: मांस, शराब, शहद, अभक्षण, बिन छाना जल तथा रात्रि भोजन के ग्रहण करने में तो साक्षात् हिंसा है ही, परन्तु महर्षि पातञ्जलि के अनुसार, "यदि हमारी वजह से हिंसा हो तो स्वयं हिंसा न करने पर भी हम हिंसा के दोषी हैं[3]" इस लिये ऐसी हिंसा का भी त्याग किया जावे, जिसको हम हिंसा ही नहीं समझते:—

(क) फैशन के नाम पर हिंसा—सूत के मजबूत कपड़े, टीन के सुन्दर सूटकेस, प्लास्टिक की पेटी, घड़ी के तस्मे, बटवे आदि के स्थान पर रेशमी वस्त्र और चमड़े की वस्तुएँ खरीदना।

(ख) उपकारिता के नाम पर हिंसा—साँप, बिच्छू, भिरड़ आदि को देखते ही डण्डा उठाना, चाहे वह शान्ति से आ रहे हों या तुम्हारे भय से भाग रहे हों। महात्मा देवात्माजी के शब्दों में जहरीले जानवरों को भी कभी-कभी पृथ्वी पर चलने का अधिकार है इस लिए अपने जीवन की रक्षा करते हुए उनको शान्ति से न जीने देना[4]।

---

१ अस्तंगते दिवानाथे, अपां रुधिरमुच्यते ।
अन्नं मांससमं प्रोक्तं मार्कण्डेय महर्षिणा । —मार्क. पु. अ. १३ श्लो. २

२ मद्यमांसाशनं रात्रौ भोजनं कन्दभक्षणम् ।
ये कुर्वन्ति वृथा तेषां तीर्थयात्रा जपस्तपः ॥
वृथा एकादशी प्रोक्ता वृथा जागरणं हरे ।
तथा च पुष्करी यात्रा वृथा चान्द्रायणं तपः ॥ —महाभारत

३ Personally to kill creatures, to cause creatures to be killed by others and to support killing are three **mainforms of Hinsa**
—Patanjali the Yogdarshan 2/34.

४ This book's P, 91.

(ग) व्यापार के नाम पर हिंसा—महाभारत के अनुसार मांस तथा चमड़े की वस्तुएँ खरीदना, बेचना और ऐसा करने का मत देना[1]।

(घ) अहिंसा के नाम पर हिंसा—कुत्ता आदि पशु के गहरा जख़म हो रहा है, कीड़े पड़ गये, मवाद हो गया, दुख से चिल्लाता है तो उसका इलाज करने के स्थान पर, पीड़ा से छुड़ाने के बहाने से उसे जान से मार देना। यदि यही दया है तो अपने कुटुम्बियों को जो शारीरिक पीड़ा के कारण उनसे भी अधिक दुःखी हों क्यों नहीं जान से मार देते?

(ङ) सुधार के नाम पर हिंसा—बड़ों का कहना है "नीयत के साथ बरकत होती है"। जब से हमने अनाज की बचत के लिये चूहे, कुत्ते, बन्दर, टिड्डी आदि जीवों को मारना आरम्भ किया अनाज की अधिक पैदावार तथा अच्छी झड़त होना ही बन्द हो गई।

(च) धर्म के नाम पर हिंसा—देवि-देवताओं के नाम पर तथा यज्ञों में जीव बलि करना और उनसे स्वर्ग की प्राप्ति समझना।

(छ) भोजन के नाम पर हिंसा—मांस का त्याग करने के स्थान पर मछलियों की काश्त करके मांस भक्षण का प्रचार करना और कराना।

(ज) विज्ञान के नाम पर हिंसा—शरीर की रचना और नसें-हड्डी आदि चित्रादि से समझाने की बजाय असंख्य खरगोश तथा मेंढक आदि को चीर फेंकना।

(झ) दिल-बहलाव के नाम पर हिंसा—दूसरों की निन्दा करके, गाली देकर, हँसी उड़ाकर, चूहे को पकड़ कर बिल्ली के निकट छोड़ कर, शिकार खेलकर, तीतर-बटेर लड़वाकर और दूसरों को सताकर आनन्द मानना।

८—अर्हन्त भक्ति: श्री भर्तृहरि कृत शतकत्रय के अनुसार

---

1 He, who purchases, sells, deals, cooks or eats flesh comits hinsa.
—Mahabharat (Anu.) 115/40

'अर्हन्त' समस्त त्यागियों में मुख्य हैं[1]। स्कन्ध पुराण के अनुसार, "वही जिह्वा है जिससे जिनेन्द्रदेव का स्तोत्र पढ़ा जाये, वही हाथ है जिस से जिनेन्द्र की पूजा की जावे, वही दृष्टि है जो जिनेन्द्र के दर्शनों में तल्लीन हो और वही मन है जो जिनेन्द्र में रत हो[2]। विष्णु पुराण के अनुसार, "अर्हन्त मत (जैनधर्म) से बढ़ कर स्वर्ग और मोक्ष का देने वाला और कोई दूसरा धर्म नहीं है[3]"। मुद्राराक्षस नाटक में अर्हन्तों के शासन को स्वीकार करने की शिक्षा है[4]। महाभारत में जिनेश्वर की प्रशंसा का कथन है[5]। मुहूर्त चिन्तामणि नाम के ज्योतिष ग्रन्थ में 'जिनदेव' की स्थापना का उल्लेख है[6]। ऋग्वेद में लिखा है, "हे अर्हन्तदेव! आप विधाता हैं, अपनी बुद्धि से बड़े भारी रथ की तरह संसार चक्र को चलाते हैं। आपकी बुद्धि हमारे कल्याण के लिये हो। हम आपका मित्र के समान सदा संसर्ग चाहते हैं[7]। अर्हन्तदेव से ज्ञान का अंश प्राप्त करके देवता पवित्र होते हैं[8]। हे अग्निदेव! इस वेदी पर सब मनुष्यों से पहले अर्हन्तदेव का मन से पूजन और फिर उनका आह्वान करो। पवनदेव, अच्युतदेव, इन्द्रदेव और

१–४ इसी ग्रन्थ के पृ० ७०, ४६, ४५, ४७।

५ "काल नेमि निहावीरः शौरि शूरि जिनेश्वरः" (अनु. पर्व) अ. १४९,।

६ शिवोनृ युग्मेद्वितनौ च देव्यः क्षुद्राश्चरे सर्व इमेस्थिरक्षे।
पुष्येगृहाविप्र पयक्ष सर्प भूतादयोल्ये श्रवणे जिनश्च ॥६३॥ नक्षत्र २

७ इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव संमहेमा मनीषया।
भद्राहिनः प्रमतिरस्य संद्मग्ने सख्ये मारिषामावयं तव॥
—ऋग्वेद मं० १, अ० १५, सू० ९४

८ तावृधन्तावनु द्यून्मर्ताय देवावदभा।
अर्हन्ताचित्पुरो दधेऽशेव देवावर्वते॥ –ऋ० मं० ५, अ० ६, सू० ८६

भी देवताओं की भाँति अर्हन्त का पूजन करो[1]। वे सर्वज्ञ हैं। जो मनुष्य अर्हन्तों की पूजा करता है, स्वर्ग के देव उस मनुष्य की पूजा करते हैं[2]।

यह तो स्पष्ट है कि अर्हन्त=अर्हन्=जिनेन्द्र=जिनदेव=जिनेश्वर अथवा तीर्थङ्कर की पूजा का कथन वेदों और पुराणों में भी है। अब केवल प्रश्न इतना रह जाता है कि यह जैनियों के पूज्यदेव हैं या कोई अन्य महापुरुष? हिन्दी शब्दार्थ तथा शब्द कोषों के अनुसार इनका अर्थ जैनियों के 'पूज्यदेव' हैं[3]। यही नहीं बल्कि इनके जो गुण और लक्षण जैनधर्म बताता है वही ऋग्वेद स्वीकार करता है, "अर्हन्देव! आप धर्मरूपी बाणों, सदुपदेश (हितोपदेश) रूपी धनुष तथा अनन्तज्ञान आदि आभूषणों के धारी, केवलज्ञानी (सर्वज्ञ) और काम, क्रोधादि कषायों से पवित्र (वीतरागी) हो। आप के समान कोई अन्य बलवान नहीं, आप अनंतानन्त शक्ति के धारी हो[4]। फिर भी कहीं किसी दूसरे महापुरुष का भ्रम न हो जाये, स्वयं ऋग्वेद ने ही स्पष्ट कर दिया, "अर्हन्तदेव आप नग्न स्वरूप हो, हम आपको सुख-शान्ति की प्राप्ति के लिये यज्ञ की वेदी पर बुलाते हैं[5]।

---

१ ईडितो अग्ने मनमानो अर्हन्देवान्यक्षि मानुषात्पूर्वो अद्य।
स आवह मरुतां शर्धो अच्युतमिन्द्रं नरोबर्हिषदं यजध्वम्॥
—ऋग्वेद मण्डल २, अध्याय ११, सूक्त ३

२ अर्हन्तो ये सुदानवो नरो असामि शवसः।
प्रयज्ञं यज्ञियेभ्यो दिवो अर्चामरुद्भ्यः॥ —ऋ० मं० ५ अ० ४, सू० ५२

३ इसी ग्रन्थ के फुटनोट नं० २, पृ० ४५ और फुटनोट नं० ३, पृ० ४६

४ अर्हन्बिभर्षि सायकानि धन्वार्हन्निष्कं यजतं विश्वरूपम्।
अर्हन्निदं दयसे विश्वमभ्वं नवाओजीयोरुद्र त्वदस्ति॥ ऋ० २।४।३३

५ द्वे नप्तुर्देववतः शते गोर्द्वारथा वधूमन्ता सुदासः।
अर्हन्नग्ने पैजवनस्य दानं होतेव सद्मपर्येमि रेभन्॥ —ऋ० ७/२/१८

कहा जाता है—मूर्त्ति जड़ है इसके अनुराग से क्या लाभ ? सिनेमा जड़ है लेकिन इसकी बेजान मूर्त्तियों का प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता, पुस्तक के अक्षर भी जड़ हैं, परन्तु ज्ञान की प्राप्ति करा देते हैं, चित्र भी जड़ हैं लेकिन बलवान योद्धा का चित्र देख कर क्या कमजोर भी एक बार मूँछों पर ताव नहीं देने लगते ? क्या वैश्या का चित्र हृदय में विकार उत्पन्न नहीं करता ? जिस प्रकार नकशा सामने हो तो विद्यार्थी भूगोल को जल्दी समझ लेता है उसी प्रकार अर्हन्तदेव की मूर्त्ति को देखकर अर्हन्तों के गुण जल्दी समझ में आजाते हैं। मूर्त्ति तो केवल निमित्त कारण (object of devotion) है[१]।

कुछ लोगों को शङ्का है कि जब अर्हन्तदेव इच्छा तथा राग-द्वेष रहित हैं, पूजा से हर्ष और निन्दा मे खेद नहीं करते, कर्मानुसार फल स्वयं मिलने के कारण अपने भक्तों की मनोकामना भी पूरी नहीं करते तो उनकी भक्ति और पूजा में क्या लाभ ? इस शङ्का का उत्तर स्वा० समन्तभद्राचार्य जी ने स्वयम्भूस्तोत्र में बताया:—

न पूजयाऽर्थस्त्वयि वीतरागे न निन्दया नाथ ! विवान्तवैरे ।
तथाऽपि ते पुण्य-गुण स्मृतिर्नः पुनाति चित्तं दुरिताञ्जनेभ्यः ॥५७॥

अर्थात्—श्री अर्हन्तदेव ! राग-द्वेष रहित होने के कारण पूजा-वन्दना से प्रसन्न और निन्दा से आप दुखी नहीं होते और न हमारी पूजा अथवा निन्दा से आपको कोई प्रयोजन है। फिर भी आपके पुण्य गुणों का स्मरण हमारे चित्त को पाप-मल से पवित्र करता है। श्री मानतुङ्गाचार्य ने भी भक्तामर स्तोत्र में इस शङ्का का समाधन करते हुए कहा:—

१ Great men are still admirable. The unbelieving French believe in their Voltaire and burst out round him into very curious hero-worship Does *not* every *true man* feel *that* he is himself made higlier by doing reverence to what is really above him. —English Thinker, Thomas Carlyle

आस्तां तव स्तवनमस्त समस्त दोषं त्वत्संकथापि जगतां दुरितानि हन्ति ।
दूरे सहस्रकिरणः कुरुते प्रभैव पद्माकरेषु जलजानि विकासभाञ्जि ॥

अर्थात्—भगवन् ! सम्पूर्ण दोषों से रहित आपकी स्तुति की तो बात दूर है, आपकी कथा तक प्राणियों के पापों का नाश करती है। सूर्य की तो बात जाने दो उसकी प्रभामात्र से सरोवरों के कमलों का विकास हो जाता है। आचार्य कुमुदचन्द्र ने भी बताया:—

हृद्वर्तिनि त्वयि विभो ! शिथिली भवन्ति, जन्तोः क्षणेन निबिडा अपि कर्मबन्धाः ।
सद्यो भुजङ्गममया इव मध्यभागमभ्यागते वनशिखण्डिनि चन्दनस्य ॥

अर्थात्—हे जिनेन्द्र ! हमारे लोभी हृदय में आपके प्रवेश करते ही अत्यन्त जटिल कर्मों का बन्धन उसी प्रकार ढीला पड़ जाता है जिस प्रकार वन-मयूर के आते ही सुगन्ध की लालसा में चन्दन के वृक्ष से लिपटे हुए लोभी सर्पों के बन्धन ढीले हो जाते हैं।

कुछ लोगों को भ्रम है कि जब माली की अव्रती कन्या अर्हन्त भगवान के मन्दिर की चौखट पर ही फूल चढ़ाने से सौधर्म नाम के प्रथम स्वर्ग की महाविभूतियों वाली इन्द्राणी हो गई[1]। धनदत्त नाम के ग्वाले को अर्हन्तदेव के सम्मुख कमल का फूल चढ़ाने से राजा पद मिल गया। मेंढक पशु तक बिन भक्ति करे, केवल अर्हन्त भक्ति की भावना करने से ही स्वर्ग में देव हो गया[2] तो घण्टों अर्हन्त-वन्दना करने पर भी हम दुःखी क्यों हैं ? इस प्रश्न का उत्तर श्री कुमुदचन्द्राचार्य ने कल्याण मन्दिर स्तोत्र में इस प्रकार दिया है:—

आकर्णितोऽपि महितोऽपि निरीक्षितोऽपि नूनं न चेतसि मया विधृतोऽसि भक्त्या ।
जातोऽस्मि तेन जनबान्धव दुःखपात्रं यस्मात् क्रियाः प्रतिफलन्ति न भावशून्याः ॥

अर्थात्—हे भगवन् ! मैंने आपकी स्तुतियों को भी सुना, आपकी पूजा भी की, आपके दर्शन भी किये किन्तु भक्तिपूर्वक

---

१ आदर्श कथा संग्रह (वीरसेवा मन्दिर सरसावा, सहारनपुर) पृ० ११२ ।
२ इसी ग्रन्थ का पृ० ३८२-३८३ ।

हृदय में धारण नहीं किया। हे जनबान्धव! इस कारण ही हम दुःख का पात्र बन गये क्योंकि जिस प्रकार प्राण रहित प्रिय से प्रिय स्त्री-पुत्र आदि भी अच्छे नहीं लगते, उसी प्रकार बिना भाव के दर्शन, पूजा आदि सच्ची अर्हन्त भक्ति नहीं बल्कि निरी मूर्त्तिपूजा है जिसके लिये बैरिस्टर चम्पतराय के शब्दों में जैनधर्म में कोई स्थान नहीं[१]। भाव पूर्वक अर्हन्त भक्ति के पुण्य फल से आज पंचमकाल में भी मनवांछित फल स्वयं प्राप्त होजाते हैं। मानतुङ्गाचार्य की श्री ऋषभदेव की स्तुति से जेल के ४८ लोह-कपाट स्वयं खुल गये[२]। समन्तभद्राचार्य की तीर्थङ्कर-वन्दना से चन्द्रप्रभु तीर्थङ्कर का प्रतिबिंब प्रकट हुआ[३]। चालुक्य नरेश जयसिंह के समय वादीराज का कुष्ठ रोग जिनेन्द्र-भक्ति से जाता रहा[४]। जिनेन्द्र भगवान पर विश्वास करने से गङ्गावंशी सम्राट् विनयादित्य ने अथाह जल से भरे दरिया को हाथों से तैर कर पार कर लिया[५]। जैनधर्म को त्याग कर भी होय्सलवंशी सम्राट् विष्णुवर्धन को श्री पार्श्वनाथ का मन्दिर बनवाने से पुत्र[६], सोलङ्की सम्राट् कुमारपाल को श्री अजितनाथ की भक्ति से युद्धों में विजय और भरतपुर के दीवान को वीरभक्ति से जीवन प्राप्त हुआ[७]। कदम्बावंशी सम्राट् रविवर्मा ने सचकहा है, "जनता को श्री जिनेन्द्र भगवान की निरन्तर पूजा करनी चाहिये, **क्योंकि जहाँ सदैव जिनेन्द्र-पूजा विश्वासपूर्वक की जाती है वहाँ अभिवृद्धि होती है, देश आपत्तियों और बीमारियों के भय से मुक्त रहता है और वहाँ के शासन करने वालों का यश और शक्ति बढ़ती है[८]।**

---

१ Jainism is not idolatrous and it has bitterly opposed to idol-worship as the most iconoclastic religion. The Tirthankaras are modles of perfection for our soul to copy. Their images are to constantly remind for the ideal. What is Jainism? P.123

२–८ This book's P. P. 470, 445, 457, 450, 473, 463, 448.

जैनधर्म का प्रभाव १

श्री गणेशप्रसाद जी वर्णी

हम वैष्णव धर्म के अनुयायी थे। हमारे घर के सामने जैन मन्दिर जी था। वहाँ त्याग का कथन हो रहा था। मुझ पर भी प्रभाव पड़ा और मैंने सारी उम्र के लिये रात्रि भोजन का त्याग कर दिया। उस समय मेरी आयु दस साल की थी।

एक दिन मैं और पिता जी गाँव जा रहे थे। रास्ते में घना जङ्गल पड़ा। हम अभी बीच में ही थे कि एक शेर-शेरनी को अपनी ओर आते देखा। मैं डरा, परन्तु मेरे पिता जी ने धीरे-धीरे णमोंकार मन्त्र का जाप आरम्भ कर दिया। शेर-शेरनी रास्ता काट कर चले गये। मैंने आश्चर्य से पूछा, "पिता जी! वैष्णव-धर्म के अनुयायी होते हुए जैनधर्म के मन्त्र पर इतना गहरा विश्वास"? पिता जी बोले कि इस कल्याणकारी मन्त्र ने मुझे बड़ी-बड़ी आपत्तियों से बचाया है। यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो तो जैनधर्म में दृढ़ श्रद्धा रखना। मुझे जैनधर्म की सचाई का विश्वास हो गया। इसकी सचाई से प्रभावित होकर समस्त घर बार और कुटुम्ब को छोड़कर फाल्गुण सुदी सप्तमी वीर सं० २४७४ को आत्मिक कल्याण के हेतु मैंने जैनधर्म की क्षुल्लक पदवी ग्रहण करली¹।

---

१ मेरी जीवन गाथा, गणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला, भदैनी घाट, बनारस।

" लिये जैन-सन्देश, "

जैन धर्म का प्रभाव २

श्री कानजी स्वामी का जन्म विक्रमी सं० १९४६ की वैशाख शुक्ला द्वितीया को रविवार के दिन काठियावाड़ के उमराला गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय में हुआ था। उनके वैरागी चित्त को सांसारिक सुख पसन्द न आये और कुटुम्ब वालों के बहुत कुछ समझाने पर भी मार्गशीर्ष शुक्ला ९ सं० १९७० को रविवार के दिन दीक्षा लेकर स्थानकवासी साधु हो गये।

अध्यात्मयोगी श्री कानजी स्वामी

एक दिन श्री कुन्दकुन्द जी का समयसार नाम का महान् ग्रन्थ उनके हाथों में आगया। समयसार जी में अमृत के सरोवर को छलकते देखकर उनके हर्ष का पार न रहा। प्रत्येक गाथा को पढ़ते हुए उन्हें ऐसा अनुभव होने लगा कि जैसे अमृत के घूँट पी रहे हों। इससे उनके अन्तरङ्ग आत्मा को वास्तविक वस्तुस्वभाव और वास्तविक निर्ग्रन्थ मार्ग सत्य लगने लगा, इस लिये चैत्र शुक्ला त्रयोदशी सं० १९९१ को उन्होंने स्थानकवासी सम्प्रदाय का चिह्न जो मुँह पर पट्टी थी, उसका त्याग करके दिगम्बर जैन सम्प्रदाय में परिवर्तित होगये। उनके पवित्र जीवन और अपूर्व उपदेशों से प्रभावित होकर कई हजार स्थानकवासी दिगम्बर जैनी हो गये[1]।

---

१ आत्मधर्म जैन स्वाध्याय मन्दिर (सोनगढ़, सौ[illegible] [illegible]७५-१८४

जैनधर्म का प्रभाव २
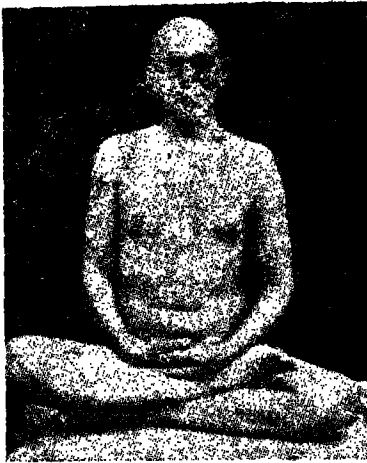
श्री स्वा० कर्मानन्द जी

स्वामी दर्शनानन्द बीमार थे मैं उनसे मिलने गया। उन्होंने कहा, "अब जीवन का भरोसा नहीं"। मैंने कहा, "एक संन्यासी को मृत्यु की क्या चिन्ता"? उन्होंने कहा, "शरीर की नहीं, केवल यह चिन्ता है कि अब जैनियों से शास्त्रार्थ कौन करेगा?" मैंने जैनियों के साथ शास्त्रार्थ करने का सङ्कल्प कर लिया और प्रथम मोर्चा भिवानी के जैनियों से जमा। फिर देहली, केकड़ी आदि अनेक स्थानों पर शास्त्रार्थ हुए। पानीपत में तो जबानी और लिखित शास्त्रार्थ आठ दिन तक चलता रहा। मेरी लिखी पुस्तक 'दिगम्बर जैनों से १०० प्रश्न' का पं० पन्नालाल जी न्यायदिवाकर ने जो उत्तर भेजा, उससे मुझे विश्वास होगया कि मैंने जैनधर्म को जो समझा था, जैनधर्म उससे भिन्न है। जैनधर्म प्रथमानुयोग में नहीं बल्कि द्रव्यानुयोग में है, जो जैनधर्म का प्रमाण है। धीरे धीरे मेरी आत्मा पर जैनधर्म की सत्यता का प्रभाव पड़ता रहा, जिसका फल यह हुआ कि मुझे जैनधर्म में श्रद्धा होगई। जैनधर्म का ज्ञान तो पहले से ही था लेकिन श्रद्धा न थी, अब श्रद्धा हो गई तो वही ज्ञान सम्यक्ज्ञान हो गया। मैं अपनी आत्मा का स्वरूप पहिचान गया और कर्मों में आनन्द मानने वाले कर्मानन्द से निज (आत्मा) में आनन्द मानने वाला निजानन्द होगया[1]।

---

१ विस्तार के लिये जैन-सन्देश, आगरा, (२२ फरवरी १९५१) पृ० ३४।

इस प्रतिज्ञापत्र की नकल भर कर डाक खर्च सहित प्रकाशक* के पास भेज कर

'श्री वर्द्धमान महावीर' बिना मूल्य मँगायें

प्रतिज्ञा लेने से दोषों से छुटकारा हो जाता है। यदि कोई दोष न भी करे तो बिना प्रतिज्ञा के किसी भी अवसर पर दोष लग जाने की सम्भावना हो सकती है। म० गाँधीजी के शब्दों में उ मांस, मदिरा आदि पापों के अवसर आये तो जैनगुरु श्री बेच- जी से ली हुई प्रतिज्ञा उनके सम्मुख आन खड़ी होती थी, जिसके कारण वह इन दोषों से बचे रहे। आज मैं भी निम्नलिखित दोषों को पहले केवल एक साल के लिये छोड़ने की प्रतिज्ञा करता हूँ और डाक खर्च के लिये ९॥ का पोस्टल ऑर्डर भेज रहा हूँ। कृपया अपनी पुस्तक की एक प्रति नीचे लिखे पते पर भेज दें।

१—इस सारी पुस्तक को कम से कम एक बार अवश्य पढ़ूँगा और इसके सम्बन्ध में अपनी राय प्रकाशक के पास भेजूँगा।

२—सोने से पहले, दिन भर के किये हुए अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के कार्यों पर प्रतिदिन विचार करूँगा।

३—अपनी कुल आमदनी का एक पैसा रुपया अलग निकाल कर दूसरों की भलाई में अपनी इच्छानुसार खर्च करूँगा।

४—हर प्रकार के मांस भक्षण का त्याग।

५—निम्नलिखित में से केवल एक कार्य २४ मिनट तक प्रतिदिन करूँगा—

(क) बारह भावना (इसी ग्रन्थ के पृ० २८४-२९५)। (ख) मौनव्रत।

(ग) आत्मध्यान। (घ) सामयिक। (ङ) धार्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय।

६—निम्नलिखित दोषों में से किसी एक का त्याग:—

शराब, जूते के अलावा चमड़े की वस्तुओं का त्याग, दूसरों की निन्दा।

नाम (साफ अक्षरों में) ....

डिगरी, पदवी तथा व्यवसाय ....

पूरा पता ....

तिथि .... १९५४ ई० ....

*Digamber Das Jain, Mukhtar, Quzzat Street, Saharanpur (India).

बड़ी उपयोगी है

...के आध्यात्मिक सन्त श्री १०५ क्षुल्लक गणेशप्रसादजी वर्णी

यह बहुत सुन्दर और बड़ी उपयोगी पुस्तक है। इसे देवनागरी में छपवाया जावे ताकि स्त्री पुरुष सब ही इससे लाभ उठा सकें।

(प्रवचन—१६-४-१६४६)

बहुत पसन्द है

रा० रा० सर सेठ हुकमचन्द जी इन्दौर को आपकी पुस्तक 'विश्वशान्ति के अग्रदूत श्री वर्द्धमान महावीर' बहुत पसन्द आई और उन्होंने मुझे आदेश दिया है कि इसकी २० प्रतियाँ मँगा लो।

रामनाथ शास्त्री

(कोपन मनिआर्डर २३-६-५४)

VERY INTERESTING

Shri Sahu S. P. Jain

Mg. Director Sahu-Jain Ltd.

It is very interesting and full of information.

(His letter of July 14, 1954)

VALUABLE CYCLOPAEDIA

Shri K. P. Jain, M. R. A. S.

Hony. Director World Jain Mission

Let me congratulate you on the successful completion of your unique work. It has become a valuable cyclopaedia about Jainism

(His letter of July 21, 1954)

रघुनाथप्रसाद बंसल द्वारा कमल मुद्रण सदन, सहारनपुर में मुद्रित

THE VOWS ARE VERY ESSENTIAL

HON'BLE SHRI G. V. MAVALANKAR
SPEAKER LOK SABHA INDIA.

I have particularly noted the vows prescribed at page 528 and they are undoubtedly very essential to raise the moral and spiritual height of our people. The difficulty with us unfortunately, has been not the want of a proper philosophy of life, but the want of practice of our ancient philosophy. From what I have seen all these years in all walks of life, I feel the necessity of practice of the principles, which we always have on our lips.

Non-violence has to be a **creed** *of the life of everyone of us. It is difficult to make it a* **creed**. *It requires the acquisition of a good number of qualities. Unless a man sheds his fear-complex, speaks truth and looks upon others the same way in which he looks upon himself, it is not possible for him to practise non-violence; and again, mere physical non-violence is not enough. There must be non-violence in* **thoughts** *as well as in* **words** *and* **deeds**. *It is only when we begin to practise on a large scale non-violence of this type that we shall be able to realise full democracy. Mere absence of the foreigner or a machinery for election does not give us democracy in the real sense of the term. In other words, it is necessary to spiritualise our individual as well as national life.*

(His letter No. D. 1600/54 of the 25th August, 1954.)